CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाथ! मैं आपकी कृपासे बंधनमुक्त हुआ हूँ, अब फिर इस मिथ्या प्रपंच और ऐसे दुःखमय भवपाशमें क्यों पड़ूँ? अब किसकी स्त्री और किसका संतान? किसका देश और किसका राज्य? बस अब तो क्षमा करो. अब तो "शिवोऽहम्! शिवोऽहम्!"

यह सुन गुरुदेव बोले:-'हे छादितबुद्धि! क्या तेरे नामके समान ही तेरा स्वभाव भी है और क्या इसीसे तेरी बुद्धि पलभरमें अज्ञानसे छादित (आच्छादित) हो गयी? तू व्यवहार और परमार्थका विचार नहीं कर सकता इसलिए एकका धर्म दूसरे पर आरोपित कर, भ्रममें पड़, गोते खाता है. जो मनुष्य संसारमें रह कर भी उस पर प्रीति रखे विना सब काम अच्छी तरहसे करता और ब्रह्म-आत्माको सबमें एक समान ओतप्रोत (तले ऊपर, आर पार) देखता है वही सच्चा स्थितप्रज्ञ है. अभी ही तू अनुभवसिद्ध कहता है कि यह सब (जगत्) ब्रह्म है, उसे क्या तू क्षण भरमें भूल गया? तू स्थिर बुद्धिसे देख कि हे राजन्! जैसे तू ब्रह्मरूप है, वैसे ही अनेक देशान्तरोंमें फैला हुआ तेरा राज्य भी ब्रह्मरूप ही है, उसमें निवास करनेवाली मनुष्यादि और पशु पक्ष्यादिक अनंत जीवात्मक तेरी प्रजा भी ब्रह्मरूप ही है,तेरा परिवार, तेरी रानी, और तेरा सारा राजकार्य-भार भी ब्रह्मरूप ही है. तेरे सारे शरीर, इन्द्रिय और मनके व्यवहार भी ब्रह्मरूप हैं, इस तरह पूर्ण ज्ञानदृष्टिसे अनुभव करते-तेरी स्थूल और सूक्ष्म दृष्टिसे देखते, तुझे जो कुछ दीखे-अनुभवमें आवे, वह सब ब्रह्मरूप ही है, तो फिर उसमें तेरे जैसेको दुःख क्या, भवपाश कैसा और बंधन किसका है? स्थिर डोरमें सर्पका आना और जाता रहना जैसा भ्रम-मूलक है, सत्य नहीं है, उसी तरह मायाके कल्पित बंध और मोक्ष, वस्तुतः ब्रह्ममें नहीं हैं. आवरण होनेसे बंध और आवरण नष्ट होनेसे मोक्ष हैं, परब्रह्मस्वरूपको इनमेंसे कुछ भी बाधा नहीं करता और ब्रह्म विना अन्य पदार्थ ही नहीं है तो फिर प्रपंच किसका? यह ब्रह्म आवरणरहित है; पर आवरण हो तो अद्वैत कहां? और द्वैत हो तो वह भ्रममूलक है, जो ब्रह्ममें नहीं है. ब्रह्मरूप समझ कर नीतिसे किए हुए राज्यादिक, स्त्रीसंगादिक और संतानोत्पादनादि कार्य भी अंतमें लेश मात्र दुःखप्रद न होकर, सिर्फ ब्रह्मरूप फलवाले-सुखमय होते हैं. हे राजन्! इसमें तुझे तो आश्चर्य लगने लायक कुछ भी नहीं है, परन्तु दूसरे अज्ञान अल्पमतिके मनुष्योंको भी आश्चर्य लगने लायक कुछ नहीं है. परब्रह्मके स्वरूपसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मायाके आश्रयद्वारा जो यह परब्रह्मरूप सृष्टि उत्पन्न हुई है उसका सब व्यवहार ब्रह्मरूप समझ कर ही प्रत्येक मनुष्यको करनेकी आज्ञा है. परन्तु अपने अपने पापाचरणसे बढ़े हुए अज्ञानके कारण ही अभागी प्राणी, उस पवित्र-महापवित्रतम आज्ञाका पालन नहीं कर सकते, यह बड़े खेदकी बात है ! ! महाभागी और पुण्यात्मा जनकादिक राजर्षियोंने प्रभुकी वह आज्ञा यथार्थ रीतिसे पालन की अर्थात् अपने अपने राज्यादिक व्यवहार ब्रह्मरूप समझ कर जिस उत्तम रीतिसे उन्होंने चलाये थे उनके अनेक वृत्तान्त सज्जन लोग गाते हैं. इसलिए हे राजन् ! हे प्रकाशबुद्धे ! आजसे अब मैं तुझे इस नामसे बुलाऊंगा—तू भी मेरी आज्ञा मान कर, जलकमल-न्यायकी तरह अलिप्त रह, ब्रह्मरूप राज्यका,ब्रह्मरूप धर्मसे पालन कर, राज-र्षिपदके योग्य हो. तेरा कल्याण हो और कल्याणरूप तेरी यह ब्रह्म-निष्ठा सदा अचल रहे. " गुरुदेवके ऐसे उत्तम वचन सुन, राजा उनके पैरोंमें पड़ा और स्त्रीसहित तुरंत वहांसे चल निकला. फिर वह नगरमें आया और गुरुदेवके प्रति पूर्ण भक्ति रख, उनके आज्ञानुसार ब्रह्मरूपसे राज्य चला कर, इस देहावसान (देहान्त) के बाद परम तत्त्वको प्राप्त हुआ.

यह इतिहास कह कर वामदेवजी चुप हुए और सारी रात भगवच्चर्चामें ही व्यतीत होनेको आयी इससे वरेप्सु आदि सब सभासद गुरुदेवके नामकी जयध्वनि करके वहांसे गंगातट पर स्नानादि क्रिया करनेको उठे.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्तदश बिन्दु.

सर्वं खल्विदं ब्रह्म.

आनन्दादेव तज्जातं तिष्ठत्यानन्द एव तत्।
आनन्द एव लीनं चेत्युक्तानन्दात्कथं पृथक् ॥

पञ्चदशी।

अर्थ--दीखनेवाला जगत् आनंदसे ही उत्पन्न हुआ है, उस आनंदसे ही स्थित हो रहा है और उस आनंदमें ही लीन होता है. इस तरह उल्लिखित आनंदसे (जगत्) भिन्न कैसे हो सकता है ?

महात्मा बटुक वामदेवजीके वचनामृतका पान करनेसे श्रोताओंको तृप्ति ही न होती थी. बार बार उनके मुखकी पवित्र वाणी सुननेके लिए सबको नयी नयी जिज्ञासा (जाननेकी इच्छा) होनेसे, जैसे किसी सपेरे (मदारी)के इन्द्रजालके प्रयोगमें फँसा हुआ मनुष्य उसीकी ओर खिंचता है, उसी तरह वे बारंबार आकर्षित होकर उन महात्माके समीप आकर बैठते थे.

दूसरे दिन भी फिर उसी तरह सभा भरी तब पितासहित सिंहासन पर बैठे हुए बटुकका यथाविधि पूजन कर, राजा दोनों हाथ जोड़, आगे खड़ा रहा. मुमुक्षुओंने उसी समय एक स्वरसे जयजयकारकी ध्वनि की. राजा, वामदेवजीके चरणारविन्दको प्रणाम कर, विनयपूर्वक कुछ पूछनेकी तैयारीमें था, इतनेमें वे महात्मा स्वयं ही बोल उठे:-"हे राजन् ! आज तेरे मनमें जो शंका हुई है और जिसका तू समाधान प्राप्त करना चाहता है, उसे मैंने पहलेसे ही जान लिया है. तू जानता होगा, और दूसरे भी, जिन्होंने सुना है वे, अपने मनमें विचारते होंगे कि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यह सारा ब्रह्म है, उपनिषद्के इस महावाक्यमें तो यह अपरोक्ष और परोक्ष, चर और अचर, सब जगत्, ब्रह्मरूप हुआ और वैसा होनेसे उसमें निवास करने-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाले प्रत्येक जनको अपने अपने व्यवहार भी ब्रह्मरूप ही करना चाहिये. परंतु ऐसा करनेसे जगत् और जगत्के व्यवहार कैसे रहेंगे ? सब अद्वैत देखनेसे तो बिलकुल पूर्वापर विरोध आवेगा, उसका क्या होगा ? यह शंका सत्य है; परंतु इसमें गूढ़ अर्थ है. प्रत्येक विषय उसके अधिकारीसे ही ग्रहण किया सकता है. इन सबका अधिकारी ब्रह्मैव दृष्टिवाला ब्रह्मनिष्ठ पुरुष है. इस जगतमें रहे हुए राजा, उसके मन्त्री, कारबारी (कारिन्दे), सेवकवर्ग, उसकी प्रजा और उसमेंसे हल्कीसे हल्की स्थितिवाला गरीब और हाथीसे एक न्यून कीट पर्यन्त प्राणी, तथा परम पवित्र तपस्वी ब्राह्मणसे अधमसे अधम चाण्डाल तक मनुष्य, गरुड़से बिलकुल न्यून और दुर्गंधसे पैदा होनेवाले मच्छर पर्यंत जीव जंतु, बड़े मगरसे बिलकुल न्यून जलचर, बड़े कल्पवृक्षसे दुर्गंधवाली कीचड़के आसपास फँसी हुई सिवार, बडे मेरु और हिमालय आदि पर्वतोंसे मार्गमें पददलित होकर रेती रूप हुए पाषाणादि पदार्थ, सारी पृथ्वीसे उसका छोटेसे छोटा कण पर्यंत परमाणु, बड़े सागरसे एक अत्यल्प गढ़े तक जलाशय अर्थात् संक्षेपमें कहिये तो संसारके सारे छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़े, भारीसे भारी और हल्केसे हल्के, ऊंचेसे ऊंचे और नीचेसे नीचे, अच्छेसे अच्छे और बुरेसे बुरे, पवित्रसे पवित्र और पापीसे पापी, श्रेष्ठसे श्रेष्ठ और दुष्टसे दुष्ट सब पदार्थ तथा प्राणी, सिर्फ एक ब्रह्मसे ही पैदा होनेसे ब्रह्मरूप ही हैं. तो उनके साथ, उस तरह एक समान व्यवहार करनेसे तो भारी अनर्थ हो जाय ! सागर और गढ़ा दोनों यद्यपि ब्रह्मरूप हैं, परन्तु सागरका काम गढ़ेसे न होगा, उसी तरह महावेगवान् (शीघ्रगामी) गरुड़का काम छोटे मच्छरसे न होगा और गढ़ेका गँदला पानी, त्रिलोकपावनी गंगाके पवित्र प्रवाहकी योग्यताका पात्र न होगा ! बड़े मदोन्मत्त हाथीकी पीठापर रखी जानेवाली स्वर्णमय अंबारी क्या किसी एक घूर (कचरा फेके जानेके स्थान) में फिरनेवाले गधे या सुअरकी पीठपर रखी जा सकेगी ? अथवा किसी महापवित्र और भगवत्परायण विद्वान् जीवके स्थानमें क्या किसी महाहिंसक और पापरूप अधमाधम चाण्डालको बैठाकर उसकी पूजा हो सकेगी ? या जो व्यवहार और जिस तरहका हास्य विनोद एकान्तमें अपनी स्त्रीके साथ किया जाता है वैसा व्यवहार और विनोद क्या किसी अधम पुरुषसे भी अपनी माता या बहिनसे हो सकेगा ? नहीं, वैसा व्यवहार करनेसे तो लोकापवाद होगा, शास्त्रकी रीतिसे अपराधी माना जायगा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और मृत्युके पश्चात् अधम गतिको प्राप्त होगा. तो फिर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का क्या अर्थ है! इस महावाक्यका क्या प्रयोजन है? क्या यह झूठा और मुँहसे बोलनेका ही वाक्य है या सब ब्रह्ममय है? यहां पर यह शंका सहज ही उत्पन्न होना संभव है. पर, यहां समाधानके लिए जरा स्थिर बुद्धिसे देखना है. हमें अनुभव होता है कि सारा जगत् ब्रह्मसे ही पैदा हुआ है, ब्रह्ममें ही रमता और लय होता है. आदि भी ब्रह्म और अंत भी ब्रह्म ही है तथा इसीसे कहते हैं कि वह ब्रह्मरूप अथवा ब्रह्ममय है. दूसरी ओरसे कहते हैं कि, यह जगत् ब्रह्मसे बननेके कारण इसमें ब्रह्म विना दूसरा कुछ भी नहीं है, इसलिए वह ब्रह्म जगद्रूप है, तो इसमें क्या दोष है? कुछ भी दोष नहीं! यह ऐसा ही है. ब्रह्म जगद्रूप ही है, जब अविकारी होने पर भी नानारूपसे उत्पन्न होनेसे वह विकारिताको और सदा समान एकरस होते भी क्षणिक, विषम और पृथक्ता (जगत्रूप होनेसे) को धारण किये हैं तो फिर ऐसी पृथक्तामें उसके व्यवहार भी भिन्न भिन्न क्यों न हों? मूलरूपसे देखनेसे ब्रह्म एक है, अभिन्न है परन्तु मायासे जगद्रूप होनेसे वह अनेक द्वैतरूप दीखता है तथापि उसके व्यवहार और व्यवहार करनेवाले सब यद्यपि उसीसे हुए हैं तो भी अद्वैतरूप ही हैं.

अब दृष्टान्तसे समाधान करना चाहिए. सुवर्ण (सोना) मुख्य एक ही धातु है और उससे मनुष्यादिके अनेक शृंगार–अलंकार बनते हैं. सुवर्णका मुकुट, सुवर्णके कुंडल, सुवर्णकी गोप, सुवर्णकी कंठी, सुवर्णकी माला, मुँदरी, करधनी (कटिसूत्र), कर्णफूल, शिरफूल, कंकण, कड़े आदि अलंकार निरे सोनेके ही होने पर भी उन्हें भिन्न भिन्न अवयवोंमें पहरनेकी प्रथा नियत की गयी मालूम होती है. मुकुट सिरमें, कुंडल कानमें, नथ नाकमें, करधनी कमरमें और झाँझें पैरोंमें पहरी जाती हैं. यद्यपि सोना स्वयम् एक ही है, सौ तोलेकी एक ही डलीसे काट काट कर उसीके ये सारे आभूषण बने हुए हैं अर्थात् नूपुर भी सोनेका, करधनी भी सोनेकी और कुंडल, मुकुट भी उसी सोनेके बने हैं–ये सब एक ही वस्तुके होनेसे यदि कोई शंका न करके सिरमें पहरनेका मुकुट पैरमें भिड़ावे, कानके कुण्डल नाकमें लटकावे और हाथकी अंगूठी (मुद्रिका) तथा कड़ोंको कमरमें पहरे और सोनेकी एकता दिखावे, तो वह क्या कहलायेगा? ऐसा करनेवालेको तो सांसारिक मनुष्य निरा मूर्ख ही कहेंगे. क्योंकि वह व्यवहारनीतिको नहीं जानता.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सोना भले ही एक है, परन्तु वह अनेक आकारसे परिवर्तित होनेसे, उसका व्यवहार भी उसके विकार (परिवर्तन) की ओर दृष्टि रख कर ही करना चाहिए. जो अलंकार जिसमें पहरनेके लिए बनाया गया हो, वह उस स्थानमें पहराया जाय तभी शोभा देता है. हे राजा! जगद्रूप हुए ब्रह्मके प्रति ब्रह्मनिष्ठ भी वैसा ही व्यवहार करे, तो वह ठीक कहा जाय अर्थात् जो अपने शरीर, कर्म और स्वभावसे ब्रह्मवेत्ता हो, उसे वैसी ही योग्यतासे जानना–मानना और जो शरीर, कर्म तथा स्वभावशीलतासे अधम—पापिष्ठ हो उसे उस अधम रूपसे देखना और उससे उसी रीतिसे व्यवहार करना चाहिए. इसीका नाम यथार्थ व्यवहार कहा जाता है. नाव और गाड़ी दोनों ब्रह्ममय हैं, तो भी ब्रह्मके विकाररूप हैं, इसलिए उस दृष्टिसे देखते नाव जलमें उपयोगी होगी और गाड़ी भूमि पर ही चलेगी. यदि नावको भूमिपर और गाड़ीको जलपर चलानेका यत्न करें तो उसका फल अनादर ही हो. माता और स्त्री ब्रह्मरूप होते विकारयुक्त होनेसे भिन्न (स्त्री और मातारूप) हुई इसलिए उनसे उसी रीतिसे व्यवहार करना चाहिए और इसी तरह सारे संसारको समझो.

फिर भी एक शंका पैदा होती है कि, व्यवहार तो जगत्में चलता ही है तो फिर उसमें ब्रह्मरूप व्यवहार किसका नाम है ? जगत्को जगद्रूपसे भिन्न देखना तो अज्ञानरूप है, यह कुछ ब्रह्मनिष्ठा नहीं कही जा सकती और न यह जीव कुछ ब्रह्मवेत्ता ही कहा जायगा. इस विषयमें ऐसा विचार होना चाहिए—जैसे सुवर्ण और उसके अलंकारोंका दृष्टान्त लिया, उसमें देखो तो सब सुवर्णके अलंकार अपने अपने स्थानमें पहरे जायँ तभी शोभा देते हैं, इस लिए उस समय सोनेको अलंकाररूपमें देखना ठीक है, परन्तु जब उनके क्रय विक्रय (खरीद फरोख्त) अथवा तौलनेका समय आवे तो प्रत्यक्ष अलंकाररूपसे होते हुए भी वे सुवर्णरूप ही समझकर तौले या बेचे जाते हैं. उसी तरह इस ब्रह्ममय जगत्में राजा और रंक, पवित्र साधु और अधम चाण्डाल, शत्रु और मित्र, माता और स्त्री, स्वजन और परजन, चोर और साहूकार, गरीब गाय और हिंसक सिंह, चपल अश्व और भारवाही गधे, चमकते हीरे और कोयलादि सब पदार्थोंको जगद्रूप देखते उनकी योग्यतानुसार उन सबको प्रत्यक्ष स्वरूपसे देखना चाहिए. परन्तु ब्रह्मरूप देखते उन सब विषमतावाले प्राणी या पदार्थोंको बिलकुल ही समान मानकर, वे ब्रह्मरूप होनेसे मेरे ही समान हैं और इससे, जैसे मुझे सुख

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दुःख मानापमान होता है, वैसा ही उन्हें भी होता है, अर्थात् वे पदार्थ, प्राणी मुझसे जरा भी हल्के या उतरते नहीं हैं ऐसा समझ, आत्माको समान समझ, उनका तिरस्कार न करना चाहिए. ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे उन्हें दुःख हो, उनका उपकार और जिससे वे अपने मूल (ब्रह्म) रूपको प्राप्त कर सकें ऐसा परमार्थ करना चाहिए. जगत्में कोई भी मेरा शत्रु नहीं है, सब ब्रह्मका रूपान्तर होनेसे तद्रूप और मेरे समान हैं और सबको मेरे समान ही अधिकार है, ऐसी वृत्तिसे व्यवहार करना चाहिए. यह व्यावहारिक ब्रह्मनिष्ठा इससे भी अधिक एकतावाली है.

अंतर्ब्रह्मनिष्ठा—जगन्नाटक.

इतना कह कर बटुक वामदेवजी फिर बोले:—" राजा, इस प्रकार सब ब्रह्ममय देखनेवाला मनुष्य जगत्में सबसे समान भाव और पूर्ण ब्रह्मैव वृत्तिसे व्यवहार चलाता है सही और उस समय वह सामान्य दृष्टिसे देखनेवालेको निरा संसारी ही दीखता है सही, पर उसके अंतःकरणका भाव बिलकुल जुदा ही होता है. वह सारी सृष्टिको ब्रह्मरूप अनुभव करनेसे अंतर (भीतर) में सबको समान महत्वसे देखता है, वह किसीसे द्वेष या प्रेम न करके, सबको समान न्याय देता है; स्त्री, पुत्र, धन, परिवार इत्यादि जो जो अपना है, उन्हे अपना दिखा (प्रकट) कर उनके साथ निवास करता है, पर अंतर (भीतर) से उनमें वह लुब्ध नहीं होता. वह जानता है कि ब्रह्मसे पैदा होनेवाला विकार ब्रह्ममें ही लीन होगा; अर्थात् स्त्री, पुत्र, धनादिक विकारप्राप्त ब्रह्म हैं. वे अंतमें विकारहीन होनेसे शुद्ध ब्रह्मरूप हो जायँगे; इसलिए उनमेंसे यदि किसीका कदाचित् नाश हो जाता है, अर्थात् कोई मरता है, तो उसके लिए उसे कुछ भी शोक नहीं होता, उसी तरह वृद्धि (जन्म) होनेसे हर्ष भी नहीं पाता. उसे भले या बुरे किसी कार्यके लिए आसक्ति ही नहीं, वह न किसीकी स्तुतिसे प्रसन्न और न निन्दासे अप्रसन्न ही होता है. उसके ऊपर निरंतर या किसी समय आ पड़नेवाला महादुःख उसके मनको दुःखी नहीं कर सकता, उसी तरह महान् आनन्दकी कथा, जो मायिक वृत्तिके जीवको महाहर्षका कारण हो जाती है, उसके सुखानंदका कारण भी नहीं होती. उसे प्रिय, अप्रिय, सुख, दुःख स्पर्श नहीं करते, अर्थात् उनसे वह पीड़ित नहीं होता. उसी तरह स्वर्गके समान सुखसे वह हर्षित नहीं होता. मतलब कि, जैसे कोई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाटक करनेवाला नाटकमें अपने शरीरसे अनेक वेश धारण कर उन्हें प्रदर्शित करता है पर मनमें तो स्वयम् समझता है कि, मैं तो जो हूँ वही हूँ, सिर्फ वेश प्रदर्शित करनेके लिए भिन्न भिन्न वेश धारण करता हूँ, पर वे सब मिथ्या हैं और वे देखनेवालोंके सामने प्रयोग करके दिखाने तक ही हैं तथा ऐसा विचार कर वह उन सब लोगोंसे बिलकुल निःस्पृह और निरहंकारी रूपसे रहता है, उसी तरह ब्रह्मनिष्ठ पुरुष भी अपने अंतःकरणमें ब्रह्मभावका स्मरण करता हुआ, बिलकुल अहंकारहीन हो कर, वर्ताव करता है. निरंतर परम आनंदसे सुखी ब्रह्मवेत्ता कभी विद्वान् या कभी मूढ़, कभी राजसी ठाटवाला तो कभी कभी भटकता भिक्षुक, कभी व्यवहारकुशल मनुष्य तो कभी सात्विक वृत्तिका योगी, कभी तामस प्रकृतिका पुरुष तो कभी अपमान सहनेवाला क्षुद्रजीव बन कर भ्रमण करता है. वह गरीब (निर्धन) होते भी संतुष्ट, स्वार्थहीन होते भी उत्साही, भोगी होते भी निरंतर तृप्त, विलक्षण होते भी समदर्शी, कर्ता होते भी अकर्ता, फलकी आशा करनेवाला होते भी इच्छारहित (उदासीन), देही होते भी अदेही, परिच्छिन्न होते भी व्यापक और द्वैत होते भी अद्वैत ही रहता है.

" राजा तेरे यज्ञके समय आनेवाले उन नाटकाचार्य मुनिका नाट्यप्रयोग क्या तूने नहीं देखा ? उन महर्षिने अपने शिष्योंको कैसी उत्तम शिक्षा दी थी, उसका विचार कर. उन्होंने परम सत्यव्रतधारी हरिश्चन्द्र राजर्षिका पुरातन इतिहास नाटकरूपसे कर दिखाया था. उस प्रयोगमें हरिश्चन्द्र राजा, उसकी रानी, उसका पुत्र, वरुणदेव, विश्वामित्र ऋषि और वरुणके यज्ञ करते समय एकत्र हुए वसिष्ठादि ऋषि इत्यादि सब पात्र थे. अंतमें काशी पुरीमें गंगातटपर राजा हरिश्चन्द्र, उसको वेचनेवाला ब्राह्मण, उसे खरीदनेवाला चाण्डाल, मृतकरूप राजपुत्र, राजपुत्रको गोदमें ले, श्मशान भूमिमें शोक करती हुई रानी और चाण्डालकी आज्ञासे हाथमें तलवार लेकर रानीको मारनेके लिए जाता हुआ राजा तथा उस समय प्रकट हुआ भगत्स्वरूप आदि प्रधान पात्र क्या तूने देखे हैं ? नाटककर्ताओंका कैसा चमत्कार था ? नाटक हो रहा था उस समय बहुकाल पूर्व होनेवाले हरिश्चन्द्रको मानो हम प्रत्यक्ष देख रहे थे और उसपर होनेवाले महाकष्टकर प्रसंगको देख कर हम सबके अन्तःकरण दया, खेद और शोकसे परिपूर्ण हो, नेत्रोंसे अश्रुपात होता था. जब सब लोगोंको ऐसा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो रहा था तब स्वतः उस राजा और रानी (जो मृतपुत्रको गोदमें ले कर विलाप कर रहे थे,)के दुःखित होनेमें क्या नवीनता है ? "

यह सुन, राजा कुछ कहना चाहता था, इतनेमें वामदेवजी स्वयं बोलेः— " नहीं, नहीं, उनको किसका दुःख ? ये रानी, राजा, मृतपुत्र, ऋषि विश्वामित्र और चाण्डालादिका वेश धारण करनेवाले तो उन नाटकाचार्यके शिष्य थे. वे अपने मनमें भली भांति जानते थे कि, हमने जैसा स्वांग लिया है वैसे या वही तो नहीं, पर ब्राह्मणपुत्र हैं, और यह वेश सिर्फ दर्शकोंको हरिश्चन्द्रके चरित्रका ठीक भान करानेके लिए ही है और यह भी तभी तक है जब तक नाटक समाप्त होता है. फिर उस समय जो पात्र राजाका वेश धर कर खड़ा हुआ था उसे राजापनके दावे या वैसे अधिकारके अभिमान करनेका कोई कारण न था. उसी तरह चांडालका वेश लेनेवालेको सब चाण्डालरूपसे देखते और बुलाते थे उसमें उसे खेद करनेका कोई कारण न था. उसके मनमें निश्चय था कि, मैं, अभी भी ब्राह्मण ही हूँ और वेश उतारूँगा तब भी ब्राह्मण ही हूँ, सिर्फ गुरुकी आज्ञासे अपने हिस्सेमें आया हुआ अभिनय करता हूँ. इसी तरह शोकलीन रानीका वेश करनेवाला और मृतपुत्रका वेश धरनेवाला भी अपने अपने ब्राह्मणपनकी याद रखते हुए सिर पर जो कार्य आ पड़ा था उसे पूर्ण रीतिसे करते थे. उनके अन्तःकरणमें जरा भी हर्ष शोक न था. वे प्रत्येक पात्र अपने अपनेको जानते थे, उसी तरह दूसरेको भी अच्छी तरह जानते थे, तो भी नाटकाभिनयके समय अचूकपनसे अपने वेशका ही काम कर रहे थे, क्योंकि न्यूनता हो तो अभिनय दूषित हो.

" उसी तरह ब्रह्मनिष्ठ पुरुष, इस जगत्में बिलकुल नाटकीय पुरुषरूपसे है. वह अंतरमें भली भांति जानता है कि, यह सब ब्रह्ममय है, परन्तु जगद्रूप होनेसे इसमें जगद्रूप व्यवहार करना योग्य है. ब्रह्मज्ञ पुरुष विश्वमें जगद्रूपसे व्यवहार करने पर भी अंतमें फिर अपनी ब्रह्मनिष्ठा पर ही आ ठहरता है. नाटकमें जैसे वह ब्राह्मण पिशाचिनीका रूप धारण करनेवाली राजा हरिश्चन्द्रकी स्त्री०तथा उसकी गोदमें पड़े हुए मृतक पुत्रको देख, यह कोई श्मशानके बालकोंको भक्षण करनेवाली पिशाचिनी है, ऐसा विचार कर मारने दौड़ा, उस समय उन मारनेवाले ग्रामीणोंकी मार और मारनेके हथियार ये सब जैसे कृत्रिम-वेशधारी-मिथ्या हैं अर्थात् यथार्थ देखते मारनेवालोंका रूप धारण किये हुए नाटकके पात्र अपने मनमें अच्छी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तरह जानते हैं कि, हम सब तो एक हीं हैं, परन्तु सिर्फ मारनेके समान दर्शकोंको अभिनय दिखाते हैं और जैसे उनके कृत्रिम शस्त्रों और मिथ्या प्रहारसे, उस रानीरूप पात्रको जरा भी चोट नहीं लगती उसी तरह ब्रह्मवेत्ता पुरुष भी मनसे सब ब्रह्ममय समझनेके कारण अपने अहितकर्त्ता या सुख-दाताको यदि किसी तरहका दण्ड या दान देता है तो वह सिर्फ देखने भरको दण्ड या दानरूप होता है पर सच देखने पर वह उसका सुख या दुःखका दाता न होकर सिर्फ कल्याणकर्ता होता है, और जैसे अंधकार तेजसे विलक्षण होते भी सूर्यके तेजमें लय होता है उसी तरह सारा दृश्य विलक्षण है तो भी वह ब्रह्ममें ही लीन होता है. ऐसी ब्रह्मनिष्ठा प्रपंचमें (संसारमें) रहनेवाले ब्रह्मज्ञानीको होती है और वह भस्म (राख)में ढकी हुई अग्निके समान होती है. पर इससे भी जिनकी श्रेष्ठ ब्रह्मनिष्ठा अत्युग्र होती है, वे परमहंसदशावाले पुरुष हैं.

परमहंसदेशा—जीवन्मुक्ति.

गुरु वामदेवजी बोले:—"वरेण्यु व्यावहारिक ब्रह्मनिष्ठाकी अपेक्षा परिपक ब्रह्मदशा बिलकुल ऐक्यरूप है. वैसी निष्ठावाला पुरुष ब्रह्म और जगत्में कुछ भेद या विकार नहीं देखता. वह तो सर्वत्र सदाकाल सिर्फ ब्रह्म ही-का अनुभव करता है. उसे माता, पिता, स्त्री, पुत्रादि, स्वजन, कुटुंबादि और शत्रु मित्रादिमें प्रीति अप्रीति नहीं होती; उसे मिट्टीका ढेला, पत्थर और सोना सब समान हैं. उसे चंदन पुष्पसे की हुई पूजा और शस्त्रका प्रहार (मार) समान है, स्तुति और निन्दा एकसी है, अमृतके समान भोजन और विषभोजन समान ही है. गुखरूके कांटोंकी खाट और मखमलकी सुखसेज (शय्या) एकसी है. जमे हुए जलका वर्फ और अग्निका अंगार दोनों समान ही हैं. स्वर्गका सुख और नरककी असह्य यातना एकसी है. दिन और रात समान ही है. भाई और शत्रु एकसे हैं, चींटी और हाथी तुल्य ही हैं, मृग (हरिण) और मृगपति (सिंह) समान हीं हैं. राजा और रंक एकसे हैं. ज्ञानी और अज्ञानी समान हैं. जड़ तथा चैतन्य एकसे ही हैं. इस तरह उसकी दृष्टिमें सब एक ब्रह्ममय ही है और वह भीतर बाहर सब ठौर एकही रस देखता है. उसे कोई कामना नहीं, तृष्णा नहीं, हर्ष नहीं, शोक नहीं, मोह नहीं, दंभ नहीं, गर्व नहीं, क्रोध नहीं, मत्सर नहीं, भय नहीं, सुख नहीं, दुःख नहीं, क्लेश नहीं, माया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(प्रीति) नहीं, ममता नहीं, अहंता नहीं और उसे कुछ लज्जा भी नहीं होती. अविद्याके जो जो कारण हैं वे उसे बाधा नहीं कर सकते. ऐसी स्थितिके कारण वह बिलकुल उन्मत्त (पागल) के समान दीखता है; कपड़े आदिका भी उसे भान नहीं रहता और न भूख तथा प्यास ही उसे व्यथित कर सकती है. कोई ओढ़ाता है तो वह ओढ़ता है, पहराता है तो पहरता है, कपड़े खींच लेता है तो बिना आनाकानी उसे खींच लेने देता है, खिलाता है तो खाता है, पिलाता है तो पीता है, कोई मारता है तो सहन करता है, कोई खींच ले जाता है तो वहां चला जाता है, कभी नाचता, कभी कूदता, कभी हँसता और कभी गूंगा तथा स्तब्ध (चुप) होकर बैठा रहता है. इस तरह नग्न, उन्मत्त, जड़ और बहरा गूंगा जैसा अवधूत परमहंस है. वह सदा ब्रह्मानंदमें मग्न रह इस शरीरसे ही जीवन्मुक्तिका अनुभव करता है और देहपात (देहान्त) होने तक निःस्पृह होकर दैववशात् (अकस्मात्) आ पड़नेवाले सुख दुःखोंको भोगता है. ये सब देहके धर्म हैं, उनसे मेरा कुछ संबंध नहीं ऐसा मानकर वह जगत्में विचरण करता है और यथासमय देह त्यागकर ब्रह्ममें लीन हो जाता है. इस तरह जीवन्मुक्त परमहंसकी ब्रह्मनिष्ठा एकाग्र होती है.

हे राजन्! इससे यह न समझना चाहिए कि जीवन्मुक्तकी वैसी उन्मत्त और जड़वत् स्थितिके कारण उसे (उसके शरीरको) अपार क्लेश होता होगा. अधम-अज्ञानी प्राणी उसकी परमहंस अवस्था नहीं जानता, इससे शायद उसे कष्ट देनेकी मूर्खता करता है, परन्तु ईश्वरी सत्ताद्वारा उस महात्माकी तो स्वयं ही रक्षा होती है. वह स्वयम् ब्रह्माकार हो जानेसे उसे सर्वत्र ब्रह्ममय दीखता है, तो उसे जो देखता उसे भी वह स्वाभाविक ही आत्माके समान प्यारा लगता है. क्योंकि वह प्रत्यक्ष ईश्वरतुल्य है. वह धूपमें चलता है तो बादल उसपर छाया करते हैं. पैरको चीरकर आरपार निकल जानेवाले मार्गमें खड़े हुए कांटे इस लिए जमीनमें घुस जाते हैं कि जिससे उसे पीड़ा न हो, उसे जलन-दाह न हो, इस लिए अग्नि शीतल हो जाती है. जल उसे डूबने नहीं देता. शस्त्रकी धार वार (प्रहार) नहीं करती. उसके मुँहमें गया हुआ विष अमृतरूप हो जाता है. भयंकर सर्प-उसके पैरों तले दब गया हो, तो भी उसे काटनेके बदले शान्त होकर चला जाता है. महाभीषण सिंह अपनी क्रूरता छोड़कर उसके साथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रीड़ा (खेल) करता है. खरगोश, चूहे, कबूतर, चक्रवाकादि पशु पक्षी भी जो मनुष्यको देख भयसे भाग जाते हैं, वे सब भय छोड़, उसे अपने ही समान जान, उसके साथ आनंदसे खेलते हैं. इस तरह वह सारे जगत्का मित्ररूप होकर विचरण करता है. हे राजर्षि वरेप्सु! इस तरहकी सुदृढ़ ब्रह्मनिष्ठा हो उसीके संबंधमें 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस उपनिषद् महावाक्यकी सार्थकता है. मुँहसे बोलनेमें सार्थक्य नहीं है. शुद्ध अंतर्निष्ठा हुए विना उपनिषदादि महावाक्य सिर्फ बोलकर ही जो अपनेको 'अहं ब्रह्म! अहं ब्रह्म!' कहलाते और 'यह सभी ब्रह्म है, इस लिए इसमें मेरा क्या और तुम्हारा क्या, अपना क्या और पराया क्या, शोक क्या और हर्ष क्या, सुख क्या और दुःख क्या, लेना क्या और देना क्या, नहाना क्या और धोना क्या, पुण्य क्या और पाप क्या, देव क्या और धर्म क्या, जीव कौन और ईश्वर कौन है, यह तो मिथ्या भ्रम होकर सब ब्रह्मरूप है,' ऐसा कह कहकर स्वार्थपरायण मनुष्य अज्ञ (मूर्ख) लोगोंको भ्रममें डालते और ठगते तथा कर्मादिक मार्गसे भ्रष्ट करते हैं, वे बिलकुल धर्मको नाश करनेवाले ढोंगी और ब्रह्मदंडके ही पात्र हैं.

" उसी तरह बिलकुल भोले जीवों–अज्ञान जीवोंकी सरल बुद्धिमें भेद डालनेवाले दांभिक पुरुष, वेदान्त शास्त्रके वाक्योंको याद कर और अनेक कूट दृष्टान्तोंको तोतेकी भांति रटकर, बड़े ब्रह्मनिष्ठके समान आडम्बर करके जगत्में विचरण करते और अज्ञ लोगोंको उल्टा सीधा समझाकर, ब्रह्मके बतानेवाले ब्रह्मनिष्ठ गुरु बनकर, उन्हें उपदेश देते हैं और उनसे नाना प्रकारकी अपनी सेवा कराते हैं. इतना ही नहीं, पर उनके तन, मन, धनादितक हरण कर मायाके जाननेवाले और मायामें फँसे हुए जीवोंको रसातलमें भेजते हैं, ऐसे ब्रह्मठग आत्महत्यारे हैं. वे अनेक तरहसे हाथ पकड़ पकड़कर शरणमें आये हुए जीवोंको नरकमें ढकेलते हैं और स्वयं भी (नरकमें) पड़ते हैं जिससे उद्धार होना महाकठिन है. ऐसे दांभिक-ब्रह्मवेत्ताका ढोंग करनेवाले लोग मिथ्या अथवा ठग ब्रह्मनिष्ठ बनकर भक्ति-योगका भी नाश करनेवाले हैं. ऐसे दंभी ब्रम्हनिष्ठ अज्ञ लोगोंको ब्रम्ह-ज्ञानका उपदेश करते समय स्वयं पूर्ण ब्रह्म होकर बैठते हैं और वैसी ही पूर्णताकी बातें करते हैं. परन्तु वे असंस्कारी हैं और उनका अन्तरात्मा जरा भी निर्मल नहीं रहता. उनकी इन्द्रियां क्षुद्र विषयसुख भोगनेके लिए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्षण क्षणमें अधिकाधिक उत्तेजित हुआ करती हैं. उनकी आशा, तृष्णा, उनका ज्ञान सुननेवाले उनके शिष्योंकी आशा तृष्णासे भी अधिक सबल होती है. शिष्योंसे सेवा करा कराकर वे अधिक मौजी और सुखी हो जानेसे जरा भी दुःख, शोक, क्लेश, सहन नहीं कर सकते. उनका मन निरंतर बड़प्पन–पूज्यपन प्राप्त करने, अधिक द्रव्य बटोरने और अज्ञ लोगोंको ठगनेके प्रपंचमें ही फिरता रहता है. वे निर्दय, निर्लज्ज, उद्दण्ड और स्वार्थमें परम प्रवीण होते हैं. कोई निन्दित कार्य हो गया हो तो उस अपकृत्य (कुकर्म) को ढांकनेके लिए वे ब्रह्मनिष्ठ होकर प्रत्युत्तर देते हैं कि. ' इस कर्मसे आत्माका क्या संबंध है ? ' सत्कर्म हो या दुष्कर्म, यह तो सिर्फ देहका ही धर्म है. " इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति मे मतिः " इन्द्रियां इन्द्रियोंके विषय भोगती हैं, ऐसी मेरी धारणा है और देह देहकी तरह स्वयं ही यथोचित वर्ताव करता है तो वह देहके सुख दुःख भोगता है, इसमें मेरा क्या है ? भोगका भोक्ता भोगेगा (फल पायेगा). अथवा इससे भी घनी एकतावाला समाधान करते हैं कि ' अहो ! सर्वं खल्विदं ब्रह्म ! वेद वारंवार पुकारता है कि यह सब ब्रह्ममय है, तो फिर उसमें कौन भोक्ता और कौन भोग्य है ? इसमें क्या पाप और क्या पुण्य है ? ब्रह्मवेत्ताको किसका दोष ? हमें तो कुछ भी विघ्नबाधा नहीं है. हमारे मनसे तो सभी ब्रह्ममय है. मेरा, तेरा और दूसरेका तथा अपना ये सब प्रपंच तो अज्ञानियोंके पास रहता है. ' फिर जब उनसे कोई कहता है कि, ' तुम ब्रह्मज्ञानी होकर मायामें मोह क्यों रखते हो ? तुह्मारे लिए तो पुत्र, स्त्री, घरबार सभी मिथ्या है, तुह्में संसारी पदार्थोंके लिए हाय हाय करना अयोग्य है, तो यह सब क्या है ? तब वे समाधान करते हैं कि, ' यह सब मिथ्या है तो भी स्वप्नके आंसूकी तरह व्यवहारमें तो सत्य ही है. जबतक देह मालूम होता है तबतक यह जगत् लिपटा हुआ जान पड़ता है. पर हम तो परमहंसकी तरह विचरण कर रहे हैं.'

" हे राजा, ऐसे ब्रह्मज्ञ इस युगमें[1] तो शायद ही होते हैं, पर कलियुगमें जब अधर्म अनाचार बढ़ जाते हैं, जीव अविद्याके संबंधसे अल्पबुद्धिके होते हैं, तब वे बड़ी संख्यामें पृथ्वीपर निकल पड़ते हैं और पवित्र परमात्माके नामसे लोगोंको ठगते फिरते हैं. पर वैसे ब्रह्मज्ञोंको यदि कोई यथार्थ

१ जिस युगमें वामदेवजी होगये वह सत्ययुग था, अर्थात् उतरता सत्ययुग और लगता त्रेतायुग.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रम्हवेत्ता मिल जाता है तो उनकी वह बुराई समूल नष्ट हो जाती है और फिर वे सत्य मार्गमें भी फिरते हैं, और उससे अनेक भोले लोगोंका अमंगल होनेसे रुकता है, ऐसे बहुतसे उदाहरण प्रसिद्ध हैं, उनमेंसे एक मैं तुमसे कहता हूँ, उसे सुनो. अब तो सन्ध्यासमय हुआ, इस लिए श्रीहरिकी जयध्वनि करो."

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

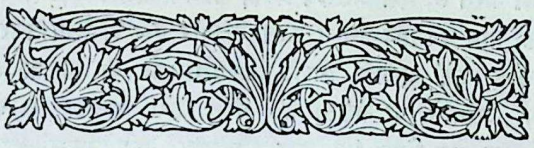

अष्टादश बिन्दु

शुष्क वेदान्तज्ञानी

आवरणस्य निवृत्तिर्भवति च सम्यक्पदार्थदर्शनतः ।
मिथ्याज्ञानविनाशस्तद्विक्षेपजनितदुःखनिर्वृत्तिः ॥ शंकर.

अर्थ—पदार्थका अच्छी तरहसे ज्ञान होनेसे आवरण [अज्ञान] की निवृत्ति होती, मिथ्या ज्ञानका नाश होता और विक्षेप [भ्रम] से होनेवाले दुःखका भी नाश होता है.

सब नित्यके कामोंसे निपट, श्रोतागण सावधान होकर, देवसभाके समान राजा वरेप्सुकी सभामें रातको फिर एकत्र हुए, गुरुदेव तैयार होकर बैठे थे. कीर्तन जारी हुआ था. सब लोग श्रवण मनन और निदिध्यासन (एकाग्र ध्यान) करते थे इससे संतुष्ट हो, गुरुदेवने पुनः उपदेशारंभ किया. श्रीवामदेवजी बोले:—"वरेप्सु ! वस्तु अथवा कार्यका सुख मुँहसे वर्णन करना तो सरल है, परन्तु उसका अनुभव करना अत्यन्त कठिन है. 'मैं राजा हूँ' ऐसा तो चाहे जो मनुष्य, जरा भी परिश्रम विना अपने मुँहसे कह सकता है, परन्तु राजाको मिलनेवाला मान और राजाको होनेवाले सुख दुःखका अनुभव तथा उसके ऊपर रहनेवाला दायित्व (जवाबदेही) और भिन्न भिन्न समयमें अनेक लोगोंको, नानारूपसे प्रसन्न करनेके लिए कोई ही भाग्यशाली बनता है. उसी तरह 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) और 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' [यह सब ब्रह्म है] ये महावाक्य बोलनेमें जरा भी परिश्रम नहीं, परन्तु उसके अनुसार व्यवहार और अनुभव करनेके लिए अनेक जन्मान्तर पर्यन्त असीम परिश्रम करना पड़ता है. इस जगत्में असंख्य प्राणी हैं, उनमेंसे एकाध प्राणी परमात्माके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पानेका प्रयत्न करते हैं, ऐसे असंख्य प्रयत्न करनेवालोंमेंसे एकाध ही प्राणी आत्मज्ञानको प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं और ऐसे असंख्य प्रयत्न करनेवालोंमें कोई एक आधही प्राणी आत्मज्ञानको पा सकता है. वह भी असंख्य जन्मोंमें पा सकता है. परंतु इस बातका सत्य रहस्य न समझकर मूर्ख लोग सिर्फ 'मैं ब्रह्म, मैं ब्रह्म' की पुकारमें ही सार्थकता मानते हैं, परंतु वे अनुभव प्राप्त करनेका जरा भी यत्न नहीं करते. वे अनधिकारी होनेसे चौरासीके फेरेमें फिरते ही रहते हैं और इस जगत्में बडे २ कष्ट भोगते हैं. ऐसे शुष्क ज्ञानी इस वेशसे इस संसारमें फिरते हैं, मानो मुँहसे कही हुई बातके अनुसार उन्होंने स्वयम् अनुभव किया है और अविद्या (अज्ञान)से आवृत (घिरे हुए) अज्ञ लोगोंमें महात्मारूपसे पूजे जाते हैं. कार्य करते समय जो जो साधन चाहिए वे सब साधन उस कार्यका फल भोगते समय आवश्यक नहीं हैं, यह नियम आवश्यक है, परंतु किसको ? परमहंसको, शुद्ध पवित्र जनको, दूसरे जीवको नहीं. वह तो ऐसे कृत्यसे उल्टा पतित होता है. परमात्मस्वरूपका अनुभव होनेसे जिन जिन कर्म उपासनादि साधनोंका आचरण करना चाहिए वे वे साधन, परमात्मस्वरूपका अनुभव होनेके बाद अत्यावश्यक नहीं हैं, क्यों कि भगवत्साक्षात्कार होने पर फिर वे साधन आप ही आप छूट जाते हैं. परंतु अपूर्ण ब्रह्मनिष्ठावाले और असंस्कारी जीव ज्ञानी महात्मा परमहंसको देखकर सारे कर्म उपासनादि साधन जान बूझकर, अविद्याके कारण, मायामें लिपटकर, प्रमादसे, सहज ही छोड़ देते हैं; इतनाही नहीं, पर वैसे साधनोंका अत्यंत द्वेष कर दूसरे लोगोंको भी, जो उन साधनोंका भक्तिभावसे सेवन करते हैं वैसा करनेसे मना करते हैं. वे कहते हैं कि 'इन साधनोंके मिथ्या रगड़ोंकी क्या जरूरत है ? सर्वत्र ब्रम्हभावसे देखना बस है. कृतार्थता उसीमें सन्निविष्ट (समायी) है.' इस जगत्के मायावश लोगोंको तो इतना ही आवश्यक है. सृष्टिका स्वाभाविक नियम है कि, सब मनुष्य जैसे बने वैसे स्वल्प श्रमसे अलभ्य लाभ प्राप्त करनेकी अभिलाषा रहनेवाले हैं और जो फल बड़े कष्टसे और दीर्घकालमें प्राप्त होता हो वह फल जरा भी परिश्रम विना तुरंत मिल जाय तो इसके समान उत्तम तो एक भी नहीं है. इसी तरह, जिस ब्रह्मके जाननेके लिए अपार कठिन साधन करने पड़ते हैं, वह ब्रह्म यदि 'अहं ब्रह्मास्मि' कहनेसे ही प्रत्यक्ष होता हो तो फिर क्या चाहिए ? परंतु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्मका साक्षात्कार (दर्शन) करना सहज श्रमका कार्य नहीं है. 'जो पार जाय वह लड्डू खाय' इसी तरह जो जीव सद्विचार, सत्कर्म, सद्ज्ञान और पूर्ण भक्तिसे परब्रह्मके प्राप्त करनेके लिए मंथन करता है, वही पर-ब्रह्मको, करोड़ों जन्ममें पाता है. परंतु इसका विचार ही कौन करता है ? इस जगत्के जीवोंको तो ऐसे वाचिक (कहने भरके) वेदान्तियोंके कर्मो-पासनादिक साधनोंके निन्दारूप उपदेश, बहुत प्रिय लगते हैं, और इससे वे तुरंत ही सारे सत्कर्म त्यागकर, परम निष्ठुर हो जाते हैं. वे शास्त्रादिको नहीं मानते, सारे कर्मोंका त्याग कर देते हैं और स्वयम् ही ब्रह्म होनेकी धारणा रखकर ईश्वरका भय भी नहीं करते. बिलकुल पत्थरके समान शठ शिष्य और वैसे ही उनके गुरू भी होते हैं. वे परम इष्ट (प्रिय) सिद्धा-न्तोंको वेश बदलकर सर्वत्र निन्दारूपसे फैलाते हैं और अनेक लोगोंको कुमार्गमें दौड़ाते हैं. परंतु जब उन्हें कोई सच्चा ब्रह्मवेत्ता मिलता है और किसी जन्मका संस्कार होता है तब फिर अधिकारी बन, सत्य मार्गमें भी फिरते है.

ऐसा एक शठ गुरु, जिसे वाचिक (शाब्दिक) वेदान्ती, ठग वेदान्ती, शुष्कवेदान्ती, या ब्रह्मठग आदि अनेक नाम दिये जा सकते हैं, एकबार अज्ञ लोगोंको भ्रमाता हुआ उत्तर दिशाकी ओर चला. जाते जाते वह एक देशमें जा पहुँचा. वहांका राजा बड़ा बलवान् और बड़ी समृद्धि-वाला था. उसके राज्यमें संत और महात्मा ज्ञानी पुरुषोंका अच्छा सन्मान होता था. यह ब्रह्मठग मानता था कि इस लोकमें मेरे जैसे ही सब संत महात्मा होंगे, इस लिए चलो मैं भी इस राजाके यहां जाऊं और उसे अपने वाक्चापल्यसे वश कर लूं. ऐसे निश्चयसे वह 'जय सच्चिदानन्द, जय सच्चिदानन्द,' कहता हुआ राजदरबारमें गया. परंतु राजाने उसे अधिक आदर नहीं दिया. सिर्फ उसे भोजनादि देनेके लिए नौकरोंको आज्ञा दी. ऐसा देखे, उस दांभिकने राजाके किसी नौकरको अपने पास बुलाकर युक्तिसे पूछा:—'क्यों भाई, देशान्तरमें तो तेरे राजाकी कीर्ति सुनी जाती है कि यह राजा बड़ा सज्जन और महात्माओंका सम्मान करनेवाला भाविक भक्त है पर वह तो यहां कुछ भी देखनेमें नहीं आता, यह कैसा ?' तब उस नौकरने कहा:—'महाराज ! हमारे राज्यमें संत महात्माओंका सम्मान होता है यह बात सत्य है, पर वह क्या इस न्याय दरबारमें होता है ? यह मान तो राजाकी एक रानी मिहिरा (मीरा) के यहां ही सब साधु संतोंकी पूजारूपसे होता है. रानीजी परम साध्वी और संतसेविका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं. वे निरंतर संतसमागम ही किया करती हैं. उनके यहां महात्माओंका सम्मान होता है. राजाके यहां क्या होगा ? निरंतर साधुओंमें ही बैठना और परब्रह्मके ध्यानमें रहना ही रानीका स्वाभाविक व्यवहार है, वहां आप जावें, वहां सब अच्छा साज है. उन्होंने इस संसारको असार समझकर विलास वैभवका त्याग किया अर्थात् राजाने उन्हें त्यागकर एक शून्य भवनमें रखा है. उनके निर्वाहके लिए राजा हर महीने या प्रतिवर्ष धनकी जो बड़ी रकम देता है, वह सब वे संतसेवा हीमें लगा देती हैं. आप वहीं पधारें, वहां आपका अच्छा सम्मान होगा.'

महामुनि वामदेवजी बोले—"राजा, जिनको मान और अपमान सुख तथा दुःख दोनों समान ही हों वही महात्मा हैं. वैसे पुरुषको 'मेरा सम्मान हो तो ठीक' ऐसी कामना पैदा ही नहीं होती. यह शुष्क वेदान्ती, राजाके अल्पमानसे असंतुष्ट हो, बड़ा मान प्राप्त करनेके लिए राजसेवकके कथनानुसार, रानी मिहिराके मंदिरकी ओर 'कल्याण ! कल्याण !' 'शिवोऽहम् ! शिवोऽहम् !' कहते चला. रानीका नाम सुनकर उसे आनंद भी खूब हुआ. उसने सोचा कि, पुरुषसे स्त्रीका मन अधिक सरल होता है, इससे मेरा मत (उपदेश-पंथ) पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें अधिक शीघ्रतासे फैलकर आदरित होगा ऐसी आशा है. यह बात सत्य है कि पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंको भ्रमाकर किसी भी रास्ते खींचा जा सकता है. अस्तु ! फिर वह संत, मिहिराके महलमें गया. तुरन्त अनेक सेवकोंसहित मिहिरा स्वयम् उस संन्यासीके सम्मुख आकर, उसका बहुत सत्कार कर अपने महलमें ले गयी. भीतर चाहे जो कुछ हो, उसे कोई नहीं जानता. पर ऊपरसे उस साधुमें साधुत्वके लक्षण देख कर मिहिरा भक्तिसे उसकी सेवा करने लगी. उसका तो स्वभाव ही था कि, भक्तको भगवद्रूप ही मानना और ब्रह्मविदको ब्रह्मरूप देखना. रानी मिहिराने अपने भवनमें आये हुए उस महात्माको रुचिकारक भोजन करा-कर, सुन्दर, ऊंची और कोमल गद्दी पर बैठाल, भगवत्सेवासे बचे हुए सुगं-धित चंदन और पुष्पादिक उसे भगवद्रूप जानकर अर्पण किये और फिर उसके सामने हाथ जोड़ कर भगवत्-चर्चा करनेको बैठी. वाचिक वेदान्ती बोलनेमें हमेशा पटु होते हैं, इस लिए वह साध्वी मिहिरा भगवत्संबंधमें शंकासे प्रश्न पूछती, तो उसका युक्तिप्रयुक्तिसे उत्तर देकर वह संन्यासी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रानीका समाधान करता था. यद्यपि भीतर (अन्तःकरणमें) उसे कुछ अच्छा न लगता था तो भी वह रानीका मन प्रसन्न करनेके लिए, जब रानी भक्तियोगमें मस्त होकर, वीणावाद्यसे, पैरोंमें घुँघरू बांधकर प्रभुके सामने नाचती और हरिकीर्तन करती, तब वह संन्यासी भी वैसा ही करता था. परन्तु गौं पाकर (प्रसंगोपात्त) अपने कुटिल सिद्धान्त फैलानेसे न चूकता था. वह मानों कोई सबसे बड़ा ब्रह्मनिष्ठ हो, इस तरह गम्भीर मुँह करके कहता कि, ' हे रानी ! अब यह मूर्ति नहीं चाहिए.' आत्मपूजा करना योग्य है. स्वामी और सेवक, स्तुति और निन्दा, दान और भिक्षा (याचना) इत्यादि प्रपंच जो प्रत्यक्ष द्वैत भावनाको दिखाता है, कुछ काम नहीं आता. तू तो बड़ी ज्ञानवती है. तेरे मनमें अब कुछ द्वैत भावना नहीं दीखती; तो फिर ' सर्वं खल्विदं ब्रह्म ' इसी भावसे इस मिथ्या जगत्में विचरना योग्य है, महात्माओंकी सेवा और ज्ञानका श्रवण यही अब तुमको उचित है. संतके ऐसे वचन सुनते ही मिहिरा, जो बिलकुल ब्रह्मरसमें मग्न थी और जो कुटिलवादमें न पड़, यथार्थ मार्गमें ही चलती थी, बहुत नम्रतासे अपने वेदविहित भक्तियोगका सिद्धान्त कर फिर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म ' इस महावाक्यकी सार्थकता प्रतिपादन करती थी.

" ऐसा करते हुए कई दिन बीत गये. राजमहलमें रहकर वह संन्यासी, नित्य मौनभावसे वैसा भोजन खा खाकर मोटा ताजा और गुलाबके फूलकी लालिमाके समान हो गया. उसका अन्तःकरण तो उसी समय भ्रष्ट हो गया था जब उसने पहले ही पहल रानीका अद्भुत रूप देखा था, परन्तु वह उस दुष्टभावको अपने मनमें ही रखकर फिरता था. रानी मिहिरा जब उसकी ईश्वरभावसे पूजा करने लगी, तब उस भावका अपने इच्छानुसार दुरुपयोग करनेका उसने विचार किया. एक दिन रानी भगवत्सेवा कर पूर्ण प्रेमसे नृत्य कीर्तनमें मग्न थी इस समय दास दासी आदि भवनेमें कोई न थीं, वह संन्यासी गद्दीपर बैठा था और उस रानीका रूप देख, मोहांध होनेपर भी मुँहसे ' कृष्णोऽहम् कृष्णोऽहम् '* जप करता था. महासाध्वी मिहिराके भक्तियोगका मैं क्या वर्णन करूं ? जब वह कीर्तनके समय प्रेमके आवेशमें तल्लीन होती तो अपने देहकी सुध भूल जाती थी. वह परिपूर्ण ब्रह्मानन्दमें मग्न रहती थी. आज उसे ऐसी स्थितिमें देखते ही उस बकमहात्माका मन विह्वल हो गया और उस आवे-

* सोहम्—वह (परमात्मा) मैं हूँ.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शमें, वह पापपुंज, पवित्र मिहिरासे उसके साथ नाच करते करते लिपट गया. अपने शरीरको किसीका स्पर्श हुआ है, ऐसा जानते ही रानी सचेत हुई. वह ग्लानिप्राप्त संन्यासी अपने दुष्ट भावको छिपानेके लिए चतुराईसे बोलाः—" हे रानी ! इतनी असावधानता ! मैं तुमको एकदम आकर नहीं पकड़ता तो तुम तुरन्त ही गिरजाती. हम बारंबार कहते हैं कि, यह झूँठा बखेड़ा तुम छोड़ दो. तुमको और हमको तो ऐसी द्वैतभावना उचित नहीं है. आपको तो सभी ब्रह्मरूप है ! देखो, सभी अद्वैत, वाह ! कौन ठाकुर और किसकी सेवा. "

" परम पावनी मिहिराके मनमें द्वैतभावना होवे ही किसकी कि उसे कुछ पातक या सन्देह पैदा हो ? किन्तु गुरुका मन तो ऐसा चंचल हो गया कि कब रानी भूले और कब मेरी कामना पूर्ण हो. फिर उसने अनेक युक्तियां रचना प्रारंभ की. यह बात बातमें शृंगारक्रीड़ाका वर्णन और तत्त्वविवेचनसे मिश्रित कर युक्तिपूर्वक अनेक मदनोद्दीपक बातें करने लगता. पहले वैसी शृंगारकथासे रानीके मनमें संशय न हो इसलिए उसे धिक्कारता और फिर धीरे धीरे उसका मण्डन करता और कहता जाता कि, देखो सबको ब्रह्म ही देखता है—यानी सभी दृश्यादृश्य जगत् ब्रह्मरूप ही है, ऐसा जिसने अनुभवसे जान लिया है, उसीको किसी भी कर्मसे प्रत्यवाय (पाप) नहीं लगता. वह तो सब कर्माकर्मसे जल-कमलके समान मुक्त ही है. " परन्तु ऐसे वाक्योंसे मिहिराके मनमें कुछ असर न होता था. पवित्र प्रेमभक्तियोगमें लीन वह साध्वी यही मानती थी कि, यह चराचर मेरे हृदयके स्वामी ब्रह्मका ही है. तब वह साधु नयी नयी युक्तियां कहता, पर भक्तिरसमें रँगे हुए अंतःकरणवाली वह साध्वी, उसके दुष्टभावको नहीं समझ सकी. एक दिन एकान्त देख, रानीके सामने वह ज्ञानकथा कहने लगा. साधुरूप बकभक्तने पहले बहुतसा ज्ञानरहस्य कह कर, फिर कोई विचित्र प्रसंग लाकर ऐसा दृष्टान्त देने लगाः—

" हे मिहिरा ! यह आत्मा तो बिलकुल निर्लेप है और प्रारब्ध (कर्म-फल) तो इन्द्रियद्वारा देहको भोगना पड़ता है, परन्तु उसके साथ आत्माका जरा भी संबंध नहीं है. किसी राजर्षिके नगरसे कुछ दूर एक रमणीक उपवन था. वहां उत्तमोत्तम ललित पुष्पवृक्ष और फलित वृक्ष खड़े थे. अनेक शुक (तोते), मैना आदि पक्षी भी मधुर कलरव कर रहे थे. उस उपवनकी सुशोभित घटाके मध्यमें एक महात्माका आश्रम था.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ये महात्मा एक दिन आनंदसे एक आम्रलताके नीचे बैठ, उपवनरूप ब्रह्मलीला देखते थे. इतनेमें वहां मानो दूसरी उर्वशी ही है, इस तरहकी एक युवती उस उपवनमें क्रीड़ा करती हुई जा पहुँची. उसके साथ वैसी ही सुंदरांगी सखीमंडली भी थी जो उस नवयौवनाकी सेवाके लिए नाना प्रकारके सेवोपचार करती थी. उस नवल किशोरीको देखते ही उस महात्माका मन बहुत विह्वल हो गया और इन्द्रियां स्वेच्छासे उस सुन्दरीकी ओर जोरसे दौड़ने लगी. महात्मा तो साक्षात् ब्रह्मरूप ही था, उसे कुछ भी संकल्प विकल्प न होता था; परंतु,इन्द्रियोंसे प्रेरित हुआ स्थूल शरीर एकदम स्वस्थानसे उठ, शीघ्रतासे दौड़, उस नवल सुन्दरीके कोमल गुलाब जैसे शरीरके साथ ब्रह्मभावसे लिपट गया और ऐसा दृढ आलिंगन किया कि उससे वह सुन्दरी छूट न सकी. ऐसा प्रसंग देख, हँसती और लजाती हुई उसके साथकी सखियां आश्चर्यसहित दूर भाग गयीं और उन्होंने उस वाटिकाके बाहर आकर राजसेवकोंसे यह समाचार बताया. इस ब्रह्मलीलाके रहस्यको समझ न सकनेवाले सब सेवक तुरंत नाराज होकर उस वाटिकामें दौड़ आये और उस सुन्दरीकी भेटसे निवृत्त होकर खड़े हुए उस महात्माके स्थूल शरीरको मारने लगे. फिर उसके शरीरको कैद कर राजनगरमें ले गये और राजसभामें लेजाकर उसके, स्थूल शरीरको खड़ा कर, उसका अपराध राजासे निवेदन किया. उस नगरीका राजा, उस नवल सुन्दरीका पिता था. वह बड़ा धर्मात्मा और ज्ञानी था. सेवकोंके मुँहसे सब वृत्तान्त सुन और महात्माके शरीरकी ओर देख वह बहुत शोक करने लगा और बोला:—"हरे हरे !! किन पापियोंने इस महात्मा पुरुषको व्यर्थ पीड़ित किया है ? जाओ रे, उन दुष्टोंको इससे दश दश गुनी पीड़ा दो और सिर तथा मूछ मुड़ाकर उनको नगरमें घुमाओ. फिर वह राजर्षि हाथ जोड़कर उस महात्माके आगे जाकर क्षमा-प्रार्थना करने लगा ! अहा—"

"इतनेमें ही परम चतुरा मिहिरा बीचमें बोल उठी:—'महाराज! यह बात तो बहुत विपरीत कही जा सकती है. क्या अविवेकी, आश्रमव्यवस्थाके भंग करनेवाले पुरुषको दंड देना योग्य नहीं है ? इसमें सेवकोंको उल्टा दंड क्यों होना चाहिए ?' यह सुन,उस वेदान्तीने उत्तर दिया:—"अरे साध्वी! तू ऐसी तत्त्वज्ञ होकर क्यों भूलती है?ऐसे महात्माको अविवेकी कौन कहेगा ? कौन नीतिभंग कहेगा ? यह जगत् ब्रह्मरूप ही है ! विषयादिक कर्म देहके हैं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और उन्हें देह भोगती है ! उनमें ब्रह्मज्ञको कुछ भी लालसा नहीं होती, वह तो सदा निर्लेप और निष्पाप है. ऐसे ब्रह्मज्ञानीकी भेंटसे तो वह सुन्दरी राजबाला परम पवित्र हो, तेरे समान ही ब्रह्मपदको प्राप्त हुई थी. " यह सुन, साध्वी मिहिरा समझ गयी कि, इस कूट ज्ञानी साधुका मन मलिन है. मनका स्वभाव बहुत विलक्षण होता है. मनसे ही संसार स्वर्ग और नरकद्वार होता है. मन यदि अंकुशमें हो तो वह दास और निरंकुश हो तो शत्रुसे भी अधिक दुष्ट है. उस साधुके कपटयुक्त वचन सुन, रानी मिहिरा चुप हो रही. पर जब लज्जित होकर मिहिरा कुछ नहीं बोली तब इस ठग संन्यासीने अनुमान किया कि रानी साध्य (वशमें) है. वह फिर साधुभाषामें बोला:—'हे रानी ! इस बातमें ग्लानि करनेका कुछ प्रयोजन नहीं. क्यों कि यह तो अज्ञ लोगोंको उल्टी समझ है. यथार्थ दृष्टिसे तो किसीमें कुछ भेद नहीं है, सब एकही ब्रह्मके विकार हैं. जैसे एक ही सोनेसे ये तुम्हारे कुंडल बने हैं और उसीसे तुम्हारे हस्तकंकण बने हैं. इसमें सिर्फ आकार मात्र भिन्न है. यदि इन्हें तोड़ अग्निमें गलाकर एक करें तो सोना ही होगा, कुछ भेद नहीं रहेगा, उसी तरह हम सहित सब पुरुष और तुम सहित सब स्त्रीवर्ग केवल एक ही ब्रह्मके रूपान्तर होनेसे सर्वथा अभिन्न अर्थात् एकही हैं. तो स्त्री पुरुषका संग दूषित कैसे कहा जाय ? फिर उसमें भी अज्ञपनेकी बात अलग है, हमें तुम्हें कोई बात दूषित और बंधनकारक नहीं है. तुम और हम बराबर हैं इसलिए निरंतर सुखमय विहार करते रहें तो भी किसी तरह लिप्त नहीं होंगे. बराबरवालोंका विहार भी ब्रह्मरूप ही होता है. इसमें ग्लानि करनेका कुछ काम नहीं. तुम और हम एक ही रूप हैं और जब एक ही रूप हैं तब लज्जा किसकी? जिस समय जिस विषयकी कामना हो उस समय उस विषयका भोगकर, निःस्पृह होना योग्य है. जब खीर खानेकी इच्छा हो तब इच्छाभर खीर खाकर इस इच्छाको तृप्त करना चाहिए. जब किसी समय मन प्रबल हो जाय तो उसको शान्त करना ही उचित है. इस लिए किसी समय इच्छा हो जाय तो संकोच करके उसे मनमें मत छिपाना. तुम्हारी प्रसन्नताके लिए यह ब्रह्मरूप देह सदा तत्पर है. '

"वरेप्सु ! वेदान्तवादसे मिश्रित होनेपर भी उस संन्यासीकी ऐसी विषयलालसासे गर्भित बात सुन, मिहिरा अपने मनमें एकदम सचेत हो गयी. उसे निश्चय हुआ कि, ब्रह्मनिष्ठकी बातें ऐसी नहीं होतीं, कोई दुष्ट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जीव ही ऐसी कल्पना करता है. परन्तु साधु जनोंपर उसका अटल पूज्य भाव होनेसे, उसने अपना वह निश्चय मनमें ही दबाकर, इस शुष्क वेदान्तीके मन और उसके ब्रह्मभावकी परीक्षा लेनेका निश्चय किया. वह नम्रतासे बोली:—'महाराज ! मेरे मनमें तो किसी बातकी कामना (इच्छा) नहीं है. मेरी सब कामना परब्रह्म श्रीहरिके अंगके संगमें बिलकुल लय हो गयी हैं, परंतु सर्वज्ञ ब्रह्ममय देखनेवाले आपकी कुछ इच्छा हो तो मैं तो आपकी चेली हूँ.' यह सुन, वह ब्रह्मज्ञ बहुत ही प्रसन्न हो गया, और बहुत दिनोंका प्रयत्न आज सफल हुआ ऐसा समझकर बोला:—'हे सुन्दरी ! साध्वी ! ऐसा योग और ऐसा एकान्त स्थान फिर कब मिलेगा ? तैयार होजा.' तब वह चतुरा बोली:—"महाराज ! आप यह क्या बोले ? जहां अपना मन शुद्ध है और हम दोनों समान ब्रह्मदृष्टिवाले हैं वहां एकान्त क्या और गुप्त क्या ? महाराज मेरी ऐसी इच्छा है कि आप विदेशी हैं इससे आपका प्रसंग बारबार मिलना दुर्लभ है, इसलिए आप पूर्ण ठाटके साथ अपनी इच्छा पूर्ण करें. आप निश्चिन्त रहें. आजसे तीसरे दिन ब्रह्मलीलाका सुख अनुभव करनेके लिए मेरे एक अत्यंत सुन्दर बगीचा है, हम उभय वहीं जायेंगे." इतनी बातचीत होती थी, इतनेमें एक दासीने हाथ जोड़कर विनय की:—" देवी ! श्रीहरिको नैवेद्यार्पणका समय हुआ है." यह सुन, तुरंत वह पवित्र अबला उठकर हरिमंदिरमें चली गयी.

वामदेवजी बोले:—"वरेप्सु ! इस महासाध्वी मिहिरा रानीका अधिकार कितना बड़ा था, वह किस तरह ब्रह्मस्वरूपमें लीन थी, यह बात मूर्ख क्या जाने ? वह सिर्फ मुँहसे ही 'अहं ब्रह्म,' 'अहं ब्रह्म' कहनेवाली न थी, परंतु स्वयं ब्रह्म ही थी. अपनी अन्तर्दृष्टिसे अपने और सारे जगत्में व्याप्त हुए एकही परमात्माको अभेदपनसे देखनेवाली थी. उसे तो बाल्यकालसे ही परमात्माका साक्षात्कार हुआ था और तभीसे उसका अज्ञानावरण दूर होजानेसे ब्रह्ममय सारा जगत् उसे हस्तामलकवत् था. उसका अभेदपन और उसकी परमात्मनिष्ठा उसके पतिके देश और उसके पिताके राज्यमें प्रसिद्ध थी. ससुरालमें सास, ननद और पति इत्यादिने उसे सबके समान भेद-दृष्टिसे संसारमें रखने और संसारका अनुभव लेनेके लिए अनेक प्रयत्न किये, पर उसकी दृढ़ भक्तिभावनाके आगे किसीका कुछ न चला. इतना ही नहीं, पर वैसा करनेको उन्होंने उसकी कई वार परीक्षा की थी, अनेक वार उसे छला था. पर, किसीसे उसका अचल प्रभु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रेमभक्तियोग शिथिल नहीं हुआ. निदान, उसके पतिने उसे उस एकान्त मंदिरमें रख, खर्चकी सुन्दर व्यवस्था कर दी थी. उसके ऐसे सच्चरित्रसे यह जगत् अनभिज्ञ न था. उसकी परम उदारता और दीनदयालुताके कारण स्वतः उसीकी निन्दा करनेवाले अथवा उसके काममें विघ्न करनेवाले अनेक अधम लोग भी कल्याणपात्र बन गये थे अर्थात् अत्यंत रूपवती होनेपर भी सब संसारसे विरक्त और निःशंक होकर इच्छानुसार प्रेमलक्षणा भक्तिसे हरिकीर्तन और चाहे जैसे एकान्त स्थानमें संतसमागम करनेपर भी अब उसकी विशुद्धता–निर्दोषताके लिए किसीको भी शंका न होती थी. जो बात मनमें वही बाहर और जो बाहर वही भीतर. किसीसे कुछ भेद और न किसीसे कुछ दुराव ! ऐसा शुद्ध चरित्र देख, उसके दास दासी भी बिलकुल शुद्ध और भक्तिमान् होगये थे. उनसे भी उसका चरित्र गुप्त न था, और उसके किसी चरित्रके लिए उन्हें शंका भी न थी. ”

उस शुष्क वेदान्तीके पाससे विदा हो फिर मिहिराने सब दासियोंको पास बुलाकर उस महात्माकी परीक्षा करनेके लिए की गयी युक्ति कह सुनायी और अपने अपने संकेतमें बहुत सावधान रहनेकी चितावनी दी. अपने पवित्र पतिकी आज्ञा ले और उपयोगी व्ययके लिए धन मँगाकर तथा शिबिरादि (डेरे तंबू) विविध सुखसामानसहित उन्हें दूसरे दिन नगरके बाहर बनी हुई अपनी एक रमणीय वाटिकामें भेजा. देवीके आज्ञानुसार उन्होंने वाटिकामें जाकर युक्तिपूर्वक सारी रचना ठीक कर दी.

तीसरे दिन भगवत्सेवा करके मिहिरा वहां जानेको तैयार हुई. वह संन्यासी तो मार्ग ही देख रहा था कि, कब वाटिकामें पहुँचें और अपनी मनःकामना सफल करें. दो रथ तैयार होकर दरवाजेके सामने खडे हुए. महलसे उतरकर मिहिरा रथमें बैठी. संन्यासी दूसरे रथमें बैठा. उसका मन तो इस समय तीसरे स्वर्गके सुखमें फिर रहा था. थोड़ी देरमें वाटिकामें पहुँचे. रथसे उतर मिहिरा उसे भीतर ले चली. वहां जगह जगह अद्भुत लीला हो रही थी. वाटिकाके बीचोबीच एक अत्यंत सुन्दर तम्बू इस तरह खड़ा किया गया था, कि वह प्रत्येक मनुष्यको चाहे जहांसे खड़े खड़े अच्छी तरह दीख सके. वह देखनेमें तो सुंकुचित पर भीतरसे बहुत बड़ा और सुन्दर था. तम्बूके भीतर सब रचना रंगबिरंगी थी. जरजवाहिरातकी वहां कमी न थी. मखमलके विचित्र नर्म गलीचे जमीनपर बिछाये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गये थे. तंबूके मध्य भागमें एक चंदनका पलंग बिछा था. उसपर दूधके फेनके समान नर्म बिछौने बिछे थे. उसपर और सारे तंबूमें उस ऋतुके अनुकूल विविध सुगंध सिक्त थी. फिर अनेक सुगंधित फूलोंके गुच्छे भी जहां चाहिए वहां लगे हुए थे. ऐसे विशाल और इतनी रचनावाला होने पर भी वह शिविर (राजसी मुकाम) ऐसा यांत्रिक (यंत्रवाला)था कि यदि इच्छा हो तो एक क्षण मात्रमें वह सबका सब वहांसे अधर उखाड़ कर हटा लिया जाय, तो भी उसके भीतर रहनेवालोंको कुछ पीड़ा न हो.

" रानी मिहिरा ऐसे अद्भुत विलासभवनके समान शिविरमें उस संन्यासीको ले गयी. भीतर जाते ही साधु पुरुष तो निहाल हो गया. वसंत ऋतु, हृष्ट पुष्ट शरीर, संगीतका आलाप, कामोद्दीपक पदार्थोंका संघट्ट (जमाव) इन सबसे वह मदान्ध शुष्कज्ञानी धीरज नहीं धर सका. संकेतके अनुसार दास दासियां वहांसे एक एक कर खसकने लगीं. शिविरके द्वारका पर्दा सरर्र करता नीचे गिर गया. इस तरह थोड़ी देरमें मनुष्योंके समूहके बीचमें बना हुआ शिविर एक गुप्त एकान्तस्थान बन गया. भीतर तीसरा कोई भी न था. मिहिरा और संन्यासी दो ही थे. सबके चले जाने पर संन्यासी पलंगपर जा बैठा और मिहिराको हाथसे अपनी ओर खींच आलिंगनकी उतावली करते बोला:—"हे सुभगसुन्दरी ! अब क्यों देर करती है ? आज तेरा और मेरा दोनोंका जन्म सफल है. मुझ जैसे महात्माकी सेवा करके कृतार्थ होनेवाली तू विशेष धन्य है. ब्रह्मचिह्न सर्वत्र एकमय देखनेका यही सार है, हम जैसे ब्रह्मदर्शियोंको तो सभी रूप ब्रह्ममय है तो इस सिद्धान्तको तुम सुजान होकर बारबार क्यों भूलती हो ? और लज्जित होकर कोमल अंगोंको क्यों गुप्त रखती हो ? ऐसा मुग्धत्व तो सिर्फ अज्ञान और नवोढा–मुग्धा स्त्रियोंको ही योग्य है. तुम तो ब्रह्मरसमें मग्न हुई हो, इस लिए अब इस अमृतमय समयको व्यर्थ मत जाने दो." यह सुन, मिहिरा एक किनारे खसककर बोली:—" महाराज ! आपका कहना सत्य है ! मैं कुछ लज्जा नहीं करती. मैं तैयार हूँ ! आप कपड़े त्याग दें ! क्योंकि मेरा शरीर देखनेसे जैसे आपको कामना उत्पन्न हुई है, उसी तरह आपका अंग देखनेसे मुझे भी कामना उत्पन्न हो, इस लिए इतनी इच्छा पूर्ण करो. आप कपड़े त्यागकर आओ, ब्रह्मका विलास करें."

महाराज तो यह बात सुन, और भी अधिक प्रसन्न हुए और पलंगसे नीचे उतर, तंबूकी खूंटीमें एक एक वस्त्र उतारकर टांगने लगे. कमरका फेंटा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी निकाल डाला. अब सिर्फ दो अगुलकी लँगोटी रही. उसे पहने हुए महाराज आने लगे, तब फिर रानी बोलीः—"क्या कहूँ ? आपके समान सुन्दर श्वपुरुष[1] मैंने आजतक कभी न देखा था. किन्तु वाह ! यह दो अंगुलकी चिन्दी (चिथड़ा) आपने क्यों रखी है ? ब्रह्मदेव यह तो आपके अंगगौरवको कलंक लगाती है इसे निकालदो." यह सुन, महात्मा वह लँगोटी उतारनेके लिए संकोच करने लगा तब पवित्र रानी फिर बोलीः—"अरे ! आप तो ब्रह्मरूप हो, मैं भी ब्रह्मरूप हूँ, यह ब्रह्मलीला है, ब्रह्म सर्वत्र है, आपको इसमें संकोच क्या है ? लज्जा क्या है ? सर्वत्र अद्वैत है, द्वैत कहां है जिससे लज्जित होते हो ? आपकी ब्रह्मलीला पूर्ण रीतिसे करनेके लिए मैं यहां आयी हूँ, आप शीघ्र पधारो ! क्या आपके मनमें द्वैत भाव वसता है ?" यह सुन, बहुत हर्षित हुआ वह संन्यासी, दिगंबर (नग्न) होकर शीघ्रतासे पलँगके पास आने लगा. उसकी सारी इन्द्रियां पूर्ण रूपसे जाग्रत हो गयीं थीं. उसके रोम रोममें कामका महाबल व्याप गया था, पर यहां 'अहं ब्रह्मास्मि' की परीक्षाकी कसौटी थी. ज्योंहीं वह संन्यासी पलँगके पास आ, मखमलसी कोमल सीढ़ियोंसे होकर ऊपर चढ़ने लगा, त्यों ही रानी "पधारो पधारो" ऐसा शब्द जोरसे बोली और तुरंत ही वहां एक विचित्र चमत्कार हुआ. एक सपाटेसे सारा तंबू वहांसे उखड़ गया और वहां पड़ा हुआ पलंग मानो खुले मैदानमें डाला गया हो इस तरह दीखा. अब देखलो मजा. इसी जगह उस ब्रम्हवेत्ताकी दुर्दशाकी पराकाष्ठा हो गयी.

"तंबू उखड़ते ही चारों ओरसे सैनिकोंका हाथियारबंद पहरा होने लगा. आसपास सारे दास और दासियां मुँहमें कपड़ा लगाकर खड़ी थीं. रानीकी अभिलाषासे नग्न हुए उस ब्रम्हज्ञानीकी इस समय कैसी दुर्दशा हुई होगी ? वरेप्सु ! उसका तू ही विचार करले. वह महामूर्ख, तंबू उखड़ते ही हक्का बक्का हो गया. वह दिगंबर नाथ पलंगकी सीढ़ीसे कूद, भयभीत और लज्जित होता हुआ अपने कपड़े लेनेको दौड़ा, परंतु कपड़े कहां थे जो पहरे ? वे तो तंबू उखड़नेके साथ उसीमें चले गये थे. अब वह क्या करे ? कहां जावे ? अपने शरीरको कहां छिपावे ? वह अज्ञ जीव अपने शरीरको हाथसे ढँक, इधर इधर छिपनेकी जगह खोजने लगा. ऐसा तमाशा देख,

१ श्वान पुरुष, कुत्ता.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चारों ओर खड़े हुए सेवक मुँहमें कपड़ा लगा और पेट पकड़; खिलखिलाकर हँस पड़े. इस समय उसके मनमें ऐसी ग्लानि हुई होगी कि यदि पासमें कोई अंधा कुआ होता अथवा पृथ्वी फट जाती तो वह उसमें धँसकर मरजाता या जीभ काटकर देहत्याग करता. इतनेमें फिर भी मिहिरा नम्रतासे कहने लगी:–" महाराज ! इस अमृतसमान समयको क्यों खोते हो ? शीघ्र आओ ! आप तो स्वयं ब्रह्म हो, मैं भी ब्रह्म हूँ, यह सब जगत् भी ब्रह्म है, ये सेवक भी ब्रह्म हैं तो चिन्ता क्या और लज्जा भी किसकी ? अद्वैतभाववालेको, परम ब्रह्मस्वरूपको ब्रह्मरूपकी लज्जा उचित नहीं. लज्जा तो सिर्फ द्वैत भाववाले और भेददृष्टिका लक्षण है. आपमें तो कुछ भी भेद नहीं है. मैं तो अज्ञ अबला हूँ, इससे भेददृष्टिसे देखूं तो उचित ही है, परंतु आप तो स्वयं ब्रह्म हो, आप भी भेददृष्टिसे देखो तो यह जगत् डूब जाय ! "

यह सुन, वह संन्यासी बोला:–' हे मिहिरा ! मिहिरा ! यह क्या ? तंबू गिरा दो ! क्या लज्जाका विचार नहीं है ? ' मिहिराने कहा:–' महाराज ! ब्रह्मरूपको लज्जा क्या ? शीघ्र पधारो. विलासमें रमण करें. यहां ब्रह्मके सिवाय कौन है कि जिससे तुम्हें भय और लज्जा लगती है ? मैं सर्वत्र ब्रह्म देखती हूँ और तुम्हें वह नहीं दीखता ?' वरेप्सु ! इस समय उस शुष्क वेदान्तीके मनको कितनी बड़ी चोट लगी होगी ? उसने विचार किया होगा कि ये चारों ओर फिरते हुए पहरेदार अपनी तलवारसे मुझपर एकदम टूटकर मेरे टुकड़े टुकड़े क्यों नहीं कर डालते, परंतु उस दंभीका पूर्व जन्मका संस्कार था इससे उसने इस समय एक क्षण भी जीनेकी अपेक्षा अपने शरीरके टुकड़े टुकड़े होजाना अधिक योग्य माना. उसे विचार हुआ कि जिन्होंने आजतक मुझे महाराज, गुरुराज आदि शब्दोंसे सत्कार कर ईश्वरकी तरह मेरी पूजा की है, वे सब लोग आज मुझे इस दशामें देखते हैं ! धिक्कार ! धिक्कार ! यह सब मेरे ही कृत्योंका मुझे फल मिला है. मैंने अपना सारा जीवन मिथ्या ब्रह्मवादमें ही बिताया, पर सत्य ब्रह्मको नही पहँचाना. हाय ! इस साक्षात् ब्रह्मरूपिणी और जगत्की माताके समान रानीका मैंने कितना भारी अपराध किया है. अहो ! सच्ची ब्रह्मज्ञ और सच्ची अद्वैत भावनावाली तो यही है कि जो अभी तक पलंगपर बैठी है तो भी किसी तरहकी ग्लानि नहीं करती और इस मूर्ख, देहसुखाभिलाषी जीवको ब्रह्मवाक्योंका बोध कराती है. अहा हा ! धन्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है इसे और इसकी शुद्ध ब्रह्मनिष्ठाको. अरे! यह तो सारे जगत्का गुरु-रूप है, मेरा सद्गुरु तो यही है; यही मुझे सब पापों और अज्ञानसे मुक्त करेगी. ऐसे विचारसे वह संन्यासी, इस समय मानो पिछले सारे कुकर्मोंका विपाक (फल) भोग रहा हो ऐसे शुद्ध मन और अकुटिल भावसे, उसी दशामें दंडकी तरह गिर, हाथ जोडकर उसके पैरोंमें पड़ा और उसने पुकारकर कहा:-'हे मातुश्री, हे मातुश्री! हे दयाकारिणी! हे ब्रह्मरूपिणी! मैं तेरा बड़ा अपराधी बालक तेरी शरणमें पड़ा हूँ. इस अज्ञान बालकपर दया कर, सब अपराध क्षमा कर और मुझे शरणमें रखकर सदाके लिए संसारदुःखसे मुक्त कर.'

"सतीशिरोमणि मिहिराने उसे ऐसा नम्र और शुद्ध मनवाला देखकर, उसी समय नौकरोंसे उसके कपड़े दिलाये. उसे अधिकारी जान, शान्त कर, वहींपर भगवन्नामस्मरणका उपदेश देकर कहा कि—'हे सज्जन! इस पवित्र मंत्रका शुद्ध मन और एकनिष्ठा (विश्वास) से अटल जप करते हुए तू भगवद्रूप हो जायगा. हे बाप! तू मिथ्या ब्रह्मभाव (अहंब्रह्मपन) छोड़ दे और 'उस सर्वव्यापी परब्रह्म श्रीहरिका दास हूँ' ऐसी दृढ़ भावना धारण कर, उसे एकचित्तसे भज, बस परब्रह्मरूप होकर तेरा कल्याण होगा. तेरा कल्याण तेरे हाथमें ही है."

"ऐसा कह, मिहिरा वहांसे उठ खड़ी हुई और सेवक प्रभुके नामकी जयध्वनि करने लगे. परन्तु वह नूतन जनित साधु तो मिहिराके पैरोंमें सिर रखकर पड़ा ही रहा और कहने लगा कि-'मातुश्री! अब मैं तेरे चरणोंको छोड़ कहीं जाना नहीं चाहता और तू मुझ जैसे अज्ञान बालकका त्याग करनेके लिए योग्य नहीं है. मैं तेरी सेवामें जन्मभर यहीं रहूंगा, तू जो कुछ अन्न देगी वही खाऊंगा और प्रपंचका त्याग कर अपनी भक्तिको दृढ़ करूंगा.' ऐसे अत्याग्रहसे मिहिराको वह प्रार्थना माननी पड़ी. फिर श्रीहरिकी जयजय ध्वनि सहित सब वहांसे नगरकी ओर जानेको तैयार हुए और वह शुष्कज्ञानी अहंभाव छोड़कर, वहीं रहा और दूसरे जन्ममें परम ज्ञानी हुआ. ऐसी भगवद्भक्त और संतशिरोमणि मिहिरा रानीका प्रभाव अब तक संसारमें गाया जाता है."

महासाध्वी मिहिरा.

ऐसा विस्तृत इतिहास सुन, प्रसन्न हुए सब सभासदोंके सहित राजा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वरेण्सुने नम्रतापूर्वक फिर बटुकसे विनय की कि; हे कृपालु गुरुदेव ! " यह मिहिरा स्वयं अबला–स्त्रीजाति और उसके पति आदि सब कुटुम्बी संसारमें अनुरक्त होते भी उसे ऐसी ज्ञान–भक्ति कहांसे और किसतरह प्राप्त हुई यह कहिये. "

बटुक वामदेवजी बोले; "प्राचीन कालमें मिहिरा नामकी नगरीमें जयसेन नामका एक महासमर्थ ब्रह्मनिष्ठ राजा था. उसने पहले कठिन उपासना द्वारा अपने मनको भगवत्पदारविन्दमें दृढ—स्थिर किया था. उसकी संसारकी प्रीति जलकमलवत् थी. धीरे धीरे उसकी सब मायिक वृत्तियां निर्मूल होते ही उसे परब्रह्मका साक्षात्कार (दर्शन) हुआ और उसके बाद वह पूर्ण ब्रह्मनिष्ठासे ही अपना राज्य चलाया करता था. उसके धार्मिक राज्यमें किसीको कुछ अन्याय, भय या अधर्मका डर न रहता था. सब प्रजा सुखी और सदाचारिणी थी. ऐसे प्रतापी राजाके यहां उसकी वृद्धावस्थामें एक रत्नके समान कन्या पैदा हुई. वह कन्या साक्षात् किसी देवपुत्रीके समान और लक्ष्मीके भाण्डारतुल्य थी. 'पुत्रके लक्षण पालनेमेंसे ही जाने जाते हैं ' इस कहावतके अनुसार जन्मते ही उस कन्याका शील ऐसा उत्तम दीखने लगा कि उसके विना राजाको क्षणभर भी चैन नहीं पड़ता था. सोते, बैठते, नहाते, खाते और सभामें राजकाज करते भी लड़की उसके पास ही रहती थी. पहले पहल बोलना सीखी तभीसे उस बालाके सुन्दर कोमल मुँहसे ऐसे मधुर शब्द निकलने लगे कि जिन्हें सुनकर सबको आनन्द होने लगा. कुछ समयमें जब वह अच्छी तरह बोलने लगी तो जन्मसे ही राजपुत्री और सबकी लाड़िली (प्यारी) होते भी, अपने माता-पिता (राजा रानी) से लगाकर उस राजभवनके तुच्छातितुच्छ दास दासी सबको, योग्य मान पूर्वक और प्रिय शब्दोंसे बुलाती, किसीको भी अनादर या क्रोधभरे शब्द कहना उसे अच्छा ही न लगता था. फिर रानी उसे थोड़ा थोड़ा अक्षरज्ञान कराने (शिक्षा देने) लगी और राजाके रातदिनके सहवाससे स्वाभाविक ही उसे अनेक सुन्दर श्लोक, भगवत्संबंधी अनेक स्तोत्र और भगवत्कीर्ति गीत (कीर्तन) बिलकुल शुद्ध वाणीसे कंठाग्र हो गये. जब राजा नित्य भगवत्सेवा करके वाणीवाद्यसे प्रभुसंनिधानमें नृत्य करते समय प्रेमसे स्तोत्रादिक गाता तो वह भी स्वाभाविक बाललीलासे पिताके साथ नाचती और गाती थी. वह संस्कारिणी थी, योगिनी थी, परन्तु पूर्व-जन्मके योगमें कुछ कमी रह जानेसे उसे जन्म लेना पड़ा था. इस जन्ममें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसके संस्कार पूर्ण होनेके लिए वह जन्मसे ही परब्रह्ममें लीन थी. वह ज्यों ज्यों बढ़ती गयी, त्यों त्यों ईश्वरकी सेवामें उसका मन इतना लगा और दृढ़ हुआ कि अपने बालवयके योग्य खेलना, खाना, पीना, आनन्द उत्साहसे सखी सहेलियोंके संग रहना, फिरना, पढ़ना, गुनना और कला कौशल्यादि सीखना इत्यादि सब बातें एक किनारे रख वह सोचती थी कि मुझे जो कुछ करना है वह सिर्फ भगवत्सेवा ही है, ऐसा उसके मनमें दृढ़तासे जम गया. राजाको शायद किसी राजकाजके कारण कुछ विक्षेप (अड़चन) हो जाय तो अपनी सेवाका समय जरा भी खराब जाने न देकर, नित्यके ही समयमें स्नानादिकसे शुद्ध हो, वह कुमारी प्रभुसेवामें तत्पर हो जाती और यथाविधिसे सेवा करती थी. विलंब हो जानेसे जब राजा सेवाके लिये अत्यंत चिन्ताग्रस्त होकर आता और अपनेसे भी अधिक चतुराईसे सेवाको पूर्णकर उस पवित्र बालाको एकाग्रचित्तसे प्रभुका ध्यान करते देखता तो उस (बाला) की आंखोंसे प्रेमाश्रुकी धारा बहती थी. पुत्रीका भक्तिभाव देख, वह आनन्दमग्न हो जाता. मनमें वह विचार करता कि, यह बाला पूर्व-जन्मकी कोई महाभक्त है, परंतु भगवत्साक्षात्कार होना बाकी रह जानेसे वह पूर्वजन्मका अपूर्ण भक्तियोग पूर्ण करनेके लिए ही मेरे यहां जन्मी है. *

इस तरह समय बिताते हुए वह कन्या विवाहके योग्य हुई तो राजाने विधिवत् उसका विवाह किया, परन्तु यह बात उस साध्वी कन्याको पसंद न थी. विवाह हो गया, पर श्वसुरके घेर जाने योग्य उमर होते तक वह पिताहीके घर रही. इस समय उसका भक्तियोग परिपक्व दशामें आ गया. उसपर पूर्ण कृपा कर पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीहरिने, अपने सगुण स्वरूपका उसे दर्शन दिया. एक दिन वह संध्यासमय ईश्वरोपासना करने बैठी. प्रदक्षिणा नमस्कारादि सब कर लेने पर इन इन्द्रियोंको रोक कर, प्रभुका ध्यान और मानसिक पूजा करना आरंभ किया. चरणकमलोंसे मुकुट-पर्यन्त परमात्मस्वरूपका ध्यान कर, गंध पुष्प नैवेद्यादि मानसिक उपचार

---

* इस विषयपर भगवद्वाक्य नीचे लिखे अनुसार है:—

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥

पूर्वका योगभ्रष्ट—अधूरा योगी, अपना वह योग सरलतासे पूर्ण करनेको किसी पवित्र और धनवान्के घर जन्मता है, अथवा किसी शुद्ध बुद्धिवाले योगियोंके कुलमें जन्मता है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनको अर्पण किया. फिर मानसिक दीपकसे प्रभुके अंगप्रत्यंगोंको प्रेमसे अवलोकन करते हुए उस स्वरूपानन्दमें इतनी तल्लीन हो गयी कि उसे अपनी देहकी सुध न रही. इसी समय उसका हृदय खुल गया. जिस स्वरूपके अवलोकनमें वह तल्लीन हो गयी थी, वह सच्चिदानंदघन स्वरूप हृदयकमलमें अखंड विराजता दिखाई दिया, इस देहके आत्मस्वरूपमें ही आत्मस्वरूप ही साक्षात् ब्रह्म है ऐसे दर्शन होते ही–ऐसा अनुभव होते ही–वह परमानंदमय–सच्चिदानंदमय–तेजोमय बन गयी. ऐसे चिन्मय स्वरूपमें ही उसका स्वरूप कँपने लगा, रोयें खड़े हो गये, सारे शरीरसे पसीना छूटने लगा. इसी लीनतामें पूर्ण भक्तिभावसे खड़ी होकर वह नाचने लगी. इस समय उसके अकथनीय प्रेमानंदके कारण उसके हृदयके सम्मुख विराजती परमात्माकी सगुण निर्गुण मूर्ति भी उसके साथ नाचने लगी ! जिससे वह स्थान सिर्फ अच्युतपुरका अच्युतमंदिर ही बन गया !

इस समय फिर दूसरा चमत्कार हुआ ! इस तरह भगवानकी एकतामें बहुत समय बीत गया, इससे वहां प्रार्थनाके समय प्रकाशित किये गये दीपकोंका घृत घट गया और दीपक उसी क्षण बुझ गये, इतनेमें उसका पिता अपने कार्यसे अवकाश पाकर प्रभुकी सेवाके लिए मंदिरमें आया. वहां बिलकुल अंधकार देख कर, उसे आश्चर्य हुआ कि, लड़की सेवा करने आयी थी वह भी नहीं है और मंदिरमें दिया भी नहीं, यह क्या है ? फिर उसने लड़कीको दो तीन वार धीरेसे बुलाया, पर कौन बोले ? मिहिरा तो उस समय अपने प्रभुके स्वरूपको ही देखनेमें मग्न थी, बिलकुल ब्रह्मरूप ही थी, तो 'मिहिरा ! मिहिरा 'का उत्तर कौन दे ? प्रत्युत्तर न मिलनेसे वह भीतर जाते हिचकिचाया और दिया लानेके लिए नौकरको पुकारा इतनेमें उसकी दृष्टिमें उपरोक्त चमत्कार दीखा. इस समय मिहिरा स्वरूपानंदमें मग्न होनेसे उसका हृदय खुल कर वह तेजोमय हो रही है और अद्वैत परमात्मस्वरूपके साथ नाच रही है तथा उसके शरीरमें ऐसे भगवत्स्वरूपका साक्षात् आविर्भाव होनेसे वहां एकाएक सूर्यके समान प्रकाश हो रहा है. अकस्मात् अपनी आंखोंके आगे ऐसा अद्भुत स्वरूप देख और उसमें (उस प्रकाशमें) अपनी पुत्रीके साथ उस दिव्य परमात्माकी मूर्तिको नृत्य करती देख, राजा आश्चर्यमें डूब गया, वही रूप (तद्रूप) हो गया और उसके मुँहसे उस समय स्वयम् ही ऐसा वाक्य निकल पड़ा कि— "अत्र को मिहिरः साक्षात् ? (अरे, यहां यह साक्षात् सूर्यके समान कौन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है ?)" उसी समय उसके उत्तरमें नृत्य करते हुए भगवान्ने वैसे ही पदबद्ध वाणीसे कहा:—

कोऽप्यन्यो मिहिरो नास्ति मिहिरा तव कन्यका ।
मदीयानामशेषाणामज्ञानांधविनाशिनी ॥
सुतारूपेण ते जाता भक्तिर्मे प्राणवल्लभा ।
खद्योतानां जगत्स्त्रीणां मिहिरा भास्करा इव ॥

"हे राजा ! यहां कोई अन्य सूर्य नही, पर तेरी पुत्री ही मिहिरा अर्थात् सूर्या-सूर्यके समान है, जो मेरा सब भक्तोंके अज्ञानरूप अंधकारका नाश करनेवाली है, मेरी प्राणप्रिय भक्ति ही तेरी पुत्री रूपसे उत्पन्न हुई है. खद्योत अर्थात् जुगनू नामके जीवके समान जगत्की सब स्त्रियोंमें वह मिहिरा सूर्यके ही समान है."

"यह बात सुनते ही राजाके आनन्द और आश्चर्यका पार न रहा और उस परमात्माके निर्गुणस्वरूपके दर्शन करने, स्वात्मस्वरूपमें लीन होने और पूर्ण अधिकारी होनेसे, वह भी उस विचित्र लीलामें प्रविष्ट हो गया ! वहां आप ही आप दिव्य वीणा, वेणु, मृदंग, ताल, घुँघरू आदि वाद्यों (बाजों)के मधुर शब्द होने लगे. तुरंत ही फिर एक नया चमत्कार हुआ. नृत्य करते हुए श्रीहरिके प्रकट स्वरूपमें दूसरे अनेकानेक रूप प्रकट हो गये ! वहां पर सेवादिके जो जो पदार्थ पड़े थे और दूसरे अदृश्य तथा दृश्य सब पदार्थ, हरिरूप—ब्रह्मरूप दीखने लगे. जहां जहां नजर जाती वहां वहां सभी रूपोंमें ब्रम्हरूप ही दीखने लगा. ब्रम्हके सिवाय कोई चीज न थी. ब्रम्हा विना कोई स्थान न था. और ब्रम्हके सिवाय आकाश (अवकाश) ही न था. ! निदान यह विचित्र लीला देखनेवाला राजा भी भगवद्रूप और वह राजकन्या भी भगवद्रूप ही बन गयी." ऐसे सच्चिदानन्द स्वरूप सागरमें ब्रम्हरस लहराते वह रात उन्हें क्षण समान बीत गयी. जब उषःकाल होने लगा तब अपनी उस ब्रम्हलीलाको समेट कर श्रीहरि फिर एक रूपमें हो गये ! फिर वे पिता पुत्री भी तुरंत चेतमें आ कर, उनकी नाना प्रकारसे स्तुति करने लगे. दोनों पैरोंमें पड़कर, गद्गद स्वरसे प्रार्थना करने लगे कि-'हे परब्रम्ह ! हे निरंजन निराकार सच्चिदानन्द घनश्याम परमात्मा ! अब हमें छोड़ कर आप कहां जाते हो ? आप अद्वैतभाव क्यों दर्शाते हो ? ' तब अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान्ने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In.Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनसे प्रिय शब्दोंमें कहाः-' मैं कहीं नहीं जाता, मैं कहींसे आया भी नहीं और मुझे कहीं जाना भी नहीं है. यहां मुझसे न अन्य कोई आत्मवित् (आत्मज्ञानी) है और न कोई अज्ञानी है. यह क्या ! अभी तुम्हारे अनुभवमें यह नहीं आया कि मेरे विना कोई स्थान ही नहीं है ? मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ. अपनी सगुण ब्रह्मलीलाका मैंने तुम्हें अभी ही अनुभव कराया है, वह तुम क्यों भूलते हो ? यह सब जगत् मुझसे ही पैदा होनेसे मैं सर्वत्र हूँ, परन्तु मायाका सहारा लेकर जगत्रूप होनेसे मैं गूढ़ हूँ. अविद्यावान् (मूर्ख) अज्ञ, पापी, और नारकी लोग मेरा प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर सकते पर ज्ञानी भक्तके मैं समीप ही हूँ. तुम मुझे जैसा अभी देखते हो, वैसा मैं सबको सुलभ नहीं हूँ. मैं जगत्में सदा ही अदृश्य हूँ. मेरा सेवन-भक्ति करनेके लिए शास्त्रकी आज्ञासे ये संसारी जीव मुझे अनेक भावनासे देखते हैं, उन्हें उन उन रूपोंसे मैं दर्शन देता हूँ. सारे संसारमें एक अंशद्वारा व्याप्त हो रहा हूँ, इस मूर्तिमें भी हूँ और आत्मामें भी हूँ, इस भीत (दीवार) में भी हूँ और ब्रह्माण्डमें भी हूँ, द्वैत भी हूँ और अद्वैत भी हूँ. जैसे तुम जानो बूझो, वैसा मैं हूँ. तुमसे जगत्में भक्ति यश विस्तार पायेगा; फिर सच्चित्-तद्रूप हुए तुम अंतमें मेरे परम धाम पुण्यात्मा, ब्रह्म धामके निवासी होगे-जहां गये हुए भाग्यवान् प्राणीको फिर कभी भी पीछे फिरनेका भय नहीं रहता. '

" इतना कह, भगवान्ने उन्हें आँखें मूंदनेको कहा. जब वे आँखें खोल कर देखते हैं तो भगवान्, मूर्तिरूपसे ही सिंहासनपर विराज रहे थे. सवेरा हो रहा था, यह देख पिता पुत्री फिर उनकी सेवामें लग गये. इस तरह यह राजकन्या उस दिनसे सब भक्तों और सब स्त्रीसमाजोंमें बिलकुल सूर्यके समान उपमाके योग्य होनेसे ' मिहिरा ' नामसे प्रसिद्ध हुई है."

" ब्रह्मके दर्शन पायी हुई वह राजकन्या मिहिरा, शुद्ध प्रेम भक्तियोग साधकर, स्वात्मामें ब्रह्मको देख, प्रेम, ज्ञान, भक्तिमें लीन हो, पवित्र श्रद्धासे निरंतर ब्रह्मरूपसे बैठे हुए, प्रभुकी सेवा करती थी. उसका प्रभाव जान स्वाभाविक ही अनेक महात्मा भक्तजनोंके झुण्डके झुंड उसके दर्शन और सत्संगका लाभ लेनेको आते थे. मिहिरा भी इन संतोंका अच्छी तरह सत्कार कर दिनरात उनके साथ प्रेमसे हरिचर्चा करती थी. हे वरेप्सु ! भक्तको भक्त जन बहुत प्रिय होते हैं इससे मिहिराका यह स्वाभाविक ही नित्यकर्म हो गया कि निरंतर संत महात्माओंका समागम कर उनके समु-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दायमें ही रहना और जगत्की निर्लज्ज लज्जाका त्याग कर, पूर्ण प्रेमसे हरि-कथारसका पान करना. उसके इस बड़े गुप्त प्रभावको न जानने और उसकी ऐसी समान वृत्तिके कारण मूर्ख लोग निन्दा करते थे, परंतु किसी-पर ध्यान न देकर उसने अपना वह शुद्ध ब्रह्म प्रेम भाव ज्योंका त्योंहीं प्रकट रखा था.

ऐसा करते हुए फिर कुछ समयमें उसे उसके पतिके यहां जानेका समय आया. वहां भी वह उसी भक्तिभावसे व्यवहार करने लगी. यह उसके राजसी पतिको नहीं भाया. उसने यह स्वभाव छुड़ा कर अपने विचारके अनुकूल करनेका बहुत प्रयत्न किया, पर व्यर्थ ही. उसका ईश्वरी भाव झूठा ढोंग है या सत्य है, यह जाननेको उसने कई वार परीक्षा ली. अंतमें एकवार विष भी पिलाया, परंतु सब ब्रह्ममय देखनेसे मिहिराने किसी बातकी ग्लानि या नाश नहीं पाया. ऐसी शुद्ध भक्तिके दूसरे भी बहुतसे चमत्कार उसे दिखाई दिये. तब अंतमें लज्जित होकर, राजा पतिने उसके भक्तियोगमें बाधा देना त्याग दिया. हरिसेवा, संतसमागम और हरि-कीर्तन यही उसका नैत्यिक कर्तव्य था. भक्तियोगको मिहिराने यथे-च्छरूपसे प्रेमपूर्वक साधा था. उसकी सब जगह ऐसी प्रसिद्धि होगयी कि देश देशान्तरसे बड़े २ धर्मधुरंधर संत महात्मा और ज्ञानी लोग उसके दर्श-नोंको आते थे. जो कोई सज्जन महात्मा उसे पूछता आता, उसे बड़े सत्कारसे अपने यहां रखती. उससे भक्तिरसकी बातें करती, उसके मुँहसे नये नये भगवच्चरित्र सुनती, युक्ति प्रयुक्तिसे उनकी पवित्रता और ब्रह्मत्वकी परीक्षा करती और वैसा करनेसे यदि कोई शुष्क ज्ञानी मालूम होता तो युक्तिपूर्वक उसकी बुद्धिको ठिकाने लाकर उसे सन्मार्गमें लगाती और जो मुमुक्षु मोक्षार्थी मालूम होते उनको अच्छी तरह सत्कार कर विदा करती तथा उनके सद्गुण मालूम होते तो स्वयं ग्रहण करलेती थी. ऐसे अवसरोंमें उसने अनेक कुटिल शुष्क ज्ञानियोंको क्षणभरमें पवित्र कर महान् साधु बना दिया था. इसी अवसरमें जिस ज्ञानीका इतिहास मैंने अभी तुझे कह सुनाया है, उसकी मतिको भी उसने ठिकाने ला दिया था. इस तरह बहुत समय तक असंख्य प्राणियोंका कल्याण कर, जगत्में प्रेम ज्ञान भक्तिका पूर्ण प्रकाश कर जीवन्मुक्त हो कर विचरण करती हुई मिहिरा अंतमें परब्रह्म श्रीहरिमें समा कर सायुज्यको प्राप्त हुई. "

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्रकार जीव शिवकी एकता दर्शानेवाला, प्रेम, ज्ञान, भक्ति और कर्मकी परंपरा बतानेवाला उपदेश करते हुए संध्यासमय होने लगा, तब सभा विसर्जन होते ही सब लोग संध्यावंदनादिके लिए गंगातट पर चले गये. इस तरह लगातार अनेक रात और दिनका अविराम परिश्रम होनेसे महाराजा वरेण्युने उस रातको सभा भरना स्थगित रखा और गुरुदेवको सुखसे सुला कर आप उनके चरणोंकी सेवा करने बैठे.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परम पद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मंगल-प्रयाण.

शार्दूलविक्रीडितम्—

यस्माद्विश्वमुदेति यत्र रमते यस्मिन्पुनर्लीयते
भासा यस्य जगद्विभाति सहजानन्दोज्वलं यन्महः ।
शान्तं शाश्वतमक्रियं यमपुनर्भावाय भूतेश्वरं
द्वैतध्वान्तमपास्य यान्ति कृतिनः प्रस्तौमि तं पूरुषम् ॥

अर्थ—जिससे यह विश्व उदय (प्रकट) होता है, जिसमें विश्राम करता है और फिर जिसमें लय होता है, जिसकी कान्तिसे विश्व प्रकाशित होता और जो तेज सहज, आनंदमय, उज्ज्वल, शान्त, शाश्वत (सनातन) और विकाररहित है तथा पुण्यवंत द्वैतरूप अज्ञानका त्यागकर मुक्तिके लिए जिस प्राणियोंके ईश्वरकी ओर जाते हैं, उस परम पुरुषकी मैं स्तुति करता हूँ.

अनुष्टुप्—

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥

अर्थ—जिसकी कृपा, गूंगेको वाचाल करती और पंगुको पर्वत लँघाती है, उस परम आनंदमूर्ति माधवको मैं नमस्कार करता हूँ.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपजाति—

इतो न किंचित्परतो न किंचिद्यतो यतो याति ततो न किंचित् ।
स्वात्मावबोधादपरं न किंचिद्विचार्यमाणेऽपि जगन्न किंचित् ॥

अर्थ—यहां भी कुछ नहीं, परलोकमें भी कुछ नहीं, जहां जहां यह मन जाता है वहां वहां भी कुछ नहीं–आत्मज्ञान विना दूसरा कुछ भी नहीं और विचार करनेसे जगत् भी कुछ नहीं अर्थात् सब मिथ्या है.

शिखरिणी––

वपुःप्रादुर्भावादनुमितमिदं जन्मनि पुरा
पुरारे न प्रायः क्वचिदपि भवन्तं प्रणतवान् ।
नमन्मुक्तः संप्रत्यहमतनुरग्रेऽप्यनतिभाङ्-
महेश क्षन्तव्यं तदिदमपराधद्वयमपि ॥

अर्थ—हे त्रिपुरारि ! शरीरके प्रादुर्भाव (उत्पत्ति) से ऐसा अनुमान होता है कि पूर्व जन्ममें बहुत करके मैंने तुम्हें प्रणाम (नमन) नहीं किया और अब प्रणाम करनेसे मुक्त हो जाऊंगा, इससे शरीर नहीं रहेगा, इस लिए अब फिर भी तुम्हें प्रणाम नहीं करूंगा. इस लिए हे महेश्वर ! आप मेरे दोनों अपराधोंको क्षमा करना.

शार्दूलविक्रीडितम्––

वीभत्साः प्रतिभान्ति किं न विषयाः किं तु स्पृहायुष्मती
देहस्यापचयो मृतौ निविशते गाढो गृहेषु ग्रहः ।
ब्रह्मोपास्यमिति स्फुरत्यपि हृदि व्यावर्त्तिका वासना
का नामेयमतर्क्यहेतुगहना दैवी सता यातना ॥

अर्थ—विषय क्या वीभत्स नहीं प्रतीत होते ? होते हैं, परन्तु उनके लिए प्रबल इच्छा होती है; देहका क्षय मरणकी ओर ले जाता है, परंतु घरसे परम प्रीति लगी है. हृदयमें ब्रह्मकी उपासना करनी चाहिए, ऐसी प्रेरणा हुआ करती है, परंतु वासना उस इच्छाको पीछे लौटा देती है; इस लिए जिन कारणोंकी तर्कणा नहीं कर सकते उन कारणोंसे कोई गम्भीर पीड़ा महत्माओंको पीड़ित करती होगी ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिखरिणी—

अजानन्दाहार्तिं पतति शलभस्तीव्रदहने
न मीनोऽपि ज्ञात्वा कृतबडिशमश्नाति पिशितम् ।
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिला-
न्न मुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ॥

अर्थ—पतंग दाहकी पीड़ाको न जानते हुए तीव्राग्नि (तेज आग) में झँपाया (गिरा) करते हैं; मछली भी कांटेको न जानती हुई कांटेमें लगे हुए मांसको खाया करती है, परन्तु हम लोग तो जानते हुए भी, विपत्तियोंके समूहसे जटिल कामनाओं (इच्छाओं) को नहीं छोड़ते ! अरे रे ! मोहकी महिमा कितनी बड़ी गम्भीर है ! ! !

शार्दूलविक्रीडितम्—

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैस्तवै-
र्वेदैस्साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

अर्थ—ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुत, दिव्य स्तोत्रोंसे जिसकी स्तुति करते हैं; सामवेदका गान करनेवाले मुनि, अंग, पद, क्रम और उपनिषद् सहित वेदोंसे जिसे गाते हैं; योगी समाधि लगाकर परमात्मामें रहनेवाले मनसे जिसके दर्शन करते हैं और सुरासुरगण जिसकी महिमाका पार नहीं पाते, उस परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ.

अनुष्टुप्—

श्रयतां देवदेवेश नारायण जगत्पते ।
त्वदीयेनावधानेन कथयिष्ये शुभां कथाम् ॥

अर्थ—हे देवोंके भी देव ! हे नारायण ! हे जगत्पते ! सुनो. आपके ध्यानका आश्रय कर मैं यह शुभ कथा कहूँगा.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महालहरी–परमपद.

कालक्रीड़ा.

श्रद्धा–परीक्षा.

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्त्तुमिह प्रवृत्तः ॥ भगवद्गीता.

अर्थ—लोकका संहार (नाश) करनेवाला मैं कालमूर्ति हूँ और लोकोंका संहार करनेके लिए यहां पर प्रवृत्त हुआ हूँ.

दूसरे दिन वरेप्सु महाराज यज्ञ पूर्ण हो जानेसे, उसके लिए बड़े आदरसे बुलाये हुए राज—पाहुनों, ऋषियों, सद्गृहस्थों और दूसरे प्रजाजनोंको, उनकी योग्यतानुसार विदाई देने लगे, परन्तु महात्मा बटुकके समागमका लाभ छोड़कर किसीको वहांसे बिदा होना अच्छा नहीं लगा. लोगोंके मनका यह भाव समझ जानेसे राजाने उन सबको फिर आदर–सत्कारपूर्वक अपने यहां रखा. बटुककी वाणीरूप अमृतधारासे उन्हें तृप्त करनेके लिए यज्ञमंडपमें फिर सभा एकत्र हुई. इस समय सभाके बीचमें भव्य सिंहासनपर पितासहित बटुक बिराज रहे थे. फिर सभासदोंसहित महाराजा वरेप्सु, हाथ जोड़कर उनके आगे खड़े हुए और सबको सुनाते हुए सद्गुरुदेवकी जयध्वनिसहित उन्होंने इस जीवलोकके कल्याणके लिए अपना पहलेसे निश्चित किया हुआ प्रश्न, महात्मा बटुकसे पूछा.

वरेप्सु बोले:–" हे सद्गुरुदेव ! जैसे स्वाती नक्षत्रमें पड़ती हुई अमृतरूप वृष्टिके एक एक बूँदके लिए चातक पक्षियोंका समूह मुँह फैलाकर रास्ता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देखता है, वैसे ही यह सब मानवसमाज आपके वचनामृतके लिए तरस रहा है. जैसे प्राचीन कालमें ब्रह्मपुत्र सनकादिकोंके समागमसे सारी प्रजाको कल्याणका मार्ग प्राप्त हुआ था वैसे ही इस समय ये सब मुमुक्षु जीव, आपके द्वारा अपना कल्याण प्राप्त करनेके लिए अधीर हो रहे हैं. हे देव ! क्लेशरूप दावानलसे दग्ध (जला) और तृष्णासे दुःखी हुआ हमारा मन रूप हाथी, कथारूप विशुद्ध नदीमें प्रविष्ट होनेसे दावाग्निरूप संसारभयको भूल गया है और उस कथारूप अमृतसरितासे बाहर निकलनेकी इच्छा भी नहीं करता. वह परब्रह्माकार हुआ जाता है. हे देव ! आप सबपर दया (अनुकंपा) करके कल्याणका जो मार्ग हो, वह हमें बताओ. हे प्रभो ! मैंने तो आपकी कृपासे प्रत्यक्ष देखा है और इससे मैं निःसंशय हुआ हूँ कि, यह अपार दुःखमय भवसागर तर उस पार जाकर फिर कभी भी वहांसे पीछे आनेके भयसे रहित सबसे श्रेष्ठ सुखमय सच्चिदानंदघनके समान अच्युत परमात्माके चरणोंमें तद्रूप होकर रहना ही परम कल्याण है और आपके आग्रहसे अलौकिक मार्गद्वारा मैंने वह धाम देखा है. पर सब जीवोंको वह मार्ग सुलभ नहीं है, ऐसा आपने मुझे पहले ही बता दिया है. मेरी प्रार्थना इतनी ही है कि, जगत्के सब प्राणी जिस मार्गसे जाकर परब्रह्मके आनंद स्वरूपका दर्शन करनेके लिए सौभाग्यशाली बन सकें, ऐसा परम सुलभ मार्ग आप हमें बतायें."

राजाका ऐसा प्रश्न सुन, महात्मा बटुक वामदेव एक मुहूर्ततक चित्तको स्थिर और आँखोंको बंद कर ध्यानपरायण (समाधिस्थ) हो गये. सभा भी शान्त हो गयी. किसी ओरसे एक भी शब्द न आता था. सब लोग एक दृष्टिसे महात्मा बटुककी इस स्थितिकी ओर देख रहे थे. इतनेमें एक कौतुक हुआ. समय वसंत ऋतुका था तो भी एकाएक महाप्रचंड वायुके झोकोंसे उड़ी हुई धूलसे आकाश पूर्ण हो गया, साथ ही घन–घटा भी ऐसी उमड़ी कि ठीक मध्याह्न होने पर भी घोर अंधकार छा गया. कोई किसीको देख नहीं सकता था. यह देख, सबको भारी आश्चर्य होने लगा. ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों सभासदोंका मन घबराने लगा. अधिक घबराहट होनेसे वे गुरु वामदेवके नामकी जयध्वनि और गद्गद स्वरसे विनय करने लगे कि; " हे महापुरुष ! आपने जो अपने प्राणोंका आकर्षण किया है उससे ये जीव अकुलाने लगे हैं और इससे यह देह भी संशयमें आ पड़ी है, कृपा करो ! कृपा करो."

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसी समय सभास्थानके आगे एक बड़ा प्रकाशका गोला आकाशसे पृथ्वीतक दिशाओंको घेरता हुआ दिखाई दिया. यह प्रकाश धीरे धीरे बढ़ा. उसमें बड़ी बड़ी ज्वालाएं दीखने लगीं. सबने जाना कि यहां बड़ी भयंकर दावाग्नि जल रही है और वह इस तरह फैलती जा रही है मानो सारे वनको जलानेके लिए प्रकट हुई है. देखते देखते बढ़ कर वह प्रकाश बिलकुल सभास्थानके समीप आ पहुँचा और उसकी भयंकर ज्वालाएं झटसे सीई सीई करती सभाके भीतर प्रवेश करने लगीं. क्षुद्र जीव 'अरे जला, अरे जला,' की पुकार करते घबरा उठे. महात्मा वामदेव जो अब ध्यानमुक्त होकर बैठे थे, तुरंत खड़े होकर सबको धीरज देने लगे. फिर सिंहासनसे नीचे उतर, अग्निके पास जा कर, उन्होंने अपने पलाशके दंडसे पृथ्वीपर आड़ी रेखा खींच दी और बोले–हे अग्निदेव! आपको प्रणाम करता हूँ! यह प्रणाम स्वीकार करो! अब यहांसे आगे न बढ़ना." अग्नि वहां आते ही रुक गयी परन्तु बाहर तो जहां देखो वहां सर्वत्र अग्नि ही अग्नि हो रही थी. ज्वालाओंके भभूकोंके आगे दूसरा कुछ भी नहीं दीखता था. आश्चर्य और भयसे घबरा कर वे सब लोग, उस त्रासदायक अग्निकी ओर देख रहे थे. इतनेमें उनमेंसे अनेकोंको, उस सभामंडपके द्वारसे एक रास्ता अग्निमें पड़ा हुआ दीखा. वह सिर्फ इतना ही चौड़ा था कि उसमें एक पैर रखा जा सके और बीच बीच अनेक स्थानोंमें उसकी रेखाएं गुप्त होने पर भी यह, अग्निरूप आवरणके उस किनारेतक गया हुआ मालूम होता था. अग्निकी महाज्वालाएं उन रेखाओंको क्षण क्षणमें ढँक देती थीं. महात्मा बटुकने सब लोगोंको सम्बोधन कर कहा:–"हे परब्रह्मकी इच्छा करनेवालो! देखो, यह जो दीख रहा है वही कल्याण-मार्ग है. इसी रास्तेसे निडर होकर जानेवाला पुरुष परम कल्याणको प्राप्त करता है. यह मार्ग बड़ा कठिन है. यह ऐसा है कि इसे पार करना कठिन है, परंतु तुममेंसे जिसे कल्याण प्राप्त करना हो, परब्रह्म धाममें जाना हो, जो संस्कारी हो, जिसे गुरुके वचनोंपर श्रद्धा हो, जिसने पवित्रतासे भक्तियोग किया हो, सब संसारको बंधनका कारण माना हो, उसे इस मार्गसे होकर अग्निके उस पार जाना होगा. जो दृढ श्रद्धालु पुरुष इस अग्निरूप मार्गसे होकर उस पार जायगा, उसे उसी समय वहां एक अत्यंत मनोहर और परम सुखरूप दिव्य विमान बैठनेको मिलेगा."

इसके बाद कुछ देर ठहरकर वे अकस्मात् हांथ फैलाकर बोले—'देखो!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यान—विमान तो अग्निकी उस ओर आकर खड़ा है. अहा ! वह कैसा सुंदर है ! कैसी उसकी शोभा है ? अहो ! उसमें बजते हुए मनोहर बाजोंका स्वर कुछ कुछ यहांतक सुन पड़ता है. जो मुमुक्षु लोग हैं, उनके ही लिए यह विमान तैयार होनेसे, उनका रास्ता देखते खड़ा है. देर होती है, इस लिए चलो. जिन्होंने ज्ञान भक्तियोग किया हो या करते हों, जिनमें विशुद्ध श्रद्धा हो और जो जानना चाहते हों कि जगत्में सर्व साधारणके कल्याणका मार्ग कैसा है वे अब शीघ्र तैयार हों, इस पवित्र करनेवाली अग्निमें नहाकर झटपट उस ओर निकल जायें. वहां विमानमें हुए प्रभुभक्त तुम्हें अति आदरपूर्वक दिव्य फलोंसे पुष्पित विमानमें बैठा लेंगे और अमृतरसका पान करायेंगे. '

इस तरह सच्ची कसौटीकी बात आयी तो सभासदोंमेंसे बहुतोंका मन धुक पुक करने लगा. वह अत्यंत मनोहर विमान, अग्निकी उस ओर आकर सबको खड़ा हुआ दीखा. बहुत दूरसे देखनेसे भी उसकी श्रेष्ठ शोभासे सब चकित होगये. प्रत्येकका मन उसमें जाकर बैठनेके लिए अधीर हो रहा था. परंतु जावें कैसे ? 'माथा दे वह माल खाय' यही सच्ची कटा-कटीका खेल था. इस प्रलयके समान महा अग्निमें होकर उस ओर जा-नेको किसकी हिम्मत हो ? सभास्थानमें बैठे बैठे जिसकी महाज्वालाओंकी आंच जरा भी सही नहीं जाती ऐसी भयंकर और नाशकारक दावाग्निमें आशा छोड़कर अपने जीवनकी बलि देनेवाला कौन कलेजेवाला हो. विमानमें बैठनेके लिए बहुतोंकी इच्छा हुई थी, परंतु हू हू करती हुई ज्वालाएं देखते ही इस संसारके अश्रद्धालु प्रेम–भक्तिरहित लोग शिथिल हो जाते थे.

इस तरह क्षणभर रास्ता देख फिर भी वामदेवजी दंड ले, खड़े हो कर बोले:–" हे मोक्षाभिलाषियो, चेतो ! अमृतके समान अमूल्य समय बीता जाता है. वह फिर मिलना दुर्लभ है. इससे शीघ्र तैयार हो जाओ. हे मुमुक्षुओ ! क्षणभर पहले मुक्तिके लिए जो उत्साह तुम लोगोंमें दीखता था वह इतनेहीमें कहां उड़ गया. हरे ! हरे ! जगत्की कैसी विलक्षण स्थिति है ? सबको सहज ही (विना परिश्रम) सुख चाहिए, परंतु इस तरह क्या मुक्ति कहीं रास्तेमें पड़ी है ? चौरासी लाख योनियोंमें असंख्य जन्म लेकर वारंवार भटकने और उन जन्मोंकी नरकयातनारूप वासनाएं भोगते समयके दुःखोंके कारण, अगणित वार ईश्वरकी प्रार्थना करने पर, उस जीव पर दयालु प्रभु कुछ दया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर, उन दुःखोंसे मुक्त होनेका साधनरूप मनुष्यदेह देता है और ऐसा मनुष्यजन्म पाकर भी उसकी सफलता समझ जब वह अनेक उपाय करता है तब उसका कुछ पाप नष्ट होता है. फिर धीरे धीरे वह इससे अधिक अच्छे साधन कर सके, इसलिए उसे अच्छी जगहमें दया कर मनुष्यशरीर देता है. इस तरह असंख्य जन्मोंमें अनेकानेक तीव्र साधन करके प्राणी थक जाता है, तब बहुत समयके एकत्र हुए पुण्योंके उदयसे उसे किसी जन्ममें सद्गुरु प्राप्त होता है; उसके वचन पर विश्वास कर उसकी अटल भक्ति करनेसे ज्ञान प्राप्त होता है. ऐसी दूसरी अनेक अनुकूलताएं एकत्र होकर जब प्राप्त होती हैं तब उसका कल्याण होता है, अर्थात् उसे संसारके जन्म-मरणसे सदाके लिए मुक्ति मिलती है. इतना बड़ा दुष्प्राप्य कल्याण तुम्हारी आँखोंके आगे आ मूर्त्तिमान होकर खड़ा है, तो भी उसे प्राप्त करनेके लिए तुम समर्थ नहीं होते इस सबका कारण सिर्फ यह (अविद्यारूप) अग्निका समुद्र है. परंतु इस (अविद्यारूप) अग्निकी उस ओर पहुँचना चाहिए. दिव्य ऊर्ध्वलोक और वहां जानेका पवित्र मार्ग, इस लोकके जीवको, इस अपवित्र पांचभौतिक देहसे प्राप्त नहीं हो सकता, परंतु विशुद्ध मनसे प्राप्त होता है. इस देहके साथ काम क्रोधादिक और अहंता, ममतादि, शत्रु लिपटे हुए हैं, इससे उनका त्याग कर, पवित्र दिव्य देहसे ही वह मार्ग प्राप्त हो सकता है. दिव्य देह और दूसरी वस्तुएं प्राप्त करनेमें श्रद्धा भक्ति मुख्य है और उसमें भी सात्विक श्रद्धा मुख्य मानी जाती है—वही श्रद्धा सर्वोत्तम है, श्रद्धाके विषय पर उपदेश देते हुए परमात्माने बहुतसी बाते कही हैं, परंतु अंतमें कहा है कि श्रद्धा विना जो कुछ होम किया हो, जो दिया हो और दूसरा जो कुछ भी कार्य साधन किया हो वह सब व्यर्थ माना जाता और इह लोक तथा पर लोकमें उसका फल नहीं मिलता. जिनमें प्रेम और श्रद्धा हो, वही इस जगत्के सुख, इस देहके सुखसे विशेष उत्तम देह प्राप्त करनेको सौभाग्यशाली बनते हैं. जिन्हें इस परम दिव्य अच्युतमार्ग—ब्रह्ममार्गको प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो, उन्हें इस अग्निमें स्नान कर इस स्थूल देहाभिमानको उसमें जला कर, दिव्य देह धरना चाहिए; तभी उन्हें परब्रह्मके मार्गमें जानेका अधिकार मिलेगा. गुरु और शास्त्रके वचनोंपर जिन्हें दृढ विश्वास होगा, संसारकी प्रत्येक मायाके लिए जो पूर्ण निःस्पृह होंगे और अच्युतपदकी ही जिन्हें सची जिज्ञासा (जाननेकी इच्छा) होगी वे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुमुक्षु लोग ही इस अग्निमें प्रवेश कर उसे पार करेंगे. मेरा विचार है कि वह उन्हें जलप्रवेशके समान सुखद होगी. इस लिए चलो, विलंब मत करो. समय बहुत थोड़ा है. "

बटुककी यह बात सुन, बहुतसे मुमुक्षु श्रद्धालुओंका भय दूर हो गया. वे एकके बाद एक आ, बटुकके आगे हाथ जोड़ कर खड़े हुए और विनय करने लगे:-" हे गुरुदेव ! आप इस जीवके कल्याणकर्ता हैं. हमें श्रद्धा (विश्वास) है कि आपकी कृपासे हम अग्नि पार कर उस ओर जायेंगे. हमारे कल्याण और कल्याणके मार्ग सिर्फ आप ही हैं. हमे आपका वियोग न हो. " यह सुन, बटुक वामदेव अत्यंत प्रसन्न होकर बोले:-" अहो ! वियोग कैसा ? जिसकी जिस पर दृढ़ प्रीति है, वह नित्य उसके समीप ही है. इस लिए जाओ, सुखसे अग्नि लांघो, विलंब न करो, नहीं तो अब थोड़ी ही देरमें यह अग्नि अपनी सीमा त्याग कर बढ़ने लगेगी और फिर यहां किसीसे न रहा जायगा. "

ऐसा सुनते ही प्रणाम कर गुरुदेवकी जयध्वनिसहित वे मुमुक्षुके समान परमार्थवीर* नरपुंगव उस महा अग्निके भीतर घुसे. भीतर घुसते ही, उनके चारों तरफ भयंकर ज्वालाएं फिर हू हू कर जलने लगीं. पलभर अग्निरूप होकर वे कहां गये, यह किसीको नहीं दीखा-बहुतसे अनधिकारियोंने विचार किया कि वे जल कर ढेर होगये. एक बार फिर भी बटुकने सभामें बैठे हुए आत्मकल्याणेच्छुओंकी श्रद्धाकी परीक्षा लेनेको कहा:-" देखो, यह अग्नि अब बढ़ने लगी है; यों भी सबको जला कर भस्म कर देगी, तो यों व्यर्थ जल मरनेसे श्रद्धालु होकर परमार्थके लिए ही अग्निप्रवेश क्यों नहीं करते ? " यह सुन, बटुकके माता पिता और दूसरे अनेक श्रद्धालु पवित्र पुरुष खड़े हुए, परंतु जो मलिन हृदयके दुराचारी, नास्तिक, परद्वेषी और आत्मकल्याण ढूंढ़नेको नहीं परंतु योंही तमाशा देखनेके लिए सभामें आकर भर गये थे उनकी अविद्याके कारण उस समय हिम्मत नहीं हुई.

तुरंत ही उस खड़े हुए समाजको आगे कर, ' नारायण नारायण, सोऽहं सोऽहम् ' की गर्जना करते हुए, वामदेवजीने अग्निमें प्रवेश किया और तुरंत ही अग्नि देवने भी भभूका सहित सभामंडपमें प्रवेश किया. मंडपमें बचे

* परोपकार करनेमें वीरके समान पुरुष.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुए वे हतभागी लोग उस अग्निकी भयंकर ज्वालाओंसे पीड़ित हो, इधर उधर दौड़ने लगे, परन्तु चारों ओर अग्निने घेर लिया था इस लिए नहीं भाग सके. महात्मा बटुकके वचनों पर श्रद्धा न करनेके कारण उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ. परंतु अब क्या करें ? ज्वालाओंके दाहके कारण वे कुछ देर तक तो इधर उधर दौड़ते और चिल्लाते रहे, परंतु अंतमें जलनको सहन न कर सकनेके कारण घबरा कर, मूर्छित हो, जमीन पर गिर गये ! बस ! अविद्याके दासोंकी यही दशा है.

विमानारोहण.

थोड़ी देरमें आकाश एकाएक घोर गर्जनसे गूंज उठा और वहां होनेवाले जय जय शब्दसे चमक कर, वे मूर्छित पड़े हुए अनधिकारी जीव अकस्मात् जाग उठे. वे आश्चर्यसे चारों ओर विचार विचार कर देखने लगे तो सभामंडप ज्योंका त्यों अखंडित और सुशोभित मालूम हुआ. उसमें नामको भी अग्नि न थी और न अग्नि लगकर शान्त होनेके कुछ चिह्न ही थे. यह देख, सब लोग बड़े विस्मित हुए. इतनेमें फिर उस मंगलकारी शब्दकी गर्जना सुनाई पड़ने लगी. ये शब्द कहां होते हैं, यह जाननेके लिए असंस्कारी लोग उठकर मण्डपके दरवाजेके पास आये. वहां भी अग्निके कोई निशान न थे, परंतु सुदूर अंतरिक्ष (आकाश)में हिलता हुआ एक परम शोभायमान विमान दिखाई दिया. उसीमें तुमुल (भीषण) शंखध्वनि होती थी. यह देखते ही बहुतसे लोग, जिन्हें सत्संगका चसका लगा था और वामदेवके प्रतापसे कालान्तरमें भी मुक्तिके अधिकारी बने थे, बोल उठेः–'अरे, वाह वाह ! यह तो उस अग्निके परे दीखनेवाला ही विमान है और वे सब तेजस्वी कान्तिवाले पुण्यात्मा भी दिखाई देते हैं, वे तो हमारे साथके लोग हैं. अहो ! वे ऐसे तेजस्वी कैसे हो गये ? देखो ! उन सबको लेकर साधु बटुक विमान पर चढ़ रहे हैं. अहा ! उन्हें कितना बड़ा आनन्द होता होगा ? कैसे मधुर स्वरसे बाजे बज रहे हैं ? कैसी प्रेमपूर्ण जय जयकी गर्जना हो रही है ? वह देखो ! बिजलीके समान चमकती ध्वजाएं फहराने लगीं ! ओ ! सब लोग विमानमें चढ़ गये. अब तो मालूम होता है विमान तैयार हो चुका और उड़नेकी तैयारीमें है.'

दूसरे कई एक बोलेः—"अरे ! विचार कर तो देखो. अब तो सभी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शान्तसे दीखते हैं. वह अद्भुत बालक (बटुक) सबके बीचमें खड़ा हो, कुछ कहकर सुना रहा है. अहा ! यह सब उस अद्भुत बालककी ही लीला है. वास्तवमें वह सबका गुरु और ईश्वरतुल्य है. हाय ! हाय ! परम अभाग्यके कारण ही हमें उसके वचनोंपर विश्वास नहीं हुआ. पर अब क्या उपाय है ? पानी वह जानेपर सोचना किस कामका ? सबके साथ अग्निमें जा पड़ते तो सहज श्रमसे कल्याण समेट लेते. हम लोग चारों ओर फैली हुई अग्निके मुँहमें पहले ही पड़े थे, परंतु अबतक हमारे शरीरमें कोई पीड़ा नहीं है, वैसे ही उन अग्नि पार करनेवालोंको भी व्यथा नहीं हुई होगी; क्यों कि उनके साथ तो स्वयं महात्मा सद्गुरु (बटुक) थे, जिन्होंने यह अद्भुत चमत्कार कर दिखाया है. हरे ! हरे ! धिक्कार है. धिक्कार है. श्रद्धारूप अमृततत्त्वसे हीन हमको हजार बार धिक्कार है.

इस तरह भारी पश्चात्तापसहित, ईश्वर, शास्त्र और सद्गुरुको उपेक्षासे देखनेवाले जीव संताप करते थे, इतनेमें फिर भी घंटे, शंख, दुन्दुभी आदिके मंगल घोष होने लगे और गुरु महाराजके नामकी भारी जय जय ध्वनि होते ही विमान आकाशपथको उड़ा. इस समय उसकी दिव्य शोभा और सौन्दर्य देख, रह जानेवाले करोड़ों जीव चकित हो गये. विमान 'वह जाता, वह जाता' यह कहते कहते बहुत दूर निकल जानेसे दीखना भी बंद हो गया. नीचे रहनेवाले वे सब असंस्कारी जीव, बिलकुल निराश, हतोत्साह और अंधेके समान होकर जमीनपर गिर पड़े और अपनी अश्रद्धाके लिए बारबार निःश्वास छोड़, बहुत पश्चात्ताप करने लगे. यज्ञशाला, यज्ञमंडप और सारा उपवन उजड़ कर खंड़हरके समान होगया और दशो दिशाएं शून्य होगयीं.

वह अद्भुत विमान फिर कहां गया यह मायिक जीवको इन आँखोंसे नहीं दीखेगा. क्यों कि वह दिव्य है. हमारी दृष्टि स्थूल और लौकिक अर्थात् प्रापंचिक है. वह विमान देखनेके पूर्व, जीवको प्रपंचहीन अर्थात् मायासे मुक्त होना चाहिए. प्रपंचरहित जीवकी दृष्टि धीरे धीरे विवेकपूर्ण होती है. दृष्टिको विवेकपूर्ण करनेके लिए शास्त्ररूप अंजनकी जरूरत है और तब यह उस अलौकिक मार्गसे जाते हुए विमानको देखनेके योग्य होती है. वह विमान देखनेके लिए ऐसा जानना चाहिए कि असार संसार और उसका व्यवहार अंतमें झूठा है. उससे प्रीतिको हटाकर, सत्य वस्तु पर लगानी चाहिए. प्रीति होनेके लिए संसारकी नयी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नयी पैदा होनेवाली इच्छाओंका त्याग करना चाहिए. इच्छा दूर हुई, मोह मिटा कि विषय दूर हो जाते हैं और शास्त्ररूप शलाका (सलाई) से विवेकदृष्टिमें नूतन तेज प्रवेश होने पर वह बलवती होती और तभी दिव्य विमान दिखाई देता है. हे संस्कारी जीव ! अधिकारी लोग देखते हैं कि, वह अद्भुत यान यहां है. अहो ! वह आकाशमें उड़ता हुआ दीखता है. अहा ! वह परम दुर्गम अच्युतपथकी ओर जा रहा है. हे जिज्ञासु ! जीवको अब इस समय वास्तविक एकाग्रताका काम है. हे जिज्ञासु ! तू मनको पवित्र करके जो मैं कहूँ उस पर ध्यान दे. गुरुदेवके प्रताप, कुछ पूर्व जन्मके संस्कार और कुछ इस जन्मके सदाचारसे, वहांकी सारी अलौकिक क्रिया मुझे स्पष्ट दिखाई देती है और मैं जिसे दिखाऊं, वह भी आनन्दसे उसे देख सकता है तो भी मैलसे आच्छादित (ढँके हुए) आइनेकी भांति मायासे आवृत तेरी ज्ञानदृष्टि, इस सूक्ष्म मार्गका अवलोकन न कर सकती हो तो उस विमानसंबंधी समस्त समाचार जो हरि-गुरु-कृपासे मुझे हस्तामलकवत् (हाथमें आमलेके समान) हैं, तू स्थिर मन करके मुझसे सुन. हे मायिक जीव ! दूसरी सब खटपट छोड़, यह श्रवणरूप साधन ही करना इष्ट है. श्रवण करते करते मायासे लिपटे हुए जीवके अनेक तीक्ष्ण पाप समूल नष्ट होंगे और हृदय निर्मल होनेसे उसमें अच्युतपुरवासी अच्युत परमात्माकी प्रेमभक्तिका प्रकाश होगा बस, वह जीव उस विमानमें बैठनेका अधिकारी बन कर, अच्युतपुरमें प्रवेश कर सकेगा.

विमान-चित्र.

वह विमान कैसा अद्भुत और चमत्कारसे पूर्ण था तथा वह किस असल वस्तुका बना हुआ था, यह उसमें बैठनेवालोंमेंसे किसीको मालूम नहीं होता था. वह स्वर्गके शुद्ध-स्वच्छ सोनेके समान जगमगाता था, तो भी पारदर्शक था. जमीनसे देखनेवालोंको बाह्यसे उसकी आकृति एक सुशोभित विशाल नौकाके समान मालूम होती थी, परन्तु भीतरसे तो मानो वह एक बड़ा भारी भवन था. उसके मध्यभागमें एक अमूल्य मणि-जड़ित सभामंडप था. उसके बीचमें जो अत्यन्त तेजस्वी ऊंचा सिंहासन था उस पर अपने माता पिता सहित गुरु वामदेवजी विराजे थे. उनके सामने राजा और उनके आसपास-गुरुके सामने-अर्ध गोलाकारमें दूसरे सब अधिकारी ज्ञानेच्छु जीवोंके आनन्दरूप आसन बने थे. मंडपकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूमि सर्वोत्तम स्फटिक (संगमर्मर) की थी. स्तम्भ (खंभे) विद्रुम (मूंगों) के थे और छत वैडूर्य मणिकी थी, सभामंडपके चारों ओर भिन्न भिन्न असंख्य भवन बने थे, जिनकी शोभाका पार ही न था. उनमें भांति भांतिकी कोमल बैठकें थीं, आसन और सुकोमल पलँग बिछे थे. उनमें रहनेवालोंको अमृतकी डकार आती थी, इससे उस विमानमें बैठनेवालोंको आहार, निद्रा, तृषा, आशा, ममता, माया, कामनादि इस लोकके व्यवहारकी इच्छा ही न होती थी. इन भवनोंमें रहनेवालोंने ज्यों ही उसमें पैर रखा कि तुरंत उसमें सजे हुए विचित्र बाजे समयानुकूल राग और मधुर स्वरसे परब्रह्मकी अपूर्व लीलाका कर्णप्रिय आलाप करने लगते थे. दिन और रातको जबतक गुरुदेव विराजते तबतक तो सब लोग सभा ही में बैठते थे, परन्तु वहांसे आज्ञा होते ही तुरंत उन इच्छित भवनोंमें जा कर देवेन्द्रसे भी अधिक सुखानुभव करते हुए वे हरिरससागरमें डूब जाते थे. सबेरे तीसरे पहर और संध्यासमय जब संध्यावंदनादि मानसिक कर्मोंका समय होता तब उन कर्मोंके करनेकी इच्छावाले संस्कारी भक्त, स्नानादिके लिए तीर्थकी इच्छासे (उन भवनोंसे) बाहर निकलते और और उस विमानकी उत्तर दिशामें पवित्र गंगाका बहता हुआ प्रवाह जो उनके लिए तैयार था, वहां जाते और गंगाके सुन्दर रत्नखचित घाट पर बैठ कर आनन्दसे नित्यकर्म करते थे. वहां परमात्मज्ञानका आनंद, हरिरसका स्वाद, अद्वैतका दर्शन, अद्वैतका गान और अद्वैतभाव सर्वत्र छा रहा था. ऐसे सब सुखोंका मंदिर होते भी वह विचित्र वाहन इच्छानुगामी था, अर्थात् उसमें बैठनेवालोंकी जहां और जिस मार्गसे हो कर जानेकी इच्छा हो, वहां और उस मार्गसे हो कर वह जा सकता था. आवश्यकता हो तो जितना चाहिये उतना बड़ा और जितना चाहिए उतना छोटा भी हो जाता था, इच्छानुसार वह प्रकट और गुप्त भी होता था, जिससे पृथ्वीके लोगोंको वह नहीं दीखता था. ऐसे विचित्र और सुखसदनरूप उस दिव्य विमानमें बैठ कर, गुरु वामदेवकी कृपासे सनाथ हुए वे सब संस्कारी (पवित्र) जीव आकाशमार्गको चले. विमानके चलते समय उसकी बैठकें सबके देखनेमें दूसरे ही प्रकारसे सजी हुई मालूम होती थीं. जिससे उनके आगे, ऊँचे अथवा नीचे–आकाश या भूमि पर जो घटनाएं होतीं उन सबको एक साथ वे पूर्ण आनन्दसे अवलोकन कर सकते थे. जबसे विमान चला तबसे मार्गमें जो जो आनन्ददायक और विचित्र दृश्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिखाई देते थे उन्हें देख, हर्षित हो, सब विमानवासी वारंवार "जय जय गुरुदेव ! जय जय गुरुदेव !" की मंगलध्वनि करते थे. उस विमानमें बैठे हुए भक्तोंको नित्य नये नये ज्ञान कराये जाते थे और वैसा होनेसे सब विमानवासी ऐसी स्थितिमें थे मानो वे मुक्तावस्थाको प्राप्त हो गये हैं. ऐसे आनन्दसुखका अनुभव कराते यह विमान फिरते हुए बहुत समयमें एक अत्यंत विचित्र और विस्तीर्ण नगरमें आ कर अंतरिक्ष (आकाश) में स्थिर हुआ.

जगन्नगर.

विमानके खड़े होते ही बटुक वामदेवजी सब पवित्र जीवोंको सम्बोधन कर बोलेः—"अब तुम सब तैयार हो जाओ. चित्तवृत्तिको स्थिर करो और तुम्हारी दृष्टिके आगे यह क्या क्या अद्भुत चमत्कार दीखता है इस पर पूर्ण ध्यान दे, इसके रहस्यका विचार करो. यहींसे परम दुर्लभ अच्युत-मार्ग आरंभ होता है. यह देखो, हम अब कहां आये हैं ?" यह सुनते ही सभामें गुरुदेवके सम्मुख बैठे हुए राजा वरेण्सु तुरंत खड़े हुए और जमीन-की ओर देख, आनंद और आश्चर्यसहित बोलेः—"अहो ! गुरुदेव ! यह तो कोई बहुत बड़ा विलक्षण नगर दिखाई देता है. अपना विमान ठीक उसके ऊपर इस तरह खड़ा है कि उसे सब लोग आनंदसे अच्छी तरह देख सकते हैं. अहा ! कृपानाथ, हम इस नगरसे इतने ऊंचे बिलकुल अंतरिक्षमें हैं, तो भी आपके अनुग्रहसे, हमें इस दिव्य देहके साथ जो दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई है उससे हम दूर तक देख सकते हैं, तो भी जिसका दरवाजा नहीं दीखता, ऐसा अपार विस्तारवाला यह कोई विचित्र नगर है. यह कैसा होगा ? इसकी एक एक गली या कूचा हमें बड़े खंड़ या शहर जैसे लगते हैं. इसके बाग और बगीचे हमें सैकड़ों और हजारों योजनके बड़े २ जंगलोंके समान मालूम होते हैं. इसके सिवाय इसका जो जो दृश्य देखते हैं वह सब अपार देखनेमें आता है. ऐसा अद्भुत और प्राचीन कालमें मार्कण्डेय ऋषिको श्रीबाल मुकुन्द भगवानके पेटमें दिखी हुई विराट् मायाके समान यह नगर कैसा होगा ?"

वामदेवजीने कहाः—"राजा, वास्तवमें भगवान्की विराट् मायाके समान यह अति विस्तृत नगर, विचित्रता, अनोखापन और चमत्कारोंसे भरा है. इसको महात्मा पुरुष 'जगन्नगर' के नामसे पुकारते हैं. इसका दरवाजा कहांसे दीखे ? इसके विस्तारका अंत किसी विरले महापुरुषको ही दीख

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सकता है. इसमें सब वस्तुएं हैं, सब जातिके प्राणी हैं, सब विद्याओंके भाण्डार हैं, सब तरहकी भूमि है, सब सयम-काल-व्यवस्था है और सब रस हैं. संक्षेपमें सारे जगत्के भीतरके समस्त दृश्यादृश्य पदार्थ, चित्रपटमें चित्रित महान् चित्रकी तरह इसके भीतर पूर्णरूपसे व्याप्त हैं इस लिए ही इसका नाम जगन्नगर पड़ा है. सारे संसारमें जो कुछ है वह सब इस नगरमें है. यह सारे जगत्का प्रतिनिधि है अथवा स्वयं ही जगत् है, ऐसा भी कहें तो असत्य नहीं है. इसे चाहे जगत् कहो, या जगन्नगर अर्थात् जगद्रूप कहो. परब्रह्मकी समग्र अद्भुत लीला जो जगद्रूपसे प्रकट हुई है, यह वही है. अब तुम सब लोग, यहां सुखसे ईश्वरकी अनेक लीलाओंके चमत्कारको स्थिर चित्तसे देखो." यह सुन, महाराजा वरेप्सु बोलेः-"पर, कृपानाथ! अब तो सांझ होनेको आयी है, इस लिए पहले संध्यावंदन कर लें, फिर रातको तो आराम ही करना है. नहीं भला, रातको वहां क्या दीखनेवाला है?" वामदेवजीने कहा:—"हां समय हुआ है इस लिए संध्यावंदन कर लेना तो उचित ही है, पर राजा, जैसा तू कहता है उस तरह रात व्यर्थ नहीं है. रातको तो ऐसे अद्भुत चमत्कार दिखाई देते हैं जैसे दिनको भी दिखाई नहीं देते. पृथ्वीमें बसनेवाले जीवोंके मनसे जो रात, रात ही अर्थात् आराम करनेका समय है, ऐसी अनेक रातें और अनेक दिन मिल कर, इस विराटरूप नगरके जिन निवासियोंकी एक घड़ी या क्षण पल भी नहीं होते ऐसे ये महात्मा और देवता ऐसी रातको रात मान कर अपने कार्यको पड़ा रहने नहीं देते; इस लिए संध्यावंदन, भगवद्-ध्यानादि अपना अपना उपास्य कर्म करके, सब लोग फिर तैयार हो जाओ. जब तक तुम इस विमानमें रहोगे तब तक तुम्हें निद्रादेवी बाधा नहीं दे सकेगी और न आहार विहारकी इच्छा ही होगी. जिसे परिश्रम करना पड़ता है उसे आरामकी जरूरत सही है, पर जिसे श्रम नहीं उसे विश्राम भी नहीं है." गुरुदेवके ऐसे वचन सुन, राजासहित साधुलोग एक एक कर गुरुचरणोंको प्रणाम कर, संध्योपासनाके लिए चले गये.

अच्युतपथपीठ-कालक्रीड़ा.

संध्योपासना पूर्ण हुई, संध्यासमय बीत कर काली रात आ गयी! सर्वत्र अंधकार छा गया! नभस्थलमें एक एक कर तारे, नक्षत्र और ग्रह उदय होने लगे. आकाशमें देवोंके विचरण करनेवाले विमान अपने अपने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोकोंमें चले गये. अंधकारके प्रेमी राक्षस, पिशाच और निशाचर प्राणी आनंदसे विचरने लगे. पृथ्वीपर अर्थात् जगन्नगरमें भी इसी तरह रातका राज्य छा गया. अंधकार और दिनके परिश्रमके कारण मनुष्य, पशु, पक्षी, कीटादि प्राणी एक एक कर विश्रांतिरूप निद्रादेवीके अधीन हुए. दीपकादि साधनोंसे अंधकारको दूर कर व्यवहारादिमें प्रयत्न करनेवाले प्रपंचकुशल जनोंको भी अब निद्रादेवीने धीरे धीरे अपने अधीन कर लिया. इस तरह अंधकार और निद्रा दोनोंकी सम्मिलित सत्तासे जहां देखो वहां मोहका राज्य छा रहा है.

विमानकी लीला नवीनता लिये थी. वहां गुरु वामदेवके सामने महाराजा वरेप्सु आदि सब मुमुक्षु जीव संध्यादिकर्मसे निवृत्त होकर अपने अपने दिव्य आसनों पर बैठ गुरुके मुँहसे झरते हुए, अमृतमय शब्दोंका पान करनेके लिए तत्पर हो रहे थे. वहां निद्रा तंद्राका नाम भी नहीं था. गुरु वामदेवजीके वृद्ध माता पिता भी इस ईश्वरतुल्य महात्मा पुत्रके ऐसे अद्भुत कार्यसे आनंदसहित आश्चर्यमें मग्न और कृतकृत्य होकर भगवद्भजन करते थे. संध्यावंदनादिसे निवृत्त होकर सब मुमुक्षु लोग अपने अपने घरोंमें यथेच्छ अमृतपान कर सभामंडपमें एकत्र हुए. रातका आरंभ होते ही हरिकीर्तन आरंभ हुआ. बीच सिंहासनमें बैठे हुए गुरुदेवकी अच्छी तरह स्तुति वंदना कर, दिव्यरूप पाये हुए वे सब लोग अपनी अत्यंत मधुर दिव्य वाणीसे एक साथ उत्तम स्वर और तालसे ईश्वरके गुण गान करने लगे. इस समय उनके गानके साथ सभामंडपमें सजे हुए मधुर बाजे स्वयं ही उस सुन्दर रागमें बजने लगे कि, जिससे उनके कीर्तन-रंगमें करोड़ों गुना आधिक्य हो गया. दिव्य बाजोंका स्वाभाविक ही ताल स्वरसे बजना, दिव्यदेहधारी मुमुक्षु जीवोंका पूर्ण प्रेमसे गाना और परम पुण्यरूप श्रीहरिके नाम तथा गुणोंसे अलंकृत हुई उनकी वाणी निकलना, ये सब चीजें जहां एकत्र हों वहांके आनंदका क्या पूछना ? यह कीर्तन–आनंद इतना बढ़ा कि, हम कौन हैं, कहां आये हैं और कैसी स्थितिमें हैं, यह भान भी वे लोग भूल गये. परम देवकी जयजयध्वनि-सहित कीर्तन समाप्त हुआ. सब लोग गुरुको प्रणाम कर आसनमें बैठ गये. तुरंत ही सभामंडपका परिवर्तन होकर सब आसन आकारमें इस तरह हो गये कि जिससे जगन्नगर देखा जा सके. जगन्नगरमें अब क्या क्या चमत्कार होते हैं यह देखनेके लिए सब मुमुक्षु, बलवती जिज्ञासासे तैयार होकर बैठे.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फिर गुरु वामदेवजी, अपने माता पिताको प्रणाम और वरेप्सु आदिको सम्बोधन कर बोले:—"अब सब लोग तैयार हो देखो, नीचे क्या लीला हो रही है!" वरेप्सु खड़े हो, हाथ जोड़ कर बोले:—"कृपानाथ ! नीचे तो सब अंधकारमय है, सर्वत्र बिलकुल शान्ति है." गुरुजी बोले:—"नहीं, ऐसा नहीं है, सूक्ष्म दृष्टिसे अवलोकन कर देखो, उसमें अटलरूपसे नाना प्रकारके व्यवहार हो रहे हैं, उनको देखनेमें क्या तुह्मारी दिव्य दृष्टि काम नहीं आती ? जो जगत्के सब प्राणियोंके दिनको अपनी रातके समान मानते हैं उन एकांतिक योगी और महात्माओंका अब दिन प्रारंभ हुआ है. वे अब एकान्त और एकाग्र चित्तसे, वृत्तियोंको एकत्र कर अपना आत्म-साधनरूप कार्य करनेको तैयार हो गये हैं. उनकी क्रियामें परम शान्त हैं और किसीको दुःखी करनेवाली नहीं हैं, इसीसे वे तुह्मारी समझमें नहीं आयीं. दूसरे तिर्यग्योनिके तमोगुणी प्राणियोंको भी देखो. वे अंधकारमें ही अपने अपने भक्ष्यकी खोजमें लगे हुए हैं. फिर मनुष्यवर्गके भी विषयलंपट प्राणियोंको देखो. वे विषयभोगको ही परम साधन, सर्वाधिक सुख और जन्मकी सफलता समझ रहे हैं. इसीसे वे स्त्रीपुरुषरूप जोड़ा बनकर एकान्तविलासमें मग्न हो रहे हैं. बहुतसे उन जीवोंको भी देखो जो महारोगसे पीड़ित हैं और जिनकी देहको दारुण पीड़ाके कारण क्षण भर भी कल नहीं हैं. वे अपने सिर पर हाथ रख अपने किये हुए कर्मोंका पश्चात्ताप करते हैं और इस तरहसे चिल्ला २ कर रो रहे हैं कि जिसको सुन कर हृदय विदीर्ण हो रहा है." यह सुन, वे सब पुण्यभागी लोग, जो अपनी दिव्य दृष्टिद्वारा यह सब दृश्य देख रहे थे, बोले:—"हां, गुरु महाराज !आपके बताये हुए व्यवहारोंके सिवाय और भी अनेक व्यवहार होते दिखाई पड़ते हैं. अरे ! वे सब दुःखरूप ही हैं. उन सबसे अंतमें सत्यलोकसे पतन ही होता है. अरे ! सारा समय निकल जायगा, अनेक जन्मोंतक आवागमन होगा तो भी ये जीव यह नहीं जान सकेंगे कि मोक्षका मार्ग कौन है ? इस जगन्नगरमें अनेक निशाचर अपने कुटुम्बियोंका पोषण करनेके लिए, धनकी इच्छासे बड़े दुर्गम स्थानोंमें चोरी करनेको तैयार हुए हैं, परंतु क्षण क्षणमें उन्हे पकड़े जानेका भय हो रहा है. अरे, वह देखो ! भारी चतुरंग सेना, उस दूरस्थ दूसरी बलवती सेनाको धोखा देकर उसकी असावधान अवस्थामें इस लिए दबानेको जा रही है कि उसमें उससे जंग लेनेका सामर्थ्य नहीं है. परन्तु, उसके सब वीरोंको इस बातका भारी भय है कि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसे अवसरमें हमारी प्राणरक्षा हो सकेगी या नहीं. वह देखो ! वे क्रूर मनुष्य अपने और पूर्वजोंके वैरको चुकानेके लिए वैरियोंके विनाश करनेका प्रयत्न कर रहे हैं. इसी तरह दूसरे लोग भी अपने ऊपर ताक लगानेवाले शत्रुओंके सदलबल आक्रमणके होनेकी भारी चिन्तामें हैं. बहुतोंको धनकी चिन्तासे नींद नहीं आती. अनेकोंके रहनेका घर नहीं है. कई एकोंको रोटियोंहीके लाले पड़ रहे हैं. कोई संतानके लिए दुःखी है तो कोई स्त्रीकी आशामें सुखसे नहीं सोता. आशा, तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, मोह और मदमें लीन जीव अनेक प्रकारसे दुःखी हैं. जहां देखिये वहां केवल दुःखमय ही व्यवहार हो रहे हैं. दिनको अत्यंत शोभायुक्त दीखनेवाला यह जगन्नगर, इस समय (रातको) बिलकुल दुःखका ही स्थान बन रहा है. सिर्फ वे जितेन्द्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्मा योगी ही निर्भय मालूम होते हैं जिन्हें आपने सबसे पहले दिखाया था. उन्हींकी क्रियायें सिर्फ ऐसी हैं जो किसीका अपकार नहीं करतीं[1] वैसे ही उन क्रियाओंका फल भी अखंड़ सुख है. क्यों गुरुजी महाराज ! इसी तरह दिनके श्रमसे थके हुए और किसी तरहकी चिन्ता या दुःख सिरपर न होनेसे सुखसे सोये हुए ये दूसरे सब प्राणी भी सुखी हैं न ?" यह सुन, वामदेवजी बोलेः—" यह कैसे कहा जाय ? प्रत्यक्ष मालूम हो रहा है कि उनके सिरपर तो एक बहुत बड़ा अनिवार्य संकट झूल रहा है. अरे ! वे प्रत्यक्ष संकटके मुँहमें ही पड़े हुए हैं. जलते हुए घरके भीतर नींदमें पड़ा हुआ मनुष्य बिलकुल सुषुप्ति[2] अवस्थामें होता और इस सबबसे उस समय उसकी देह–मनकी सारी वृत्तियां बंद हो जाती हैं, इस दशामें उसे सुखी मानना सिर्फ अविद्याका ही फल है. सुखी होना तो दूर रहा, परंतु वह इतना दुःखी कहा जासकता है कि यदि थोड़ी देर तक वैसी अचेत अवस्थामें पड़ा रहे तो उसका समूल नाश हुए विना न रहे. इस नगरके निद्रित मनुष्य ऐसे ही अज्ञात संकटमें हैं. उसी तरह वे दूसरे लोग भी जो देखनेमें दुःखी हैं और चिन्तासे सो नहीं सकते, इस अज्ञात संकटसे बचे नहीं हैं. बचनेकी आशा तो सिर्फ उन महात्मा योगियोंको ही है. इस संपूर्ण नगरपर आनेवाली भीषण विपत्तिको वे जानते हैं और इस लिए उससे मुक्त होनेके लिए सतत-अविराम महाप्रयत्न किया ही करते हैं; सावधानीसे-अधिक भूल न होते हुए ही क्षण क्षण वह प्रयत्न जारी ही रखते हैं !

---

१ अनपायिनी. २ गाढ़ निद्रामें.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुरुदेवके ये वचन सुनकर सब भक्त लोग अत्यंत विस्मित होकर पूछने लगे कि, "कृपानाथ! ऐसा कौनसा अटल संकट इस नगरके ऊपर झूल रहा है?" यह प्रश्न पूछनेके बाद ही उस नगरकी दक्षिण दिशामें अकस्मात् बड़ा प्रकाश दीखने लगा. थोड़ी ही देरमें वह प्रकाश इतना बड़ा होगया कि जिसे देखते ही सब भक्तजन आश्चर्यसे चकित होगये. वे मनमें ऐसी शंका करने लगे कि "क्या बड़ी रात इतनी देरमें पूरी हुई और दिन निकला है? वह भी क्या दक्षिण दिशामें?" परंतु तुरंत ही गुरुदेव उस दिशाकी ओर हाथ फैलाकर बोलेः—"यही इस जगन्नगरका अनिवार्य संकट है." अकस्मात् मुमुक्षु जीवोंकी चित्तवृत्ति और दृष्टि उस ओरको गयी. देखते देखते वह प्रकाश इतना बड़ा हो गया कि, उससे यह सारी दिशा और जमीनमें आकाशपर्यंत सब स्थान व्याप्त हो गया. थोडी देरमें उस प्रकाशके भीतर कुछ आकारसा दीखने लगा. वह आकार पुरुषके समान था. वह प्रतिक्षण बढ़ने लगा और देखते देखते सारे प्रकाशमें व्याप्त होगया अर्थात् जितने विस्तारमें यह तेज फैला उतना ही बड़ा वह पुरुषाकृतिवाला शरीर बन गया. अब उसकी ओर देखना भी महाभयंकर था. सारी दक्षिण दिशामें फैले हुए इस प्रचंड पुरुषका रंग निरा श्याम होनेसे ऐसा दीखता था मानो काजलका विशाल पर्वत[1] है. उसके भयंकर असित शरीरके अवयव बड़े ही विलक्षण थे. उसके दोनों पैर मोटे और लम्बे थे. प्रत्येक पैरमें वज्रके समान तीन तीन कठिन और नोकदार उँगलियां थी. उसके प्रत्येक कंधोंसे शाखाओंकी तरह तीस तीस लम्बे हाथ डालियोंके समान फूटे हुए थे. प्रत्येक हाथमें भी चार चार उँगलियां थीं. आँखें भी बड़ी भयंकर थीं. वह बार बार आँखोंकी पलकें मारा करता था. उसके मुँहका आकार बहुत भयंकर था और इस भयंकर मुँहसे भोजन करनेके लिए वह इधर उधर आता जाता था. उसके मुँहकी जीभ विकराल अग्निके समान लपक रही थी. उसका शिरोभाग बिलकुल आकाशतक पहुँचा था इससे बादलोंके साथ बादलों जैसा दीखता था.

१ टीका—कालपुरुषका शरीर, संवत्सरात्मक समय है, दो पैर, उत्तरायण दक्षिणायन, पैरोंकी तीन उंगलियां, छः ऋतु हैं, तीस तीस हाथ, दिनरातकी तीस तीस घड़ी हैं, दो नेत्र, दिन और रात हैं, निमेष अर्थात् पलक मारना, प्राणियोंकी उत्पत्ति और विनाशकाल हैं, सारे प्राणी उसका भोजन हैं, भूत, भविष्यत् और वर्तमान उसका आवागमन और मृत्यु कालपुरुषका मुँह है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देखते देखते वह भयंकर पुरुष मानो नीचे बैठते जाता है इस तरह नीचे मुड़ा और अपना भयंकर मुँह फैलाने लगा. उसका मुँह इतना बड़ा और चौड़ा हो गया कि उसके नीचेका ओंठ जमीनपर और ऊपरका ओंठ बिल्कुल आकाशके उस ओर पहुँच गया. उस समय यह ऐसा दीखने लगा मानो एक ही बार सारे जगन्नगरको निगल लेगा. अब उसके सारे शरीरके स्थानमें सिर्फ उसका अत्यंत विस्तृत मुख ही दीख रहा था. इस विकराल पुरुषने अपना भीषण कार्य प्रारंभ किया. वह सुप्त जगन्नगरके सोये और जागते हुए हजारों और लाखों प्राणियोंको मुँहमें भरकर दाढ़ोंसे पीसने और पेटमें डालने लगा.

ऐसा भयंकर प्रसंग देख वे विमानस्थित लोग बहुत भयभीत हो गये और हाथ जोड़ गुरुदेवको प्रणाम कर, विनय करने लगे कि, "हे कृपानाथ ! यह क्या ? अरे ! यह कैसा घातक (प्रलयकारी) प्रसंग है ? यह विकराल पुरुष तो सबका नाश करता है. सारा जगन्नगर तो क्या, परंतु यह सारा आकाश और उसमें अधर रहनेवाला यह अपना विमान भी उसके मुँहमें ही है ! ! ऐसा भय होता है कि उसने हमें भी लिया और खाया ! अब हम कहां जायँगे ? हे देव ! देखो, उसके मुँहमें गया हुआ कोई भी प्राणी पदार्थ बचने नहीं पाता. कोई शायद छटककर निकल जाता है तो उसे वह अपने तीक्ष्ण नखवाले लम्बे हाथोंसे, पकड़ कर पुनः मुँहमें डाल लेता हैं. इस तरह रत्नके समान मनुष्य, पशु, पक्षी, जलचर और थलचर आदि सब प्राणियोंमेंसे किसीको भी वह नहीं छोड़ता. ऐसा मालूम होता है, मानो चर और अचर सभी सृष्टि उसका भक्ष्य है. ऐसा महात्रासदायक दृश्य हमसे देखा नहीं जाता."

जब इस तरह कोलाहल मच गया तब उन भयभीत हुए पुण्यश्लोक जनोंसे प्रेमपूर्वक बटुकजीने कहा:–"हे पुण्यजनो ! हम सब उसके मुँहमें हैं सही और हमको भी इन सबकी तरह नष्ट होनेमें विलंब नहीं लगेगा, परंतु तुम्हारे पास श्रद्धा, भक्ति और आत्मज्ञान, ये तीन पार्षद खड़े हैं, तुम इच्छानुगामी दिव्य विमानमें बैठे हो, इस लिए तुम्हें किसी तरह भयभीत होनेका कारण नहीं है. जो कुछ हो रहा है उसे तुम निर्भीक हो कर देखो. परन्तु इससे तुम्हें जानना चाहिए कि चाहे कोई सोता हो चाहे जागता उसका कालके सपाटेमें नाश ही हुआ करता है. सिर्फ वे ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोग तरते हैं जो आत्मयोगी हैं. अब देखो, वह एक साहसी मनुष्य उसके मुँह–उसकी वज्रसरीखी तीक्ष्ण दाढ़ोंकी बगलसे छटक बाहर निकल कर खड़ा है और उसे समेटनेके लिए इस भक्षकने हाथ फैलाया है, परन्तु यह चपल पुरुष दोनों हाथ जोड़ कर उससे कुछ विनयपूर्वक कहता है; इससे भक्षक भी उसे पकड़ना छोड़ कर उसकी विनय सुनता है. इस लिए तुम सब शान्तचित्त हो कर वह जो कुछ कहता है उसे सुनो." फिर सब एकाग्रचित्तसे कान लगा कर बैठे. वह धीर गंभीर पुरुष उन एकान्त क्रिया (योग) करनेवाले महात्माओंमेंसे एक था. वह विश्वव्यापी भक्षकको प्रणाम कर बोलाः—"अहो देव! हे सबके भक्षण करनेवाले देव! मुझसे कहो कि, आप कौन हैं? क्या तुम जगत्के संहार करनेवाले और भूतपति भयंकर रुद्रदेव हो? या पापियोंको दंड देनेवाले यमराज हो? अथवा भस्मीभूत करनेवाले अग्निदेव हो? हे भयंकर देव! तुह्मारे डरसे मैं मनुष्य प्राणी स्वतः तुह्मारी शरणमें आया हूँ. इस लिए मुझे बताओ कि तुम कौन हो और ऐसा भीषण तथा संहारकारी कर्म करनेके लिए क्यों उद्यत हुए हो? शरणमें आनेवालेका नाश महाअज्ञान क्रूर प्राणी भी नहीं करता, अतः आपको भी मेरा नाश करना उचित नहीं है." इसके उत्तरमें विश्वव्यापी भक्षक, घनगर्जनाके समान गंभीर वाणीसे बोलाः— "हे साधु! हे परमार्थपरायण योगी! मैं इस जगत्का स्वामी हूँ. मेरा नाम 'काल' है और मेरा नैत्यिक कर्तव्य यह है कि सबका अंत करूँ. यह सारा संसार मेरा भक्ष्य है. इसमें कोई भी वस्तु बाकी नहीं रहने पाती. इन्द्र और ब्रह्मा, यम और कुबेर, देव और दानव तथा मनुष्य, चर और अचर, स्थावर और जंगम, सबका मैं ही काल हूँ और मैं ही संहार करता हूँ.* मेरी क्षुधा अखंडित और बहुत ही बड़ी है, वह प्रलयके अंतमें भी शान्त नहीं होती, इस लिए बिना विश्राम निरंतर मुझे अपना आहार करना ही पड़ता है. मेरा काम कभी भी नहीं रुकता, और न उससे मुझे हैरानी या थकावट मालूम होती है. इस समय भी मैं अपना आहार करनेके लिए ही बढ़ा हूँ और यह वृद्धि सिर्फ आज या कल ही भरके लिए नहीं

* 'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।' कालस्वरूप श्रीभगवान् बोलेः–मैं सब लोगोंका संहार करनेवाला बहुत ही विस्तृत उग्र काल हूँ और लोगोंका संहार करनेके लिए इस लोकमें प्रवृत्त हुआ हूँ. (गीता.)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परंतु सदाके लिए है. एक ओरसे मेरा नूतन आहार उत्पन्न होता है और दूसरी ओरसे समय आते ही मैं उसका भक्षण करता हूँ, तो भी मुझे कोई नहीं जानता, कोई नहीं देखता-देखनेको समर्थ भी नहीं है. सिर्फ तेरे समान कोई परमार्थपरायण (परोपकारी) पुरुष ही मुझे कुछ कुछ जानता है. जो अज्ञानको छोड़ कर ज्ञानी बने हैं, मायासे दूर हुए हैं, मेरे प्रेम-पात्र बननेके लिए मेरी आज्ञा मानते हैं, जिनका अंतःकरण परमार्थके लिए पवित्र हुआ है, और जिनकी दृष्टि दिव्य हुई है वे ही मुझको जान और देख सकते हैं. "

यह सुन उस धीर वीर साधुने पूछाः-" हे भगवन् कालपुरुष ! हे जगद्भक्षक ! यदि तुह्मारा कर्तव्य इसी तरह सब चराचरका भक्षणरूप नाश ही करना है, तब तो यह बड़ा पापकर्म है. हे देव ! क्या ऐसे घातक कर्मको आप प्रिय मानते हैं ? और क्या उसके गंभीर पातकसे आप लिप्त नहीं होते ? आपको उचित है कि मुझपर रुष्ट न हो कर मेरे इस प्रश्नका उचित उत्तर देकर मेरा समाधान करें. " कालपुरुषने कहाः-" नहीं, मैं पातकसे जरा भी लिप्त नहीं होता. मैं अपने इस कर्तव्यको प्रिय अप्रिय कुछ नहीं समझता. प्रिय अप्रिय, पाप पुण्य, शुभाशुभ मानने मनानेका मुझे अधिकार नहीं है. यह तो मेरी स्वाभाविक ही चर्या है. जैसे मकड़ी अपने मुँहसे बहुतसे लारके तंतु निकाल उन्हें अनेक आकारके बनाती और क्षणमें फिर उन्हें समेट कर अपने मुँहमें डाल लेती है, और उसको जैसे पातक नहीं लगता, उसी तरह यह मेरी क्रीड़ा है. " यह सुन उस महात्माने पूछाः-" हे देव ! यह कैसे ? क्या इस चराचरके साथ आपका संबंध मकड़ीकी लारके ही समान है ? " काल पुरुषने कहाः-"हां, यह समस्त जगन्नगर मुझसे ही पैदा हुआ है, मुझमें ही स्थित है और मुझमें ही लय (लीन) होगा. सारा जगद्रूप मैं ही हूँ. मैं एक होते भी अनेकरूपसे व्याप्त हूँ. यहां जो मैं भक्षकरूप हूँ वही मैं अन्यत्र पालकरूप हूँ. और, फिर पैदा करनेवाला भी मैं ही हूँ. मैं कर्ता, भोक्ता और संहारकर्ता हूँ. मैं विश्वव्यापी हूँ-विश्व मुझमें है और मैं विश्वमें हूँ. तो भी सारे प्राणी (भूत) मुझमें हैं, परन्तु मैं उनमें नहीं हूँ. जो मेरी अन्य क्रीड़ा दीखती है, वह मेरी मायाका बल है. जो इस मायाको पार कर उसके मस्तक पर हो कर गये हैं, वही इस क्रीड़ाको जान कर मुझे ज्ञानदृष्टिसे देख सकते हैं. फिर भिन्न रीतिसे देखो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो मैं कृषिकार * हूँ और जगन्नगर मेरी कृषि† है. किसान खेतीको बोता सींचता, रक्षा करता और वही फिर उसे लुनता (काटता) और भक्षण भी करता है. "

उस महात्माने फिर विनय की:-" हे प्रभु ! चाहे जो हो, आपकी लीला आप ही जानें; मुझे तो बड़ी चिन्ता है कि यह चराचर प्राणियोंका समूह जो आप अपना भक्ष्यरूप मानते हैं, क्या इसी तरह पिस कर मरनेके लिए पैदा किया गया है ? उसकी क्या दूसरी गति ही नहीं है ? क्या इस पिस कर मारे जानेसे बचनेका उसे कोई उपाय ही नहीं है ? क्या आप दयाशून्य हैं या किसी दयापात्र प्राणीको आप अपने भक्षणसे मुक्त नहीं करते ? " कालपुरुषने उत्तर दिया:-" हे निष्पाप ! किसीको कुछ चिन्ता करनेके लिए मैंने रखा ही नहीं और न कोई मुझे दूषण ही दे सकता है. क्षेम और लय, सुख और दुःख, पुण्य तथा पाप, शुभ और अशुभ, क्षर और अक्षर-इन सबका ज्ञान मैंने उसी पर रखा है जिससे ये संबंध रखते हैं. और भी मनुष्यादि, जो ज्ञानवान् प्राणी हैं, उन्हें तो बिलकुल ही स्वतंत्रता दी है, जिससे वे स्वयम् अपना कल्याण-सुखका मार्ग खोज लें. मैं दयाहीन नहीं हूँ. मैंने उनके लिए पहलेहीसे कल्याणका मार्ग बना कर खुला छोड़ दिया है. मैंने ऐसे न्याययुक्त नियम बनाये हैं कि जिनका भली भांति पालन करनेवाले प्राणियोंका मैं भी कुछ नहीं कर सकता, बल्कि मुझे उनका सहायक होना पड़ता है, क्यों कि जो मेरे नियमोंके अधीन हो मुझे भजते हैं, उन्हें मैं भजता हूँ अर्थात् जो मुझमें लीन रहते हैं वे मुझमें ही लीन होते हैं. मेरा निर्मित मार्ग बहुत दृढ़, पवित्र, पुरातन और सनातन है तथा बिना किसी रोक (प्रतिबंध) के खुला रहने पर भी अनधिकारी और जिज्ञासारहित प्राणीके लिए बिलकुल परोक्ष (गुप्त) है. फिर यह सनातन मार्ग बहुत समय हो जानेसे अव्यवस्थित न हो जाय या इसे मनुष्य भूल न जायँ इस लिए मैंने इसे वैसे ही अविनाशी ग्रन्थोंमें तीन सीमाओं‡ सहित वर्णन किया है. वे पवित्र ग्रंथ लोगोंके उपकारार्थ प्रचलित भी हैं. इतनी सुविधा होने पर भी जो अभागी प्रमादी पुरुष अपने कल्याणका प्रयत्न न करे, वह नष्ट होनेके लिए मेरे मुँहमें आ पड़े तो इसमें क्या आश्चर्य और किसका दोष है ? इन ग्रन्थोंमें

* किसान. † खेती. ‡ उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बताये हुए मुक्तिमार्गका इत्थंभूत वृत्त भी बहुत समयमें शिथिल और साधारण हो जाता है इससे जो लोग संकल्प विकल्पके वश हुए हैं उन्हें उसमें कुछ महत्व नहीं दीखता तब मैं स्वयम् अंशतः या देवरूपसे प्रगट होकर उस पवित्र मार्गको फिर बलिष्ठ कर देता हूँ. इतना होनेपर भी जो मूर्ख लोग व्यर्थ आशावाली, व्यर्थ कामनावाली, व्यर्थ ज्ञानवाली राक्षसी और आसुरी मोहक वासना–मायाका आश्रय लेते हैं, वे मेरे भक्ष्य होते हैं, उसमें उन्हींका दोष जानो. "

यह सुन, उस धीर महात्माने विनय कीः—" दयामय ! तो वह पवित्र मुक्तिमार्ग कौन है कि जिसका अनुसरण करनेसे इस अनिवार्य संकटसे छुटकारा होता हैं ? हे देव ! मुझे बताओ इस मार्गमें जानेसे अंतमें कहां पहुँचना होता है, जिससे वहां गया हुआ प्राणी आपके भक्ष्य होनेके भयसे मुक्त होता है. " कालरूप प्रभुने कहाः—" हे धीर ! यह मार्ग दूर नहीं है, वह जो दीख रहा है वही मार्ग है. यह बहुत गहन और दुर्घट है तो भी धीर, साहसी, दृढ श्रद्धावाले, प्रेमी, पवित्र और मायारहित मनके मनुष्यको गहन और दुर्घट नहीं है. इसका चढ़ाव ऊंचा होनेसे यह यद्यपि भयंकर दीखता है तो भी जितेन्द्रिय, आत्मशोधनमें उद्यत, एकाग्र चित्तवाले और प्रमादरहित, अविद्यासे मुक्त और विद्यासे संयुक्त पुरुषको, यह मार्ग परम सुखकारक हो जाता है. इस मार्गमें किसीका भय नहीं है. परंतु इसमें भूलभुलैया अधिक होनेसे असावधान पथिक बीचमें ही रह कर भवाटवी (संसार–वन) में भटका करता है. इस मार्गका नाम ' अच्युतपथ ' है. इस पथके परे अक्षर, अविनाशी, अच्युतपुरमें जाना होता है. वहां सिर्फ निरामय (निरोग), अखंड सुखमय और विनाशरहित सच्चिदानंद घनश्याम स्वरूप अच्युत प्रभु, एक रस, एकाकार, अभेदरूप, चिन्मात्र, परब्रह्म, परमात्मा, शेषशायी नारायण रूपसे मैं निवास करता हूँ. यही मेरा मुख्य और मूलरूप है. यह मेरा कालरूप और दूसरे सब रूप गौण (साधारण)

१ मुक्तिमार्ग अर्थात् संसारसे बचने--छूटनेतरनेका मार्ग. २ बहुत अलभ्य और महत्ववाली वस्तु भी बहुत समयतक नित्य आँखोंमें दीखती रहनेसे मनुष्यको साधारणसी हो जाती है और उसपर प्रेम मोह नहीं रहता. ऐसा होनेसे यद्यपि उस वस्तुका महत्व जरा भी नहीं घटता, परंतु जैसे नित्य सरलतासे मिलनेसे अमूल्य चंदनको भी भीलनी साधारण लकड़ीकी तरह जला डालती है, वैसी ही उसकी भी दशा होती है. ३ अंशद्वारा--अपने अंशसे.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं. ये न्यूनाधिक उपाधियुक्त हैं. इन अच्युत परब्रह्मके शरणमें जाकर निवास करनेवालेको किसी तरहका भय नहीं रहता. "

यह सुन, महात्माने पूछाः–"हे देवेश्वर ! आप एक हो और एकरस होते भी परस्पर विरुद्ध स्वभाववाले अनेक रूपोंसे प्रकट हो, आपकी इस चमत्कारपूर्ण विलक्षण विश्वलीलाको कोई भी नहीं जान सकता. परन्तु हे देव ! मुझे यह बताओ कि आपके इस अच्युतपथमें जो बहुतसी भूलभुलैयां हैं, उनसे किन साधनोंसे पथिक बच सकता है ?" काल पुरुषने कहाः- " इन भूल–भुलैयों और लालचोंसे बचनेके लिए पथदर्शिका[1] एक श्रेष्ठ साधना है, जो मेरे प्रकट किये हुए असंख्य ग्रन्थोंमेंसे ऊद्धृत[2] की हुई है. मेरा ही होनेवाला, मेरे लिए ही निर्मीत किये हुए मार्गोंसे चलनेवाला सचेत पथिक, इस साधनाको सतत (अविराम) अपने हृदयमें रखता है और उसकी पवित्र गाथाओंको प्रेमसे रात दिन गान करते, उसमें बतलाये हुए मार्गमें चला जाता है. इससे कोई भी अधिकारी मुमुक्षु किसी भुलावे या लालचमें नहीं फँसता है. अधिकारी पथिकोंकी कल्याणकारिणी, मुक्तिदात्री यह पथबोधिनी लोकमें ' गीता ' के नामसे प्रसिद्ध[3] है. हे वत्स ! यह पथबोधिनी हृदयमें होने पर भी मार्गकी कठिनाइयों या प्रमादके कारण कोई पथिक भटक कर बड़ी ही अड़चनमें आ पड़े तो उसे वहांसे उद्धार कर फिर मार्ग बतानेके लिए मैंने पहलेसे ही योजना कर रखी है. इस कार्यके लिए बहुतसे ऐसे पथप्रदर्शक हैं जो उस मार्गके प्रत्येक स्थानों, चढ़ाव, उतार और भीषण घाटियोंको अच्छी तरह जानते हैं. वे सिर्फ मेरी पवित्र आज्ञाका ही अनुसरण करनेवाले हैं. वे इस सुखद परंतु गहन मुक्तिमार्ग और उसमें भी विशेष कर भीषण स्थानोंमें नित्य घूम कर, फँसे या अड़चनमें पड़े हुए पथिकोंको, सुमार्गसे लगाते हैं. वे स्वभावसे अत्यंत परोपकारी, दयाशील और सज्जनताके सब गुणोंसे युक्त हैं. वे गुरु–सद्गुरु संत–महात्मा आदि नामोंसे लोकमें प्रसिद्ध हैं. हे साधु ! तू भी वैसे ही महात्माओंके समान शुभ गुणोंसे युक्त है, और इसीसे दयापात्र होकर मेरे मुँहसे सुरक्षित बच गया है. तुझे यदि सदाके लिए निर्भय होना हो, तो क्षणिक स्थितिवाले, नाशवंत और भक्ष्यरूप इस जगन्नगरके रहनेका लालच त्याग कर शीघ्र इस अभय पथका पथिक बन, तुझे जानना चाहिये कि यही पथ

१ मार्ग दिखानेवाली: २ अवतरण की हुई. ३ मार्ग बतानेवाली.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कल्याणकारी है. यह तू जानता है कि मैं कालका भी काल हूँ, विश्वका कारण हूँ, सृष्टिका तारण हूँ इससे मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ–जो मुझे जानता है उसका मैं स्वामी नहीं, परंतु मैं और वह दोनों समान हैं. मैं अपने आगे किसीकी कुशलता देख नहीं सकता और न मेरे आगे कोई कुशल ही रह सकता है. मैं काल हूँ और सबका नाश करना ही मेरा स्वाभाविक कर्म है. मैंने तुझसे अभी ही कहा है कि मेरी क्षुधा (भूख) बड़ी तेज है. जब वह कभी कभी बढ़ती है तब मैं दीखने और न दीखनेवाले समस्त विश्वका भक्षण कर जाता हूँ. इसीको महाप्रलय कहते हैं. महाप्रलयके बाद बहुत समयतक कुछ भी न बचनेसे सर्वत्र केवल मैं ही रहता हूँ. ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु, इन्द्र, सूर्य, नक्षत्र और यह पृथ्वी कुछ भी शेष नहीं रहते. उग्र क्षुधाके कारण जैसे अपने ही पैदा किये हुए बालकोंको सर्पिणी भक्षण करने लग जाती है और उस समय उसे उनपर कुछ वात्सल्य नहीं रहता, उसी तरह मैं भी जो स्वभावसे ही सबका भक्षक हूँ, तुझपर प्रसन्न हूँ, तो भी अब मेरे सामने तेरा खड़ा रहना कल्याणकर नहीं है, इस लिए यहांसे शीघ्र चला जा. ”

ये अंतिम शब्द बोलते ही उस कालपुरुषका स्वरूप बहुत ही विकराल बन गया. तीसकी जगह उसके सैकड़ों और हजारों हाथ हो गये. वह चारों ओरसे प्राणियोंको उठा उठा कर मुँहमें डालने लगा. एकके बदले अनेक मुँह भी हो गये, सारे भीषण मुखोंसे अपार बढ़े हुए धुएंके साथ अग्निकी ज्वालाएं निकलने लगीं. सारा आकाश धुएंसे पूर्ण हो गया. अंधकार बढ़ने लगा. कालके मुँहके कराल दांत, लपकती हुई जीभवाले मुँहमें ऐसे दीखने लगे मानो काली मेघघटामें बारबार चमकनेवाली बिजली हो. असंख्य प्राणी उस जलते हुए दावानलमें पतंगोंकी भांति गिर कर कराल कालके मुँहमें चूर्ण होने लगे. ऐसा भयंकर कालरूप और उसका अपार त्रासदायक घोर संहार देख, वह महात्मा धीर पुरुष एकाएक बावला बन गया और घबरा कर वहांसे भागा. परंतु, भागते समय ठोकर खाकर जमीनपर गिर पड़ा और अचेत हो गया.

ऐसा घोर संहार देख, आकाशस्थित विमानवासियोंके भी हाथसे चँवर छूटने लगी. वे एक साथ ही चिल्ला उठे-“ हे गुरु महाराज ! हे कृपानाथ ! रक्षा करो ! रक्षा करो ! अब कहां जायँ ? अब कैसे जी सकेंगे ? यह कालदेव तो किसीको भी नहीं छोड़ता. अरे अरे ! देखो ! वह बहुत बढ़ने और चारों ओरसे भक्षण करने लगा है. अरे यह क्या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चमत्कार है ! अबतक तो एक ही मुँहसे भक्षण करता था, परंतु अब तो इसके अनेक मुँह दीखते हैं और वह असंख्य हाथ, पैर, नाक, कान, आदिसे प्राणियोंका संहार करता है. इसके प्रत्येक अंग प्राणियोंके चुभ जाते हैं. अब किसीके भी बचनेकी आशा नहीं है. अरे ! यह अंधकार भी क्षण क्षणमें बढ़ता ही जाता है. अब तो कोई किसीको देख भी नहीं सकता. कृपालु गुरुदेव ! अब तो हम पापियोंकी प्रार्थना पर ध्यान देकर हमें किसी निर्भय स्थानमें ले चलिये. हमें उबारिये. आप जैसे समर्थकी शरणमें होनेसे हमें कालका भय तो है ही नहीं, परन्तु हमारे अंतःकरणमें अभी जीवभाव होनेसे, इस महाभयंकर कालक्रीड़ाको हम देख नहीं सकते.

ऐसी प्रार्थना सुन, महात्मा गुरु वामदेवजीने तुरंत ही वहांसे विमान चलानेकी आज्ञा दी, जिससे वह अपार आकाशमें बहुत दूर चला गया.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रथम बिन्दु–प्रथम सोपान.

पथारोहण.

जगद्बंधनका क्लेश.

क्षीरं क्षीरे यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं जले ।
संयुक्तमेकतां याति यथात्मन्यात्मविन्मुनिः ॥

अर्थ—दूधमें दूध, तेलमें तेल और जलमें जल मिलनेसे जैसे एकरस हो जाता है वैसे आत्मवेत्ता मुनि आत्मामें मिलनेसे एकरस (कार्यमें लीन) हो जाता है.

प्रभात हुआ, धीरे धीरे पूर्वदिशा जगमगाने लगी. सूर्योदय होते देख विमानस्थित मुमुक्षु पुण्यजन तुरंत अपने प्रातराह्निकमें प्रवृत्त हुए. थोड़ी देरमें वे सब कामोंसे अवकाश पा गुरुदेवको प्रणाम कर आसनोंपर बैठकर देखते हैं तो विमान जगन्नगरके ऊपर आकर ठहरा था. राजाने खड़े होकर सब सभासदोंसहित भारी जयध्वनि की. तब गुरुदेवने सबको सम्बोधन कर कहा:–"क्यों राजा, अब तो कुछ भय नहीं है ? देख, इस समय नगरमें क्या होता है ? " सब पवित्र लोग जमीनकी ओर देख कर कहने लगे:—" अहा ! गुरुदेव ! अब तो सर्वत्र आनन्दमय है. सब प्राणी पूर्ण उत्साहसे अपने अपने कामोंमें लगे हैं और उन्हें समूचा निगल जानेवाला वह कालपुरुष भी कहीं नहीं दीखता. इतनेमें चारों ओर बहुत सूक्ष्मरूपसे विचार विचार कर देखते हुए महाराजा वरेप्सु बोले—" नहीं नहीं, गुरु महाराज ! वह कराल काल कहीं नहीं गया ! सिर्फ देखनेमें फर्क है. आपकी प्रदान की हुई दिव्यदृष्टिद्वारा मुझे तो साफ दीखता है कि वह कहीं नहीं गया और न कहीं जायगा. जैसा उसने अपने ही मुँहसे कहा था और हम लोगोंने प्रत्यक्ष देखा है, उसी तरह उसकी नाशकारक भक्षणक्रिया निरंतर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जारी ही है. वह देखो, वह पश्चिम दिशामें दीखता है, यहांसे बहुत दूर जहां अंधकार छाया है, वहांपर वह संहार कर रहा है. इससे मुझे जान पड़ता है कि वह सदा चारों तरफ फिरता ही रहता है. वह चाहे जहां हो संहार ही करता रहता है. उसका हाथ तो बिलकुल यहांतक पहुच गया है. वह इन अगणित प्राणियोंको अपने लंबे हाथोंसे सटासट खींचता है और मुँहमें डालकर निगल जाता है. यह तो रातको हम लोग प्रत्यक्ष देखते थे, इस लिए पहँचान भी सके कि यह कालपुरुषका संहार है, परंतु इस विलक्षण स्थान पर रहनेवाले जीव क्या कुछ जानते होंगे ? वे बेचारे तो बेजाने मारे जाते हैं और वे अपने अनेक साथियोंको नित्य नष्ट होते देखते हैं तो भी उसके लिए कुछ चिन्तित मालूम नहीं होते. ऐसे अज्ञानांध, पराधीन प्राणियोंकी दशा कैसी शोचनीय है. आपकी पूर्ण कृपा हैं, नहीं तो हमारी भी यही दशा होती."

इस तरह वरेप्सुके कहनेसे सब लोग सूक्ष्मतासे उस दिशाकी ओर देखने लगे, इतनेमें गुरुदेवने उनका ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट किया. वे बोले:– "अरे देखो, देखो ! वह मनुष्योंका समूह क्यों एकत्र हो रहा है ? गली गली, कूचों कूचों और ठौर ठौरमें लोगोंका झुण्डका झुण्ड एकत्र दीखता है. उनके ऐसा करनेका कुछ कारण होगा ? वे स्वयं घरसे बाहर नहीं निकलते; परंतु देखो, वे बहुतसे मनुष्य गली गली फिरकर उन्हें बाहर निकलनेकी सूचना देते हैं. वे सूचना देनेवाले क्या कहते हैं, तुम सब लोग उसे समझो तो अच्छा है." महात्मा बटुककी बात सुन, राजा बोला:–"हां गुरुदेव ! आपकी कृपासे सब समझते हैं. वे सूचना देनेवाले कहते हैं कि:—

अहो मनुष्याः कृपणाः कुसंगिनः कालस्य वक्त्रे पतिताः सबांधवाः ।
अस्मिन्महाकष्टमये प्रसंगे आश्चर्यवन्निर्भयतां किमाश्रिताः ॥
महाऽदयः कालनरोऽत्ययं पुरं ग्रासैः प्रचंडश्च न वेत्ति को जनः ।
यदीष्यते कालभयात्स्वरक्षणं ततो हरेर्मार्गमितः प्रयात वै ॥

भावार्थ–'अरे, हे कृपण और कुसंगी* मनुष्यो ! हे बंधुसहित कालके मुँहमें पड़े हुए मनुष्यो ! ऐसे महाभयंकर दुःखमय अवसरमें आश्चर्य पैदा करनेवाली निर्भयताको क्यों धारण किये हो ? महानिर्दय कालपुरुष, बांहें फैलाकर इस नगरको खा जायगा, इसे क्या तुममेंसे कोई मनुष्य नहीं जानता ? यदि इस काल पुरुषके भयसे अपनी रक्षा करना चाहते हो तो यहींसे अच्युतपथमें प्रयाण करो.'

* कु अर्थात् बुरी–संसारकी जो व्यर्थ माया है उसके साथी.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"उनकी ऐसी सूचनासे लोग घबरा उठे और उनमें जो खोजी, सत्यज्ञ, उद्यमी, प्रमादरहित और अपनी रक्षा करनेमें सचेत थे, वे तुरंत ही एकाध पोटली लेकर घरसे बाहर निकल पड़े. फिर वे अड़ोसियों पड़ोसियोंको भी पुकारने लगे कि:—"चलो, निकल पड़ो, जल्दी करो, नहीं तो रह जायँगे, पकड़में आ जायँगे." इस तरह प्रत्येक गली और मुहल्लेसे निकले हुए असंख्य लोग उस सामनेवाले मैदानमें एकत्र हो गये. उनके बीचमें उस ऊंचे चबूतरेपर एक मनुष्य खड़ा था, जो हाथ उठाकर एकत्र हुए लोगोंसे कुछ कहने लगा. यद्यपि वह जोरसे बोलता है, तो भी इन असंख्य लोगोंके कोलाहलके कारण उसका कथन यहांसे नहीं सुना जा सकता."

इसी समय बीचमें एक दूसरा पुण्यात्मा प्राणी बोल उठा:—"कृपानाथ! परंतु इस चबूतरे पर जो पुरुष है वह वही है जो रातमें उस कालपुरुषसे बातें करता था." वरेप्सु बोले:—"हां, हां वास्तवमें वही है. हां, वही है. गुरुदेव! यह तो कालकी भयंकरतासे घबराकर भागा था और अंधेरेमें गिरकर अचेत (मृत्युवश) हो गया था, पर यहां तो फिर सचेत हो गया है, यह कैसे?" गुरु वामदेवने कहा:—"वत्स! यह भयभीत होकर भागा था सही, परंतु मृत्युके वश नहीं हुआ था, इसे तो उस महाभयंकर दृश्यसे मूर्च्छा आ गयी थी. मूर्च्छा हटते ही यह तुरंत वहांसे उठ सचेत होकर यहां आया है और बिना विलम्ब अब निर्भय स्थानमें जानेका प्रयत्न कर रहा है. अहा! देखो, यह कितना परोपकारशील है? स्वयं भयसे बचा है और कुशलतासे रहनेका मार्ग प्राप्त कर सका है, इससे इसने उसका लाभ सब जनोंको देकर उनकी रक्षा करनेकी हामी भरी है. जिससे स्वप्नान्तका अनुभव—मोहका नाश और जागरितान्तका अनुभव—ज्ञानोदय होता है, वह पुरुष महान् विभु-आत्माको जानता है और कुछ भी शोच नहीं करता किन्तु सबका हित करता है. जो आत्मा है उसे प्रिय अप्रियका ज्ञान नहीं, सिर्फ देहको ही प्रिय अप्रियका ज्ञान होता है. इस विनाशी जगत्में पुरुषके प्रयत्नसे ही स्वात्मदर्शन होते हैं. श्रवण, मनन, और निदिध्यासन विना सिर्फ गुरु-प्रसाद या पुण्यकर्म स्वात्मदर्शनके लिए गौण (अप्रधान) साधन हैं. जब पुरुष अपने प्रयत्नजन्य बलसे चेतता है तभी मायासे तरता है, डूबता नहीं है, क्यों कि वह मायामें लुब्ध नहीं है और न अज्ञान ही है. परन्तु यदि अज्ञ तर जाता हो तो गुरुजी! ऊँट या नाथे हुए बैलका क्यों न उद्धार कर सके? सिर्फ स्वात्मबल ही श्रेयको प्राप्त करता है. यह जीव स्वात्मबली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, अज्ञ (मूर्ख) नहीं हैं. वह चाहता है कि दूसरोंको भी अज्ञानतासे दूर करूँ. इस महात्माका भाषण हम लोग स्पष्टरूपसे सुन सकेंगे, तुम सुनो." फिर एकाग्रचित्तसे मुमुक्षु उसे सुनने लगे.

वह धीर महात्मा हाथ उठाकर सारे जनसमूहमें चारों ओर देख देख कर कहने लगा:–"अहो! कैसा महदाश्चर्य है! कितने खेदकी बात है! क्या कहूँ! अरे! हे जगन्नगरनिवासियो! हे दयापात्र मनुष्यो! अपने सारे नगरमें उपस्थित भयंकर स्थिति क्या तुममेंसे किसीने अबतक नहीं जानी है? चारों ओरसे अग्नि भड़क उठी है, ऐसी स्थितिमें जलते हुए उस वनके प्राणी उसकी ज्वाला कैसे सह सकेंगे? अरे! अगाध जलवाले समुद्रमें मुँह फैलाकर मगर (ग्राह) के आगे गोते खाता हुआ मनुष्य अपनी जीवनरक्षा कैसे कर सकता है? बड़े भयंकर घोर वनमें अजगरके द्वारा छाती तक निगला हुआ मनुष्य अपने बचनेकी आशा कैसे रख सकेगा? अरे! सात दिनोंका भूखा सिंह, भक्ष्यकी तलाशमें गहन पर्वतकी गुफामें जिसे पकड़ ले, उसके बचनेकी क्या आशा है? परंतु नहीं, इस तरह जीवनकी आशा त्यागे हुए भी किसी समय भयंकर प्रसंगसे मुक्त हो जाते हैं, परंतु यह सारा जगन्नगर (लोक)! जिस घोर भयमें आ पड़ा है, जिस अनिवार्य संकटसे ग्रस्त है उससे किसी तरह भी बचना साध्य नहीं है. मैं भी यह नहीं जानता था कि ऐसा भारी संकट हमपर टूट पड़ा है, परंतु अभी जाना है, इससे मेरी छाती फट गयी है. परंतु मैं अपनी रक्षाका मार्ग जानकर उसमें जाना चाहता हूँ. मैं कभी कभी सुना सही करता था कि 'इस नगरको कोई धीरे धीरे, क्षण क्षणमें गुप्त रीतिसे नष्ट करता रहता है और इससे किसी एक भयंकर रातको यह सारा नष्ट हो जायगा, इस लिए जो बचना चाहता हो वह इसे त्यागकर निर्भय स्थानमें चला जाय.' वह निर्भय स्थान कौन है, इसे मैं नहीं जानता था. परंतु गत रातमें तो मैंने प्रत्यक्ष देखा है कि कैसे नाश होता है, तबसे मेरा हृदय धड़क रहा है. जिसे कभी स्वप्नमें भी नहीं देखा, जो कल्पनामें भी नहीं आया, ऐसा प्रसंग देख कर मैं बड़े भयके कारण वहांसे चमककर भागा और रास्तेमें गिरकर अचेत हो गया. फिर सचेत होते ही वहांसे उठा. उसी समय इस नगरको छोड़कर मैं चला जाता, परंतु दयावश तुम्हें सचेत करनेको यहां आया हूँ. इस लिए देर न करो. हम सब निर्भय स्थानमें चलें. मेरे कहनेका कारण यह है कि सिरपर भार आदि रखा हो तो उसके दुःखसे दूसरा भी मुक्त कर सकता है, पर क्षुधादिसे होने-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाला दुःख विना अपने, दूसरेसे नहीं मिट सकता. रोगी यदि स्वयं ही दवाका सेवन करे तो उसे आरोग्य मिलता है, परन्तु दूसरे दवा खावें तो उसे आरोग्य नहीं मिलता. उसी तरह वीणाके तार बजानेकी चतुराईसे लोग प्रसन्न होंगे, परन्तु उससे कोई मृत्युके मुँहसे नहीं बच सकता. इस लिए हे दया-पात्र मनुष्यो ! इस नगरको परम विलक्षण आकृतिवाला एक महाप्रचंड पुरुष, जिसे किसीकी भी उपमा नहीं दी जा सकती, इस तरह नाश करता है जिसे कोई जान नहीं सकता. वह निर्दयकी भांति भयंकरतासे सबका भक्षण किया करता और कहता कि, ' थोड़े समयमें इसी तरह मैं सबका भक्षण करूंगा. यदि बचना हो तो अविनाशी मार्गकी ओर भागो. ' इस लिए हे मनुष्यो ! इतना जानने पर भी अपने जीवनको खतरेमें डाल ऐसे भयमें पड़ा रहनेवाला कौन मूर्ख होगा ? अब तो चेतो, अरे ! चेतो ! सबको आत्मासे आत्माका उद्धार करना है. यह आत्मा ही आत्माका बंधु और आत्मा ही आत्माका शत्रु है ! विचारपूर्वक स्वयं ही आत्मा आत्माके सहारे-संसार-मोह-समुद्रसे परिपूर्ण इस नगरसे अपने मनरूपी मृगको तार कर पार उतारो, यही मुख्य कर्तव्य है. अब तो यह नगर एक पल भी रहने योग्य नहीं है. यहांसे तो शीघ्र ही किसी निर्भय स्थानमें चले जाना चाहिये. हम लोगोंने बहुवार सुना है कि—

' दुःखलेशविहीनमक्षरं, सुखमयं तु सदाच्युतपदम् '

' लेशमात्र भी दुःखसे रहित, अविनाशी और सदा सुखमय तो अच्युत नामका पद ही-स्थल ही है. ब्रह्म धाम-अक्षर धाम वही है. वहां निरंतर निवास करनेवाला पुरुष सबके सोनेके समय जागता रहता है. नाना प्रकारके कार्योंका निर्माण करता रहता है, सब चला जाता है, परन्तु वह तो ज्योंका त्यों ही रहता है. वही शुद्ध ब्रह्म परमात्मा-अच्युत है. वही अमृत है. सारे लोक इसीके आश्रित हैं, इससे दूसरा कोई नहीं है, यही परमात्मा है. वह आँखोंका देखनेवाला है परन्तु आँखें उसे नहीं देखतीं, वह कानोंका सुननेवाला है पर कान उसे नहीं सुनते, वह वाणी (बोली) का प्रवर्तक (नियोजक) है परन्तु वाणी उसके गुण नहीं गा सकती. यही परमात्मा-आत्मारामरूपसे जो सबके भीतर है-वही वहां है ! एक अग्नि जैसे सब भुवनोंमें प्रवेश कर उनके रूपानुसार वैसी ही दीखती है वैसे ही एक आत्मारूप परमात्मा सर्व प्राणियोंके भीतर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनके रूपानुसार होता है, तो भी उनसे अलग, निर्लेप और अविनाशी है, उसके स्थानमें रहना और उसीमें समा जाना ही कल्याणकारी है. जैसे आइने (दर्पण) में विना देखे उसके भीतर रहनेवाला पदार्थ नहीं दीखता, वैसे ही इस सच्चिदानंद-परमात्माको विना पाये निर्भय नहीं हो सकते. इस लिए शीघ्र ही तैयार हो. हम सबको वहीं जाकर रहना कल्याणकर है. ऐसा सुना जाता है कि वहां जानेका रास्ता भी बहुत अच्छा है, वहां जाते समय रास्तेमें खाने पीनेका अच्छा सुभीता है. इस लिए, जिसे आनेकी इच्छा हो वह अब जरा भी विलंब न कर शीघ्र चले. अब यहां पलभर भी रहना शुभकर नहीं है. "

ये अंतिम शब्द कहते ही वह धीर पुरुष तुरंत चबूतरेसे नीचे उतर कर उत्तर दिशाकी ओर चला. यह देख, नगरके एकत्र हुए हजारों और लाखों मनुष्य भी उसके पीछे चले. सारा नगर मानो उजड़सा हो गया. परंतु बहुतसे अत्यंत व्यवसाय करनेवाले, बहुकुटुम्बी, पर-धन-लोभी, अत्यालसी, नीच कर्मोंमें प्रवृत्त, प्रमादी, अज्ञान और महामूढ़; उस धीर तथा बुद्धिमान् पुरुषके वचनों पर विश्वास न करनेवाले * मनुष्य उक्त नगरमें रह भी गये.

नगरके विशाल राजपथ पर चलते हुए इन असंख्य लोगोंकी ओर देख गगनस्थित विमानमें बैठे हुए, राजा वरेप्सु, गुरुजीको प्रणाम कर बोले:— " कृपानाथ ! यह धीर पुरुष तो सबको पैदल ही लिये जाता है. इनमें बहुतसी स्त्रियां और बालक भी हैं. इनके लिए भी कोई सवारी नहीं है. फिर, इनके कंधों और सिर पर एक एक दो दो गठरियोंका भार भी है. इन गठरियोंमें क्या होगा ? " गुरुदेवने कहा:—" इन लोगोंने सोचा कि रास्तेमें आवश्यक होगा, इस लिए इन गठरियोंमें जितना लिया जा सकता था, उतना भोजन बांध लिया है. बहुतोंने तो इतना अधिक बांध लिया है कि उनसे गठरी उठती भी नहीं. †" यह सुन, राजा बोला:—" खानेके

* टीका—नास्तिक, वेद शास्त्र न माननेवाले. † लोगोंकी अपनी अपनी श्रद्धाके अनुसार माना हुआ पाथेय (मार्गमें खानेका पदार्थ) जैसे गणेशके उपासकने गणेशकी सेवारूप श्रद्धा, हनुमानके उपासकने उनकी सेवारूप श्रद्धा और देवीके उपासकने देवीकी सेवारूप श्रद्धा मानली और इस श्रद्धाके सेवनसे विश्वास किया कि, इससे ही मोक्ष होगा और इससे मोक्षके लिए इस तरह जो भिन्न भिन्न देवोंके उपासनारूप श्रद्धा है (विश्वास) है वह पाथेय (राह-खर्च) है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिए तो उस धीर पुरुषके पूर्वकथनानुसार रास्तेमें जितना पदार्थ चाहिये उतना तैयार है, इतना होने पर भी एक तो पैदल चलने और फिर कंधेमें व्यर्थ भार ढोनेकी क्या जरूरत है ?" तब गुरुदेव बोले:—"यह बात सत्य है. परंतु, जिस चित्तको आधा ही विवेक प्राप्त हुआ है और अचल पद प्राप्त नहीं हुआ उसे भोगका त्याग करनेसे बड़ा दुःख होता है और विश्वास भी नहीं रहता. ब्रह्ममार्गमें खाना, पीना, रहना, बैठना और सोना आदि जो चाहिये सब तैयार है. परंतु, जिसे अपनी वस्तुके लिए दृढ़ अभिमान होता है वह दूसरेकी वस्तुपर आधार न रख अपनीमें ही महत्व मानता है और ऐसे अहंभावके व्यर्थ अभिमानके कारण ही उन्हें ये गठरियां उठानी पड़ी हैं ! परन्तु अब ये क्या करते हैं यह तुम सब एकाग्र दृष्टिसे देखो ! देखो, इस धीर पुरुषके आगे बहुतसे बालक, स्त्री और पुरुष आ, झुककर प्रणाम कर रहे हैं ! वे कौन हैं और ऐसा क्यों करते हैं यह हम लोग देखें !"

फिर सब पुण्यात्मा प्राणी एक दृष्टिसे उस ओर देखने लगे ! इतनेमें फिर महाराज वरेण्यु बोल उठे:—"कृपानाथ ! मालूम होता है ये सब तो इस धीर पुरुषके कुटुम्बी हैं और एकाएक नगर छोड़कर चले जानेसे इस महात्माको रोकनेके लिए रास्ते पर बने हुए विशाल भवनसे निकल आये हैं ! देखो, इस झुण्डकी वह स्त्री है ! मुझे मालूम होता है वह इस महात्माकी धर्मपत्नी है ! वह महात्मासे प्रार्थना कर रही है कि कृपानाथ ! स्वामीनाथ ! हमें छोड़ कर न जाइये. दूसरे उसके भाई, बहन, लड़का, लड़की आदि सारे कुटुम्बी भी उससे वही प्रार्थना करते हैं. वे बहुत ही आग्रहपूर्वक कह रहे हैं कि—' हे सज्जन ! हे वीर ! आप क्या कर बैठे हैं ? आप इस तरह पथिक-वेशमें भविष्यतमें आनेवाले किसी भारी भयसे भयभीत होकर भागनेवालेके समान कहां जाते हैं ? आपमें ऐसी कातरता या भीरुता होना क्या संभव है ? हम सबका पालन—पोषण कर सर्वत्र कीर्ति प्राप्त किये हुए आपको हम सब तापप्रद—और त्यागे जाने योग्य कैसे हो गये ? हे धीर ! तुम्हारा पहलेका वह धैर्य कहां जाता रहा ? पहले किसी भी कष्टको न गिननेवाले तुम अब ऐसे किस बड़े कष्टके भयसे इस अव्यवस्थित रूपसे भागते हो, उसे कहो. तुम किसी समय किसीके भी कहनेसे मोह या भ्रममें न पड़ते थे. आज किसके कहनेसे विक्षिप्तके समान भागे जाते हो ?" इतना कहकर वरेण्यु बोले:—"गुरु महाराज ! उनका यह कथन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुनकर, देखो यह धीर महात्मा और उसके साथका सारा जनसमाज स्थिर होगया है. अब देखिये, भला, उस कथनके उत्तरमें वह महात्मा क्या कहता है ? वरेप्सु यह कही रहे थे, इतनेमें वह धीर साहसी पुरुष मेघके समान गंभीर स्वरसे कहने लगा:–"हे मेरे सुहृज्जनो ! जैसे आँखें शब्दको नहीं देख सकतीं; क्योंकि उन दोनोंका गुण एकसा नहीं है, उसी तरह तुम भौतिक दृष्टिवाले आत्माको नहीं देख सकते. इसीसे ऐसा कहते हो ! क्यों कि यहां जगतमें क्या भय है इसे तुम नहीं जानते. परन्तु जैसे विशुद्ध आदर्श—स्वच्छ आइनेमें स्पष्ट स्वरूप दीखता है, उसी तरह जो अधिकारी हैं, उनकी बुद्धि विकसित होती है, और वे विनाशी तथा अविनाशी—जगत् और आत्माको देखते हैं और वे ही इस भयको जानते हैं. तुम जहांसे पूछते हो कि, कहां जाते हो, वहीं (अपने आत्मप्रदेशको बताकर) यह आत्मा जाता है. जब मैं भयसे ही कांप रहा हूँ तब, अब तुम मुझे 'वीर' 'धीर' ऐसी कोई उपमा न दो. क्यों कि जबसे मैंने सब वीरोंको अपने एक ही पंजेमें पकड़ लेनेवाले सर्वोपरि वीरको देखा है, तबसे मेरे वीरत्वका अभिमान चूर्ण हो गया है, और मेरी सारी वृत्तियोंने धीरज भी त्याग दिया है. इस लिए अब मैं धीर वीर न होकर यह जो तुम देख रहे हो तदनुसार एक पथिक हूँ और पीछे आनेवाले–सामने खड़े हुए—शिरपर झूलते हुए–भारी भयसे बचनेके लिए प्रयत्न कर रहा हूँ. इस जगतमें एक श्रेय और एक प्रेय है. इस नगरके पुरुषों–जीवोंको, वह–प्रेय ही नाना प्रकारके अर्थमें फँसाकर हर्ष पैदा करता है. परन्तु, इसमेंसे जो श्रेयकी शरणमें जाता है उसीका भला होता है. परन्तु जो प्रेयको वरता है वह कुछ भी अर्थ प्राप्त नहीं कर सकता. मैं जानता हूँ कि श्रेय क्या है और इसीसे जो कातरता और भीरुता तुम मुझमें बताते हो, वह स्वयं ही आगयी है. तुम जो कहते हो कि अबतक मैंने तुह्मारा पालन पोषण किया वह सत्य नहीं है. क्यों कि तुह्मारा तो क्या, परन्तु स्वयम् अपना भी रक्षण करनेको मैं समर्थ होता तो बस था. वास्तवमें तो मुझसे तुह्मारा या मेरा किसीका भी रक्षण नहीं हो सका. रक्षण उसे कहते हैं जिसके सहारे सदाके भारी भयसे छुटकारा हो. परन्तु, हम सब तो अभी भारी भयमें ही हैं और इसीसे मेरा मन व्यग्र (चिन्तातुर) है. उसे देखकर तुम सोचते हो कि तुम सब मुझे नापसंद (अप्रिय) हो गये हो. जिस भयसे मैं भागता हूँ, उस अनिवार्य भयसे तुम मुझे नहीं छुड़ा सकते; बल्कि उल्टा तुह्मारे संगमें मेरा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उस भयमें देखते देखते शीघ्र पड़ जाना संभव हैं, उस समय हम और तुम दोनों क्या कर सकेंगे ? यदि तुम इन सब लोगोंकी तरह अब मेरा कथन मानकर मेरे जैसे बनो तो किसी अंशमें तुह्मारा कथित भविष्यमें सत्य हो सके, क्यों कि मैं इन सबको जहां ले जाना चाहता हूँ, वह स्थान अवश्य सब भयसे छुड़ानेवाला है और वहां जानेसे तुम्हारी भी अवश्य रक्षा होगी और जहां तुह्मारी रक्षा हो वहीं तुम्हें रखूं तभी मैं तुह्मारा वास्तविक रक्षक होऊं. मैं पहले किसी कष्टको कुछ नहीं समझता था, परन्तु जबसे मैंने इस—महासंकटको प्रत्यक्ष देखा कि जिसके कारण मैं भागा जाता हूँ—तबसे सब तरह विक्षिप्त—चित्त होगया हूँ. शरीरकी यह दशा तो तुम देखते ही हो, पर वैसे ही मनकी भी दशा हो गयी है. तुम जो कहते हो कि किसीके कहनेसे मुझे भ्रम नहीं होता था, यह तुह्मारा कहना असत्य है; क्यों कि, अब तक मैं मोह और भ्रमके ही वशमें था. परन्तु, अब इस मोहभ्रमसे सचेत हो गया हूँ. मेरी भलाई किसमें है यह मैंने प्रत्यक्ष (अपरोक्ष) देखा है और उसके लिए अब मुझे जो करना चाहिये, उसके लिए बिलकुल सावधान–उद्योगी बन गया हूँ: अर्थात् यथार्थ देखनेसे अब मैं (जैसा तुम कहते हो) भ्रममें नहीं हूँ. इस लिए तुम्हे यदि अपने कल्याणकी कामना हो तो देर न कर, शीघ्र मेरे साथ चलो. अब मुझसे यहां नहीं रहा जाता. इस नगरमें एक पल भी मुझे वर्षसा लगता है. इस लिए तुम्हे चलना हो तो ठीक, नहीं तो बस नमस्कार ! जय जय हरि ! अब तो मैं अकेले ही जाऊँगा."

ऐसा उपदेश कर, वह रवाना हुआ, तब समस्त लोगोंका समूह भी उसके पीछे चलने लगा. यह देख, वह स्त्री बिलकुल पागलके समान इन करुण स्वरोंसे बोलती हुई उसके पीछे दौड़ी कि–" हे स्वामीनाथ ! हे प्रभो ! हे महाराज ! तुम ऐसे निर्दय क्यों हुए जाते हो ? इस गरीब दासी पर कृपा करो. कृपा करो !" वह बालक भी रोते कूटते पीछे दौड़ा. दूसरे कुटुम्बी लोग भी पीछे दौड़ने लगे. स्त्री तो अनोखा प्रसंग (अपने स्वामीकी विचित्र स्थिति) देख बिलकुल अधीर होकर बड़ोंकी जरा भी लज्जा न कर, उस धीर पुरुषसे लिपट गयी और उच्च स्वरसे रोती हुई करुणा-युक्त वचनोंसे विनय करने लगी कि:—"हे महाराज ! हे स्थिर–बुद्धिमान् ! बिना किसी विकारवाले तुह्मारे दृढ़ मनको यह क्या सूझा है ? हे रक्षक ! हे प्राण ! तुम अपने अतुल पराक्रम और दयालुतासे अगणित जीवोंको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभय करनेवाले हो, अतः तुम्हें यह क्या अचिन्त्य भ्रम हो गया है ? हे मनस्वी ! (बुद्धिमान् !) आपके समान महान् पुरुषको इस प्रकार हमारा निष्कारण त्याग करना उचित नहीं हैं; इस लिए कृपाकर ऐसा अनुचित काम न करो.

यह देख, वह धीर पुरुष रुक कर मार्गमें ही खड़ा रहा और बोलाः–"हे स्त्री ! यह कैसा मोह है कि तू अपने जाति–स्वभावके वश हो कर अपना और मेरा दोनोंका नाश किया चाहती है ? जन्मरूप तालावमें पड़ी और चित्तरूप कीचड़में फसी हुई मनुष्यरूप मछलीको फँसानेके लिए दुर्वासना डोर और स्त्री उस डोरमें लगा हुआ मांसपिण्ड (मछलीका भक्ष्य) है. उसमें मुग्ध और बँधा हुआ जीव, तरने तारनेके प्रत्यक्ष साधन होते भी उन्हें नहीं देख सकता, परन्तु विषयमें ही–मायामें ही गिरता है और इस तरह विषयोंमें गिरने–ध्यान लगानेसे, उसमें आसक्ति (संग) होती है, आसक्तिसे काम व्यापता, कामसे क्रोध होता और क्रोधसे संपूर्ण मोह उदय होता है, मोहसे स्मृतिविभ्रम होता और स्मृतिभ्रमसे बुद्धि नष्ट होती तथा बुद्धिके नष्ट होते ही विनाश होता है. इस लोकमें ऐसा विनाश करनेवाली अज्ञान स्त्री ही हैं. जिसके स्त्री है उसे भोगकी इच्छा है, स्त्री नहीं उसे भोगकी भूमिका ही (रंगस्थल ही) कहां है ? स्त्रीका त्याग करनेसे जगतका त्याग होता और जगतका त्याग होनेसे ही सुख होता है. सच्चरित्रवती स्त्रीकी आसक्तिसे भी सारे लोग पतित हुए हैं तो विषयासक्त स्त्रीकी आसक्ति (संग)की तो बात ही क्या कही जाय ? सत्कुलवती स्त्रीके साथसे अनेक पुरुष पुरुषार्थ होते भी नष्ट हुए हैं तो मायामें लिपटी हुई स्त्रीका चरित्र कैसा होगा ? युद्धमें शत्रुसे लड़ते समय, मैदानमें चोर मिलनेके समय, बढ़ी हुई (पूर आयी) नदी उतरते समय, घरू व्यवहारके समय और किसी भारी भयमें स्त्री यदि साथ हो तो अपनी रक्षाके लिए उद्यत हुए पुरुषसे ही (अपनी रक्षाकी इच्छासे) लिपट कर उस पुरुषके पुरुषार्थको कमजोर कर देती है जिससे वह बेचारा उपस्थित भयके चंगुलमें जा पड़ता है ! उसी तरह तुझे भी मैं अब वैसा ही करते देखता हूँ. पर, हे स्त्री ! ऐसा करनेसे तू, तेरे और मेरे दोनोंके आत्माका अनिष्ट करेगी; इतना ही नहीं परन्तु, इस सारे मानवसमाजका भी अकल्याण करेगी. तू मुझे छोड़ दे, जहां जा रहा हूँ, वहां जाने दे. तू शत्रुकी इच्छा पूर्ण न कर. तुझे यदि आते हुए भयसे बचना हो तो व्यर्थ बकवाद छोड़ ऐसी ही चल निकल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और अपने आत्माका कल्याण कर. क्यों कि जो आत्मघाती लोग हैं, वे मरनेके पीछे अंधकारसे पूर्ण असूर्य-स्थानमें जाते हैं, जहां किसी तरहका भी प्रकाश नहीं है. परंतु मैं तो प्रकाशपूर्ण देशमें प्रवेश करने जाता हूँ. तुम सब लोग अज्ञानी हो और अज्ञानी, अश्रद्धावान्, संशयात्मा प्राणियोंका विनाश ही है. यह लोक या पर लोक उनका नहीं है. कल्याणमें संशय करनेवाले आत्माको कहीं सुख नहीं, इससे अधिक और क्या कहूँ ? हे मायाविनी ! तेरे साथ रहनेमें घोर नरकरूप अंधेरेमें पड़नेके लिए रंग रागमें विहारके सिवाय दूसरा कोई अर्थ सिद्ध नहीं होता ! परन्तु जब यह विषय बहुकाल पर्यन्त रहनेपर भी अवश्य नष्ट होगा तब प्रथमसे ही मनुष्य उसे साहसी और धीर वीर होकर क्यों नहीं त्यागता ? विषय यदि स्वयं स्वतंत्रतासे जायगा तो मनको अपार कष्ट देता जायगा, परन्तु हम स्वयम् उसे त्यागेंगे तो वह हमें सुखद होगा. जो ज्ञानी है वह जानता है कि, अपना शरीररूप जो विशाल नगर है, वह, एक उपवनकी भांति भोग, मोक्ष और सुखके लिए है, दुःखके लिए नहीं. स्त्रीके संगमें रहना यदि विषयके लिए हो तो वह मेरे नाशका उपाय है. मृग, हाथी, पतंग, मछली और भ्रमर ये पांच एक एक इन्द्रियके विषयसुखमें लुब्ध होनेसे नष्ट होते हैं, तो फिर प्रमादी मनुष्य पांच इन्द्रियोंसे एक साथ पांच विषयोंका सेवन करनेसे क्यों नष्ट न हों ? अब सब छूटो ! चले जाओ ! मायाका आवरण दूर हो ! यह आत्मा स्वतंत्र है, वह पराधीनताका दुःख नहीं भोगेगा."

यह सुन अपने कुटुम्बियों सहित वह स्त्री फिर पूछने लगी:—"स्वामीनाथ ! परन्तु आपके सिर पर ऐसा कौन भारी संकट आ पड़ा है, जिससे इन सुखके स्थानरूप सुहृज्जनोंसे पूर्ण और आपकी स्वयं सत्तामें रहनेवाले जगन्नगरको, किसी अपवित्र स्थानके समान, एका एक त्याग कर चले जाते हो ?" इसके उत्तरमें वह महात्मा पुरुष बोला:—"अरे ! संकट तो ऐसा है कि जिसका किसीसे निवारण न हो सके. यह संकट सिर्फ मेरे सिर पर नहीं; परन्तु तुम्हारे और सारे नगरके सिर पर दांत लगा कर झूल रहा है." इतना कह कर अत्यंत भय पैदा करनेवाला और प्रत्यक्ष देखा हुआ कालपुरुषका सबका भक्षणरूप महाभीषण कर्म उसने आदिसे अंततक कह सुनाया और फिर बताया कि:—"मैं भी उस कालपुरुषके मुँहमें जा पड़ा था तो भी पूर्वके किसी शुभ कर्मसे ही मुक्त हुआ हूँ और वहींसे मुझे इस निर्भय पथके अवलंबन करनेकी प्रेरणा हुई है. उस जगद्रक्षकने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुझे सत्य सत्य वचन दिया है कि, 'अच्युत-पथ' (जिसे परब्रह्म-मार्ग भी कहते हैं) जैसे पवित्र मार्गके आश्रय करनेवालोंको मेरा कोई भय नहीं रहता, क्यों कि यह मार्ग कभी भी नाश न होनेवाले परमसुखरूप अच्युत-पुरका है. उस पुरमें जो जा बसता है, वह विनाशी नहीं होता. इस लिए हे कुटुम्बी जनो! ऐ इस लोकमें मोहप्राप्त क्षुद्र-नाश होनेवाले जीवो! महापुण्यरूप धन देकर यह शरीररूप नाव खरीद की है, वह जब तक नहीं टूटती, तब तक उसके द्वारा भवरूप दुःख-दरिया पार करलो."

इस तरह महात्माके मुँहसे कालपुरुषका भयंकर समाचार सुन उसके सब सुहृज्जन भयभीत हो गये. उनमेंसे कई तो जैसे खड़े थे वैसे ही उसके साथ जानेको तैयार होगये और कई रास्तेमें खानेका आवश्यक सामान आदि लेनेकी दौड़ धूप करने लगे. परन्तु अनेक माया, ममता और क्षणभंगुर भोगमें लिप्त हुए प्रमादी कहने लगे कि:—"हाय मेरी स्त्री! हाय मेरा धन! हाय मेरा पुत्र! हाय मेरा घर! अरे! अकस्मात् इन सबको इस तरह त्याग कर कैसे निकला जा सके? जो होना होगा सो होगा, परन्तु इस तरह एकाएक नहीं जायँगे. यह काल और त्रास क्या है? यह सब भ्रम-मात्र है!!"

इस तरह अनेक जीव कालकी बलि होने और अनेक योनियोंके भारी दुःख भोगनेको वहीं पड़े रहे. क्यों कि वे आत्मघाती थे. नीच जन्म ले अविकल (पूर्ण) इन्द्रियोंको प्राप्त कर, जो आत्महित नहीं जानते, वे आत्मघाती हैं. ऐसे आत्मघाती लोग, शरीरके रहते तक ज्ञान प्राप्त करनेको अशक्त हैं और इससे अनंतकालतक शरीर धारण कर दुःख ही भोगा करते हैं. ऐसे ही अनेक लोग उस जगन्नगरमें पड़े रहे, परंतु शेष सब पथिकों सहित वह धीर पुरुष उनके आगे आगे रास्ता बतानेवालेके समान श्रीअच्युतपुरपतिके नामकी जयध्वनि करके वहांसे चलने लगा. यह महायात्रा देखनेकी इच्छासे दूसरे अगणित लोगोंकी भीड़ वहां एकत्र थी. वे लोग भी वहांसे पीछे न फिर कर, उनके साथ ही चले, इस इच्छासे कि देखो तो सही, ये कहां जाते और क्या करते हैं! इस पुरकी यात्रा ऐसी गंभीर और भव्य दीखती थी कि उसे देखकर उसका मतलब जाने विना भी, अनेक सरल स्वभावके पुरुष द्रवित होकर उसके साथ प्रयाण करने लगे. रास्तेमें बारबार अच्युत प्रभुकी जयकी गर्जनाएं होती जाती हैं, उन्हींके साथ वह महात्मा, पथिकोंसे कह रहा है कि:—"चलो, शीघ्र चलो," इस तरह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनेक गली, कूचे, सड़कें और राजपथ पार करते जाते हैं. ज्यों ज्यों जन-समूह आगे चलता जाता है त्यों त्यों आसपासके मुहल्लोंसे असंख्य लोग सत्संग करने या कौतुक देखनेके लिए उसमें मिलते जाते हैं.

इस तरह संध्या होने लगी. विमानस्थित लोगोंके संध्यावंदनका समय हुआ. वे गुरुदेवकी ओर देखने लगे. उनकी इच्छा जान कर गुरु महाराजने कहा:—"पवित्र जनो ! संध्यासमय होने लगा है, इस लिए तुम सब एकाग्रचित्तसे अपना उपासना—कर्म करके फिर शीघ्र तैयार हो जाओ. क्यों कि ये अच्युतपथमें जानेवाले पथिक क्या करते हैं यह तो अच्छी तरहसे अभी ही देखना है. देखो, संध्या होने लगी इस लिए अँधेरा होनेके भयसे वे अब शीघ्र जा रहे हैं. व्यावहारिक दृष्टिसे देखते यह नियम बिलकुल विपरीत है ! किसी दूर स्थानसे आनेवाला पथिक गांव पास दीखता हो तो अँधेरा होनेके भयसे गांवमें जल्द पहुँच जानेके लिए शीघ्र दौड़ता है, परन्तु ये पथिक शहरसे निकल जानेके लिए शीघ्रतासे दौड़ रहे हैं. यही इस अच्युतपथकी विलक्षणता है !" फिर पुण्यजन तुरंत खड़े हुए और गुरुदेवके नामकी जयध्वनि कर संध्योपासनके लिए चले गये.

पुरद्वार-दर्शन.

नियमके अनुसार सायंकालकी संध्या, हरिकीर्तन, गुरुवंदन इत्यादि नित्यकर्मसे अवकाश पा, सब समाज इच्छानुसार अमृत पीकर, फिर पथिकोंकी यात्रा और नगरके अवलोकनके लिए तैयार हुआ. जो विमान अब तक आकाशमें स्थिर था वह इन पथिकोंके ऊपर आकाशमें आ खड़ा हुआ. वरेण्यु महाराज खड़े हुए और गुरुजीको प्रणाम कर कहने लगे; "अहो ! कृपानाथ ! ये पथिक तो इतनी देरमें बहुत दूर आगये. ऐसे अँधेरेमें भी अभी वे दौड़े ही जाते हैं. उनमेंसे अनेक तो थकसे गये हैं तो भी अँधेरे, पीछेके भय (कालपुरुषके सपाटेमें आजाने और मायामें पड़ने) और बराबर उस सत्साधक (उस धीर महात्मा—अब हम उसे सत्साधक कहेंगे)के ज्ञान कराने और ऐसे अनेक कारणोंसे, वे ज्यों त्यों कर भागे जाते हैं. अब यह देखना है कि इस तरह ये कहां तक जायेंगे." यह सुन, वामदेवजी बोले:—"राजा, हमें तो सिर्फ एक दृष्टिसे देखते ही रहना है, परन्तु मुझे मालूम होता है कि अब वे एकाध स्थानके पास जा पहुँचना चाहते हैं. देखो, वह परार्थकुशल सत्साधक उनसे कुछ कहनेको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खड़ा है. वह क्या कहता है, उसे सुनो." सब शान्त हो उसकी ओर कान लगाकर सुनने लगे.

वह मुमुक्षु सत्साधक बोला:—" हे पुण्यवान् मनुष्यो ! (क्यों कि तुम महाभयसे मुक्त होनेवाले मार्गमें आरूढ़ हो, इस लिए पुण्यवान ही हो) हे मुमुक्षुओ ! हे अच्युतपुर प्राप्त करनेकी कामनावाले प्राणियो ! देखो, यह अँधेरा हो गया. हम लोग बहुत समयसे चले आते हैं, इससे मैं सोचता हूँ तुम सब थक गये होगे. परंतु घबराना नहीं, अब हम लोग एक निर्भय स्थानके समीप आ पहुँचे हैं. वहां हमें बहुत अच्छा और सुन्दर सुभीतावाला स्थान ठहरनेको मिलेगा. देखो ! हम लोगोंकी दृष्टिके सामने बड़ा दरवाजा है, वह क्या तुम्हें दीखता है ?" तब सब लोग बोले:— " नहीं हमें तो अँधेरेमें कुछ भी नहीं दीखता. सिर्फ एक दियेके समान कुछ प्रकाश ही दीखता है. " सत्साधक बोला.–" वही उस दरवाजेकी निशानी है. अब वह यहांसे अधिक दूर नहीं है. इससे थोड़े समयके लिए धैर्य न छोड़ तुम सब धीरे धीरे मेरे पीछे चले आओ. यह दरवाजा इस दुःखदायी नगरका महाद्वार है. इसे पार किया कि उस ओर इस विस्तीर्ण नगरीकी सुशोभित भूमि मिलेगी. वहां हमें फिर उस क्रूर कालका उतना डर नहीं रहेगा जितना यहां है." यह सुन सब लोग, ज्यों त्यों कर शीघ्रतासे उसके पीछे चलने लगे. थक जानेपर फिर थोड़ा भी चलना कठिन हो जाता है इससे ज्यों ज्यों वे चलते जाते त्यों त्यों मानो रास्ता और बढ़ता ही जाता है. कई निर्बल शरीरवाले* तो थकावटसे हैरान और धैर्यच्युत हो गये. वे अब आगे चलनेका विचार छोड़ने लगे ! बहुतसे लोग जो विना पूछे, देखा देखी ही सबके साथ चल निकले थे, ऐसे अँधेरे और थकावटका अनुभव कर, वहींसे लौटनेका निश्चय करने लगे. दूसरे सरल, शुद्ध और दृढ़ मनवाले सत्साधकके वचनों पर भरोसा रख परस्पर कहने लगे कि अपना कल्याण चलनेमें ही है. इतनेमें वह सत्साधक महात्मा फिर खड़ा हुआ और लोगोंसे हाथ फैला कर कहने लगा:–" अरे सौभाग्यशाली जनो ! अब तुम सब सुखी हो, और सदाके लिए हम सबको अभय देनेवाले अच्युत प्रभुकी एक वार जयध्वनि करो. " लोगोंने तुरंत ही एक साथ अच्युत प्रभुके नामकी भारी जयध्वनि की. इसके बाद वह फिर बोला:—

* न्यून श्रद्धावाले.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"इस तरह हम लोगोंके आनन्दित होनेका क्या कारण है, यह तुम सबने तो समझा ही होगा. जैसे चित् (स्वयं प्रकाशित ब्रह्म) अपने भान (ज्ञान) के निर्वाहके लिए समर्थ है, भेद जैसे भेदके निर्वाहके लिए समर्थ है, उसी तरह अपने पराये निर्वाहके लिए समर्थ, असंभवको भी संभव करनेवाली कल्पना करनेमें कुशल-इस माया-जो विभ्रमसे मोह पैदा करती है-के मोहसे हम लोग अब मुक्त हुए हैं. यह महामाया ज्ञानीके भी चित्तको बलात्कार (जबर्दस्ती) खींचकर महामोहमें डाल देती है, तो फिर हम अज्ञ जीव किस गणनामें हैं? देखो! इस मायासे छूट कर बड़े बड़े कष्टोंके अंतमें अब हम इस पवित्र और स्वतंत्र स्थानमें आ पहुँचे हैं. यही इस पुरका द्वार है. यही इस दुःखरूप जगन्नगरसे मुक्त होनेका सच्चा द्वार है. यही परम सुखरूप अच्युतपुरको जानेवाले मार्गका मुख है! इससे इसके नाम भी अनेक हैं." यह सुन बहुतसे उस पुरके द्वारको-जो स्वयम् अति सुंदर प्रकाशमान होते भी मध्यमें प्रकट हुए ज्ञानदीपसे सुप्रकाशित था-देखकर बोल उठे:-"हां, हां, महाराज! इसके ऊपर जो बड़े बड़े सुवर्णाक्षरोंमें लिखा है वह उसका नाम ही होगा, क्यों भला! अनेक रत्नोंसे जड़े हुए इन स्वर्णाक्षरोंमें तो और भी बहुत कुछ लिखा है. उस पर दीपकोंका प्रकाश पड़ने और उन रत्नोंके कारण, ऐसा मालूम होता है मानो वे रत्न भी अनेक दीपक हों, इस तरह उनका भी प्रकाश जगमगा रहा है." इस तरह बातें करते हुए सब पवित्रात्मा उस महाद्वारके सामने आकर खड़े हुए और एक ही साथ उन स्वर्णाक्षरोंको पढ़ने लगे. उस दरवाजेके सबसे ऊपरी भागमें बहुत बड़े अक्षरोंमें लिखा था:—

॥ अच्युतपथद्वारमिदम् ॥

अच्युतस्य पथद्वारं जगन्नगरवासिनाम्।
विनाशभयमोक्षाय निर्मितं ब्रह्मणा स्वयम् ॥
स्वतन्त्रं सुखदं श्रेष्ठं रम्यं सत्साधनाकरम्।
जन्मानेकार्जितं पुण्य-फलरूपं सुदुर्लभम् ॥
तत्प्राप्य तु वहेद्वृत्तिं धार्मिकीं कर्म चेदृशम्।
लभतेऽच्युतमार्गं तु भगवत्कृपया नरः ॥
लब्ध्वापि तत्कचिन्मूढा अन्यथावृत्तिमाश्रिताः।
न सत्पथं न सौख्यं ते न पुनर्द्वारदर्शनम् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(भावार्थ—दोहा)

अच्युतपथका द्वार यह, जगन्नगर–जनकाज ।
विनाशभयसे छूटकर, पावनको सुखसाज ॥ १ ॥
ब्रह्मदेवने ही रचा, धर कर हिय अति हेत ।
सुखद स्वतंत्र सुरम्य वर,* साधन–सर्व-निकेत ॥ २ ॥
जन्म–जन्म-कृत पुण्यफल, पै दुर्लभ यह गेह ।
करहु प्राप्त शुभ कर्म कर, धरहु धर्मपर नेह ॥ ३ ॥
ईशकृपासे ही अहो, अच्युतमार्ग दिखाय ।
या मारगसे जायकर, अच्युतपुर पहुँचाय ॥ ४ ॥
मूरख जन आवे यहां, मन खींचे तहँ जाय ।
मनानुगामी होय वह, खोवे सर्व सहाय ॥ ५ ॥
अच्युतपथसुख ना मिले, पुनरागम यहँ नाहिँ ।
जगन्नगरमें भटकता, परै कालमुखमाहिँ ॥ ६ ॥

वे पवित्रात्मा इस तरह द्वारके लेखको पढ़ ही रहे थे इतनेमें सत्साधक बोलाः—"हे भाविक पथिको ! यह महाद्वार ऐसी महत्तावाला है, और सारे नगरके लिए सिर्फ एकही है† दूसरे छोटे बड़े अनेक दरवाजे हैं सही, परंतु वे अधम, परम दुःखरूप, अँधेरेमें पड़े हुए तथा ऐसे हैं जिनसे हो कर निकलना कठिन है. इस लिए जगन्नगरके शिर पर पड़े हुए अपार दुःखोंसे हैरान और कालपुरुषके भयसे भीत होकर अज्ञानवश लोग इधर उधर अनेक दरवाजोंमें भटकते फिरते हैं; परंतु जब किसी जगहसे भीतर नहीं जा सकते तब बारबार थक कर जोरसे प्रार्थना करते हैं कि:—"हे प्रभो ! कृपा कर इससे एकबार मुक्त करो ! यदि आप एकबार अवकाश दें तो यहांसे तुरंत छूट कर मैं आपके मार्गमें चला जाऊं. इस तरह अंतःकरणसे अनेकबार की हुई प्रार्थनासे दयालु प्रभु किसी समय ऐसा संयोग ला देते हैं जिससे इस पवित्र महाद्वारके दर्शन हो जाते हैं. इस प्रकार महाकष्टके अंतमें इसके दर्शन होने पर भी, जो जीव पूर्ण सावधानीसे तुरंत उससे हो कर नहीं निकल जाता वह फिर भुलावेमें पड़ता है और इस तरह अनाकानी करते द्वार बंद

* श्रेष्ठ. † यह महाद्वार मानुषी देहमें होनेवाला प्रथम ज्ञान है. वह मोक्षका कारणरूप परब्रह्मका निष्काम भक्तिज्ञान है. पुरद्वारका प्रथम दरवाजा, प्रारंभिक ज्ञान-अर्थात् हरिका भजन करना और उससे मुक्त होना अर्थात् संसारके रगड़ोंसे छूटना है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुआ कि बस ! फिर सदाके लिए उसके भाग्यमें दरवाजे दरवाजे भटकना रह जाता है. परंतु ऐसा होनेसे क्या ईश्वर भी उसकी प्रार्थना नहीं सुनता ? नहीं, वह परम दीनदयालु है, इस लिए अनेक दुःखोंके अंतमें इसे दुःखी देख इस पर दयादृष्टि कर फिर भी किसी समय ऐसी व्यवस्था कर देता है. ऐसा होने पर भी यदि वह अविद्याश्रित जीव फिर भूलता है तो उसकी बलि ही है. हे सौभाग्यशालियो ! ऐसे अनेक कष्टोंके अंतमें, यहां तक आनेकी यह सारी व्यवस्था हमें भी उस प्रभुकी दयासे ही प्राप्त हुई है. इस लिए अब हमें विलंब और आलस्य क्यों करना चाहिये ? मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम सब विना विश्राम, बहुत समयसे धूप और अँधेरेमें आ रहे हो और इससे बिलकुल थक गये हो, परंतु अब थोड़े समयके लिए घबराना ठीक नहीं. इस लिए सब एकवार ज्यों त्यों कर खड़े हो और मैं जो प्रार्थना करूं उसे अच्छी तरह ध्यानमें रख कर मेरे पीछे पीछे आओ, तुम सब शरीरकी रक्षा करना चाहते हो, परंतु वैसा करके यदि तुम अपने आत्माके कल्याणकी कामना करोगे तो वह लकड़ीके धोखे मगरमच्छपर बैठकर नदी पार करनेके समान होगा. इस लिए अब शरीरकी माया छोड़ो और स्वयं ही आत्मबलको देख कर चलो. यह दरवाजा जितना सुन्दर है उतना ही इसका मुँह चौड़ा है. इसमें अनेक भूलभुलैयां और आड़े सीधे दरवाजे तथा खिड़कियां हैं; इसी तरह सोने, बैठने और रंग-राग करनेके लिए इसमें अनेक सुभीते और सब सुखके साधन भी हैं. इसमें प्रविष्ट होनेपर जिस प्रकृतिका मनुष्य जैसा सुभीता चाहे वैसा सब अनायास मिल सकता है. परंतु उनमेंसे हमें किसी भी वस्तुका उपभोग करना नहीं है. हम थके हैं; भूखे हैं, रात भी अधिक गयी है, परंतु इससे यदि कुछ देर भी विश्राम करनेको बैठेंगे तो शीघ्र उठनेकी इच्छा न होगी. इतनेमें यहिं द्वार बंद हो जाय* तो फिर सभी खो बैठोगे —सारा प्रयत्न पानीमें मिल जायगा. क्योंकि उस कृतान्तकाल पुरुषकी हांक यहां तक सुन पड़ती है और उसके लम्बे हाथके धक्केसे पलभरमें दरवाजेके किवाड़ धड़ाधड़ (अकस्मात् मृत्युसे) बंद हो जाते हैं; इससे उसका भक्ष्य भी हो जायँगे. ऐसा आराम करनेमें दरवाजे बंद हो जायँ तो हम लोग, उस

* ज्ञानभक्तिसे तरकर पार जानेके पूर्व ही मृत्यु हो और फिर जीव, वासनामें लिपटे तो फिर तरने--मुक्त होनेका उपाय हाथमें नहीं है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पार नहीं जा सकेंगे और इस प्रकार एकवार हाथमें आया हुआ अवसर चूक जानेसे फिर न जाने कब दांव आवे और तब यही फल मिलेगा कि हम लोग अचिन्त्य विडम्बनामें जा पड़ेंगे. इस लिए मैं फिर भी कहता हूँ कि, सज्जनो ! तुम खूब सावधान रहना, चाहे जैसे खाने, पीने, सोने, बैठने, पहरने, ओढ़ने, देखने, सुनने, लेने, खेलने, खाने, स्वीकार करने, हँसने, बोलने और आनन्दित होने आदि अनेक प्रकारके सुख, अनायास चाहे जितने मिलें तथापि तुम उनमें लुब्ध न होना. यदि लुब्ध हुए तो पछताना पड़ेगा और हमारा साथ भी छूट जायगा. क्यों कि कर्मसे प्राणी बंधनमें पड़ता है और यह कर्म चित्तकी शुद्धिके लिए है, वस्तुप्राप्तिके लिए नहीं. हमें बंधनमें पड़ना नहीं है, परन्तु वस्तु प्राप्त करना है. भोगेच्छा मात्र बंधन है और उसका त्याग मोक्ष है. इस लिए इस भोगका त्याग करना श्रेयेच्छु प्राणीका आवश्यक कर्तव्य है. चित्त ही इस अर्थमात्रका कारण है. चित्तसे मानने पर ही यह त्रिगुणात्मक जगत् है, किन्तु चित्तके क्षीण होनेसे जगत् क्षीण होता है, इस लिए प्रयत्नद्वारा चित्तको स्वाधीन करना चाहिए. उसके लिए भोग और देहकी वासना त्याग देनी चाहिए, फिर भाव और अभाव दोनोंको त्याग निर्विकल्प हो कर सुखी होना चाहिए. लोकप्रेम, शास्त्रप्रेम या देहप्रेमसे जीवको यथार्थ ज्ञान (कल्याण) नहीं होता, इस लिए इन सबको त्याग देना चाहिए. कोई कहेगा कि मैं समर्थ हूँ, परन्तु वहां तो मैं और तू है ही नहीं, और न भाई और मित्र, माता और पिता ही हैं. यह तो सिर्फ उपाधिभेद है. इस सृष्टिमें जैसे मिट्टी, लोहा आदि पदार्थ रूपान्तर-भेदके कारण भिन्न भिन्न कहे जाते हैं, परन्तु वे सब वाणीकल्पित भेद है, उसमें वास्तविक भेद कुछ भी नहीं है; उसी प्रकार ये सब प्राणी भी कुछ नहीं है. ये तुम्हारे समान ही है इस लिए इस स्थानमें चित्तको ही स्थिर करना है. बारबार ध्यानपूर्वक इसपर प्रयत्न करने पर भी चित्तज्ञ-चित्तको जाननेवाला, शुद्धता-योग-युक्तात्मता विना मनको वश नहीं कर सकता. ऐसी दशामें पलभरमें ही चित्तको पराजित करना तुम्हारे लिए कठिन है. यह चित्त तो अत्यंत कष्टसे अधीन होता है. जैसे दुष्ट हाथी अंकुश विना अधीन नहीं होता वैसे ही चित्त भी तत्त्वज्ञानरूप अंकुश विना अधीन नहीं हो सकता. इस चित्तको वश करनेके साधनोंमें, अध्यात्मविद्याज्ञान, साधुसंग, वासनाका त्याग, प्राणगतिका निरोध (प्राणायाम) आदि महान् युक्तियां करना आवश्यक हैं, तो भी जो हठ या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ममतासे अन्य प्रकारसे मनको नियमित रखनेका प्रयास करते हैं,वे दीपक-को औंधाकर, अंजन लगा अंधकारको दूर करनेकी इच्छावाले अविद्यायुक्त अज्ञ प्राणी हैं. इतना तो असंदिग्ध ही समझना चाहिये कि जिसकी भोग-लिप्सा दिनोंदिन क्षीण होती है उसी सुन्दर मतिवालेके विचार सफल होते और उसीका कल्याण होता है. अब तुम सब लोग शुद्ध और दृढ–चित्त होकर धड़ाकेसे मेरे पीछे ही पीछे चले आओ. थोड़ी देरका काम है. घड़ी दो घड़ीमें तो हम लोग इस बड़े विस्तारवाले महाद्वारको लांघकर बाहर ही जा रहेंगे. चलो, तैयार हो जाओ. कृपासागर अच्युत प्रभु हमें इन सारी आपत्तियोंसे मुक्त करेंगे." ऐसा कह, तुरंत अच्युत प्रभुके नामकी जय-ध्वनि करा कर उस महात्मा पुरुषने सारे संघ सहित पुरद्वारमें प्रवेश किया.

ऐसा होते ही, अब तक ये सारे कृत्य एकाग्रतासे देखनेवाले वरेप्सु महा-राज और दूसरे विमानस्थ लोग, गुरु वामदेवजीसे कहने लगे:–"हे दयालु ! अब क्या करें ? अब वे भीतर क्या कर रहे हैं यह हम लोग कैसे देख सकेंगे ?" वामदेवजीने कहा:–"यह बात मेरे ध्यानमें है इस लिए चलो हम लोग जरा नीचे उतरें और द्वारके समीप जाकर खड़े रहें." सबको आश्चर्यमें डालते हुए एकाएक विमान इस तरह नीचे उतरा जिसका वर्णन नहीं हो सकता. वह आकाशमें उस स्थान पर स्थिर हुआ जहांसे उस महाद्वारके भीतरका सब कृत्य अच्छी तरह देख पड़े. यह अद्भुत विमान दिव्य होनेसे प्राकृत प्राणियोंकी नजरमें न आता था, इस लिए वह इतना नीचे आया तो भी उसे जमीन परसे कोई नहीं देख सका. फिर सब पुण्यात्मा जन एकाग्र मनसे द्वारकी ओर दृष्टि कर शान्त हो कर बैठे.

द्वारांतःप्रवेश (दरवाजेके भीतर प्रवेश).

महात्मा सत्साधक जगन्नगर शीघ्रतासे पार कर जब उस महाद्वारसे हो कर चलने लगा तो उसने आस पासके सुखसाधनों या वैभव विलास अथवा उसकी अत्यंत अद्भुत रचना पर जरा भी ध्यान नहीं दिया. उसने पीछे फिर कर यह भी नहीं देखा कि उसके वे अनुधावक उसी शीघ्रतासे आ रहे हैं या नहीं. अधिकारी पुरुष पदार्थ–प्राणीमात्रको साक्षात् अपने आत्माके समान अनुभव करते हैं और उस अवस्थामें उन्हें न भ्रान्ति उत्पन्न होती, न चित्तकी व्याकुलता ही होती है. क्योंकि शोकमें कल-हादिका कारण जो भेदबुद्धि है, वह उनमें दूर हो जाती है–वे उससे मुक्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो जाते हैं. जब प्रत्यक्ष अनुभव करनेवालेको सब आत्मरूप दीखते हैं तब ऐसी अभेद-दृष्टिवालेको क्या शोक और क्या मोह हो? सत्साधक जगन्नगरके परम कष्ट और कालपुरुषके नित्यके भय-त्राससे सदाके लिए मुक्त होनेका अमूल्य प्रसंग जानता था और यह भी जानता था कि पल भर भी जरासी भी अविद्यामें फँस जानेसे जो प्रसंग निकल जायगा वह प्राप्त होना दुर्लभ है. ऐसे दुर्लभ प्रसंगको सहज ही न खो कर जैसे बने उस द्वारके बाहर निकल जायँ यह सोच वह अपने मनको मजबूत कर दृढ़ निष्ठासे चला जाता था[1] तो भी वह बारबार भोले भाले अनुयायियोंको सूचित करता था कि:-"हे जिज्ञासुओ! चलो, शीघ्र चलो, थोड़ी देर तक टेढ़ा मेढ़ा कुछ न देख, सामने नजर रख कर चलो. कानोंमें दो हाथ दाब और मनको थाम कर दृढतापूर्वक मेरे पीछे चले आओ. किसीमें लुभाना नहीं, किसीसे लिपटना नहीं और थोड़ेके लिए थकावटसे घबराना नहीं. परिश्रम सहन न हो सकता हो तो अंतमें हम लोगोंकी रक्षा करनेवाले समर्थ अच्युत प्रभु-परब्रह्मका ही मुखसे नामस्मरण करते आओ. एक-बार द्वारको लांघ कर हम कुशल-पूर्वक बाहर निकल जायँ तो मानो जग जीत लिया, कृतार्थ हुए और सब काम कर लिये. जो जितेन्द्रिय और वैराग्यवाले हैं, वे ही भीतर बाहरके विषयोंका त्याग कर सकते हैं और यह त्याग तभी होता है जब मोक्षकी इच्छा होती है. यदि तुम्हें मोक्षकी इच्छा हो तो हे विचक्षणो! याद रखो कि इस जीवको मुक्तिरूप बड़े महल पर चढ़नेके लिए वैराग्य तथा बोध पंख हैं और जैसे पक्षी दो पंखों विना नहीं उड़ सकता, वैसेही तुम भी इन दोके विना नहीं चढ़ सकोगे. इस लिए वैराग्यको दृढ़ कर रखो. इस द्वारमें रहनेवाले विषयादि बाह्य पदार्थोंका अनुसंधान (खोज) एकसे एक अधिक दुष्ट वासनारूप फल देनेवाला है, इस लिए विवेकसे समझ, बाह्य पदार्थों-भोगोंका त्याग कर अपने स्वरूपकी खोज करनेमें ही सफलता है. बाह्य पदार्थोंकी ओर जाती हुई दृष्टिको रोकनेसे, मन पवित्र होता है. मन पवित्र होनेसे अच्युत-परमात्माका योग्य ज्ञान होता है. योग्य ज्ञान होनेसे बंधनरूप माया छूटती है. मायासे मुक्त होने पर अपने स्वरूपका बोध होता है और स्वरूपानुसं-

---

१ विज्ञानभक्ति पूर्ण करनेमें प्रारंभकी जो दृढ श्रद्धा है उससे विचलित होनेका जो भय वही यह है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धानसे तर जाते हैं. इस लिए हे भाग्यवान् पथिको ! अपने बहुकालीन सारे परिश्रमका फल यही है कि एक वार हम लोग कुशलतापूर्वक इस पुर-द्वारसे होकर बाहर निकल जायँ. "

इस प्रकार कहता हुआ वह महात्मा सपाटेसे चला, तब अनुधावक पीछे चलनेवाले) भी वैसी ही शीघ्रतासे चलने लगे. जैसे उनकी संख्या अत्यधिक थी वैसे ही उस द्वारका विस्तार भी कुछ कम न था. वह इतना विशाल था कि उसमें ऐसे ऐसे अनेक समूह समा सकते थे. उससे हो कर निकलते समय दाहिने बांयें दोनों ओर अनेक प्रकारके सुन्दर आसन रखे थे. कहीं सुकोमल मखमलकी गद्दी तकिया बिछे हुए थे. कहीं अतलस और मशरूकी गद्दीवाले सुन्दर पलँग पड़े थे. कहीं कोच और कहीं हिंडोले, कहीं कुर्सी और सिंहासन आदि पड़े हुए थे. इन बिछे हुए किन्ही किन्ही आसनोंके पास निर्मल जल, दूध, ईखका रस आदि पेय पदार्थ, कहीं मेवा मिठाई आदि भक्ष्य पदार्थ और कहीं इत्र, अर्गजा, चंदन, पुष्पादि सुगंधित पदार्थ तैयार थे, और ये सब इस प्रकार सजाकर रखे गये थे कि विना श्रम उन आसनों पर बैठनेवालोंके उपयोगमें आ सकें. रातका समय था तो भी इस विशाल और अद्भुत आश्रयस्थानके समान पुरद्वारमें, जगह जगह पर ऐसी दिव्य मणियां जड़ी थीं, मानो वहां पर असंख्य दीपक जल रहे हों और ऐसी दीखती थीं, मानो उस समय रातका दिन हो गया हो. ऐसी आकर्षक रचनाके मध्य होकर जाना था. सब पथिक दिनभरकी दौड़ा–दौड़से थक कर बिलकुल लोट–पोट हो गये थे, भूख और प्यास भी कुछ कम न लगी थी, रात अधिक बीतनेसे कइयोंकी आँखोंमें निद्रा देवी भी चढ़ बैठी थी और लगातार जँभाई, आ रहीं थीं. इस प्रकार नींद, भूख और दुःख, तीनोंके भारसे दबे हुए पथिकोंमेंसे विरले ही आगे जाना चाहते थे. सिर्फ अपने नायक सत्साधककी बारबारकी सूचना और साह-सके कारण ही सब पीछे लगे जा रहे थे. परन्तु इस तरह कहांतक चलें ? यह महापुरुष चाहे जैसी शीघ्रता करते और चाहे जैसी चितावनी देते चला जाता था, तो भी क्या हुआ ? इस संघमें ऐसा विरला ही था जो ऐसी स्थिर मनोवृ-त्तिवाला हो कि आसपास निगाह ही न डाले. और, उस सुखस्थानमें नजर डालते ही मन सहज ही ललक जाता था. सारा समाज जोर भर जा रहा था, उसमेंसे अनेक लोग आसपास देख कर ललचाये और मार्गमें ही पड़े हुए आसनों पर ' हास !' कह कर झटसे बैठने लगे. बैठनेवालोंने सोचा अभी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधिकांश समाजके लोग पीछे हैं, उनके पहुँचते तक जरा विश्राम लेनेको बैठेंगे तो क्या होगा ? अभी उठ कर उनके साथ हो लेंगे. ऐसा सोच कर कोई सुकोमल गद्दी तो कोई शय्या, कोई पाटे, कोई चौकी, कोई पलंग तो कोई कालीन पर बैठ इधर उधर लोटने लगे. कोई जल पीने लगे और कोई तो मेवा मिठाई भी उड़ाने लगे. ऐसा देख संघके अनेक लोगोंने उन्हें मना किया कि " भाइयो ! तुम यह क्या करते हो ? ये पदार्थ हमारे या हमारे बापके नहीं है, इन्हें लेनेको क्यों तैयार होते हो ? फिर, हां नहीं करते अभी यह संघ निकल जायगा और तुम यहीं रह जावोगे. वह महापुरुष बारंबार क्या कहता जाता है और अपने लिए कितने प्रयत्न करता हैं, उन्हें क्या तुम नहीं समझते ? जहरके समान विषयोंकी आशाको काट डालो, क्यों कि यह आशा ही मृत्युका पाशरूप है. ! अरे तुम जानते नहीं कि, दृश्य पदार्थ कल्पित हैं ऐसा वस्तुतत्त्वज्ञ कहते हैं और इसीसे न उनमें अच्युतका अंश है और न अच्युतमें उनका अंश है. ऐसा होने पर भी इन दृश्य पदार्थोंमें मोह क्यों करते हो ? " ये वाक्य पूर्ण होते ही उनके उत्तरमें रास्तेकी दोनों ओरसे बहुत मिष्ट और मानपूर्ण शब्द सुनाई दिये कि:-"हे सज्जनो ! हे सत्पथगामी जनो ! डरना नहीं और हमारे स्वागतका अनादर न करना ! यह सारी व्यवस्था तुह्मारे समान आने जाने वाले पथिकोंके लिए ही की गयी है. कुछ हानि पहुँचानेके लिए नहीं है. इस लिए जब तक चाहो इसको उपयोगमें लाओ, पीछे आरामसे अपने अपने रास्ते चले जाना; यहां कोई रोकनेवाला नहीं. तब इन पदार्थोंपर तुह्मारा ही स्वत्व है, मौज करो, बापरो, उड़ाओ ! भोगो. " यह सुन कर तो सबको आश्चर्य हुआ ! इससे वे दोनों ओर बारीकीसे देखने लगे. जहां तक नजर पहुँच सकती थी, वहां तक इस विस्तृत प्रदेशमें अनेक विलासभवनोंके समान रचना बनी थी. जगह जगह इसमें पथिकोंके लिए अनेक निवासस्थान बने थे और उनमें काम काज करनेवाले स्त्री पुरुष पथिकोंसे इसी तरह आदरपूर्वक विनय किया करते थे. पथिक उनकी ओर देखने लगे, तब अनेक हाव भावसे वे मार्ग पर आकर आग्रह करने और कहने लगे कि:--"हे भाग्यवंतो ! तुम किसका भय करते हो ? इसमें क्या कोई चीज तुम्हें दुःख देनेवाली है ? भूख, प्यास, परिश्रम, खेद आदि सबको दूर करनेके बाद अनेक आनन्द देनेवाले पदार्थ यहां तैयार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं ? हम स्त्री-पुरुष-युक्त सारे संसृतिदायी वर्ग अपने नियंता दैवदायीकी आज्ञासे, तुम्हारी सेवाके लिए नियत हुए दैव-प्रेरी[2] हैं. इस महाद्वारका जो द्वारपाल है वह अपने इस अधिकारसंबंधी अनेक काम काजके लिए प्रायः उपस्थित ही रहता है. उसने हमें यह काम करनेकी आज्ञा दी है.

इस प्रकार कहनेवाले संसृतिदायियोंमेंसे किसी स्त्रीके हाथमें सुन्दर वीणा सुशोभित थी; कोई पुरुष वेणु (वंशी) से मधुर गान कर रहा था. कोई स्त्री शीतल जलपात्र लेकर खड़ी थी; कोई पुरुष पंखा लिए घूम रहा था. कोई स्त्री प्रेम प्रदर्शित कर हृदयका प्रेम दिखाती थी, तो कोई नेत्र चलाकर पास बुलाती थी. इन अनेक साधनोंसे पूर्ण स्त्री पुरुषोंको देखते ही, अनेक पथिक अपना भान भूल गये. कई उनके कथन पर मुग्ध हो गये और विचारने लगे कि-' चिन्ता नहीं, अभी उठ जायँगे, ' ऐसे विचारसे झटपट विश्रामके लिए बैठने लगे. यह देख पहलेसे बैठनेवाले अधिक निश्चिन्त हो कर लेटने तथा लोटने लगे और जो पड़े हुए थे वे आँखें बंद करने लगे. अनेक, खाने पीनेमें भूल गये, कई रंग राग और गानतानमें लीन हो गये. अनेक उन सुन्दर स्त्रियोंसे मीठी मीठी बातें करने लगे. अनेक लोग वहां फिरनेवाले मस्त नौकरोंसे शरीर दबवा कर हल्का करने लगे और कई स्त्री पुत्रको प्यार करने लगे. इस तरह असंख्य पथिक, मनको रोक न सकनेसे, वहां विश्राम करनेमें रुक गये. ' उठते हैं, चलते हैं, अभी पहुँचते हैं, ' ऐसा करते हुए बहुत समय बीत गया और संघसे बड़ा फासला पड़ गया. फिर कौन किसका भाव पूछता है ? किसको गरज पड़ी है कि उनको सचेत करनेके लिए बारंबार गला फाड़े ? इस समय तो अपने अपनेको ही सचेत रखें तो गनीमत है. जो मनुष्य महाढीठ, दृढ़ मनवाले, सावधान और गुरुवचन पर पूर्ण विश्वास रखनेवाले तथा अपने कल्याणके लिए बिलकुल एकनिष्ठ थे वे चुपचाप, टेढ़ा मेढ़ा कहीं न देख और किसीकी कुछ न सुन चाहे जितना थकने पर भी धड़ाधड़ महात्मा सत्साधकके पीछे पीछे चले ही गये. बुद्धिमान, पंडित, चतुर, सुजान और

---

१ संसृति-दायी-अर्थात् जन्ममरणरूप संसारमें डालनेवाले अर्थात् उसमें प्रेरणा करनेवाले, इस लिए संसृति-दायी और उनका समूह संसृतिदायी-वर्ग. २ दैव अर्थात् प्रारब्धकी प्रेरणा करनेवाला अर्थात् जो प्रारब्ध बांधनेवाला या उसका भोग करानेवाला है, वह दैव-प्रेरी है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्यंत सूक्ष्म विषयोंका ज्ञाता होने तथा बहुत समझाने पर भी जो पुरुष यदि तमोगुणसे घिरा हुआ और मायामें लुब्ध हो तो वह सत्य बात नहीं समझ सकता और भ्रान्तिसे भ्रमित हो कर अपने माने हुए असत्यको सत्य मानता है, अपने ही गुणोंके वश होता है, यह बड़ी और प्रबल आवरणशक्ति है. परन्तु अंतमें इससे नीचताको प्राप्त होना है. आवरणशक्तिके संसर्गवालेको अनाख्था और विपरीत निश्चय रहता है और इससे उसको विक्षेपशक्ति निरंतर पीड़ित करती है. अनात्मपदार्थका चिन्तन मोह और दुःखका कारण है. इस लिए ज्ञाताके लिए स्वस्वरूपमें प्रमादसे बढ़ कर और कोई अनर्थ नहीं है. इस प्रमादसे मोह, मोहसे अहंबुद्धि–ममता–प्रेम, अहंबुद्धिसे बंधन और बंधनसे व्यथा होती है, परन्तु मूढ़ जीव इसे नहीं जानता. जिनका अंतःकरण वशमें है उन्हें वैराग्य–सारे पदार्थोंके तिरस्कारसे बढ़ कर सुख देनेवाला दूसरा कुछ नहीं है. परन्तु यह वैराग्य यदि अत्यंत शुद्धात्मामें, बोधसहित व्यापक हो तो वह आत्मानंदरूप चक्रवर्तीपनके सुखको देता है. मुक्तिरूप स्त्रीसे विवाह करनेका यही द्वार है. इस लिए जो जीव, परम कल्याणके वास्ते सबकी स्पृहा त्याग देता है वही जीव विजय प्राप्त करता है. अनात्म पदार्थों पर प्रीति ही इस संसारमें संकटका कारण है.

यह प्रसंग समस्त विमानवासी एकाग्र चित्तसे देख रहे थे. उन्होंने इस संघको इस प्रकार छिन्न भिन्न देख बड़े खेदसे गुरु वामदेवजीसे कहाः— "कृपानाथ! यह तो बहुत बुरा हुआ! उस महाजन सत्साधकने जो बारंबार प्रयास किया वह आधा व्यर्थ गया. वह महात्मा कैसे उपदेश, कैसी माथापच्ची करके सबको दुःखरूप जगन्नगरसे ठेठ यहांतक लाया था, वह कुछ भी उनके काममें नहीं आया! अब क्या होगा? क्या वे पीछे रहनेवाले किसी तरह कभी उनसे जा मिलेंगे?" यह सुन, वामदेवजी बोलेः-"जा पहुँचनेकी बात क्या कहें? जो रह गये वे तो रही गये. अब उनकी क्या दशा होगी यह कहना भी कठिन है. तुम्हारे विषयमें भी अभी ऐसा ही हुआ था उसे क्या तुम भूल गये? इस दिव्य विमानमें बैठनेके पूर्व तुम सबको क्या करना पड़ा था? उस समय जो तीव्र अग्निमें स्नान करनेसे हिचकिचाये, भयभीत हुए उनका रास्ता देखनेके लिए क्या क्षणभर भी यह विमान ठहरा था? विमान उड़नेके पीछे उनकी कैसी कष्टकारक दशा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुई होगी ? परन्तु यह बात रहने दो ! " यह सुन सब पुण्यात्मा एक साथ बोल उठेः–"हे महाराज, हम लोगोंने तो उनकी बड़ी दुर्दशा देखी ! विमान उड़ जाने पर तो वे निराशाके कारण बिलकुल अचेत होकर पड़े थे ! क्या इन बेचारोंका भी वैसा ही होगा ?" गुरुदेव बोलेः–" स्वरूपका विस्मरण–अनास्था जिस तरह विद्वान् या वैराग्यवान्को विमुख करती, और जैसे स्त्री जार पुरुषको बुद्धिके दोषसे विक्षेपयुक्त (भ्रमपूर्ण) करती है, उसी तरह विस्मरणसे पंडित या प्रज्ञका भी अमंगल होता है. परन्तु सूर्यके उदय होते ही जैसे अंधकार और अंधकारके कार्यरूप अनेक अनर्थ नाशको प्राप्त होते हैं, वैसे ही जिन्हें अद्वैतके समान परमानंद रसका अनुभव या उसका बीज प्रकट होता है, वे बंधनमें होते हुए भी दुःखसे निवृत्त होते हैं. ऐसा भाव हुए विना आनंदघन अच्युतके लिए चेत नहीं होता. इस बंधनसे छूटनेके लिए, स्वात्मार्पण विना अन्य मार्ग ही नहीं है. वरेप्सु ! नगरवासियोंका जो होगा वह हम लोग फिर यहां आकर देखेंगे. परन्तु यह सारा संघ जो बहुत दूर निकल जानेसे हमारी नजरमें नहीं आता, वह बहुत करके द्वारको लांघ आया होगा, इस लिए हमें पहले उसकी स्थिति देखनी चाहिए." यह बात पूर्ण होते ही, विमान अकस्मात् वहांसे उड़ा. वह थोड़ी देरमें नगरके दुर्गको लांघ कर महाद्वारकी बाहरी बाजूमें आकर खड़ा हुआ. *

बहिरागमन (बाहर आना).

विमान खड़ा होते ही पुण्यात्माओंके शिरोमणि महाराजा वरेप्सु, खड़े हो चारों ओर देख, बद्धांजलि (युगल हस्त जोड़) कर गुरुजीसे बोलेः–" कृपानाथ ! यहां तो सभी विलक्षण है ! क्या यही इस नगरकी भूमि होगी ? यह तो विस्तीर्ण, शान्त और सुहावनी है. इस नगरकी इस पवित्र भूमिपर रेशमके समान कोमल और चांदीके चूर्ण जैसी चमकती और फैली हुई रेत कैसी सुशोभित हो रही है. उस पर नाना प्रकारके कल्पतरुके समान सुपुष्पित वृक्ष नवपल्लवित हो कर लहलहा रहे हैं. यद्यपि यहाँ पर दीपक कहीं भी नहीं है, तो भी सब पदार्थ हम लोगोंको दिनके समान स्पष्ट दीख पड़ते हैं, इसका क्या कारण है ?" ऐसा कह कर वह फिर बोलाः—

* नगरदुर्ग अर्थात् उस जगन्नगरका किल्ला.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"यहां तो कुछ भी नहीं दीखता. अपने सत्साधकका वह संघ कहां है? पुरका द्वार भी बंद मालूम होता है, वे बेचारे इतना प्रयत्न करने पर भी भीतर ही तो नहीं अटक गये?" गुरुजी बोले:-"नहीं पुरका द्वार बंद नहीं है; वह तो वृक्षघटामें ढँका हुआ है, इस लिए हम लोग उसे नहीं देख सकते, परंतु मैं मोचता हूँ वह संघ अब आता ही होगा." इसी समय द्वारके भीतर समर्थ अच्युत प्रभुके नामका गंभीर जयघोष सुन पड़ा. उसे सुन कर सब विमानवासी आनन्दित हुए और उसके आवेशमें वे भी जय-ध्वनि करने लगे. थोड़ी देरमें वामदेवजी बोले:—"यह देखो, वह उजाला पड़ा! अब वह संघ बाहर आनेकी तैयारीमें है. मैं सोचता हूँ, वृक्षोंकी आड़के कारण तुम सबको वहां होनेवाले कृत्य बराबर न दीखते होंगे, इस लिए चलो, जरा नीचे उतरें." तुरंत विमान उस द्वारके आगे आकर खड़ा हुआ और उसमें बैठे हुए सब लोग विना किसी अड़चनके पूर्ण रीतिसे सब कृत्य देख सकते थे.

कुछ देरमें तीन मनुष्य उसमेंसे निकलते दीखे. उनमेंसे एकके हाथमें एक बड़ा दीपक था. उसने आगे आकर दीपकको द्वारके मुख पर रख दिया. दूसरेने द्वारके आगे एक अत्युत्तम सिंहासन लाकर रख दिया. तीसरा दिव्यदेहधारी पुरुष, जिसने दिव्य वस्त्रालंकार पहरे थे, आकर उस सिंहासनपर बैठा. फिर एक चौथा पुरुष आया. उसने अपने सिरसे एक बहुत सुन्दर सन्दूक उतारकर उस दिव्य आसनके पास रखा. उसे खोला तो मालूम हुआ कि, उसमें कलम दावात आदि लिखनेके सामानके सिवाय एक भागमें बहुतसे सुवर्णपत्र और दूसरे भागमें छोटे गुटकोंके आकारकी पुस्तकें भरी हैं. यह दिव्य पुरुष, जो ठाटबाटसे मालूम होता था कि पुरद्वारका कोई बड़ा अधिकारी होगा, अपने हाथमें कलम लेकर ज्यों ही तैयार हुआ कि, द्वारके मुँहसे सत्साधक महात्मा अपने साथ सारे संघको लेकर आते दीखे. अधिकारीने अपने नौकरसे एक आसन मँगा कर सत्साधकको आदरसे उस पर अपने सामने बिठाया. फिर तुरंत उस संदू-कसे एक सुवर्णपत्र निकाल उस पर उसका नाम लिख कर उसके हाथमें दिया. फिर पुस्तकका गुटका हाथमें लेकर बोला:-"हे महात्मन्! हे अच्युतप्रिय! तुम धन्य हो. तुम तरण तारण हो. सिर्फ अपना ही भला करनेवाले मनुष्य तो जगन्नगरमें बहुत बसते हैं, परंतु अपने साथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूसरे भी असंख्य प्राणियोंका श्रेय करनेका ऐसा स्तुत्य प्रयत्न करनेवाला तो दीर्घकालमें भी तुझारे समान विरला ही निकलता है. कालपुरुषके मुँहसे स्वयं मुक्त होकर उसमेंसे असंख्य मनुष्योंको भी सदाके लिए मुक्त करनेका तुमने जो धुरंधर प्रयास उठाया है और उसमें भी जो यहां तक सफलता प्राप्त की है, उसके लिए तुम्हें सब शिष्ट जन धन्यवाद देंगे. इन सब पथिकोंका तुमने भारी उपकार किया है, इस लिए तुम उनके परम पूज्य, मान्य और गुरुतुल्य हो. उनको लेकर अब तुम्हें महापंथमें जाना है. यह महापंथ यद्यपि भयंकर नहीं है, तो भी गूढ होनेसे ज्ञानी जीव भी भूल जाता है और ऐसा होनेसे अंतमें कदाचित् वह भयंकर भी हो जाय इस लिए वैसा न होने और सुखपूर्वक अच्युतपुर तक पहुँचानेके लिए रास्तेको स्पष्टरूपसे अंत तक बतानेवाली यह 'पथदर्शिका' है. यह प्रत्येक पथिकको दी जाती है, इसे तुम लो. रास्तेमें इसे बारम्बार देखना और इसमें कथित आज्ञा अच्छी तरह ध्यानमें रख कर ही कार्य करना है. इस आज्ञाका जो श्रद्धावाला मनुष्य विना असूया के अनुधावन करता है, वह सब कार्यसे मुक्त होता है."

इस प्रकार यह 'पथदर्शिका' महात्मा सत्साधकको देकर, फिर वह पुरुष सारे संघको सम्बोधन कर बोला:—"हे पुण्यवंत मनुष्यो! तुम्हारे अनेक जन्मोंके पुण्य उदय होनेसे ही तुम्हें इस सत्पुरुषका समागम हुआ है, जिसके कारण तुम इस अच्युतमार्गमें आरूढ़ हुए हो. क्या तुम सब जानते हो कि यह महापुरुष तुम्हारे नगरमें किस स्थितिमें था? यह ब्रह्म-कुलमें जन्म लेने पर भी तपोबलके कारण बड़े पृथ्वीपति (राजा) से भी अधिक समृद्धि संपादन कर परम सुखानंदका राज्य भोगता था. इतना ही नहीं, परन्तु उस समृद्धिसे दूसरे असंख्य दीन प्राणियोंको सुखी करता था इससे ऋषिराज, महाराज, महाराजाधिराज आदि अनेक उपपदोंसे लोग उसे जानते थे. ऐसे महत्सुखको भी दुःखरूप समझ और वमनके समान त्याग कर वह इस मार्गमें आरूढ़ हुआ है. क्यों कि सुवर्णके थालमें अमृतके समान पक्वान्न परोसा हो, परन्तु पीछेसे यहां कराल सिंह गर्जता हो और मुँह फैला कर दौड़ा आता हो तो फिर वह थाल किस कामका? ऐसा यह अच्छी तरह समझता है. जहां पर पल पल और क्षण-क्षणमें नाश-कर्ता कालपुरुषका भय व्याप रहा हो, वहांका अपार सुख भी महादुःख-प्रद है. इस जगन्नगरमें निरंतर चलनेवाला कालपुरुषका यह व्यापार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(काम) पहले तो साधारण मनुष्यकी समझमें आना ही दुर्लभ है. इस महात्माने ही उसे आत्मज्ञानके प्रभावसे जाना है, प्रत्यक्ष देखा है और अत्यंत दयाके वश होकर तुम्हारे हितार्थ तुम्हें बताया है. इतना ही नहीं, परंतु उस दुष्प्रसंगसे तुम्हारे कल्याणका प्रयत्न भी उसने हाथमें लिया है. इसके इस प्रशंसनीय कृत्यकी ओर तुम सबको कितना विनम्र और सचेत रहना चाहिए इसे नहीं भूलना. इस महाद्वारके लांघ कर जो प्राणी बाहर निकल जाता वह स्वतंत्रताके योग्य होता है. इस नियमका अनुधावन कर तुम सब लोग भी इस महापुरुषकी कृपासे स्वतंत्रताके योग्य हुए हो. अर्थात् अब तुम्हें अपनी इच्छाके अनुसार विचरण करनेकी सत्ता प्राप्त होचुकी है और उस चिह्नकी भांति यह 'सुवर्ण-पत्र' तुममेंसे प्रत्येकको दिया गया है. तुम्हारे पास यह पत्र रहनेसे तुम्हें कोई भी जबर्दस्ती परतंत्र नहीं कर सकेगा. इससे तुम संसारमार्गमें सबसे स्वतंत्र रहोगे. परंतु इस महापुरुषके अधीन होकर चलनेमें ही तुम्हारा कल्याण है. इस लिए इससे स्वतंत्र होनेकी इच्छा नहीं करना. फिर साथ ही यह 'पथ—दर्शिका' भी मैं तुममेंसे प्रत्येकको देता हूँ, जिसके सहारे तुम आनन्दपूर्वक मार्ग पार कर सकोगे. परंतु उसमें यदि कदाचित् तुम भ्रमित होगे तो इस महात्माके चरणकी अधीनता ही तुम्हें तारेगी. जिन्हें अच्युतपुरमें जाकर ब्रह्मरूप होनेकी इच्छा हो उन्हें जब तक ब्रह्मका साक्षात्-अच्युतपुरके दर्शन न हों तब तक गुरुरूप सत्साधक और पथदर्शिकाकी आज्ञा पर ही दृढ़ भावसे विचार करना चाहिए. कर्म व्यावहारिक उपासनाका साधनफल है, परन्तु सिद्ध फल नहीं है, इस लिए उसका अधिक चिन्तन नहीं करना चाहिए."

इतना कह कर उस दिव्य पुरुषने उस संघके प्रत्येक पथिकको उसके नामसहित सुवर्णका स्वतंत्रपत्र और अच्युत—पथदर्शिका, दोनों देकर विदा किया. सारा संघ निकल आया. पश्चात् वह अधिकारी अपने आसनसे उठा और सबके साथ जोरसे श्रीअच्युत प्रभुकी जयध्वनि करके वहांसे विदा हुआ. उसके साथ उसके नौकर भी अपनी अपनी वस्तु लेकर चले गये. दरवाजा तुरंत बंद हो गया. रहे वे रही गये और निकले वे जीते. भीतर थे वे भीतर ही रहे और बाहर थे वे बाहर ही.

फिर सब लोगोंके आगे आकर महात्मा सत्साधक कहने लगा:--"हे पुण्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वान् पथिको ! हे स्वतंत्र मनुष्यो ! यद्यपि रात अधिक गयी है तो भी अत्यंत परिश्रमके पश्चात् अब हम लोग इस निर्भय स्थानमें आ पहुँचे हैं, इससे मुझे बड़ा आनंद होता है. अब हमें यहांसे आगे जाना नहीं है. यहीं अपना मुकाम और यह सुकोमल रेत ही अपनी शय्या (पलंग) है. श्रीसमर्थ अच्युत प्रभुकी कृपासे हम जैसे पथिकोंके लिए कैसी सारी सुविधाएं उपस्थित हैं, इनसे कुछ भी उपाधियां या हानि होनेकी संभावना नहीं है. जल चाहिए तो वह कमलपत्रोंसे पूर्ण निर्मल जलवाला सरोवर भरा है, पवन तो स्वयम् ही इन सुपुष्पित वृक्षलताओंसे सुगंध-सना मंद मंद आ रहा है. भोजनका तो समय ही नहीं है, क्योंकि आधी रात बीत गयी है, तो भी किसीसे न रहा जाय तो वृक्षोंके नीचे बहुतसे फल पड़े हैं. उनके लिए कोई रोक नहीं है; अहो ! इस पुण्यभूमिका प्रताप तो देखो. रातका समय है, चंद्रोदय और दीपक भी नहीं तो भी हम सबको कैसा स्पष्ट दिखाई देता है. लो, एकवार सब लोग प्रभुके नामका जयघोष करो, और निश्चिन्त रूपसे इस रमणीय रेतमें लेट जाओ.

ये अंतिम शब्द पूर्ण होते ही, सब लोग जय-जय-कार करते उस मखमलके समान सुकोमल रेतमें लेट गये. जो प्यासे थे वे सरोवरको गये और जो भूखे थे उन्होंने अपने पासके पाथेयकी पोटली खोली. थोड़ी देरमें जिन्हें जो भाया वह खापीकर शीतल रेतमें लेट गये. देखते २ सारा संघ गाढ़ निद्राके वश हो गया. उन विमानवासियोंको भी जो एकाग्रतासे यह सब देख रहे थे, गुरु वामदेवजीने विश्राम करनेकी आज्ञा दी और विमान तुरंत वहांसे उठ कर अंतरिक्षमें जा टिका.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वितीय बिन्दु-द्वितीय सोपान.

आत्मोन्नतिमें मायाका बन्धन.

संघमें भंग.

कश्चिन्मां प्रेरयत्येवमित्यनर्थकुकल्पने ।
यः स्थितोऽदृष्टमाश्रित्य त्याज्योऽसौ दूरतोऽधमः ॥
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं नरकमेव वा ।
स सदैव पराधीनः पशुरेव न संशयः ॥
मनसैव मनश्छित्वा पाशं परमबन्धनम् ।
उन्मोचितो न येनात्मा नासावन्येन मोक्ष्यते ॥

अर्थ-मुझे कोई अन्याय-असत्-मार्गमें जानेकी प्रेरणा करता है इस तरह अनर्थ और कुकल्पनाका आश्रय लेकर अर्थात् उसके अधीन होकर अदृश्य नसीबके सहारे जो (जीव) पड़ा है, उस अधम जीवका दूरसे ही त्याग करो. जो यह मानता है कि ईश्वर जैसा करेगा वैसा स्वर्ग या नरकमें जायँगे, वह सदा ही पराधीन पशु है, इसमें सन्देह नहीं. मनरूप जो महाबंधन-पाश है, उसे मनसे ही भेदकर जिस (जीव) ने अपने आत्माको मुक्त नहीं किया उसे कोई भी मुक्त नहीं कर सकता.

उषःकाल होते ही महाराजा वरेप्सु आदि विमानस्थ लोग उठे. सूर्य निकलते निकलते सब अपना अपना स्नान संध्यादि कर्म समाप्त कर तैयार हो बैठे. इस समय गुरुदेवकी आज्ञासे दिव्य विमान, अच्युत-पथ पर आकर खड़ा हुआ. पुरद्वारके सुखमें मोहित न होकर बाहर निकले हुए पथिकोंका अब फिर क्या होगा, यह देखनेको विमानवासी बहुत उत्कंठित थे. विमानवासी विमानके खड़े होते ही 'जय सच्चिदानंद' की गर्जना कर वहां बिछे हुए आसनों पर बैठ गये और इस लोककी लीला देखने लगे.

जगन्नगरकी रमणीक भूमिपर निश्चिन्त रूपसे पड़े हुए पथिकों पर निकलते हुए सूर्यकी कोमल किरणें पड़ने लगीं तो भी गत दिनके परिश्रमके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारण अभी वे जाग्रत् नहीं हुए थे, और जो जागते थे वे गत रातके विलंबके कारण विना कुछ खाये ही सो गये थे, इससे भूखके कारण जल्दी २ नहाकर कलेवा करने लगे. महात्मा सत्साधक, सोये हुए पथिकोंको प्रिय मधुर शब्दोंसे जगाता और कहता था कि:—"अरे ! अरे! पुण्यवंत पथिको (जीवो) सारे जगत्के अंधकारको दूर करनेवाले और सबके साक्षीरूप भगवान् सविता नारायण अब उदय हुए हैं और वे हम सबको यहांसे शीघ्र प्रयाण करनेकी सूचना दे रहे हैं. यदि हम लोग शीघ्र चलेंगे, तो जब तक वे देव गगनमें भ्रमण करते हुए हमारे सिरपर आयेंगे तबतक हम सुखसे दूसरे आश्रमम जा पहुँचेंगे. देखो ! उस अमराईमें मधुर कुहूका मारकर सारे उपवनको आनंदमय कर कूकता कोकिल भी हमें शीघ्र चलनेकी सूचना देता है. वह कहता है कि, पथिको–मुशाफिरो ! रास्तेमें विलंब न कर जैसे बने वैसे शीघ्र अपने निर्धारित आश्रममें पहुँचनेको सचेत रहो, यही श्रेयस्साधक है; क्योंकि अज्ञात प्रवासीको अज्ञात मार्गमें अनेक प्रकारके विघ्न अकस्मात् आ पड़ते हैं, उनसे रक्षा होनेका यदि कोई भी श्रेष्ठ मार्ग है तो यही है कि सदा सचेत रहना, प्रमादसे बचना, आलस छोड़कर प्रकाशमें प्रयाण करना !" यह सुन, बहुतसे जाग्रत् मनुष्य तुरंत उठकर बैठ गये. परंतु कई एक ऐसे थे जो सुनकर भी न सुनते थे, वे जागते थे तो भी जँभाई लेकर उठते हैं, जरा ठहरकर उठते हैं,चलते हैं, इतनी जल्दी क्या है,ऐसे विचारसे लेटने लगे. फिर कई पामर और क्षुद्र विचारवाले (अविद्यासे घिरे हुए) जो नगरसे निकल आये थे परंतु पीछेसे दुःख पड़ते देख पछताते थे, वे अपने समान जीवोंसे परस्पर कहने लगे:—"अः ! इसमें कुछ दिन फिरनेवाला नहीं है. अच्युतपुर कैसा और कहां होगा, यह कौन जानता है ? कौन देख आया है? कौन जाने वहां कब पहुँचेंगे ? फिर मार्गमें मजेका जो मुकाम मिला है और जिसमें खाने, पीने, सोने, बैठने आदि सब बातोंका सुभीता है उसे छोड़कर इस उजाड़में ला पटका है, जहां खाना पीना तो एक ओर रहा, परंतु शरीरमें ओढ़नेका भी कुछ ठिकाना नहीं है. यहाँ आ पड़ना भी कर्मकी कठिनाई ही है ना ! राम ! राम ! कौन जाने सारे मार्गमें कैसा सकट झेलना पड़ेगा. नगरमें हमें क्या कोई खाये जाता था कि जिससे हम इन मनस्वी (मनमौजी) धुनमें भरे हुए भीरु लोगोंके कथनानुसार घर बार, स्त्री, पुत्र, मित्र, स्नेही, संपत्ति, आनंद और मौज छोड़कर चले आये ? हमारे समान मूर्ख कौन होगा ? हुआ सो हुआ. परंतु अब तो हम एक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कदम भी न बढ़ायेंगे. हम तो यहींसे लौटेंगे. जिसे जाना हो वह भले ही जाय."

थोड़ी देरमें सब पथिक नहा धो और अपना पाथेय खाकर तैयार हुए और परब्रह्म सच्चिदानंद अच्युतप्रभुकी जयध्वनि करके महात्मा सत्साधकके समीप आये. सब चले, परंतु लौट जानेका निश्चय करनेवाले वे अज्ञानी जीव तो उठे ही नहीं. उन्हें देखकर दूसरे अनेक पथिकोंने आगे बढ़नेका विचार बदल दिया. महात्मा सत्साधक तो सबसे आगे चलता था और उसे एक डग भी पीछे रखनेका बड़ा खेद था. इस लिए वह पीछे फिरकर देखनेकी परवा नहीं करता था. वह तो जोरसे कहता ही जाता था कि:-'हे अल्पबुद्धिके मतिमंदो ! बड़ी कठिनाईसे जगन्नगरका त्याग* कर स्वतंत्र हुए हो, अब मनको जरा भी पीछे न हटाना हम लोग सुख या दुःख किसी तरहसे भी इस लम्बे रास्तेकी एक सीढ़ी तो चढ़ ही चुके हैं, अब छः सीढ़ियां चढ़ना है. पश्चात् रमणीक अविनाशी अच्युतपुर आवेगा. हमें सिर्फ इतना ही दुःख है कि इस मार्गमें जरा सावधानीसे चलना पड़ेगा, परन्तु इसके बाद समान दृष्टिवाले, निर्विकारी, अविनाशी, परमपुरुषोत्तम, परमात्मा समर्थ अच्युत प्रभुके राज्यमें हम अनंत सुख भोगेंगे.

हे सुभागी मनुष्यो ! वहांका एक लवमात्र सुख भी इस नाशवंत जगन्नगरके समग्र सुखसे अत्यंत अधिक है. वह सुख वहाँ निवास करनेवालोंको (परब्रह्मधाममें) नियत समयतक ही भोग करनेको मिलेगा. यह नहीं, वह अनंतकाल-सदाकाल-निरंतर भोगना है, इस लिए वहां एकबार जा पहुँचे कि बस, उपाधियोंसे मुक्त होकर आनंदमें कल्लोल करेंगे. वहां सब दुःखोंका अंत और अपार सुखकी प्राप्ति सबको समान ही है. वहां हमसे पूर्व इस मार्गसे गये हुए अनेक मुक्त जीवोंको हम देखेंगे-मिलेंगे-भेटेंगे-और उन्हींमें एकाकार हो जायँगे. वे हमें अत्यंत प्रेमसे आदर देंगे और वहांके सुखसे सूचित करेंगे. इस लिए मार्गके सहज दुःखमें घबराना नहीं. हमारा मार्ग इतना कठिन या दुःखद नहीं है तो भी प्रवास तो प्रवास ही है. इसमें सब सुख ही तो कहांसे हो ? हे पथिको ! तुम मिथ्या पदार्थोंकी ममताको त्याग

* जहां जहां 'जगन्नगरका त्याग' इस तरह सूचित किया है वहाँ यह समझना चाहिए कि संसाररूपी रगड़ोंका त्याग. स्वतंत्र हुए हो-अर्थात् ज्ञानभक्ति ही मोक्षका साधन है उसे तुमने जाना है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दो, क्योंकि मिथ्या पदार्थोंपर वैराग्य हो तभी निःसंशय और विना प्रतिबंधका बोध होता है. इस जीवको जबतक आवरणशक्तिसे पूर्ण मुक्ति नहीं मिलती तब तक विक्षेपशक्ति (माया) पराजित नहीं हो सकती, और विना उसके जीते आवरणके बलसे मोहांध करनेवाली अहंबुद्धि सतेज रहती है. इस लिए अब इस देहकी माया, ममता, आशा, तृष्णा, कामनाका त्याग करना चाहिए. परंतु जब तक तुम देहपर प्रीति रखोगे तबतक यह मन बाहरके पदार्थोंके अनुभवमें प्रेम करेगा और तुम देहकी सारी क्रियाएं करते रहोगे तथा इससे इन नाशवंत दृश्य पदार्थोंमें चित्त दृढतासे लगा ही रहेगा. इस लिए परब्रह्मका आनंद चाहनेवाले मुमुक्षुओंको सारे कर्म—विषयोंका त्याग कर परमात्मामें ही निष्ठा रखनी चाहिए.'

इस तरह उपदेशपूर्ण वचनोंसे उत्साहित हुए अनेक पथिक चलने लगे; किन्तु जो जीव (पथिक) अपनी ही अज्ञानता और अधमाईके कारण उस उपदेशके अर्थकी उपेक्षा कर विषयजन्य सुखमें लुब्ध थे वे वहीं पड़े रहे. संघमें भंग हो गया. नगरसे तैयार होनेवाला संघ तो बहुत बड़ा—अनेक जीवोंसे भरपूर था. परन्तु उसमेंसे बहुतसे पुरद्वारमें रह गये इससे वह कम हो गया और बहुतसे यहांसे भी कम हुए. तो भी इस संघमें मुमुक्षु जीव कम न थे. उनका एकत्र जयघोष गगनमंडलको थर्रा रहा था. उत्तमोत्तम प्रकारके नव पल्लवित वृक्षोंसे सुशोभित इस उपवनसे लोग यह भजन स्तुति करते चले जाते थे:—

हरि भजिले मनवा भाई, है सांची राम-सगाई । टेक ।
तज संसारीका नाता, चल हरिके यशको गाता;
तू उतर जाय भवपार, तज गंदी जगकी खाई । हरि.
तेरी सूरत मुझे है भाई, मेरा दिल जानता है ।
जो झलक तूने दिखलाई, मेरा दिल जानता है ।
ख्वावसा होगया तेरी सुहवतका अेर ! अब ख्याल;
वो मजा फिर नहीं पाई, मेरा दिल जानता है ।

मार्गमें कोई अटल समाधिमें रहता, तो कोई स्वरूपका अनुसंधान करता, कोई आत्मज्ञानके बलसे दुष्ट वासनाओंको दबाता, तो कोई दृश्य पदार्थोंका त्यागकर सत्य पदार्थोंका अवलोकन करने लगता और कोई हरिचर्चा करता था. उनकी आत्माको कष्टसे उद्वेग नहीं होता था, और न सुखमें वे आनन्दित होते थे. वे राग, द्वेष, भय, क्रोधको पार किये हुए स्थिरप्रज्ञके समान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मालूम होते थे. वे जगत्के स्नेहकी चर्चा ही नहीं चलाते थे और न अनेक प्रकारके शुभाशुभसे उन्हें आनन्द या द्वेष था. उनकी बुद्धि स्थिर थी. इस प्रकार सारे उपवनको पार कर वे पथिक बहुत दूर निकल गये.

नरकमार्गातिक्रमण.

अब तककी समस्त घटना विमानवासी पुण्यात्मा देख रहे थे. वे इस संघको उपवनके बाहर निकला हुआ देख गुरु वामदेवजीसे कहने लगे:- "कृपालु गुरुदेव! ये पथिक तो अब रास्ता चलने लगे. जब तक वह मुकाम आवेगा तब तक ये इसी तरह चले ही जायँगे. परंतु उन पीछे रहनेवालोंकी क्या दशा होगी? उसे हम कब देखेंगे?" महात्मा वामदेवजी बोले:—"यह बात मैं भूल नहीं गया. पीछे रहनेवालोंकी अवस्था तो हमें अवश्य ही देखनी है; परन्तु जैसा तुम सोचते हो वैसा यह संघ अभी सत्य संघमें नहीं पड़ा है. देखो. अब तक वह उस उपवनके चौड़े और सरल मार्ग पर था, परन्तु अब वह वनकी सिर्फ एक पगडंडीसे ही जा रहा है." फिर महाराजा वरेप्सु बोल उठे:—"कृपानाथ! आगे चल कर उस सँकरे मार्गकी तो दो शाखाएं फूटी हैं. एक तो प्रारंभसे ही चली आती है और सीधी वनमें ही जाती है, परन्तु उससे फूटी हुई वह दूसरी शाखा तो वहांसे पूर्वकी ओर मुड़ कर फिर दक्षिण दिशाकी ओर फूटती है. वह बहुत चौड़ी और रमणीक मालूम होती है. मैं सोचता हूँ यही अच्युतपुरका मार्ग है." फिर भी वे बोले:—"गुरुदेव! इन दोनों मार्गोंके मिलन-स्थान पर जाकर संघ क्यों रुक गया है? उन सबके आगे खड़ा होकर सत्साधक क्या कहता है? चलो, हम उसे सुनें." फिर विमानवासी उस ओर एकचित्तसे देखने लगे.

महात्मा सत्साधक नये मार्गकी ओर उँगली दिखा कर बोला:—"मैं सोचता हूँ यह बड़ा और सुन्दर मार्ग देख कर, हम लोगोंमेंसे अनेकका मन उस ओर जानेको ललकता होगा; अनेकोंको यह स्वाभाविक निश्चय भी होगा कि यह मार्ग परब्रह्म ही का मार्ग होना चाहिए. परन्तु ऐसा नहीं समझना. हमें तो इस सँकरी पगडंडीसे ही जाना है. यह नया मार्ग जितना रम्य और मोहक, सौन्दर्यपूर्ण और लीलामय है उतना ही अंतमें दुःखद और कंटकमय भी है. यह मार्ग अच्युतपुरको नहीं जाता. जो इस मार्गमें भूलसे आरूढ़ हो जाता है वह अनेक प्रकारके अनुचित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्म कर बहुत दुःख सहन करता और अंतमें संयमिनी पुरीमें जा पहुँचता है. वहीं इस मार्गका अंत है. तुमने जगत्पुरमें रहकर कभी 'यमराज' का नाम सुना हैं ?" पथिकोंने उत्तर दियाः—"महाराज ! यह नाम तो जन्मसे आजपर्यंत बराबर सुनते आये हैं. वह यमराज ही यमलोकका राजा है न ? वह तो बहुत निर्दय और भयंकर है." सत्साधक बोलाः—"वह निर्दय नहीं, परन्तु सहृदय और न्यायी है, परन्तु दुष्टात्माओंके लिए वह भयंकर ही है. वह संयमिनी पुरीका राजा हैं और जगन्नगरमें निवास कर अनुचित (पाप कर्म) करनेवाले प्राणियोंको अपने यहां बुलाकर उनके पापकर्मोंका दण्ड देता है. समर्थ अच्युत प्रभुने उसे प्रत्येकके न्याय करने और तदनुसार योग्य दंड देनेका अधिकार सौंप दिया है. सारे जगन्नगरमेंसे पकड़कर आनेवाले अपराधी उसके यहां पेश होते हैं. उन्हें उनके अपराधानुसार योग्य शासन-छोटा या बड़ा जैसा अपराध हो-उस तरहका शासन (दण्ड) देनेके लिए वहां बहुतसे भिन्न भिन्न स्थान बने हैं, और वहां रहकर वे अपराधी अपने उन अपराधोंका असह्य दण्ड बड़े कष्टसे भोगते हैं. इस दंड भोगनेके प्रत्येक स्थानको 'नरक' कहते हैं. ऐसा नरक वहां एक समूचे लोककी तरह विस्तृत होनेसे 'नरकलोक' के नामेसे प्रसिद्ध है. यह बड़ा मार्ग ठीक वहीं तक जाता है इसलिए इसका नाम भी नरकमार्ग है. फिर इस यमराजकी नगरीका नाम यमलोक है. वहां जानेका यह मार्ग है; इसलिए इसे यमलोकमार्ग भी कहते हैं. जान बूझकर अथवा भूलसे ही इस मार्गसे जानेवाला मनुष्य यमराजका अपराधी होता और उसे भी घोर दुःखवाले नरकमें दंड भोगना पड़ता है. जगन्नगरसे यमराजके सेवक जिन अपराधियोंको पकड़कर यमराजके यहां ले जाते हैं उनके लिए यह मार्ग खुला पड़ा है. फिर अच्युतपथके जानेवालोंको छोड़ अन्य सबको एकवार अपने कर्तव्यका हिसाब देनेके लिए यमराजके दर्शन करने पड़ते हैं, चाहे वे अपराधी हों या निरपराधी. वे भी इसी रास्तेसे जाते हैं. सिर्फ वे ही इस विडम्बनासे मुक्त हैं जो अच्युतपथगामी हैं;क्यों कि वे अच्युत प्रभुके सत्य अनुसंधानके कारण जगत्के कर्मबन्धसे अच्युत प्रभुके भारी अनुग्रहसे स्वतंत्र रहते हैं. उनपर कोई भी सत्ता नहीं चला सकता. अच्युतस्वरूपका अनुसंधान करनेवाले जीवको असत् देहादिक अनुसंधान, जो पतनका कारण है, बंधनका कारण है, छोड़कर मैं ब्रह्म हूँ, सर्व ब्रह्म है, ऐसी ही आत्मदृष्टि करते रहना चाहिए; क्योंकि यह ब्रह्मनिष्ठा परम सुखदायिनी और परम ब्रह्मनिष्ठा होनेसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसे भ्रमरीकी धुनमें पड़ा हुआ कीट भ्रमरीपनको प्राप्त करता है वैसे एक-निष्ठासे इस अच्युत ब्रह्मका चिंतन करनेवाला जीव ब्रह्मरूप होता है. परन्तु यदि कोई अस्थिरमन और प्रमादी जीव अपने प्राप्त हुए जगद्--बंधनसे मुक्त होनेकी अमूल्य स्वतंत्रता प्रमाद या इस जगन्नगरके किसी प्रकारके तुच्छ विषयसुखमें भूल कर खो देता है तो फिर उसके लिए भी यही मार्ग है. मुझे यह सूचित करते परम हर्ष होता है कि, अच्युतपथकी महत्ता इतनी बड़ी स्तुत्य है कि उसका अनुधावन करनेवाला अच्युतमार्गका प्रवासी बड़े धुरंधर और सर्वोपरि अधिकारी यमराजसे भी स्वतंत्र है. उसको यमराजके यहां न्याय करानेके लिए जाना नहीं पड़ता और न दूसरा ही कोई उसपर सत्ता जमा सकता है. हम लोग भी उसी अच्युतपथपर हैं और वैसे ही स्वतंत्र हैं. पुरद्वारसे निकलते समय जो सोनेका स्वतंत्रपत्र मिला था वह सबके पास है या नहीं ? देखो, देखो, उसे बड़ी सावधानीसे रखना."

इतना कह कर वह फिर बोला:-" हे हे ! प्रिय पथिको ! हम सबको पुरद्वारसे मिली हुई वह पथदर्शिका भी तुम्हरे पास है न ? अच्युतमार्गमें जाते समय जहां जहां संदेह और घबराहट हो वहां वहां यह बड़े कामकी होगी ! देखो, इसमें इस नये मार्गके लिए हमें स्पष्ट आज्ञा मिली होगी. पढ़ो द्वितीय सोपानका द्वितीय प्रस्थान. " सत्साधकके ये वचन सुन, सब पथिकोंने झटपट अपने पासकी पथदर्शिका नामका गुटका खोला. उसके दूसरे सोपान (सीढ़ी) के दूसरे प्रस्थान (रवानगी) में इस प्रकार लिखा था:—

' कामादिदोषनिवहाः सन्ति यत्र महोद्धराः ।
' स पन्था नरकायैव न गच्छेत्पथिकस्ततः ॥
' संगोऽपि नैव कर्तव्यः कदा तन्मार्गगामिनाम् ।

अर्थ—जहां काम आदि दोषोंका समूह महामदमत्त होकर निरंतर निवास करता है उस मार्गमें पथिकों [अच्युतपथगामी जनों] को कभी भी नहीं जाना चाहिए; क्योंकि वह नरकमें ही ले जानेवाला है. फिर उस मार्गमें जो गये या जाते हों उनका संग भी कभी नहीं करना.

' संगात्संजायते कामः क्रोधमानयते तु सः ।
' क्रोधो मोहं च दुर्लोभं क्रमाद्गर्वं च मत्सरम् ॥
' एतानि मित्ररूपेण वर्तन्ते पथिकैः सह ।
' घोरपापेषु युञ्जन्ति यमलोकप्रदायिषु ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एतस्मान्नरकं यान्ति पथिकाः पापभागिनः ।
भुक्त्वा तत्र महद्दुःखं विनाशं यान्ति ते जनाः ॥

अर्थ—'संगसे काम (राग) उत्पन्न होता है और इस काम नामका 'दुष्टात्मा पुरुष, जो पथिकोंके साथ मित्रता कर उन्हें अनेक प्रकारकी मिथ्या इच्छाएं उत्पन्न करा कर बहँकाता और फिर जीवके लालचका वश न चलनेसे क्रोधनामके मित्रको मिलाता, क्रोध अपने ही समान मोहको लाता, मोह लोभ पैदा करता, लोभ मान अर्थात् मद या गर्वको लाता तथा मान मत्सरको लाता है. इस तरह उनकी एक पूर्ण मंडली बन जाती है. फिर वे अपने पाशमें फँसाये हुए भोले पथिकोंके साथ मित्ररूपसे व्यवहार करनेका दिखावा कर अपने स्वभावानुकूल उनसे महाघोर पाप कराते हैं. ये पाप यमलोक पहुँचानेवाले हैं. फिर उन पापों द्वारा वे पथिक नरकमें जाते हैं अर्थात् वहां (उस मार्गमें) नित्य फिरते हुए यमदूत उनको ऐसा घोर पाप करते देख, यमराजके अपराधी मान कर आज्ञानुसार उन्हें (नरकमें)ले जाते हैं. वहां वे मनुष्य महादुःख भोग कर अंतमें विनाशको प्राप्त होते हैं.'

*** 'आत्माको नाश करनेवाले नरकके तीन द्वार हैं—काम, क्रोध और लोभ. सत्पथगामी जीव इन तीनोंको त्याग दें. नरक तो नरक ही है ! वहां अपार नरकदुःख भोग कर वह मनुष्य अंतमें विनष्ट होता है और यमराज नरकके बाद उसे फिर जगत्पुरमें लाकर चाहे जिस नीच स्थानमें रख देता है; वह स्थान भी नरकसे कुछ ही उतर कर होता है और वहां निरंतर उस कृतांत काल पुरुषका भारी भय रहता है.'**

इस प्रकार जब पथदर्शिकाका लेख पढ़ चुके तब महात्मा सत्साधक फिर बोलाः—" हे पुण्यशाली जनो ! ऐसे नरकमें ले जानेवाले मार्गमें जानेको अब तुम योग्य नहीं हो. यह मार्ग तो, यमराजके अपराधियों और

---

* संगात्संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ।
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥ इति ।

इसका भावार्थ भी ऊपर कथित अर्थसे मिलता ही है-संगसे काम (कामना) उत्पन्न होता है, कामसे क्रोध पैदा होता, क्रोधसे मोह, मोहसे स्मृतिमें भ्रम होता है, स्मृतिभ्रंशसे बुद्धिका नाश होता और बुद्धिका नाश होते ही प्राणी नष्ट ही हो जाता है (अधोगतिको जाता है) —गीता.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसे निर्भय अच्युतमार्गसे पदभ्रष्ट होनेवालोंका है, कि जो अपने असीम प्रयत्न और दीर्घकालमें समर्थ अच्युत प्रभुकी अनुकंपासे प्राप्त हुई अमूल्य स्वतंत्रताको, जीवके समान न जान कर, व्यर्थ ही खो देते हैं. दंभ, दर्प, अभिमान, क्रोध, पारुष्य, अज्ञान, ये सब आसुरी संपत्तिके विषय हैं, परंतु दैवी संपत्ति तो अभय, सत्त्वसंशुद्धि, ज्ञानयोगव्यवस्था, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, ईर्ष्याका अभाव, भूतदया, तृष्णाका अभाव, मृदुता, लज्जा, तेज, क्षमा, धृति, अद्रोह और शौचवाली है. तुम दैवी जीव हो, तुम्हें यह दैवी संपत्ति ग्रहण करनी चाहिए. चलो, अपना समय जाता है. हमें जिस मुकाममें आज पहुँचना जरूरी है वह अभी बहुत दूर है." तुरंत सर्वेश्वर अच्युत परब्रह्मके शुभ नामका जयजयकार कर सब वहांसे उस वनमें जानेवाली पगदंडीकी ओर चले.

विषयका अनुसंधान करनेवालेकी अवस्था.

फिर इच्छानुगामी विमानमें बैठे हुए समस्त पुण्यभागी लोगोंको सम्बोधन कर वामदेवने कहाः—"राजा ! अब इस संघको आज बहुत दूर इस छोटे मार्गसे ही जाना है; और मुकाम आते तक कोई विघ्न होनेका डर भी नहीं है; इस लिए हम लोग पीछे रहनेवालोंकी दशा देख आयें." यह सुन, महाराजा वरेण्सु हाथ जोड़ कर बोलेः—"कृपानाथ ! महात्मा सत्साधकने जिसके लिए पथिकोंको बहुत कुछ कह सुनाया और जहांसे होकर धर्मरूप महात्मा यमराजके यहां जाना होता है उस मार्गको नरकमार्ग आपने क्यों कहा ? मैं जब यमपुरमें गया तो मार्गमें इस तरहका कुछ भी दृश्य मुझे देखनेको नहीं मिला. वहां काम, क्रोध, मोह इत्यादि कोई दुष्ट पुरुष न था. यह यमसदनमार्ग बहुत रमणीक था और यमपुरीमें पहुँचने-पर भी मैंने कहीं नरकादि स्थान या उसमें दुःख भोगते प्राणी नहीं देखे. वहां सब आनंदमय ही लगता था." बटुकने उत्तर दियाः—"राजा ! यह सत्य है. परंतु वह समझानेके लिए तो तेरे ही संबंधका लौकिक दृष्टान्त लेना पड़ेगा. जिस समय तू अपने नगरसे दूर उस क्षेमदुर्गमें न्याय करनेके लिए बैठता था, उस समय नगरसे जिन लोगोंको न्यायके लिए बुलाना पड़ता था, उन सबके लिए तेरे न्यायालय तक क्या जुदा रास्ता था ? और उन आनेवाले सब लोगोंसे क्या तू समान भावसे व्यवहार करता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

था ?" वरेप्सु बोला:—"ऐसा कैसे होगा ? नगरसे आनेवाले सबके लिए एक ही मार्ग था, परन्तु मेरे पास आनेके पश्चात् जो जैसी योग्यताका मनुष्य होता उससे मैं वैसे ही भावसे व्यवहार करता था. सब एक-हीसे माने जायँ तो न्याय किसका ? योग्यायोग्यका निरीक्षण कर अपराधीको दंड और धर्मिष्ठको धन्यवाद दिये जाते थे." वामदेवने कहा:—" इसी प्रकार यहां भी है. न्यायके लिए बुलाये जानेवाले अनेक सत्य-वादी, सज्जन, धर्मिष्ठ और ऐसे योग्य जनोंको खुद तेरे ही नौकर गाड़ी; घोड़ा, पालकी, आदि नाना वाहनोंमें बैठा कर मधुरालाप करते बुला लाते थे. परंतु दुर्जन, चोर, खल, परपीडकोंको यद्यपि उसी मार्गसे होकर तेरे वेही नौकर लाते थे, तो भी वे बिलकुल दूसरी ही रीतिसे लाते थे. उन्हें तो वे पैदल चलाते थे, इतना ही नहीं, परंतु गालियां भी सुनाते थे, ऐसी आज्ञा देते थे जो सहन न की जासके. कभी कभी मार भी देते थे और ऐसी अनेक विडंबनावाली स्थितिमें उन्हें तेरे पास लाते थे. फिर तू स्वयं भी न्याय करते और उसके अंतमें उन्हें उचित दंड सुनाते समय उन लोगोंमेंसे जो जैसे होंगे उन्हें वैसा ही दीखता होगा अर्थात् दुष्टोंको क्रूर और सज्जनोंको शान्त दीखता होगा. इसी तरह यहांभी समझ ले. पहले भी मैंने तुझे एकवार कहा था कि उस समय यमराज जो तुझे शान्त दीखा वह सिर्फ तेरी वैसी योग्यताके कारण ही था और उसमें भी तू स्मरण कर देख कि, जिस समय यमपुरसे उस दिव्य स्वर्गीय विमानमें बैठ कर तुझे इन्द्र-लोकमें जाना था और जिस समय यमराज अपनी सारी सभासहित तुझे विदा करनेको वहां तक आये थे, उस समय तेरे मनमें क्या विचार हुआ था ? उस समय तू मनमें यह समझता था कि यमसभामें प्रधानने जो मेरे सुकृत दुष्कृत पढ़े वे तो सिर्फ यमराजको कह सुनाया. बस; इतने अधिक सुकृतके होते थोड़ेसे पापोंके लिए यमराज मुझे क्या कहेगा ? इस तरह ज्यों ही तूने उन्हें क्षमा होनेके योग्य माना त्यों ही वह घना अंधकार व्याप गया था ! उसमें तेरी क्या दशा हुई थी ? वह महाकष्ट अनुभव करने पर फिर उसी सौम्य यमराजके लिए तेरे अंतःकरणमें कितना भय उत्पन्न हुआ था ? इसी तरह इस यममार्गमें भी जैसा जीव हो वैसी योग्यतासे उसे वहां ले जाते हैं. जिस समय तू यमलोकको गया, उस समय तेरे लिए अच्छी सवारी थी और बहुतसे सेवक आगे पीछे चलनेवाले थे. वहां कामादि खल क्या तेरा साथ करनेको आ सके थे ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसा प्रत्युत्तर सुन, महाराजा वरेप्सु बोलेः–अहो ! यह विलक्षण यमलोक और उसका मार्ग ऐसा है क्या ? जब मेरे जैसे नामके ही पापोंके लिए क्षणभरमें मुझे ऐसा असह्य कष्ट अनुभव करना पड़ा तो जिन्हें सदा ही पाप प्यारा है और जो बड़े कुकर्मी–कभी क्षमा न किये जाने योग्य कर्म करनेवाले हैं, उनकी वहां क्या दशा होती होगी ? हरे ! हरे ! ऐसे मोहांध पातकीपर वहां बड़े दुःखके पहाड़ टूट पड़ते होंगे. उसकी वैसी कठिन यातनाएं भोगनेका महाभयंकर स्थान–नरक कैसा होगा ? अब तो कृपानाथ ! हमें पहले यमलोक ही दिखाओ, जिससे हम सबको विदित हो जाय कि, पापियोंको किस तरहकी सजा होती है." वामदेवजीने कहाः– "यह यातनालय प्रत्यक्ष देख सकना अत्यंत कठिन है; क्योंकि यह ऐसा है कि उसकी चारों दिशाओंमें देखनेवालेको नाना प्रकारके अनिवार्य भय, अपार दया और अतिशय ग्लानि उत्पन्न करानेवाले दृश्य हैं ! तो भी जगत्के कल्याणके लिए मैं वह सब तुमको बताना चाहता हूँ. तथापि अभी तो हमें उन पीछे रह जानेवाले पथिकोंकी स्थितिका ही अवलोकन करना योग्य है. ऐसा करनेसे हमें स्वयं ही यमलोक देखनेका प्रसंग आयेगा. उनमेंसे अनेक लोग यमवासी होंगे; क्योंकि उन्होंने निर्भय और निष्पाप अच्युतपथका त्याग किया है और पवित्र मार्गसे पतित होनेवाले सब लोगोंकी बहुधा यही गति होती है. प्राणीको लोकवासना, कर्मवासना, देहवासनासे सत्य ज्ञान प्राप्त नहीं होता. उन वासनाओंसे नरकमें ही पड़ना पड़ता है. इस लिए प्रत्येक प्राणीको अनात्म—पदार्थोंको वासनारूप जालोंसे मुक्त होना चाहिए. आत्माकी वासना और निरंतरकी आत्मनिष्ठासे मायिक वासनाका नाश होता है, इस लिए सत्य तो आत्माकी वासना है. वही वासना ग्रहण कर शेषका त्याग करो. यह परब्रह्मके अनुसंधानका सत्त्व है. परंतु चलो, हम पहले उन पुरवासियोंको देखें." इतना कहते ही विमान वहांसे सपाटेसे उड़ा और पलभरमें जगत्पुरके भूभागमें आ खड़ा हुआ.

दिन बहुत चढ़ गया था. उपवनके पशु पक्षी सब अपने निर्वाहकार्यमें प्रयत्नशील हो गये थे. तो भी उस सत्साधकके संघसे बिछुड़े हुए अच्युतपथपर श्रद्धा न रखनेवाले और विषयमें गर्क (मग्न) होनेवाले

१ नरक.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रमादी तो अभी तुरंतके ही उठे हुए मालूम होते थे. उठनेके बाद चारों ओर देखने लगे तो उनका संघ तो बहुत देर पूर्व चला गया था इससे वहां किसीको नहीं देखा. उन्हें कुछ उदासीनता तो अवश्य मालूम हुई, परन्तु स्वयं ही उन्होंने संघका अनादर किया था इस लिए मनको फिरा कर अब वे वहांसे रवाना होनेकी तैयारी करने लगे. परंतु कहां जायँ? पुरद्वार तो बंद था और अच्युतपथके सिवाय दूसरा कोई मार्ग वहांसे नहीं गया था. सब 'किंकर्तव्यविमूढ़' बन खड़े रहे. परस्पर मुँह देखने लगे और ऐसे मालूम हुए मानों वे पूछते हैं कि क्या करें. उनमेंसे किसीका मन आगे बढ़नेको न था और पीछे फिरनेका मार्ग ही न था. उन्होंने विचार किया कि आजका दिन यहीं बितायें, तब तक किसी आने जानेवालेके वास्ते द्वार खुलेगा तो उसीके पीछे भीतर चले जायँगे. रातको तो द्वार अवश्य खुलेगा ही. ऐसा विचार कर एक बड़े वृक्षकी छायाके नीचे जानेके लिए पुनः सब पीछे फिरे. इतनेमें उनमेंसे एक आदमी अकस्मात् जोरसे चीत्कार कर नीचे गिर पड़ा और "ओ बाप रे! मेरे भाई रे! हाय! हाय! मुझे यह कोई घसीटे लिए जाता है रे! मुझे कोई बचाओ रे!" आदि कहता हुआ थोड़ी देरमें अचेत हो गया. सब आश्चर्यचकित हो कर उसके आसपास आ खड़े हुए और यथाशक्ति सेवा शुश्रूषा करने लगे. इतनेमें एक दूसरे आदमीने भी वैसी ही चीत्कार मारी. वह कहने लगाः– "अरे! किसीने मेरा गला पकड़ लिया है! अरे! मैं किसी बड़े बलवालेके लंबे पंजेमें पड़ा हूँ! हाय! हाय! उसके तीक्ष्ण नख मेरे शरीरमें चुभे जाते हैं. अरे! मुझको तो निश्चय होता है कि जैसा वह महात्मा सत्साधक कहता था वैसे कालपुरुषने ही मुझे पकड़ा है. कोई दया कर मुझे छुड़ाओ! अरे! मैं चला! हाय रे! मैं जाता हूँ!! यह कोई भयंकर राक्षस मुझे घसीटते ले जा रहा है."

ऐसी बातें करते और देखते देखते दोनों जीव चल बसे. उन्हें कोई नहीं रख सका–कोई भी नहीं बचा सका. ऐसी प्रत्यक्ष घटना देखकर सत्साधकके वचनों पर श्रद्धा (विश्वास) न रखनेवाले ये सब अश्रद्धालु, प्रमादी, विषयलुब्ध लोक, वित्त, पुत्र, कलत्र आदि जगत्की इच्छाओंमें राग–प्रीति करनेवाले, निस्तेज हो गये. उनका अंतःकरण एकदम सचेत हो गया और सारे अश्रद्धालु जीव अपनेको अकस्मात् कृतांत कालपुरुषके पंजेमें फँसा हुआ मानने लगे. वे पछताने लगे कि–"हरे! हरे! उस परोप-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारी महात्माकी दयासे हम लोग इस अभय पथमें होते हुए भी, स्वयं ही उसका साथ छोड़ निराधार हो गये और उसकी कृपासे प्राप्त हुई स्वतंत्रता खो देनेकी अनी (नोक) पर आ बैठे हैं. आकाशमें पक्षीके और जलमें जैसे जलचरके पैर नहीं मालूम होते, वैसे ज्ञानीकी भी गति मालूम नहीं होती. वैसे ही गुरु सत्साधककी गति हम नहीं जान सके." इस तरह विलाप करते थे, परंतु अब क्या लाभ? फिर गुरुदेव, सब विमान-वासियोंको सम्बोधन कर बोले:—"उपदेश देने पर भी जिसे किसी भी प्रकारका अनुभव या बोध नहीं होता, उस नराकृति (मनुष्यस्वरूप) गधेको वह गुरु या शास्त्र किस तरह उपदेश दे? अरे! सत्य सदा जय ही पाता है, असत्य (अनृत) नहीं. सत्य-श्रद्धासे ही देवमार्ग मिलता है और जिसकी सत्य कामनाका विकास हुआ है वही वहां जा सकता है, भ्रमवाला नहीं." थोड़ी देरतक इन भ्रष्ट जीवोंने-हाय हाय-शोच किया. फिर वे बोले:-"पर होगा, चलो, हुआ सो हुआ, परन्तु अब अपना यहां खड़े रहना हितकर नहीं है. यद्यपि दीर्घ काल होनेसे संघ और हम लोगोंमें बहुत अंतर पड़ गया है, तो भी जरा शीघ्रतासे चलेंगे तो कलतक जा मिलेंगे." ऐसे विचारसे वे तत्काल रवाना हुए और महात्मा सत्साधकका संघ जहांसे होकर गया था उसी मार्ग पर चले. सबने सोचा कि, किसी तरह भी संघसे शीघ्र जा मिलें तो अच्छा और इसीसे जल्दी जल्दी पैर रखने लगे.

विमानमें महाराजा वरेप्सुने गुरु महाराजसे विनय की:—"दयानिधे! ऐसा क्यों? सत्साधकने पुरद्वारका उल्लंघन करते समय कहा था कि, 'पुरद्वार लांघकर बाहर हुए मनुष्यको कालपुरुषका भय नहीं है तो भी अभी उन दो मनुष्योंको कालपुरुष कैसे पकड़ सका? यह तो अच्युतपथको कालिमा लगानेवाला काम हुआ!" बटुक वामदेवजी बोले:—"राजा! इससे पवित्र अच्युतपथको कालिमा नहीं लगती. इससे तो उल्टे उसकी पवित्रता अधिक प्रकाशित हुई; क्योंकि सारे संघके गुरुरूप महात्मा सत्साधककी आज्ञा—मर्यादामें जब तक वे लोग थे, तब तक ही वे अच्युतपथ पर थे और तभी तक वे निर्भय भी थे! परंतु जब उस महात्माके वचनों और पुरद्वारसे मिले हुए स्वतंत्रपत्रपर उनकी श्रद्धा (विश्वास) न रही और जबसे उन्होंने आगे चलना बंद कर वहांसे पीछे फिरनेका निश्चय किया, तबसे ही वे अच्युतपथसे पतित हो गये. अज्ञानी, अश्रद्धावान्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और संशयात्माका विनाश ही होता है. इहलोक या परलोक इनमेंसे एक भी इसका नहीं. संशयात्माको सुख नहीं, उसका तो विनाश ही होता है. अब इनके पासके स्वतंत्रपत्र, पथदर्शिका इत्यादि साधन भी जबर्दस्ती छिन जाने या खोजानेके समान ही हैं. अच्युतमार्गसे भ्रष्ट हुए लोगोंके पास वे साधन रहने नहीं दिये जाते. इस कामके लिए एक खास अधिकारी हैं, जो तुरंत आकर उनके पाससे उन अमूल्य वस्तुओंको छीन लेता है. इस समय भी वह यहां तैयार ही था, परंतु फिर इन लोगोंको कुछ श्रद्धालु होकर अच्युतमार्गमें जाते देख, वह पीछे फिरा है. देखो, उस पुरद्वारकी खिड़कीसे होकर भीतर जा रहा है. वही वह है. " सब विमानवासियोंने उसे प्रत्यक्ष देखा.

फिरसे अच्युतमार्गमें जानेवाले ये पीछे रह जानेवाले पथिक जहांतक सीधा मार्ग था वहांतक तो विना रोक धड़ाकेसे चले गये; परंतु जमीन छोड़ कर उपारण्यमें होकर जब अरण्यमें प्रविष्ट हुए तब फिर इनके कर्म आड़े आये. संशयात्माकी यही गति है. उन दो मार्गोंके मिलनस्थान पर आकर वे रुक गये और 'अब किस मार्गसे जायँ' इस भारी विचारमें पड़े. उनका कोई अगुआ या पथदर्शक (गुरु) नहीं था; अतः वे किसके विचारका अनुधावन करें ? किसके कथनानुसार व्यवहार करें ? पथबोधिनी यद्यपि सबके पास थी परन्तु उन सबमें एकसे बढ़ कर एक अधिक असावधान थे इस लिए उसमें देख कर मार्गका निर्णय करनेकी शिरपची ही कौन करे ? फिर उन्हें पथबोधिनीके देखनेका कोई कारण भी नहीं दीखा; क्योंकि जो मार्ग बड़ा, सीधा और सुशोभित लगता था, वही अच्युतमार्ग होगा, ऐसा विचार कर वे इस मार्गकी ओर मुड़ रहे थे इतनेमें फिर दूसरी तरहसे भी उनके विचारकी पुष्टि हुई.

इसी मार्गसे (उस रमणीक मार्गसे) एक युवा हँसमुख पुरुष इनकी ओर आते दीखा. वह ऐसा सुन्दर था कि उसे देखते ही चाहे जैसा पुरुष हो तो भी उसे मोह पैदा हो जाय. उसके सुन्दर शरीर पर वस्त्रालंकार भी बहुत शोभा दे रहे थे और उन्हें वह चित्र विचित्र मोहकरीतिसे पहरे था. उसका मुखमंडल और विशेष कर उसके चपल नेत्रोंसे

१ उपारण्य अर्थात् उपवन नगरके समीपका छोटा वन. २ जो पथदर्शिका वही पथबोधिनी.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह बड़ा चतुर, साहसी और सुहृद् जान पड़ता था. कुछ पास आनेपर वह हँसमुख होकर बोलाः—"अरे भाइयो ! तुम किसकी बाट देखते हो ? यहां क्यों खड़े हो ? ऐसा सुन्दर और सरल मार्ग तुम्हारे लिए खुला होने पर भी द्विविधाका क्या कारण है ?" इतना कह कर ही उसने देखा कि इनका कोई अगुआ नहीं है और इसलिए वह बेधड़क होकर बोलाः—"डरना नहीं. मैं सारे मार्गका दर्शक हूँ. चलो, मैं तुम्हें अनेक सुखोंका स्वाद चखा कर मौज कराऊंगा." यह सुन सब लोग बहुत प्रसन्न हुए. फिर मध्यसे एकने पूछाः—"आप कौन हो और आपका नाम क्या है ? आप इस मार्गके पथदर्शक हैं तो हमसे पहले गया हुआ संघ तुम्हें मिला ही होगा; वह कहां तक पहुँचा होगा ?" इसके उत्तरमें उस युवाने चतुराईसे कहाः—"क्या तुममेंसे मुझे कोई नहीं जानते ? रतिदेवीका पति जो कामदेव है वही मैं हूँ. तुमसे पहले जानेवाला संघ मैंने देखा है. वह अनुमान एक मुकाम तक पहुँचा होगा." वह फिर बोलाः—"तुम्हारा उस संघसे क्या मतलब है ? यदि मेरा मिलाप न हुआ होता तब तो तुम भूल कर चाहे जिस रास्ते चले जाते और व्यर्थ दुःखी होते; परन्तु अब मैं साथ हूँ, अब तुम्हें किसीका काम नहीं पड़ेगा. मेरा निवास सदा इस मार्गमें ही है. वह सिर्फ तुम्हारे समान पथिकोंको इच्छित सुख देनेके लिए ही है. अब तुम सारी चिन्ताओंसे मुक्त हो जाओ. मैं तुम्हें नये किस्मके अनेक इच्छित सुखोंका भोक्ता करूंगा. मेरे साथ चलो. (उँगलीसे अच्युतमार्ग बताकर) वह मार्ग तो महाकष्टकारक है, उस ओर भूल कर भी न जाना."

इस चंचल दिव्य पुरुषके रूप, रंग और ऐसी सरलतागर्भित बातोंसे पथिक एकदम भूल, जरा भी विचार करनेका समय न लेकर तुरंत उसके साथ चलने लगे. यह देख अंतरिक्षमें स्थित विमानवासियोंसे महात्मा वामदेवजी निःश्वास छोड़कर बोलेः—"बहुत बुरा है ! अरे ! अपनेसे श्रेष्ठ, परोपकारी और अपना हित करनेके लिए ही प्रवृत्त हुए गुरुजनका उपदेश जो नहीं मानता अथवा उस पर विश्वास नहीं रखता उसकी उस निंद्य कृतिका ऐसा ही परिणाम होता है ! महामाया ज्ञानीके भी मनको जबर्दस्ती महामोहमें डुबा देती है, तो फिर अज्ञानीकी क्या दशा ? मायासे ठगाया हुआ जीव गुरुवचनपर संशय करता है और अच्युत प्रभुमें भेद देखता है. सत्यका संग त्यागता और बारम्बार जन्ममरणको ही प्राप्त होता है. इन मूढोंने पहलेसे ही यही महात्मा सत्साधकके वचनों पर विश्वास रखा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता तो ये ऐसे टेढ़े मार्गमें न आते. पर ये तो उस कपटी कामके वश होकर नरकमार्गमें आरूढ़ हुए हैं! अब इनकी क्या गति (उपाय) है?" इस प्रकार कह कर विमानको इस मार्गकी ओर फिराया और उसमें उपविष्ट पुण्यात्मा स्थिरचित्तसे उनका विनोद देखने लगे.

बहुत देर तक उस सुन्दर पुरुष—जिसने अपना नाम 'काम' बताया था—के साथ ये पथिक अपने मनको बहँकाते चले. उसकी अनेक प्रकारके वैभव विलासकी मोहक बातें सुनकर इन जीवोंको चलनेका जरा भी परिश्रम मालूम नहीं हुआ. बातोंसे इनके मनमें अनेक प्रकारकी कामनाएं पैदा हुई. अंतमें देर भी बहुत हो गयी थी और रास्ता भी बहुत कट गया था इस लिए एक एक कर पथिक एक दूसरेसे अपनी थकावट और भूख प्यास बताने लगे. थोड़ी देरमें एक आश्रम आया. उसे दिखाकर कामने कहा:—"घबराना नहीं, यह सुन्दर आश्रम तुमलोगोंके उतरने (विश्राम करने) के लिए है. इसीमें जाकर मुकाम करो. वहां तुम्हारे लिए सब आवश्यक चीजें तैयार हैं; और जबतक तुम्हारी इच्छा हो तबतक उसमें रह सकोगे. यह आश्रम ऐसा है कि इसमें रहने या न रहनेके विषयमें किसीको कुछ प्रतिबंध नहीं है. ऐसा होते भी मार्गस्थ (रास्ता चलनेवाले) होनेके कारण तुम्हारी इच्छा अधिक रहनेकी न हो तो आजकी रात सुखसे बिताओ, कल चलते समय मैं फिर यहां आकर तुम्हें मार्ग बतानेके लिए तैयार रहूँगा. ऐसा कहकर वहांसे वह चला गया और वे सब पथिक रास्तेसे उतरकर बाजूके आश्रममें गये.

यह आश्रम एक अति विशाल और शोभायमान धर्मशाला थी. उसका बड़ा दरवाजा बंद था. ज्योंही पथिक उसके पास गये त्योंही वह आप ही आप फड़ाफड़ खुल गया और उसमेंसे एक पुरुष बाहर आया. यह पुरुष इस धर्मशालाका व्यवस्थापक था. यह उन्हें आदरसे भीतर ले गया और प्रत्येकके लिए तुरंत बैठने सोनेकी सुविधा कर दी. फिर यह एक कमरेमें गया. इस कमरेकी दीवार जालीकी बनी थी और उसमें जानेकी खिड़की भी जालीकी ही थी, इससे भीतर क्या है यह सब अच्छी तरह देखा जा सकता था. भीतर खानेके लिए अनेक प्रकारकी स्वादिष्ट मिठाई थालीमें सजी हुई रक्खी थी. एक ओर जलके पात्र, एक ओर खेल-क्रीड़ाकी चीजें, और एक बाजूमें सोना मोहर आदि अमित धनकी राशि (ढेरी) पड़ी थी. उसमें मनुष्यके उपभोगकी सारी वस्तुएं थीं. यह पुरुष भीतरसे एक जल-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पात्र लाया और सब पथिकोंको आवश्यक जल दे गया. जिनका पाथेय (राह-खर्च) उठ गया था उन्हें भोजन भी ला दिया. रात होने लगी, इसलिए दिया बत्ती जला कमरेकी जालीदार खिड़की बंद कर वह वहांसे चला गया. जब सब भोजन करनेको बैठे, तो जिन्हें धर्मशालासे भोजन मिला था उनके पासका अत्यंत स्वादि पदार्थ देख, दूसरोंका मन भी उसको लेनेको ललचा. इससे वे अपना अन्न फेंककर उस कमरेसे अन्न लानेके लिए प्रयत्न करने लगे. बहुतोंके मनमें यह भी विचार हुआ कि 'देखें तो सही, इन सब कमरोंमें क्या भर रक्खा है ?' इस विचारसे अनेक लोग कमरोंकी खिड़कियोंके पास जा खड़े हुए, उन पर बड़े और शुद्ध अक्षरोंमें लिखा था कि, " मा प्रविश्यताम्, भीतर मत पैठो. " तो भी उसकी परवा न कर कई पथिक भीतर घुस गये. पास ही सजाकर रखी हुई थालियोंमेंसे मिठाई लेकर खाने लगे. वे विचारते थे कि उस व्यवस्थापकने बाहर लाकर जो मिठाई दी थी वह इसीमेंसे ले गया होगा; परन्तु यह उनकी भूल थी. पथिकोंको जो मिठाई दी गयी थी वह अच्छी थी और दूसरे कमरेसे लाकर दी गयी थी. यह मिठाई जिसे वे स्वाद पूर्वक खाते थे, बहुत मादक थी. उसमें ऐसा विषैला मिश्रण किया गया था कि उसके खाते ही उनका सिर घूमने लगा और वे परस्पर अपशब्द बकने लगे. फिर वे उस अत्यंत विस्तृत कमरेमें इच्छानुसार चहूं ओर फिरने लगे, तब एक ओर पड़ा हुआ वह धनभाण्डार उनकी आंखोंके सामने पड़ा. संसार-की माया ऐसी है कि चाहे जैसी अस्वस्थ अवस्थामें भी मनुष्यको धनेच्छा नहीं छोड़ती. तदनुसार यह द्रव्यभाण्डार देख कर वे इसमेंसे मोहरोंकी गठरी बांधने लगे. एक कहता है कि:—' यह सारा द्रव्य तो मेरा है, इसे तू क्यों लिए जाता है ?' तब दूसरा कहता है कि, ' चल मूढ़ ! यह सब तो मेरा है.' ऐसा करते करते वे परस्पर लड़ पड़े और ऐसा घमसान मचा कि अनेक लोग घायल हो गये और कमरेका बहुतसा सामान भी नष्ट भ्रष्ट हो गया. एक दूसरेके भयसे बहुतसे भागकर बाहर आने लगे; परन्तु किस तरह आयें ? खिड़की बिलकुल बंद थी. उस खिड़कीमें यह चमत्कार था कि भीतर जानेके लिए वह स्वयं खुलजाती और भीतर जाते ही इस प्रकार बंद हो जाती कि भीतर गये हुए लोगोंको उसके खोलनेकी कल जाने विना बाहर आना बिलकुल ही अशक्य हो जाता था. इससे ये पथिक भी ठीक ही ठीक सपड़ाये और अपने ही हाथसे कैदमें जा पड़े. फिर जालीसे देख कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाहर रहनेवालोंसे दरवाजा खोलनेके लिए विनय करने लगे. पर कौन खोले ? उनमें फिर दूसरी ही तकरार पैदा हुई.

खा पीकर वे एकान्तमें बातें करते और भीतर जानेवालोंको अनुचित काम करनेसे रोकते तथा धमकी देते बैठे थे, इतनेमें वहां एक अतिशय रूपवती तरुणी आयी. वह दीन होकर कहने लगीः—"अरे ! तुम इतने बहुत पुरुष हो, उनमेंसे क्या कोई भी मेरी रक्षा नहीं कर सकता ? मैं एक अबला हूँ, बहुत धनवाली हूँ; इस लिए जो मेरी रक्षा करेगा, उसे असंख्य धन देकर उसकी स्त्री हो रहूँगी ?" नवयौवना सुन्दरीको देखकर वे पथिक सब बातें छोड़कर उसके मुखचंद्रकी ओर चकोरकी तरह देखने लगे. प्रत्येकके मनमें उसके लिए आसक्ति पैदा हुई और सब मनमें चाहने लगे, कि, अपार धन सहित यह सुन्दरी हमें प्राप्त हो तो अहो भाग्य ! परन्तु उसकी बातोंमें क्या मर्म भरा था उसका किसीने पलभर भी विचार नहीं किया अर्थात् उसने अपनी रक्षाके लिए विनय की थी और रक्षा करे उसीके अधीन होकर रहना सूचित किया था, उस विषयमें तो किसीने पूछा भी नहीं कि, उसे क्या दुःख है और किससे वह अपनी रक्षा करना चाहती है. फिर वह कौन है, यहां कहांसे और कैसे आयी है, यह भी नहीं पूछा. इतनेमें रास्तेमें उन्हें मिला हुआ वह पथ-दर्शक वहां आ पहुँचा. वह सबसे पूछने लगाः—"क्यों ठहरनेका स्थान तो ठीक है न ? जो कुछ चाहिए मुँहसे मांग लेना. जरा भी विचार नहीं करना?" फिर उस स्त्रीकी ओर देखकर बोलाः—" यह कौन है ? अहो ! लालसा है क्या ? तू यहां कैसे?" तब लज्जितके समान नीचे देखती हुई वह स्त्री बोलीः—"क्या करूँ ? आप तो मुझ जैसीकी ओर नजर भी नहीं करते और वह प्रपंची समूह बारम्बार मुझे सताता है. मेरी समृद्धि उससे देखी नहीं जाती. मैं अबला उसका क्या कर सकती हूँ ? इस लिए यदि किसीके आश्रयमें रहूं तो उनका दुःख मुझे नहीं सता सकेगा, ऐसा विचार कर यहां आयी हूँ." इतनेमें पथदर्शक कामने कहाः—"कुछ चिन्ता नहीं; इन पथिकोंमेंसे कोई बड़ा पथिक तुझे आश्रय देगा. " फिर प्रत्येक पथिककी ओर वक्रकटाक्ष मार कहाः—"यह युवती बड़ी समृद्धिवाली है, इस लिए इसे रखो. इसके लिए तुमपर कुछ आपत्ति आपड़े तो डरना नहीं. मैं अभी जाकर फिर आता हूँ. " ऐसा कह कर वह चला गया !

कामकी प्रेरणा और लालसाके रूपसे ललचाकर पथिकोंने उस स्त्रीका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वागत किया और आश्रमके एक कोनेकी ओर सबने उसे अपनी प्यारी मान, निश्चिन्त रूपसे बैठाया. अनेक तो उसकी सुन्दरतामें इतने लट्टू हो गये कि वे उसके आसपास घेर बैठ गये. वह स्त्री भी अपने कटाक्षबाणोंसे सबके हृदय भेदती थी. जैसे सांपको रस्सी समझ कर पकड़नेसे प्राणान्त होता है वैसे असत्यमें जिसे सत्यका निश्चय होता है, वह अपने आत्माका नाश करता है. उसी तरह विषको अमृत समझ कर पीनेवालेकी गति विष समान होती है, वैसी ही अवस्था उनकी भी होती है जो कामके चेरे बने हैं, परंतु असत् सत् नहीं होता, और सत् असत् नहीं होता है. इन दोनों (सत्–असत्) का निर्णय सिर्फ तत्त्वदर्शी–परब्रह्मको जाननेवाला और सद्गुरुकी सेवामें रहनेवाला ही जानता है.

यह सब खटपट होते चार घड़ी रात बीत गयी. सोनेका समय हुआ. प्रत्येक पथिक मनमें विचार करने लगा कि सबसे पहले यह स्त्री मेरी कामना पूर्ण करे तो मेरा अहो भाग्य है! परंतु इतनेमें एक बड़े वीरके समान प्रचण्ड पुरुष उस तरफ आते दीखा. उसे आते देख कर, उँगलीसे बता कर लालसा पथिकोंसे कहने लगी:—"देखा! वह आता है, वही मेरे पीछे लगा हुआ लुच्चोंका सरदार है! इसका नाम क्रोध है! वह बड़ा बुरा है और झगड़ा या मार पीट करनेमें जरा भी विचार नहीं करता. इससे मेरी रक्षा करो, बस दूसरोंसे तो मैं जाकर लड़ूंगी." इतना कहते कहते तो वह वीर खिड़कीके पास आ खड़ा हुआ और जोरसे बोलने लगा:—"क्यों रे! यहां कौन उतरा है? यहां कोई स्त्री आयी है क्या?" इसके उत्तरमें कोई नहीं बोला; तब वह भीतर घुस आया और इधर उधर देखते ललसाको देख तुरंत ही बड़े क्रोधसे असह्य गालियां देने, पैर पीटने, हाथोंका लट्ठ उठाने और बड़ी लाल पीली आंखें दिखा कर डराने लगा. यह देख, सब पथिक लड़नेको तैयार हो गये और लड़ाई होने लगी. क्रोधका जोर दुगुना बढ़ा, तो भी पथिकोंने उसे नहीं छोड़ा. सब एकबार ही उससे लिपट पड़े, परंतु वे उल्टे उसके अधीन ही होते गये. वे यदि उससे दूर रहते तो उसका जोर नहीं चलता, परन्तु उसे पकड़ कर मारनेके विचारसे लिपट गये इससे इतने अधिक जर्जरित होगये, कि क्रोध अकेला और वे इतने सब होते भी वह सबको अपने साथ घसीट कर ले चला. इस समय कई तो अचेत हो गये और अनेक निर्बलकी तरह घसिटते चले. इतनेमें एक नया ही पुरुष वहां आ पहुँचा. उसने इस गड़बड़का लाभ उठा कर सबको भुला-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेमें डाल दिया. सबको एक ओर कर दिया, लालसाको हाथसे उठा कर ले चला. दोकी लड़ाईमें तीसरेका काम हुआ. यह गड़बड़ रास्तेसे ही सुन कर, यह कोलाहल किसका है, यह जाननेके लिए, एक दूसरा विवेकी पुरुष वहां आया और यह अनुचित हुआ बता कर उसने तुरंत बल भर चिल्ला कर पथिकोंसे कहा:—"अरे, मूर्खो! अकेले इस क्रोधसे ही क्यों लिपट रहे हो? देखो! तुम्हारी स्त्रीको तो वह लुच्चा मोह उठाये लिए जाता है. अब तुम उसके पास तक भी पहुँच नहीं सकोगे. यह तो खूब हुआ. स्त्री जाय तो भले ही जाय; पर उसके पासका धन तो कुछ ले लो. चलो, मैं उसको पकड़ लाता हूँ और फिर हम उसका कुछ उपाय करेंगे.

आत्माभ्यासयोगसे जब तक जीवकी भेदबुद्धि शान्त नहीं हुई और वह सर्वत्र द्वैत देखता है; तब तक अतद्रूपा बुद्धि–मायासे मुक्त हो, अद्वैत जो एक ब्रह्म–अच्युत–उस ब्रह्मका दर्शन तो एक ओर रहा, परंतु उसके जाननेकी भी शक्ति नहीं होती. ब्रह्मधाम जानेके मार्गमें जो द्वारपाल हैं उनमें शम, विराग, संतोष और साधुसंग ये चार हैं. ये पथिक इन चारोंका त्याग करनेसे फिर महामायामें मुग्ध हो गये हैं. इन मुग्ध हुए पथिकोंको सचेत कर वह मनुष्य, जिसका नाम लोभ था उस स्त्रीको लेजानेवाले मोहको बुला लाया. इतनेमें वह पथदर्शक काम भी आ पहुँचा. फिर सबने एकत्र होकर ऐसी पंचायत की कि लालसा और कामको स्वाधीन कर उसके पासका धन सब बांटलें. बांटते समय दो दूसरे लोग जाकर उसमें भिड़े. एकका नाम मद और दूसरेका मत्सर था. ये दोनों लड़ाईकी जड़ थे. एक अभिमानी और उन्मत्त था और दूसरा ईर्षालु (अदेखा) था. बांटनेका काम लोभके हाथमें था जो पक्का स्वार्थी और पेटू था. इससे भाग बराबर न होकर धन एक दूसरेको कम ज्यादा मिला. इससे किसीको संतोष नहीं हुआ. जिन्हें जरा कम भाग मिला, वे भी बड़बड़ाने लगे कि यह बराबर बांटा नहीं है. इनमें पहले मत्सर था, वह तो गाली देकर कहने लगा कि, 'हमें फिरसे बांट दो.' इस समय जिनके भागमें कुछ अधिक आया था उनमेंसे मद तड़क उठा कि, 'जाओ, जाओ फिर किसका हिस्सा करें? जिसे जो मिला, वह उसके बापका. इस तरह मद और मत्सर दोनोंकी विरुद्ध बातें हुईं, फिर लड़ाई चली और क्षणभरमें लड़ाईका स्वरूप बढ़ गया. धड़ा–धड़ और पड़ा–पड़ मारा मार चली. इतनेमें बाहरसे अकस्मात् बड़ा डरावना शब्द सुन पड़ा कि, 'क्या है? कौन है? क्या गड़-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बड़ है ! धर्मशालामें किसने हुल्लड़ मचाया है ?' तुरंत चार पहरेवाले हाथम मुद्गर लेकर वहां आ पहुँचे. वे इन लड़नेवालोंको झटपट पकड़ने लगे. इस समय काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मत्सर आदि लुच्चे तो मौका पाकर ऐसी शीघ्रता पूर्वक वहांसे खसक गये कि किसीको खबर तक न हुई, और वह लालसा भी कहां भाग गयी, यह भी जाननेमें नहीं आया.

ये सब घटनाएं विमानवासी एक नजरसे देख रहे थे, वे वामदेवजीसे कहने लगे:—"गुरुदेव ! इनमें तो सभी पथिक पकड़े गये ! और वह मंडली तो न जानें कहां गुप्त हो गयी." वामदेवजीने कहा:—"यह ऐसा ही होना है, मायामें लुब्ध करनेवाले हितशत्रुओंका कामही ऐसा होता है. जैसे आंखें शब्दको नहीं देख सकतीं वैसे विषयबद्ध जीव परब्रह्मको नहीं देख सकते, क्योंकि दोनोंका स्वभाव समान नहीं है और इसी तरह विषयोंका अनुसंधान करनेवाले जीव नीच जन्म प्राप्त कर सब इंद्रियां पा आत्महित नहीं जानते. वे ही सच्चे आत्मघाती हैं और उन्हींको इस संसारमें बड़े बड़े दुःख होते हैं. परंतु अब पकड़े हुए जीवोंकी क्या दशा होती है वह देखो ! ये पहरेदार धर्मशाला-विभागके हैं. रातमें ये एक दो वार जांच करने आते हैं. यह मार्ग यमलोकका है, इसलिए यहां सब सत्ता भी यमराजकी ही होनेसे ये पहरेदार भी यमके ही दूत हैं. अब स्वयं ही इन हतभाग्य पथिकोंके कर्मोंसे यमका दरबार देखनेका तुमको भी अवसर मिला है. ,'

जांच करनेको आये हुए ये दूत तुरंत भीतर आकर खूँटियों पर टँगी हुई पथिकोंकी पोटली, जिनमें उन्होंने पुरद्वारसे प्राप्त हुए स्वतंत्रपत्र रखे थे पहले ही कब्जेमें कर लीं. स्वतंत्रपत्र गये तो सब गया. इनके बलसे अब तक उनपर कोई जबर्दस्ती नहीं कर सकता था. वे स्वतंत्र थे, अर्थात् जो चाहें वह करनेको अधिकार था. परन्तु अब सब खो बैठे, परतंत्र हो गये. फिर दूतोंने तुरंत उन्हें पकड़ पकड़ कर प्रत्येकके हाथमें हथकड़ियां डाल दीं. इसके बा. दूत फिर भीतर उस जालीदार कमरेकी ओर देखते हैं तो वहाँ भी वैसी ही अवस्था थी. भीतर गये हुए सभी जीव मजा मौज करके बैठे थे. कोई तो अब तक नशेमें ही ऊंघते थे. यह देख दूत बहुत ही क्रुद्ध हुए. उन्हें भी पकड़ पाशद्वारा एकसाथ बांध लिया और फिर सबको धर्मशालाके बाहर कर क्षणभरभी विलंब होने न देकर उसी समय, इस भारी अपराधका दंड दिलानेके लिए उन्हें यमपुरमें ले जानेको तैयार किया. दो दूत आगे और दो पीछे हुए. अनेक कटुवाक्यों और हाथके मुद्गरोंसे ताड़न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करते (धमकाते) चलने लगे. सिर और पीठपर धड़ाधड़ मुद्गर पड़ने लगे और हृदयको विदीर्ण करनेवाली क्रूर हुंकार सुनाई पड़ने लगी. इससे नशेमें बेवश होनेवाले पथिकोंका नशा भी कहीं जाता रहा और वे 'अरे रे ! अरे बापरे ! हाय हाय रे !' ऐसी पुकार मचाने लगे; फिर सब जोरसे पुकारने लगे कि:—"अरे दुष्ट काम ! तुझ पापीने ही हमें फँसाया. हाय रे ! तू चांडाल हीने हमें बुरे मार्गमें लाया. अरे ! तूने ही उस लुच्ची स्त्रीको स्वागत करनेकी हमें सम्मति दी और तेरे कहनेसे ही हमें अपना (पाथेय) छोड़ स्वादिष्ट भोजन करनेकी इच्छा हुई. पर कौन क्या करे ? हाथके किये हुए हीने हृदयको दुःखित किया है. परमदयालु और परोपकारी महात्मा सत्साधकका साथ न छोड़ते, अरे ! उसके प्रत्येक शब्दपर विश्वास किये होते तो यह दुःख भोगनेका दिन न आता. उसका संग त्यागनेसे ही चित्तको वैधुर्य (मोह) पैदा होने और अजेय पापी पिशाचकी हम पर दृष्टि पड़नेसे, हम परब्रह्मको भूल महामायामें फँसे हैं." फिर दूतोंसे वे बड़ी नम्रतासे प्रार्थना करने लगे कि "दया करो ! दया करो ! फिरसे हम ऐसा काम कभी नहीं करेंगे. हम किसीकी न सुनकर अब सीधे अच्युतमार्गमें ही चले जायँगे." परंतु वे सुनें किसकी ? उन्होंने तो उत्तर दिया कि:—"हमें तो सिर्फ अपराधियोंको पकड़ ले जानेका ही अधिकार है, क्षमा कर छोड़ देनेका अधिकार नहीं है. इसलिए एक वार तो तुम्हें यमराजके समक्ष होना ही पड़ेगा. फिर दंड दें या छोड़ दें, यह वे जानें. मदारीके हाथमें जैसे बंदर हो वैसी दशाको प्राप्त हुए वे अविश्वासी और प्रमादी पथिक, वासनामें मौज मान व्यर्थ ही अति दुःखरूप यममार्गमें चले.

विमानस्थ पुण्यात्माओंसे गुरु वामदेवजी कहने लगे:—"नास्तिकता, गुरुवचनपर अविश्वास, अश्रद्धा, वासनामें लीनता और प्रमाद इन भारी दुर्गुणों का यही परिणाम है. परन्तु उषःकाल होता है इसलिए स्नानादिसे निपट लो ! फिर अच्युतपुरगामी महात्मा सत्साधकके संघके दर्शन करनेको तैयार हो." महाराजा वरेण्यु बोले:—"कृपासिन्धु ! हम लोग ऐसे फिरेंगे तो फिर ये यमदूतोंके अधीन होनेवाले पथिकोंका क्या होता है, यह देखनेको हमें नहीं मिलेगा."

गुरुजी बोले:—"यममार्ग बहुत लम्बा है, इससे यमपुर पहुँचते इन लोगोंको बहुत विलंब लगेगा. फिर अच्युतमार्ग देखनेके बाद हमें दूसरे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनेक कार्य करने हैं. अभी पुरद्वारमें रह जानेवालोंकी स्थिति तो हमें देखनी बाकी ही पड़ी है. उसे देखनेके समय यमलोक और वहां जानेवालोंकी स्थिति आदि सब मैं तुम्हें बताऊँगा." फिर विमान आकाशमार्गको उड़ा. सर्व पुण्यात्मा अपने अपने प्रातराह्निकमें प्रवृत्त हुए. प्रातःकाल हुआ. सूर्यदेवकी स्वर्णरंग समान कोमल किरणें पृथ्वी पर फैल गयीं और पुण्यात्मा लोग अपना अपना प्रातराह्निक और गुरुचरणोंको प्रणाम कर तैयार हो गये. विमान अच्युतपथ पर, जहां सत्साधकका संघ उतरा था, आकर अंतरिक्षमें स्थिर हुआ और जमीनसे समर्थ अच्युत प्रभुके नामका जयजयकार सुन पड़ा. वहां सब पुण्य जन नीचे बैठे थे. थोड़ी देरमें संघ स्नानसंध्यादि कर चलनेके लिए तत्पर हुआ और मंगलाचरणमें जयजयकार चलने लगा. उस समय गुरु वामदेवजीने महाराजा वरेण्युसे इस प्रकार पूछा जिससे सब सुन सकें. आपने कहा:—"क्यों भला वरेण्यु! अब तुम सबको इन पथिकोंका मार्ग कैसा लगता है? उनकी स्थिति कैसी है?" वरेण्यु बोले:—"दयानिधान! यह देख कर मुझे बड़ा हर्ष होता है कि इनका मार्ग उत्तरोत्तर बहुत निर्भय है, इनकी स्थिति भी बहुत अच्छी और दृष्टिसे परे है. उसका वर्णन करना भी अशक्य है. भव्यतामें भव्यता लीन होती है. व्यावहारिक जनोंकी दृष्टिमें भयंकर त्रासदायक मालूम होता यह मार्ग आनंद, ऐश्वर्य, महत्तासे परिपूर्ण है. इसकी महत्ता वर्णन करने योग्य नहीं है. यह मार्ग भव्य और विज्ञानमय है. इस मार्गमें गये हुए जीव सर्वात्मभावको प्राप्त हुए हैं. उनके शरीर भी पहलेसे तेजस्वी, पवित्र और शान्त बने हैं. ये भी स्वाभाविक ही सरागी (आसक्त) हुए हैं. महात्मा भव्य मालूम होते हैं. इन सबको देख इस ओर भी प्रेमका प्रतिबिम्ब हुआ है. इनका मुख प्रसन्न है, मन पहलेकी अपेक्षा अधिक श्रद्धावाला दीखता है. मार्ग यद्यपि अरण्यमें है, तो भी बहुत पुण्यरूप आल्हादमय है. दोनों ओर सुन्दर अमराइयां खड़ी हैं, पक्षी मधुर शब्द बोल रहे हैं, ठौर ठौर जो जलाशय दीखते हैं उनमें निर्मल मीठा जल भरा हुआ है. फिर मार्ग चलते महात्मा सत्साधक वारंवार सवेश्वर अच्युत परब्रह्मके अद्भुत गुणोंका कथन करता जाता है. यह सुन कर पथिकोंको मार्गश्रम जरा भी मालूम नहीं होता. देखो, सब प्रेममें लीन हैं. आनंदमें मग्न हैं. ज्ञानी और प्रेमी पथिक तो उस प्रभुके पवित्र गुण सुन कर उसकी अपार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शक्ति और अद्वितीय दयालुताके प्रभावके लिए बहुत आनंदसहित आश्चर्य प्राप्त कर, प्रेम उमड़नेके कारण स्वयं भी मधुर स्वरसे गा रहे हैं."

इस प्रकार परम आनंदसे पथिक चले जाते हैं. यह संघ कुछ देरमें एक रम्य स्थानमें जा पहुँचा. वहां अनेक वृक्षोंसे ढके हुए पर्वतसे पवित्र जलवाली सुन्दर सरिता बह रही है. उसके तटपर उस पर्वतकी तराईमें एक बड़ा भव्य देवालय बना हुआ है. देवालयसे सहस्रावधि मनुष्योंकी एक साथ जयध्वनि सुनाई पड़ती है. वह जयध्वनि बहुत दूर पहुँच जाने पर, दुन्दुभी और घंटानादसे भी अधिक प्रिय लगनेवाले, स्वररूपसे कानोंसे टकराती सुनाई देती है. सुन्दर देवालयके मणिजड़ित स्वर्णशिखर और उसपर फहराती बड़ी ध्वजामें अंकित गरुड़ारूढ़ भगवान्, देखनेवालेके मनमें अच्युत प्रभुके उत्तम यशका स्मरण कराते हैं. वह पवित्र स्थान अच्युतमार्गकी दाहिनी बाजूपर है. उसके पास पहुँचते ही महात्मा सत्साधक मार्गमें खड़े हुए उस सत्संघसे कहने लगा:—"हे पुण्यवान् पथिको! हमलोग अपना आजका मुकाम यहीं पूरा करें. दो तीन दिनोंसे हम चले आ रहे हैं इस लिए कुछ दिनों तक यहीं ठहरें. इस स्थानमें एक बहुकालीन तीर्थ है कि जो, जिसकी शरणमें जानेके लिए हम लोग प्रेमबद्ध हुए हैं उस अच्युत प्रभुके सगुण स्वरूपका मनुष्योंको परिपूर्ण भान करानेवाला है. इसका नाम 'अच्युततीर्थ' है. यहां मुकाम करनेमें सबको सिर्फ आरामका ही लाभ नहीं. किंतु दूसरे अनेक लाभ हैं. सारे प्राणियोंको एकाकार स्थितिमें लेजानेवाले सर्वेश्वर अच्युत प्रभु कैसे हैं, यह प्रत्यक्षके समान हम लोग इस तीर्थसे जान लेंगे. उन प्रभुको कौन वस्तु प्रिय और कौन अप्रिय है, वे किसके द्वारा हमपर प्रसन्न हों, उनके चरणोंमें किस तरह शीघ्र जा पहुँचें, इत्यादि अनेक बातें यहां निवास करनेसे हमारे जाननेमें आवेंगी. फिर हमसे पहिले इस मार्गमें गये हुए और हमसे इस मार्गके विशेषज्ञाता, दृढ़ मनवाले, तथा वासनारहित अनेक जीवोंका साथ भी होगा. वे चाहे जितने बड़े हों तो भी निरभिमानी हो प्रेमपूर्वक समर्थ अच्युत प्रभुके दासानुदास कहलानेमें ही आत्मकल्याण मानते हैं. इस सर्वोत्तम तीर्थमें साक्षात् अच्युत परब्रह्मका प्रतिनिधि स्वरूप विराजता है. यहां बिलकुल अच्युतपुरका ही अनुकरण किया गया है. यहां हम उस प्रभुमें लीन–एकाकार वृत्तिवाला–होना अच्छी तरह जानलेंगे." यह सुन बड़े हर्षसे कृपालु प्रभुका जयजयकार कर संघ अच्युत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तीर्थकी ओर फिरा. तीर्थमें आगंतुक संघको ठहरानेके लिए विस्तीर्ण पथिकाश्रम था. वहांके अधिकारियोंने महाद्वारके पास आकर वैसे ही जयघोषद्वारा उनका स्वागत किया. फिर प्रत्येक पथिकके पासका स्वतंत्र-पत्र देख देख कर भीतर जाने दिया. सब पथिकोंने पुण्यतोया पवित्र सरितामें स्नान किया. उनके ललाट आदिक (सिर आदि) अंगोंपर केसर कुंकुमादिके चिह्न किये गये और उत्तम प्रकारसे गंध पुष्पादिक पूजोपचार (पूजाका सामान) सहित उन्हें उस मंदिरमें विराजते हुए अच्युतरूपके दर्शन करनेको जानेकी आज्ञा हुई. महात्मा सत्साधक आगे हुआ और उन्हें मंदिरमें ले गया.

अब तक विमानवासी सब देख सके थे, परंतु अब मंदिरमें क्या है यह वे अंतरिक्ष (आकाश) में रह कर नहीं देख सके. इससे वरेप्सुने गुरुदेवसे विनय की, बस, विमान सरर्र करते नीचे उतर आया और मंदिरके द्वारके पास इस तरह खड़ा हुआ कि जिससे विमानमें बैठे हुए सब पुण्यात्मा मंदिरका सब दृश्य देख सकें, परंतु मंदिरमें आनेजानेवाले किसीको कुछ अड़चन न पड़े और जमीनका भी कोई मनुष्य देख न सके. यह अद्भुत गुण उसकी दिव्यतामें था. विमान स्थिर होते ही सबकी दृष्टि एक ही वार मंदिरके मध्यभागमें विराजे हुए मणिमय और तेजोमय गूढ़ सत्त्वसे परिपूर्ण, दिव्य, भव्य, ज्योतिरूपके ऊपर पड़ी. उसी समय सारे विमानवासियोंने बड़े हर्षसे जयजयकारकी महाध्वनि की. असंख्य तीर्थवासी, संघके पथिक और पुण्यात्मा इन सबके वारंवार होनेवाले एकत्र जयघोषसे वह विशाल मंदिर तो क्या परंतु अपार विशाल आकाश तक गर्ज उठा. यह जयगर्जना सुनकर उन प्रत्येक मनुष्योंके मनमें बहुत गंभीर भाव उत्पन्न होता था. मंदिरके मध्यभागमें बड़े विचित्र रत्नसिंहासन पर अनेक गूढ़ सत्त्वसे लवलीन, छबीला, मंगलमय, श्यामसुन्दर ज्योतिरूप विराज रहा था. इस स्वरूपका वर्णन करनेके लिए भारती (सरस्वती)भी असमर्थ है. वस्त्रालंकार भी उसे बिलकुल अलौकिक ही पहराये गये थे. वारंवार सेवारूपसे उसे दिये जानेवाले मानसिकोपचार भी अलौकिक ही थे. वहां दिव्य वीणा, मृदंग, ताल आदिक बाजोंके साथ बहुत मंजुल (मोहक) और मधुर स्वरसे समर्थ अच्युत प्रभुकी विमलताका (पवित्रताका) गूढ़ गान हो रहा था. तीर्थवासी और पथिक अच्युत प्रभुकी उस अद्भुत मूर्तिको देख कामनाशून्य भावसे उसके चरणोंमें वारंवार दंडवन्नमस्कार और गद्गदस्वरसे प्रार्थना करते कि,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हे प्रभो! कृपा कर सब कामनाका लय कर, निर्विघ्न अपने रूपमें मिलाकर निर्भय करो."अपनी अंजलिके सुपुष्पोंको प्रभुमें चढ़ा कर प्रसन्न हुए वे लोग शान्त होकर वारंवार परब्रह्मके उस अद्भुत रूपको चरणसे मुकुट पर्यंत देखते थे. वे, महात्मा सत्साधकके उपदेशको वारंवार ध्यानमें रख उस मंगल-स्वरूपको अपने हृदयमें अंकित करते थे. विशुद्ध और निर्मल हृदयके लोग इस दर्शनसे तद्रूप बन गये. इनमेंसे एक पथिक तो उस स्वरूपका अवलोकन करते हुए ऐसा प्रेमबद्ध होगया कि मैं कहां खड़ा हूँ और किस स्थितिमें हूँ इसका भी उसे कुछ स्मरण न रहा. थोड़ी देरमें स्वस्वरूपके प्रेमावेशमें वह ऐसा प्रेमबद्ध हो गया कि एकदम नाचते कूदते, ताली बजाते, मुखसे अच्युत प्रभुके जयजयकार पूर्वक अनेक नामोंका उच्चारण करते और हँसते हुए उन्मत्तकी भांति मंदिरमें खेलने लगा. बहुतसे पथिक इसे पागल समझ हँसने लगे; परंतु महात्मा सत्साधक इसकी आंतरिक (भीतरी) स्थितिका ज्ञाता था. वह सबसे कहने लगा:—"इसे तुम पागल मत समझना, यही बड़ा भाग्यशाली है और इसीके पल्लेमें सुकृतिके पुण्योंका पुंज एकत्र हुआ है. यह पूर्ण साधनसंपन्न है और इसमें वासना--सब लौकिक वासनाका त्याग--विराग--निरभिमान सुदृढ़तासे बसा है तथा इस चैतन्यस्वरूपके साथ इसके आत्मिक स्वरूपके पूर्वकालका संसर्ग है, इससे यह स्वरूपको देखकर पूर्व भावमें लीन होगया है. जैसे बालक भूख और देहकी पीड़ा भूलकर अपने प्रिय खिलौनोंके साथ खेलता है, जैसे अहंता, ममताशून्य सुखप्राप्त यह प्रेम-बद्ध भी सब भूलकर परमात्मामें रमण करता है. चैतन्यरूप आकाशमें रह-नेवाला प्रेमबद्ध ब्रह्मवेत्ता कभी नग्न, कभी कपड़े पहने, कभी वल्कल पहरे, कभी उन्मत्तकी तरह, कभी बालकी तरह, कभी पिशाचकी तरह, कभी माद-कपदार्थपान करनेवाले भंगडकी तरह, कभी विषयोंमें, कभी विषयोंसे बाहर फिरता है और चाहे कोई आदर दे या अपमान करे, परंतु इससे उसे कुछ भी विकार नहीं होता. शरीरके अभिमानसे रहित जीवको प्रिय अप्रिय कुछ नहीं. जैसे कोई प्रेमिका स्त्री, पतिका पहले पहल और बहुत कम समागम होनेके बाद तुरंत बिछुड़ गयी हो और बहुत समयके वियोगके अंतमें फिर उससे मिले, उस समय उसके मनकी जो स्थिति हो, वैसी स्थिति यह अच्युतरूप देखकर, इस प्रेमबद्ध जीवकी हो रही है। यह अपने हृदयके उभड़े हुए प्रेमानन्दमें निमग्न हो गया है। यह महात्मा तो हम सबको वंद्य है; क्योंकि इसमें अच्युत प्रभुकी प्रेममयी भक्ति निवास करनेसे यह उस समर्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सचराचरव्यापी परब्रह्ममें लीन हो रहा है. हृदयकी शुद्धवृत्ति विना प्रेम नहीं होता और प्रेम विना एकाकारवृत्ति–अभेदभाव प्रकट नहीं होता. जबतक अभेद नहीं होता, अंतःकरण शुद्ध नहीं होता तबतक जीव ज्ञाता होने पर भी फिर पतित होकर विनाशरूप पाशमें आ फँसता है. तुम्हें तो परम रहस्य जाननेकी इच्छा है परंतु सिर्फ जाननेकी ही इच्छा—सच्ची मुमुक्षुता नहीं है. सच्ची मुमुक्षुता प्रेमबद्ध होकर, चैतन्य और चैतन्यकी लीनतामें है. साधनसंपत्तिसे विकसित हुई मुमुक्षुता ही मुमुक्षुता है. आत्मसत्तासे एकरस हुआ आत्मा,अभिन्न,अनेक विलक्षण चमत्कार देखता है; परंतु जो उसके पास पहुँच जाता है वही सच्चा आत्मज्ञानी और सच्चा मुमुक्षु है. जो जीव वासनाग्रस्त नहीं है उसीमें ऐसी सिद्धि आ सकती है. वह जो कुछ देखता है उसे अन्य नहीं देख सकता, वह जो सुनता है वैसा दूसरा नहीं सुन सकता, वह जैसी देहको प्राप्त करता है वैसी अन्य देह नहीं है.तुम्हारे मनमें प्रेमात्मज्ञानका भाव है और प्रेमात्मज्ञान–चेतनमें एकाकार वृत्तिकी बातें सरल, सहल–संकट शून्य और विना कष्टकी हैं, परन्तु प्रेमात्मज्ञानरसका पान कर मग्न हो जाना अत्यंत दुर्घट कार्य है. अनेक शंका, अनेक भय, सब वासनाएं और सब कार्यभावोंका नाश किये विना, निःशंक अभयस्थान—परमात्मामें अभेद भाव वृत्तिरूप अभय स्थान–प्राप्त नहीं होता. स्थूल वासनामें लीन होजानेवाला, आत्मज्ञानके आवेशमें आगे बढ़ेगा और वह सत्त्व–गूढ सत्त्व अच्छी तरह जानकर उसमें तन्मय हो सकेगा, परंतु यदि वह पूर्ण साधनसंपत्तिसम्पन्न न हो तो उसके जीवनका हेतु सार्थक होनेपर भी उसे प्रेमात्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना कष्टदायी हो जाता है. विशुद्ध प्रेमात्मप्रसादशून्य–अपरिपक (कच्चा)—संपत्तिरहित वह प्रेमी तत्त्वज्ञकी स्थितिको नहीं पाता और तुम प्रेममें पागल देखते हो परंतु यह वैसा नहीं है. इसकी वृत्तियां अभेदपनको प्राप्त हुई हैं, इससे यह परमात्मामें एकाकार हो गया है. देखो ! इसने निर्भयताके मंत्रजपसे सब वासनाएं टाल दी हैं और उनमें जो यह देखता है वह हम नहीं देखते. " स्थिरचित्त, निश्चयदृष्टि और सूक्ष्म प्रमाणोंसे सत्साधकने जो जो बातें कहीं उन्हें सुनकर सबकी वृत्तियां विस्मयमें ही लीन हो गयीं. सर्वव्यापी, परंतु किसी अदृश्य भावसे अन्य जीव—प्रेमी आत्मा उसके साथ मिलते हुए मालूम हुए. मनोमन एक होगया. सब लोग उस प्रेमबद्धका विशुद्ध आत्मा यथार्थ स्वरूपमें देखने लगे.

विमानमें भी ऐसा ही हुआ. प्रभुकी मूर्तिका दर्शन होते ही सारे पुण्यात्मा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चित्रवत् बन गये और महाराजा वरेप्सुको समाधि लग गयी. वे जहां बैठे थे वहींके वहीं मूर्तिवत्–चित्रवत् हो गये. थोड़ी देरमें उनका शरीर कांपने लगा, उनके रोयें खड़े हो गये, आंखोंसे जल प्रवाहित होने लगा, बैठे थे वहांसे उठ गये, हाथ ऊँचा करकर तालियां बजाने लगे और मादक पदार्थसे पराधीन हुए मनवाले मनुष्यकी तरह अनेक प्रकारकी चेष्टाएं करने लगे. यह सब वरेप्सुके स्वरूपानंदके उमड़नेका परिणाम (फल) था; आत्मा परमात्माकी एकताके शुद्ध भावका दर्शन था; चेतनरहस्य था. ऐसे ही आनंदकी उमंगमें वे फिर सचेत होकर कहने लगे—"अहा ! गुरुदेव ! मैं क्या कहूँ ? कैसी लीला फैली है ! कैसी शोभा बनी है ! आपकी कृपासे आत्मज्ञानरस पीकर उस दशामें मैंने जो प्रत्यक्ष अनुभव किया था, वही स्वरूप यह–यह–यह वही स्वरूप है!उतना ही और वैसा ही सुन्दर है ! पैरोंसे शिखा पर्यंत प्रत्येक अंग मैं विचार विचार कर देखता हूँ तो उसी दिव्य स्वरूपका दर्शन होता है." दूसरे–व्यावहारिक दृष्टिसे देखनेवाले-इसको छैला मानते, मायिक दृष्टिवाले इसे जादू कहते, कोई कहते इसे भूतकी लपेट है, परंतु जिसकी व्यावहारिक वासना निर्मूल होकर जगत्के दुःख सुख विषाद आनंदकी भावना टल जाती और आत्मभाव ही रमण करता है उसकी वृत्ति यही है, ऐसा माननेवाले तो इसका कारण अभेदवृत्ति ही कहेंगे—आत्मबलका रहस्य समझेंगे, सर्वमयताका प्रत्यक्ष दर्शन मानेंगे, मनोविकारकी विशुद्धताका फल जानेंगे, अहंभावनाका लय मानेंगे और सर्ववासनाका तोड़कर फेंका हुआ फल, वृद्धिवृक्षके सिरेतक पहुँचा मानकर बहुत प्रसन्न होंगे. वैसा बननेका यत्न करो. राजा वरेप्सु फिर बोले:—"अहो ! गुरुदेव ! देखो, मरकतमणिके समान श्याम श्रीअंग कैसा सुकोमल है और अहा ! दीप्तिमान् ! परमज्योति ! परम ज्ञानमूर्ति ! पवित्र चेतन है. उसके अंग प्रत्यंगमें वस्त्रालंकार भी मैंने जो वहां देखे थे, वेही सुन्दर और अलौकिक यहां भी हैं. चरणोंमें रत्नके नूपुर, कटिमें (कमरमें) पहरे हुए पीतांबर पर करधनीके स्थानमें किंकिणीवाली रत्नजड़ित कटिमेखला पड़ी है, हृदयमें विराजती रत्नमालाके पदकरूपसे लटकता हुआ महातेजोमय कौस्तुभ, हाथोंमें रत्नमुद्रिका, पहुँचोंमें मणिकंकण, बांहोंमें बाजू, डाढ़ीमें हीरेके चिबुक, नाजुक सरल नासिकाके अंतमें लटकती हुई वेसरका तेजस्वी मोती आदिक यह सौन्दर्य ब्रह्मदेवके मनको भी मोहनेवाला है ! इस सुन्दर श्रीमुखके दोनों गोल और कोमल गालोंपर वह प्रकाशमणि झलक रहा है. वह कैसा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अद्भुत है. उसके शोभायुक्त कानोंमें लटकते हुए मत्स्याकार (मछलीके आकारके) रत्नकुंडलोंकी तेजस्वी प्रभा कैसे नाच रही है. इसका हँसता हुआ कमलके समान मुख, विकसित कमलके समान निर्मल सुकोमल नेत्र, दोनों गालोंपर झुके हुए भ्रमरपंक्तिके समान केश, ललाटमें लगा हुआ कस्तूरीका तिलक–अहा ! परममोहक है. यह मस्तकपरका मोरपखाओंसे अलंकृत रत्नमुकुट चित्तको लुब्ध ही किये डालता है. कंठमें ऊपर नीचे पड़ी हुई अद्भुत पुष्पमालाएं प्रभुके लिये बनानेवालेकी भक्ति और चातुर्यका जय ! जय ! चैतन्यमें एकाकारमें अभेदवृत्तिसे देखनेवाले आत्मप्रसादसे पूर्ण, चैतन्य विवर्तमें तल्लीन ज्योतिमें एकाकार वृत्तिवाले, वासनारहित वृत्तिवाले, प्रेमासक्त, देखनेमें पागलके समान और प्रेमासक्तिमें लीनको जो दीखता है वह अहंभावसे भरे अज्ञानीको नहीं दीखता. उसका भाग्य ही नहीं है, उसका भावभी नहीं है. जितना जो अज्ञानी उतना वह अभिमानी ! उसके मानवजीवनका परम लाभ ही अहंपदमें है. ज्ञानमार्ग देखनेके पहले ही आत्मबल—अध्यात्मरहस्यकी बातें जो करता है उसका वैसा करना–सिर्फ अहंपद ही है. मैं तो प्रेमासक्त ही हुआ हूँ." इस तरह स्वरूपवर्णन करते हुए फिर भी उन्हें प्रेमका आवेश हो आया; जिसमें वे अपनी वर्तमान स्थितिका भान भूलकर अपने आत्मप्रसादमें साक्षात्कारसे अनुभव किये हुए अच्युत प्रभु यही हैं ऐसा विचारकर * पहलेकी भांति ये प्रभु अदृश्य न हो जायँ, इस लिए इस समय उस स्वरूपसे भेटनेके लिए विमानसे ज्योंही कूदने लगे त्योंही वामदेवजी चेत गये और तुरंत प्रभुके नामकी जयध्वनि कराते ही विमान सरसराकर आकाशमार्गको उड़ा.

वरेप्सुको नीचे गिरनेसे गुरुदेवने बचा लिया, परंतु इससे कुछ उनके आत्मानुभव प्रेमका वेग कम नहीं हुआ. उनके कूदने और उसी समय विमानके उड़ने इन दोनों बलोंके आघातप्रत्याघातसे वे विमानमें ही गिरपड़े और गिरते ही मूर्छित–अचेत हो गये. ऐसा देख सब पुण्यजन चिन्तातुर होकर उनकी शुश्रूषाके लिए दौड़ धूप करने लगे. तब गुरुदेवने कहाः–"चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है. ऐसा न शोचना कि इसके आत्माको किसी तरहका कष्ट होता है. यह तो अब कैवल्य ब्रह्मका सुख अनुभव करता है.

* पहले वरेप्सुने जब आत्मानुभव किया था तब स्वरूपानंदमें मग्न हो उनसे लिपटनेको दौड़ पड़े थे, परंतु तुरंत ही भगवान्का रूप अदृश्य हो गया था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और ब्रह्मभावमें मग्न हो गया है. हे पुण्यजनो! इस महात्मा राजर्षिकी यह अवस्था परमप्रशंसनीय (श्लाघ्य) है. इस स्वरूपदर्शनसे ही जब इसकी ऐसी दशा हुई है तब उस कृपालु अच्युत प्रभुका साक्षात्कार (दर्शन) होना क्या बाकी रहेगा? अद्वैत-एकता-जांचकर देखो. चित्तकी ऐसी एकता निश्चलता-तद्रूपता ही भगवत्साक्षात्कारमें कारणभूत है. जिस प्रभुके लिए जिस मनुष्यकी इतनी बड़ी भावना प्रकट होती है, उस शुद्ध प्रेमी भक्तको वह सर्वमय-सर्वव्यापी-सर्वान्तर्यामी समर्थ प्रभु किसी क्षण भी कैसे भूले? साधनसंपत्तिमान्को भूलना तो दूर रहा, निरंतर-प्रतिक्षण वह कृपालु प्रभु इस तरह परिचरण और रक्षण किया करता है जिससे उसके आत्माका श्रेय (कल्याण) हुआ करे और अंतमें सुदृढ़ प्रेम होनेसे चाहे जहां हो वहांसे भी वह उसे अपने चरणोंमें खींच लेता है."

इतनी बातें होते होते तो विमान जगत्पुरके द्वारपर जा ठहरा. वरेप्सु भी जँभाई लेकर उठ बैठे और पुण्यात्मा लोग आनंदित हुए. वरेप्सुने उठते ही गुरुदेवके चरणोंमें प्रणाम किया और क्षणभर अनुभव कियेहुए परमानंदकी उमंगमें कृपालु अच्युतप्रभुके नामकी जयध्वनि की. फिर महात्मा वामदेव बोलेः—"राजा! अब सचेत हो और नीचे देख. क्या तू जानता है हमलोग अब कहां हैं?" तब पुण्यात्मा स्थिर दृष्टि कर शान्त चित्तसे नीचे देखने लगे. फिर वरेप्सु बोल उठेः-"कृपानाथ! यह तो पुरद्वार मालूम होता है. यहां तो बहुत कुछ देखने योग्य है." फिर सब विमानवासियोंको सम्बोधन कर बोलेः—"अरे! ये तो उस सत्साधकके संघसे पिछड़ जानेवाले लोग मालूम होते हैं. अहो! ये कितने भारी संकटमें फँसे हैं? जिस सुखकी लालसासे ये यहां ठहर गये थे, उसका कुछ भी असर इनमें अब नहीं दीखता. अब पलपलमें विडंबना ही आकर इनके गले पड़ती है. अब इन्हें मालूम होने लगा है कि महात्मा सत्साधकका कथन अक्षरशः सत्य था, पर अब उसका क्या फल? इनका जो संसार (प्रपंच) जगन्नगरमें था, वह उससे भी अब यहां बहुत बढ़ गया है; इससे किसी तरह ये उन्नत स्थानमें नहीं जा सकते, परंतु उसीमें दुःख उठाते हुए अनेक उस कालपुरुषका भक्ष्य होकर समूल नष्ट हो जाते हैं." इतनेमें एक पुण्यात्मा बोल उठाः—"राजन्! आप जैसा कहते हैं वैसा ही है. ये सब अनेक प्रकारकी सांसारिक विडम्बनामें फँस गये हैं, परंतु इनमें वह एक मनुष्य बहुत दयावाली स्थितिमें तड़फता मालूम होता है. आपने अभी जैसा कहा, वैसा मानों वह कालपुरुषके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंजेमें ही फँसा हुआ है. उस बेचारेको इस समय कितना भारी कष्ट—वेदना—दुःख होता होगा! मुझसे तो वह देखा भी नहीं जाता." गुरु-वामदेवजी बोले:—"पुण्यश्लोको! अभीसे ही मत घबराना! इस मनुष्यकी स्थिति तुम्हारे देखने योग्य है; क्योंकि इससे बहुत ज्ञान होगा. चलो हम बिलकुल इसके समीप जाँय." तुरंत विमान नियमानुसार नीचे आकर इस तरह अदृश्य रूपसे स्थिर हुआ जिससे विमानवासी इस मनुष्यकी सारी स्थिति बराबर देख सकें.

यह दुःखी मनुष्य जहां पड़ा था वह स्थान इस अत्यंत विस्तृत पुरद्वारका एक वसतिगृह[1] था. उसमें बसनेवाला यह मनुष्य दूसरे सब पथिकोंकी तरह एक पथिक ही था. जैसे पथिकको एकाध रात विश्राम करनेके लिए धर्मशालामें ठहरने दिया जाता है वैसे ही यह स्थान सिर्फ एक पथिकाश्रम होनेसे, इसे कुछ समयके लिए ही उसमें निवास करने दिया गया था. तो भी अपनी मूर्खताके कारण उस स्थानको इसने अपना ही मान लिया और मैं कहां जानेको निकला हूँ, मुझे क्या करना चाहिए, ये बातें भूलकर इसने वहीं अपना डेरा डाला. सत्साधकके संघके भी पहले किसी दूसरे संघके साथ यह अच्युतपुर जानेको निकला था[2]; पर यहां सिर्फ एक रात विश्राम करनेको रहा," इतनेमें प्रमादसे यहांके ही क्षणिक सुखमें भूल गया और अच्युतपुर जानेसे रह गया. धीरे धीरे, स्त्री, पुत्र, पुत्री, धन-दौलत, साहबी, वारांगनादि बहुत बड़े सामानको इसने अपना कुटुम्बवत् मान लिया. यथार्थ देखनेसे तो इसमेंसे कोई इसका न था, परंतु इसे तो जो दीखा, मिला उसे इसने अपना ही मान लिया और उसमें ऐसी गाढ़ ममता बांध दी कि किसी प्रकार छूट नहीं सका तथा धीरे धीरे (उत्तरोत्तर) जैसे समय बीतता गया वैसे ही इसे अपनी सच्ची स्थितिका विस्मरण होता गया. मैं कौन हूँ, कहांसे आया हूँ, किस कामके लिए आया हूँ, मुझे कहां जाना है और यहां मैं किस स्थानमें आया हूँ, इत्यादि सब बातोंका इसे विस्मरण होगया. मेरा घरबार और उत्पत्ति स्थिति सब इस पुरद्वारमें ही है. ये सब लोग मेरे कुटुम्बी हैं और मैं उनका पूज्य हूँ. सबका रक्षक-पोषक हूँ ऐसा यह गर्वसे समझता था.

---

१ रहनेका, निवास करनेका घर अर्थात् जगन्नगरका एक-पुर-शहर.

२ अर्थात् बहुत समय पूर्व वह जीव, जन्मा था और आवर्जन विसर्जन-जन्ममरणवाली अनेक योनियोंमें जन्म लेनेवाला जीव था.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुझे क्या पीड़ा है, क्या कम है, कौन पूछनेवाला है, ऐसा इसका अभिमान था; परन्तु जो वस्तु दूसरेकी है वह दसरेकी ही है. पथिकका अधिकार धर्मशालामें कबतक है ? एक दिन तो इसे डेरा डंडा उठाना ही पड़ेगा. जहां क्षण क्षणमें कराल पुरुषका भय वहां बहुत समय निश्चिन्तरूपसे रहना कुशलरूप कैसे हो ? परंतु यह संसारासक्त मुग्ध जीव नहीं चेता, नहीं समझा और विचार नहीं किया कि इस जगन्नगरसे एक दिन मुझे जाना है और जिस अच्युत ब्रह्मने मुझे यहां भेजा है उसे अपने जीवनके कर्तव्य कर्मोंका हिसाब देना है. बिना खस्सी किये हुए सांड़के समान यह निश्चिंतरूपसे विचरता था; परंतु धीरे २ भयंकर कालपुरुषके लम्बे हाथ इसकी ओर आने लगे. इसके माने हुए कुटुम्बमेंसे थोड़े थोड़े समयके अंतरसे, इसके सामने ही इसके कई परम प्यारे कालपुरुषके मुँहमें समा गये, तो भी यह मूर्ख पथिक नहीं चेता कि यहां मैं निश्चिन्त कैसे पड़ा हूँ. ऐसा करते हुए स्वयम् इसपर ही बाजी आयी. कराल कालपुरुषके विशाल बाहु अपनी ओर आते हुए यह प्रत्यक्ष देखने लगा. ऐसा होनेसे यह मानों बहुत देरकी निद्रासे जाग्रत हुआ हो, इस तरह चेतमें आकर, इस भयसे छूटनेके लिए व्यर्थ कुचेष्टाएं करने लगा. परंतु अब देर होगयी थी. इसका शरीर बहुत जीर्ण होगया था. अपने माने हुए कुटुम्बकी सेवा करके यह बिलकुल ही थक गया था. इसके सिवाय इसके पास भार[1] भी बहुत एकत्र हो गया था; उसके उठानेकी इसमें शक्ति भी नहीं थी. ऐसे सब कारण होते हुए भी यह कालपुरुषके भयसे बारबार चमककर भाग जानेकी तैयारी करने लगा, परंतु उस माने हुए कुटुम्बमें स्थिर हुई झूठी प्रीति, इसे खींच खींचकर पीछे ढकेलने लगी. इसकी इतनी प्रीति होते भी ये कुटुम्बी इसे किसी बातमें न गिनते थे. जर्जरित हो जानेसे यह उनकी कुछ सेवा नहीं कर सकता था और जो वृक्ष फल न दे वह जलानेके सिवाय दूसरे किस काममें आसकता है ? ऐसे ही जो जीव वृद्धावस्था प्राप्त होनेसे, कुटुम्बके लिये निरुपयोगी होजाता है उसपर प्रीति कैसे रहे ? ज्ञानी जीव ही विचारता है कि इस संसारमें प्राणी किंवा पदार्थकी एक स्थिति स्थिर नहीं रहती, इस लिए इससे तरनेके लिए शोक मोह त्यागकर, परमार्थसाधनकी

---

१ वासनारूप कर्मोंका बोझ (भार) पुत्र, कलत्र अर्थात् धन-कीर्ति-स्त्री आदिवासनारूप बोझ. दूसरे रूपमें पाप पुण्यका भी बोझ.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृत्तिको सबल करना चाहिए; परंतु संसारकी दुर्घट अवस्था और व्यर्थ आशा ही आशामें सब तरह बिलकुल अशक्त बन जानेसे इस जीवको बड़ी भारी चिन्ता पैदा हुई और इससे उसके शरीरमें ज्वरने प्रवेश किया. देखो! अब यह जीव महाज्वरसे पीड़ित होकर बिस्तरेमें पड़ा है. इसकी छातीमें कफ भर गया है, गला घरड़ घरड़ कर रहा है, नाकसे पानीके समान श्लेष्मा (कफ) बहता है. आंखें भीतर चली गयी हैं और वे कीच (आंखोंका मैल) तथा अश्रुझरोंसे भर गयी हैं. आंखोंका तेज कम होजानेसे वे फीकी शंखीके समान लगती हैं, इसके कान बहरे हो गये, मुँहसे लार टपक रही है, जीभ छोटी हो जानेसे, साफ साफ बोला भी नहीं जासकता, इसकी नाड़ियां खींचती हैं इस लिए यह अपने हाथ पैर बारबार फैलाय समेटा करता है; इसकी रुचि उठ जानेसे कई दिन हुए इसने कुछ भोजन नहीं किया, हृदय कफसे घिर (रुँध) गया है, इस लिए इसका प्राणवायु नीचे नहीं जाता और इसके मुँहसे धुकनीके समान श्वास चल रहा है. श्वासवायुके नित्य आनेजानेसे इसका मुँह सूखकर काठ हो रहा है और इससे इसे जरासी जलकी जरूरत है, इस लिए ही यह टूटी फूटी वाणीसे 'पा-आ-आ-नी' कर रहा है. पास बैठे हुए इसके कुटुम्बी और सगे स्नेही इसकी सेवा शुश्रूषाके लिए एकत्र हुए हैं तो भी इसकी ऐसी स्थितिपर सच्चे मनसे कोई भी ध्यान देते नहीं दीखा. जिनके कल्याणके लिए इस पुरुषने अपनी आयु बितादी, जिनके सुखके लिए अपने नित्यके सुखका त्याग किया, वे स्वार्थी लोग अब उस पुरुषके देहदुःखकी कुछ भी परवा नहीं रखते. उल्टे उन्होंने ऐसी ऐसी प्रापंचिक बातोंका बाजार खोल रखा है जिससे इस जीवको घबराहट मालूम हो. ऐसे क्षुद्रोंके व्यर्थ प्रेममें भूलकर उनपर आसक्त होनेवाला मनुष्य महामूर्ख है, मूढ है, जादूसे घिरा हुआ नट है. अरे! सृष्टिके स्नेही सच्चा प्रेम रखते हों तो भी इस समय उस महाकष्टमें पड़े हुए इस पुरुषकी कोई भी सहायता नहीं कर सकता. इसके प्रारब्धमें तो जो भोगना है वह है ही. आत्मा चैतन्य-एक ही है, एक, सर्वव्यापी, एकाकार है, वही परम है; परन्तु उसके न जाननेवाले—उसकी खोज न करनेवाले-जीवके कष्टोंका पार नहीं है. न इसका कोई सुनता है और न इसे कोई सुनाता ही है. इसकी स्त्री, जिसके प्रेमके कारण इस जीवने यहां (संसारमें) जीवन गँवाया और अपना सच्चा हित नष्ट किया है, अब बैठी हुई अपने भविष्यत्के संसारसुखको ही रोरही है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उस स्त्रीका अपने पतिके ऊपरका प्रेम—बुद्धि जिसे शंका समाधानसे प्रेम ठहराती है–सत्य नहीं था, परंतु ऐसा प्रेम था जो इस सँसारके जन्ममरणकी घटमालमें गोता खिलाता है; परन्तु इस जीवका प्रेम तो पागल था. यह नहीं जानता था कि यह प्रेम राख होनेवाला है. यह नहीं जानता था कि मर्त्यसृष्टिमें एकरूपसे वहनेवाला प्रेम जुदा ही है. परमज्योतिका प्रेम-मार्ग निराला है. अमित कालपर्यंत (निरवधि) जीवन बनाये रखनेके लिए जो रसपानके योग्य, परम, अनंत, ज्योतिका मार्ग–प्रेममार्ग है उसे इस जीवने नहीं साधा या साधनेका विचार नहीं किया. परमानंदसाक्षात्कारमें मत्त होनेके बदले क्षणिक प्रेम—साक्षात्कारमें मत्त हुए इस पुरुषकी यह सहचरी अभीसे ही अपने लाड़ प्यार करनेवाले पतिका अभाव बोधकर सिर ढँककर रुदन कर रही है. 'इसपर मेरा प्रेमभाव है' यह लोगोंको दिखलानेके लिए वह अनेक प्रकारसे अतिशयोक्तिवाले वाक्योंसे विलाप करती है. यह कितना विषम (क्लेशकर) है ? ऐसे समय इस पुरुषके लिए क्या करना चाहिए इसका विचार करनेके बदले, यह स्त्री 'हाय भाग्य! हाय भाग्य !' ऐसा रुदन करती है, यह कैसा खेदकारक है ? पर हे वरेप्सु ! इसी तरह यह सारा प्रपंच है. इसमें कोई किसीका नहीं, न होगा. यह स्थान सिर्फ अच्युतपुरका एकाध रातका विश्रामस्थान है और एक रातके निवासमें मिले हुए मुसाफिरोंके परस्परका प्रीतिभाव–स्नेह–प्रेम–सब झूठा है. उसे सत्य मानकर जो पुरुष उसमें लिपटता है वह भी इस पुरुषकी भांति पछताकर दुःखी हो तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; परंतु अब क्या होता है उसे सब शान्तचित्तसे देखो." सब पुण्यात्मा स्थिर और शान्त-चित्तसे पुरद्वारमें बननेवाले इस जीवके कालपाशकी स्थिति देखने लगे.

यह पुरुष अत्यंत प्यासा था इससे जलके लिए हाथ पैर पटकने लगा, परंतु उससे कोई नहीं समझ सका कि इसे जलकी आवश्यकता है. कुटुंबियोंके शोरसे यह बहुत ही घबरता था, इतनेमें जिसे प्रिय पत्नी माना है वह अपने नाथकी सँभाल करनेको पास आयी. मनसे तो सभी हैरान हो गये थे कि अब यह पीड़ा कब टले. वे परस्पर बातें करते थे कि, यह डोकरा तो खों खों करता है, मरता नहीं, और न इसे बीमारी छोड़ती. परंतु ऊपरसे पतिसेवामें बहुत आग्रह रखनेके समान वह स्त्री शीघ्रतासे पास आकर कहने लगी:—"अ अँ ! तुम्हें क्या होता है ? क्या तुम्हारा जी घबराता है ? कई दिनोंसे खाया नहीं इसीसे घबराहट होती होगी." जो पुरुष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्माण्डकी अभेदलीला देखते भी, अभेदमय चैतन्यको जाननेका प्रयत्न नहीं करते, उनका इस लोकका फेरा व्यर्थ ही जाता है. ऐसे जीवोंको इसका बोध नहीं है कि अनंत जीवोंकी सृष्टि परमात्मासे ही हुई है, इस सृष्टिसे अधिक सत्त्ववाली सृष्टि है, उससे अधिक सत्त्ववाली सूक्ष्म सृष्टिकी महासृष्टि है, वह अनंत जीवोंसे परिपूर्ण है–अगाध है—उसके गुह्यागार (गुप्त स्थान) में प्रवेश कर, विश्वरचनाके कारण—नियम–जो जीव विचारता है, वही जीव आत्मप्रसाद प्राप्त कर, अध्यात्मज्ञानका रहस्य समझ और व्यष्टि समष्टिके हेतु समझ जगत्में विचरण करता और तरता है तथा उसीको चैतन्यका साक्षात्कार होता है. दूसरे तो शून्यमें ही भटकते हैं. वैसी ही इस जीवकी गति है ! इसकी स्त्री कहती है:—"लो, यह थोड़ीसी गर्म गर्म राब (रबड़ी, खीर अथवा सूजीया गेहूंकी दलियाकी लपसी) अच्छी न लगे तो गटककर उतार जाओ तो जीको आधार मिले !" इस पुरुषको तो अपने जीकी पड़ी है, उसका आत्मा क्लेशमय कष्टमें डूब गया है, इससे इसमें बोलनेकी भी सामर्थ्य नहीं है. यह निराश होकर अपना कंठ सूखता है, यह बतानेके लिए हाथ उठाता है, परंतु शक्ति विना कैसे उठे ? इतनेमें इसकी प्रेमिका स्त्रीने–इसका तन, मन और धन—इसका सर्वस्व–इसके हृदयका हार, कंठकी मालने—जिसके लिए जगन्नगरमें रह कर अनेक अक्रिय कृत्य किये हैं, जिसके लिए जगत् सत्य और ब्रह्म मिथ्याका विचार कर अनेक कुकर्मोंके बंधनमें बद्ध है, इसका मुंह ऊंचा कर उसमें गर्म गर्म रबड़ीका कटोरा ढुलका दिया ! अरे रे ! महाकष्ट ! यह देख सब विमानवासी एक स्वरसे कहने लगे:—'अरे रे रे !' इस समय इस जीवको अपनी देह भाररूप मालूम होती है, कष्टकारक जान पड़ती है, वह जीता है, पर मृतकवत् ही हो जाता है ! वृक्ष भी जीते हैं, मृगादि प्राणी भी जीते हैं परन्तु वही मनुष्य जीता है जिसका मन निश्चिन्त है. अब इस वृद्धकी सांस बंद होती है, बहुत देरसे दबी हुई खांसी एकदम उठ आती है, कफके फुरके कंठमें आकर अड़ते ही इसे मूर्च्छा आगयी, आंखें फैल गयीं, हाथ पांव खींच गये, जीव ब्रह्माण्ड (मस्तिष्क) में चढ़ गया और इसका मुंह जो अधर उठाकर रखा था वह धब्बसे नीचे गिरते ही इसकी प्रेमपात्र स्त्री 'हाय ! भाग्य !' की चीत्कार मारकर दूर खसक गयी. अहो हो ! कैसी दयापूर्ण स्थिति है ! अनात्मज्ञको कितना बड़ा कष्ट है ! यह दृश्यप्रवाह हर जगह दुस्तर है, तो भी जो प्रवीण नाविक–सद्गुरु प्राप्त करता है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वही विना कष्ट यह दुस्तर भवसागर तर जाता और आनंद पाता है. दूसरोंके कपालमें तो ऐसा ही कष्ट लिखा हुआ है.पापरूप, मायारूप जीवके पास सब माया दूर करनेके लिए, जो इष्ट साधन हरिभक्ति न हो तो उसपर ईश्वरानुग्रह होता ही नहीं.

इस जीवका इतनेसे ही सब नहीं हुआ. यह सारी घटना विमानवासी देख रहे थे, इतनेमें अपने हाथमें कई वंद पुड़िया लेकर एक युवा पुरुष उस आतुरके पास दौड़ आया और जोरसे बोला–" पिताजी ! पिताजी ! इतनी देरमें यह क्या ? अरे ! इनके लिए तो मैं बड़े परिश्रमसे यह दवा लाया हूँ, और इनके तो प्राण प्रयाण कर गये ! ओ मेरे बाप रे !" ऐसी पुकार मारते उसने इस पुरुषको मरा जान, शीघ्रतासे गोबरका चौका कराया. जगतमें मृत्यु कोई पदार्थ ही नहीं है; परंतु संसारके लोग जिसे मृत्यु कहते हैं, वह सिर्फ रूपान्तर ही है. शीतमें पड़नेवाले तुषारसे जब फूलोंका नाश होता है तब हम कहते हैं, 'फूल मर गये.' परंतु वही फूल फिर वसंतमें खिलते हैं तो क्या मृत्युशब्द मिथ्या नहीं है ? इस जीवके शरीरको फिर दो जनोंने मिल कर बिस्तरेसे उठा जल्दी–जल्दी–भोगे हुए चौकेमें सुला दिया. परंतु सिरपर ठंडक पड़नेसे तालुमें चढ़ा हुआ उसका जीवात्मा शीतलताके कारण नीचे उतरा और कुछ चेतमें आया. शीतके मारे उसका शरीर कांपने लगा. यह देख " जी आया, जी आया ! " ऐसा सब कहने लगे; परंतु किसीने इसकी ठंड या होते हुए कष्टकी परवा न की. वह बाहरसे आनेवाला युवा इस पुरुषके जरा चेतमें आते ही इससे स्वार्थकी बातें पूछने लगाः— "वह द्रव्य, उस साहूकारका धन, व्यवहारकी सारी रकम कहां है?" परन्तु इस पुरुषको तो जीवात्मा और देहके मध्य होते हुए युद्धकी पड़ी है, इसका शरीर महादुःखके प्रवाहमें गोते खाता है, इसमें जरा भी बोलनेकी शक्ति नहीं रही इससे यह कुछ उत्तर नहीं दे सकता. थोड़ी देरमें निराश होकर पुत्रने इसके कानके पास मुँह लगाकर जोरसे कहाः–"पिताजी ! तुम तो अपने रास्ते चले, पर पीछे रहजानेवालोंकी क्या गति होगी ? ओ बाप ! तुमने हमारा कुछ भी विचार नहीं किया. "

यह चरित्र देख विमानवासी परस्पर देखने लगे. वे पुरुषको* तिरस्कार करते कहने लगेः—" अरे अनात्मज्ञ ! इतने और ऐसे सुखमें तू लुब्ध है.

* इसमें जहां जहां ' पुरुष ' शब्द है उसे जीवात्मावाचक जानो !

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन निर्दय और स्वार्थी लोगोंको क्या तूने सुहृद् (मित्र) माना ? इनके स्वार्थी प्रेममें भूलकर तूने परम निर्भय–सुखरूप–सर्वमय अच्युतप्रभुका त्याग किया ! ओ हीनभागी ! तूने सार्थक देहको निरर्थक बनाकर अपवित्र किया. उत्तम बुद्धिवाला होकर उग्र विनाशपरायण मार्ग देखा ! धिक्कार है ! देवके सुखकारी मार्गको त्याग राक्षसके भयकारी मार्गमें पड़ा. छिः छिः, परन्तु इसका क्या दोष ? जैसे नेत्र शब्दको नहीं देख सकते, वैसे ही भौतिक दृष्टि आत्माको नहीं देख सकती. महापुण्यरूप धन देकर यह कायारूप नाव यह अपार क्रुशमय संसारसागर पार जानेको खरीदी है इसके टूटनेके पहले ही पार होजाना चाहिये. पर अश्रद्धावान्, संशयात्मा अज्ञानी यह मार्ग नहीं जानता इससे उसका विनाश ही होता है. संशयात्माको यह लोक या परलोक कोई भी नहीं शोभता, उसे कहीं सुख नहीं है. आत्मवित् (आत्मज्ञ) ही सिर्फ शोकमोहको पार करता है; कर्मनिष्ठ परंतु प्रपंचकुशल, शोकको नहीं तर सकता. आवरणशक्ति, जिससे एक वस्तु दूसरे प्रकारकी मालूम होती है, संसारमें मोह कराने और विक्षेपशक्तिकी ओर खींचनेका कारण है. इस आवरणवालेको अनास्था, प्रतिकूल निश्चय, संशय, अश्रद्धा और कर्म, नहीं त्यागते और विक्षेप (भ्रान्ति) उसे निरंतर दुखाया करता है. चाहे जैसा बुद्धिमान्, पंडित, चतुर और व्यवहारके सूक्ष्म विषयोंका ज्ञाता होने और अच्छी तरहसे समझाने पर भी जीव रजतमके वश होनेसे सत्य बात नहीं समझता; पर भ्रान्तिसे मानी हुई, असत्य बातोंको सच्ची मानता है इससे वह दिनरात कष्टभागी ही है. इस पुरुषके संकटका पार नहीं; अरे ! वह अपार है ! इस जीवकी रग–रगमें और बाल-बालमें महावेदना हो रही है, इसको देह त्यागनेको मार्ग नहीं है. महास्वार्थी निर्दय कुटुम्बी भी उसे नाना रूपसे कष्ट देते हैं. यह बिलकुल परवश है. इस समय इसके मनकी स्थिति भयानक है, यह निर्जीव है, शून्य है. इसकी राजसी तामसी वासना अनंत कारणोंमें आदती और सात्विकभावनाशून्य थी, उसका अब इसे स्मरण होता है और वह पिशाचकी तरह आंखोंके आगे आकर नाचती है. इससे यह इस समय अपने लिए कुछ विचार नहीं कर सकता. " विमानवासियोंकी यह बातचीत सुन गुरु वामदेवजी बोले:–"अरे ! विचार क्या ? इस समय तो इसके पास अनेक पिशाच आकर खड़े हैं और पुरद्वारमें अविद्यामें ही सदा भटकनेवाला इसका यह जीव पश्चात्ताप करता है. 'अब मेरा फिर क्या होगा' इसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिए चिन्ताका बड़ा पहाड़ इसके हृदयपर टूट पड़ा है. स्थूलवासनाकी लपेटमें आनेके बाद, अनंत वासनाएं उद्भूत होती हैं. इसका संहार क्यों न हुआ और सत्त्वगुणी परब्रह्मका ध्यान क्यों न लगा, इस विषयका अब यह शोच करता है—अभय स्थान प्राप्त न हुआ, इसका शोच नित्य करता है; परंतु एकसे अनेक और अनेकसे अनेकानेक वासनारूप पिशाच इसके सामने आकर खड़े हैं, इससे इसका हृदय भयभीत हुआ है. यह साधनसंपन्न नहीं है, इससे इसकी अंतावस्था राक्षसकी भांति दुःख देती जान पड़ती है. इस समय सबका कथन यह जरा भी नहीं सुनता; क्योंकि जो वासनाएं स्वस्थ या आरोग्यावस्थामें भी इस पुरुषको नहीं छोड़ती थीं, वे सब इसे अत्याचारसे घेर बैठी हैं; क्योंकि इस अवस्थामें प्राणी प्रबलेन्द्रिय होता है. इस समय आगली पिछली दुष्ट बातोंका उसे स्मरण हो आता है और अपने जीवन भर आत्मरसायनका पान और व्यावहारिक स्थूल वासनाका अंत न करनेका भय मूर्तिमान् हो, उसे आगे खड़ा दिखाई देता है."

इतनेमें एक पुण्यात्मा बोल उठा:—"गुरुदेव ! ये कौन हैं ? ये दो चार हथियारबंद पुरुष हैं, सब लोग देखो ! मैंने इनको आकाशसे अभी ही अकस्मात् नीचे उतरते देखा है. वे सपाटेसे उस पुरुषकी ओर आते हैं. वे महाभयंकर हैं ! स्वरूपसे कराल विकराल काल हैं ! उनका शरीरसंगठन काजलके पर्वतके समान है. उनकी श्यामवर्ण डरावनी आंखोंकी पुतलियां और उसी रंगके सिरके बाल कैसे तीक्ष्ण हैं. वे ऐसे मालूम होते हैं मानों तीखे खड़े हुए भाले हैं. उनके बड़े चौड़े मुँहसे दोनों बाजूमें निकलीं हुई तलवारके समान डाढ़ें महातीक्ष्ण हैं. कमरमें जो कछोटा कसे हैं उनके सिवाय दूसरा एक भी वस्त्र उनके पास नहीं है. जो सबसे आगे चलता है, उसके दोनों हाथोंमें पाश और मुद्गर है, दूसरेके पास मुद्गर और अंकुश है, शेष दो सिर्फ मुद्गरोंको कंधे पर रखके चले आते हैं. ये वज्रके समान लोहके मुद्गर बहुत भारी हैं, मतवाला हाथी भी इनका प्रहार (मार) होते ही गतप्राण हो जाय." इतनेमें उन विकराल आकाशी पुरुषोंमेंसे एकने ऊपर देखकर जँभाई ली, उस समय उसके फैले हुए मुँहकी विकराल आकृति देख सब पुण्यजन भयभीत हो गये और सबसे पहिले देखनेवाला व्याकुल होकर गुरुदेवकी ओर दौड़ा. गुरु वामदेवने सबको धीरज देकर कहा:—" डरो मत, इन भयंकर पुरुषोंसे कुछ भय नहीं है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिसने आत्मरसायनका पान किया है, उनकी ओर आनेको इनको सत्ता ही नहीं है. ये कहां जाते हैं, क्या करते हैं, यही सावधानीसे देखो.''

चलते चलते वे भयंकर पुरुष पुरद्वारके पास आये और भीतर घुसकर उस पुरुषके कमरेके पास आकर खड़े हुए. वे धीरे धीरे कुछ बातचीत करते थे. एक कमरेके बाहर बैठा. दूसरा कमरेमें खड़ा हुआ. पाशांकुश-धारी दो पुरुष घरमें चले. उन्हें उस घरमें बैठे हुए मनुष्योंमेंसे कोई भी देख नहीं सका. वे मनुष्योंसे अदृश्य रहनेको समर्थ थे, परन्तु विमानवासी उन्हें देख सकते थे; क्योंकि गुरुप्रसादसे उनको दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई थी. चौकेमें पड़ हुआ मनुष्य उन्हें देख सकता था. अंतावस्थाके कारण अती-न्द्रियपन प्राप्त होकर उसकी आंखें, सूक्ष्मदर्शी (दिव्य) हुई थीं, जिससे सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे देखनेके समान वह अपार आकाशमें भरे हुए अनन्त जीव, जलकणके जीव—अनन्त जीवोंसे परिपूर्ण सृष्टिको देखनेके लिए समर्थ हुआ था, परन्तु वह शून्यता (मरणावस्था) में ही समर्थ था. उन भयं-कर पुरुषोंको प्रबलतासे अपनी ओर आते देखते ही उस पुरुषने अतिभयसे चीत्कार की. हाथ हिलाने डुलानेकी उसमें शक्ति न थी. तो भी वह मानों चौकेसे भागनेका प्रयत्न करता हो, इस तरह महाकष्टसे चौकेसे बालिश्त भर अधर हो गया. अधर होकर ज्योंही वह नीचे गिरा त्योंही उसमेंसे एकने आकर उसके गलेमें पाश डाला और दूसरेने अंकुशद्वारा उसके जीवात्माको शरीरसे खींच लिया. इस महाकठिन समयमें इस पुण्यहीन—ज्ञानशून्य—वासनामय—पुरुषके शरीरको कितना असह्य संकट पड़ा होगा, उसका वर्णन करना बड़े ज्ञानीकी कल्पनाशक्तिसे भी दूर है. उसका जीव इस महादुस्तर प्रसंगसे बचनेके लिए शरीरके छहों * चक्रोंमें फिर आया, सारी नाड़ियों† और सब कोठेंमें हो आया, सब धातु और उपधातुके स्थान खोज आया, रोमरोमके रंध्र भी बंद देखे, सारी इन्द्रि-योंके द्वार भी देखे जो अपने देवोंके त्याग देनेसे बंद होगये थे. इस तरह

*शरीरमें छः चक्र हैं, १ गुदाद्वार, २ लिंगद्वार, ३ नाभि, ४ हृदय, ५ कंठ और ६ भ्रूमध्यभाग. इनके सिवाय सातवां ब्रह्माण्ड अर्थात् तालुस्थान है. वह ब्रह्मका धाम है और सदा निर्भय है. नीचेके छहों चक्र भेदकर आत्मा वहां जासके तो निर्भय होता है. गुरुसेवा, योगाभ्यास, और भगवत्कृपासे यह स्थान प्राप्त होता है.

† नौसो नाड़ी और बहत्तर कोठे हैं, उन सबमें फिर आया.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सारे शरीरमें पूर्णरूपसे व्याप्त हुआ जीवात्मा, इस समय भिन्नरूपसे घटघट फिर आया तो भी अपने भाग बचने या निर्भयरूपसे जा बैठनेका कोई अभयस्थान उसे नहीं मिला. फिर फिरकर अनेक वार वह इन सब स्थानोंमें फिरा, परंतु वह अभय स्थान प्राप्त नहीं कर सका. मनुष्य प्राणीके शरीरमें मस्तकके शीर्षभागमें स्थितिस्थान ब्रह्मरंध्रमें है. जीवात्माके लिए वह ब्रह्मप्राप्तिका स्थान है और वही परम निर्भय है; परन्तु यह स्थान इस अनात्मज्ञ क्षुद्र जीवके लिए नहीं था. उसके कंठमें तो पहलेसे ही आकर उस कालपुरुषने पाश डाला था इससे ब्रह्मरंध्रमें जानेका मार्ग बिलकुल बंद हो गया था. वारम्वार चहूँ ओर फिर फिर कर वह जीव व्याकुल और अंतमें निराश हो गया. इस समय उसकी घबराहट और संकटका पार नहीं रहा. इस समय उसके रोमरोममें एक साथ हजारों बीछियोंके प्रबल डंकोंके आघातके सामन असीम वेदना होने लगी. असह्य कष्ट, लगातार दौड़ धूप[1] और भारी व्याकुलतासे, उसकी सब नाड़ियां ठंढी पड़ गयीं गात्र विदीर्ण हो गया और प्रबल आघातसे इन्द्रियोंके द्वारा मलमूत्रादिका बड़ा समूह बाहर आया, आंखे खिंचकर निर्बल हो गयीं, नाक टेढ़ी हो गयीं, मुँह फैल गया, दांत बाहर निकल आये और उसके शरीरकी ऐसी आकृति हो गयी जिसे देखते ही भय उत्पन्न हो. उग्र विनाशके मुँहमें जानेवाले इस जीवको वे अंकुशधारी पुरुष मुद्गर मारने लगे; तब सहन न कर सकनेके कारण उसका सारा शरीर कांपने लगा और अंतमें यह महादुःख नहीं सह सका, तब अधोद्वारसे होकर फिर जो मलोत्सर्ग हुआ, उसके साथ महात्रासके, वह जीवात्मा बाहर निकल, उस कालके पाशमें बँध हुआ चला. शरीर निश्चेष्ट होगया, कँपकँपी मिट गयी, हाथके स्थानमें हाथ, पांवके स्थानमें पांव, इस प्रकार सब अंगोपांग जहांके तहां शुष्क काष्ठवत् हो गये. गलेका घुरघुर शब्द बन्द हो गया; ऊर्ध्वश्वास रुक गया, तेज नष्ट होगया, तब कुटुम्बियोंने जान लिया कि अब यह मर गया जो आदि (उत्पत्तिके पूर्व)में न था, अंतमें नहीं रहता और वर्तमानमें भी वस्तुतः नहीं रहता, किंतु मिथ्या होते हुए सत्यके समान भासता है ऐसा वह देह जगतके जीवोंको काष्ठवत् मालूम होने लगा.

विमानमें रहकर यह सब घटना देखनेवाले पुण्यजनों और गुरु वामदे-

---

१ शरीरान्तर्गत आत्माकी दौड़धूपसे.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वजी नामके पुरुषको, इस समय बहुत खेद हुआ. अत्यंत खिन्न मुँहसे वे दयालु महात्मा बोले:–"कितने बड़े दुःखकी बात है कि जिनके कल्याण और सुखके लिए इस पुरुषने अपने सारे सुखोंको त्यागकर भी आजन्म अनेक प्रयास किये और अनेक दुःख सहे, वे सब इसके कुटुम्बी इस कठिन प्रसंगमें इसके सच्चे दुःखके समय––परवश हुए इस अनाथकी कुछ भी सहायता नहीं कर सके. इसका कष्ट कैसे घटे, इसके आत्माका कुछ भी कल्याण हो ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया. जो स्वयं ही अज्ञानताके कुएमें पड़े हैं वे कल्याणकी बात कैसे समझें ? पवित्र अच्युतमार्गको त्याग राक्षसी वासनाका जो सेवन करता है, यह ऐसेही महाकष्टको सहता है. इससे पामर कुटुम्बी इसे इस कष्टमें कुछ सहायता न करें तो रहें परंतु, हमसे जो हो सके वह करनेसे हमें क्यों चूकना चाहिए ? हमारे समक्ष यह अनाथ पुरुष महाकष्ट सहन करता है यह देखा ही कैसे जाय ?" यह सुन वरेप्सु महाराज करसंपुट कर कह उठेः–"कृपानाथ ! जैसे आप कहते हैं वैसे दया तो बहुत आती है; परन्तु यहां तटस्थ (उदासीन) रहकर हम उसका कैसे भला (उपकार) कर सकते हैं ? ये बलवान् क्रूर पुरुष जिनकी आकृति देखते ही महाभय होता है, उनका हम लोग क्या कर सकते हैं ? उनका निवारण (अलगाव) हमसे क्योंकर हो सकेगा ? बहुत ही नम्रता और विनयसे प्रार्थना करें तो भी उन निर्दय जीवोंके अन्तःकरणमें जरा भी सहृदयता व्यापनेका विश्वास मुझे उनकी आकृति देखते ही नहीं होता. महाराज ! ये कौन हैं और किस लिए इस अनाथको दुःख देते हैं ?" वटुकने कहा:––"यह सब तू अभी जानेगा, पहले हम सब मिलकर, बड़े पापसमूहका नाश करनेको समर्थ अच्युत प्रभुके शुभनामकी ध्वनि करें. प्रभुका मंगलप्रद नाम प्राणीको समग्र पापसे मुक्त करता है और अंतसमय जो प्राणी प्रभुके नामका स्मरण कर शरीर त्याग करता है, वह प्रभुको प्राप्त करता है, वह प्रभुपदोंमें स्थान पाता है, ऐसा पहले अपनी शरणमें आये हुए जीवोंसे अच्युतप्रभुने कहा है:—

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥

अर्थ—अंतकालमें मेरा ही स्मरण करते कलेवर (शरीर) त्यागकर जो जाता है, वह मेरे ही भाव (पद) को पाता है, इसमें संशय नहीं है.

"परन्तु अंत-समयमें क्षुद्र प्राणीसे ऐसा नहीं बन सकता. चैतन्यसे पदभ्रष्ट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुआ चैतन्यको नहीं जानता, नहीं देखता, उसके देखनेमें तो इस समय स्थूलवासनासे जन्मे हुए व्याघ्र, सर्प राक्षस जो वासनारूपसे निवास करते हैं वेही आते हैं. ऐसे पुरुषके प्राणोत्क्रमण (मरण) समय उसके समीप रहनेवाले सब लोग, प्रभुके नामका उच्चारण करें, तो इससे किसी जन्ममें भी उसका कल्याण होता है. मरणसमय प्राणी अतीन्द्रिय होता है इससे उस समय भगवन्नामकी अभेदताका विचार करनेपर भी वह साधनसंस्कारी हो सकता है और मंगल ध्वनि श्रवण कर सकनेसे ईश्वरको याद करता है--

सकृदुच्चारितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥

अर्थ—सिर्फ एकवार ही ' हरिः ' यह दो अक्षरवाला अच्युतप्रभुका नाम जो उच्चारण करता है वह सब बन्धनोंसे मुक्त होकर मोक्ष पाता है !

" अवसान (अंत) समयमें पुरुषके प्रियजन और दूसरे भी उसके कल्याणके लिए अवश्य आत्मा परमात्माकी एकता–अद्वितीयताका ज्ञान–सिर्फ ज्ञान ही करावें; भगवन्नामकी ध्वनि करें; क्योंकि यह भी कल्याणकारी और विघ्नविदारी है. भगवान् अच्युतके हरि, राम, कृष्ण, गोविन्द, माधव, परमात्मा, पुरुषोत्तम, केशव, अच्युत, अनंत, नारायण, वासुदेव इत्यादि अनंत नाम हैं इनमेंसे इच्छामें आवे उस नामका उच्चारण विशुद्धता, पराधीनतासे भी जो पुरुष करे, उसके पातक ऐसे भागते हैं जैसे सिंहके त्राससे मृगश्रेणी भाग जाती है !

" अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान्विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव ॥

अर्थः—पराधीनतामें भी यदि हरिका नाम लिया जाय तो मृग जैसे सिंहसे भयभीत हो तुरंत उसे छोड़कर भाग जाता है वैसे सब पातक भी उस हरिका नाम लेनेवाले पुरुषको त्यागकर चले जाते हैं.

" इसलिए अब इस पुरुषके कल्याणार्थ हम सब वारवार अच्युत प्रभुके नामकी गर्जना करें. " यह सुन सारा पुण्यजनसमाज एक साथ ही अच्युत नामकी लगातार ध्वनि करने लगा, नभस्थलमें उसकी भारी प्रतिध्वनि गूंज रही.

महात्मा बटुक फिर बोले—"ॐ" " इस मंगलकारी नामस्मरणका फल तत्काल हमारे देखते ही इस महात्माको प्राप्त हुआ. " यह सुन सबलोग फिर उसकी ओर एकाग्र वृत्तिसे देखने लगे. वह आत्मा, जो महात्राससे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मलद्वारसे होकर मलके साथ ही देहके संगसे छूटा था और बाहर आते ही जिसे उस पाशधारी पुरुषने पाशद्वारा बड़े बलसे बांध लिया था वह अंतरिक्षमें भगवन्नामकी पुण्यध्वनि सुनते ही पाशसे मुक्त हुआ और उन भयंकर पुरुषोंके आगे उदासीन (विरक्त) के समान चुपचाप खड़ा रहा. इसमें कुछ न समझनेसे वरेण्सुने पूछा–"कृपानाथ ! यह आत्मा कहां है ? हम उसे नहीं देख सकते. मैं तो इस पुरुषके देहको उस भयंकर कालपुरुषके तीक्ष्ण लंबे पंजेमें पड़ा हुआ देखता हूँ; वह अब उसको खींच ले जानेकी तैयारीमें है. " बटुक बोले:–" सत्य, यथार्थ है. कालपुरुष तो अपना काम करेगा ही, परंतु इसमें जो एक गूढ़ रहस्य समझ लेना है, वह अब सब लोग ध्यान रखकर देखो. कालपुरुष इस जगत्के जडविभागको ही भक्षण करनेवाला है, चैतन्यको नहीं खा सकता. जगत् जड तथा चैतन्य दोनोंके मिश्रणसे प्रकट हुआ है. वैसे ही यह स्थूल पुरुषरूप भी इन दोनों पदार्थोंके संयोगसे पैदा हुआ है. पुरुषके देहका जो भाग है वह स्थूल और उसमें निवास करनेवाला आत्मा चैतन्य है. कालपुरुष पुरुषके स्थूल देहका भक्षण करता है उस समय उस (देह) का आत्मा (जीवात्मा) अपनी सहायता करनेवाले कुछ स्थूलसमूहसहित उसमेंसे बाहर निकल जाता है. अच्युतपथदर्शिकारूप महाशास्त्रमें अच्युतपरब्रह्मके श्रीमुखकी ही इस विषयमें पवित्र वाणी है कि:—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥

अर्थः—मेरा ही सनातन अंश जीवलोकमें जीवका रूप धारण करता है और प्रकृति (जड़समूह) में लीन हुई पांच इन्द्रियां तथा छठा मन इनको वह खींच लेता है. जब जब वह शरीरका ग्रहण और त्याग करता है, तब तब इन इन्द्रियोंसहित मनको वह अपने साथ लेता जाता है, यह कैसे ? जैसे वायु अदृश्य और अलिप्त होनेपर भी, गंधके स्थानसे होकर बहते समय वहांकी गंधको अपने साथ ही लेते जाता है.

' श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
' अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥
' उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
' विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थ—कान, आंख, त्वचा, जीभ और नाक इन पांच ज्ञानेन्द्रियों सहित मनमें निवास कर विषयोंका उपभोग करनेवाला जीवात्मा जब शरीरसे निकलता है तब इस शरीरमें ही रहकर इन्द्रियोंद्वारा विषयसेवन करता है तब भी मूढ़ जन उसे देख नहीं सकते. जिनके ज्ञानरूप नेत्र होते हैं सिर्फ वही देख सकते हैं.

" इस विश्वनियमका अनुभव अपनी आंखोंके आगे होनेवाली इस घटनासे ही तुम करलो ! यहांपर कहा है कि जिवात्मा देहमें हो या उसमेंसे निकलता हो उसे मूढ़जन देख नहीं सकते; परन्तु ज्ञानरूप आखोंवाला देख सता है; तो तदनुसार तुम्हें भी दिव्यचक्षु प्राप्त हुए हैं, उनसे उसे तुम देख सकोगे ! इस पुरुषका स्थूल देह, कालपुरुषके पंजेमें है और उस (इस देह) में आजतक निवास करनेवाला उसका जीवात्मा जो अपने त्रासदाता उन क्रूर राक्षसोंके आकर्षणसे बाहर आकर पाशमें बद्ध हो गया है, हमारे किये हुए भगवन्नामके घोषके पुण्यसे तत्काल मुक्त हो किनारे खड़ा है, उसे देखो.

वरेप्सु बोलेः—" हां उसके पैरके पास वे दो काले पुरुष खड़े हैं. " बटुकने पूछाः—" पर मृत देहके सिरकी ओर तुम्हें कुछ दिखाई देता है ? " वरेप्सु बोलेः—" नहीं, वहां तो कुछ भी नहीं है, सिर्फ धुएंके समूह जैसा कुछ मालूम होता है. " बटुकने कहाः—"यही जीवात्मा है, " * यह धुआ नहीं. परन्तु उस मृतकका जीवात्मा है. तुम्हारे दिव्य चक्षु होते भी तुम्हें यह नहीं दीख पड़ा.

---

* **टीका**—ऊपर जो वर्णन किया गया है उसका विशेष स्पष्टीकरण करना आवश्यक होनेसे यहां कुछ स्पष्ट करते हैं. मनुष्य इस पांचभौतिक देहका त्याग कर फिर कैसी आकृति धारण कर अपने पुण्य पाप आदि कर्मोंका भोक्ता होता है यह बिलकुल अनिर्वचनीय है. तो भी महाभारतके वनपर्वमें श्रीव्यासदेवने इसके संबंधमें धृतराष्ट्रका संदेह दूर करते हुए जो बताया है उसमें इस विषयकी कुछ झलक दीखती है कि मनुष्यदेहका त्याग करनेके बाद जीवात्मा लिंगदेह (सूक्ष्मदेह) धारण करता है और वह हवामें धुएंके आकारका होता है. इसी लिंगदेहके पुण्यपापके फलोंका ईश्वरी न्यायालयमें निर्णय होता है. इस विषयमें रॉटजन-रे नामकी नवीन विद्याकी शोध हमारे प्राचीन तत्त्वज्ञानकी पुष्टि करती है. फ्रान्सके प्रधान नगर पेरिसके एक विद्वानने मृत्यु क्या वस्तु है इस संबंधमें इस प्रकारसे कुछ हकीकत दी हैः—"कैदखानेमें पड़े हुए एक कैदीके मृत्युसमय, उसके शरीरपर रॉटजन-रेकी किरणें डालकर जांच की गयी. मृत्युके अंतसमयमें उस पुरुषका जीवात्मा मानों बहुत ही घबराता हो इस दशामें एक गूढाकृतिमें देहमें दौड़ते मालूम हुआ और ऊपर लिखे अनुसार मानों नौसौ निन्यानवे नाडियोंके भीतर वह अभय स्थान प्राप्त करनेके लिए भटकतासा मालूम हुआ. क्षणभर तक उस देहगत हृदयका धबकारा बंद रहा और क्षण-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्योंकि यह ऐसा है कि जो सिर्फ दिव्य ज्ञानचक्षुसे ही दीख सकता है; परन्तु अभी यह शुद्ध चैतन्य नहीं है, इसमें कुछ जड़ भाग* हैं, इसीसे कुछ दीख पड़ता है, इसका कारण यह है कि जैसे शरीरमें जबतक थोड़ा भी जहरका भाग रहता है तबतक प्राणी आरोग्य नहीं हो सकता, वैसे ही जबतक जीवात्मामें अहंकारवृत्ति है 'मैं' और 'मेरा' बंधन है—तबतक वह शुद्ध चैतन्य नहीं बन सकता. अहंकार—मैं हूँ, मैं देह हूं, परन्तु आत्मा नहीं, ऐसी भावनाकी जबतक निवृत्ति न हो, अहंकारसे माने हुए दूसरोंको रोगरूप समझ संहार न करे और आत्मतत्त्वके विवेकसे स्वयं ब्रह्म है, ऐसा न जाने, तबतक जीवात्मा विशुद्ध चैतन्यको नहीं पाता. जो जीव वास्तवमें विशुद्ध है, सर्वदा एकरस है, चेतन है, व्यापक है, आनंदरूप है, निर्दोष है, निर्विकार है, उसने अहंकारसेही—मायाके भ्रमसे ही—संसार माना है और उसके योगसे भुलावेमें पड़ उसीमें लिपट आनन्द माननेसे शुद्ध नहीं होता. इस तरह शुद्धता विना चतन्यरूप होते भी बंधनरूप अहंकारके वश रहता है, तब तक इस जीवात्माको विशुद्धि पानेकी लेश मात्र भी आशा नहीं. परन्तु जो जीवात्मा अहंकारसे मुक्त होता है, शुद्ध स्वरूपको प्राप्त करता है, वह चंद्रके समान निर्मल होता है; पूर्ण, सदानंद और स्वयंप्रकाश होता है. ऐसे जीवात्माको दिव्यचक्षु भी देख नहीं सकते. इस जीवात्माको सिर्फ दिव्यज्ञानचक्षु ही देख सकते हैं, परन्तु

—भरके बाद फिर चलने लगा और दूसरे ही क्षण उस देहीकी चक्षुरिन्द्रियसे निकल हवामें मिलता हुआ धुआं मालूम हुआ. यह धुआं जब पूर्ण रीतिसे आंखोंसे बाहर निकल आया तब उस पुरुषके जैसी ही एक आकृति बन गयी और सिरपर खड़ी हुई जान पड़ी. इसके बाद वह धूमाकृति पुरुष अपना हाथ ऊंचा कर जमीनपर पड़े हुए देहसे मानों अंतका रामराम करता और कहता हो कि मेरा और तेरा संबंध अब पूर्ण हुआ है इस लिए अंतिम प्रणाम है, ऐसा सूचनादर्शक अंतिम प्रणाम करते हुए सिरतक हाथ लेजाते देखा गया. फिर उसने हाथ नीचे किया और वह धूमाकृति देखते देखते ही हवामें अदृश्य हो गयी." इसपर से हमें यह सार लेना है कि वह धूमाकृति पुरुष अपने अध्यात्मशास्त्रमें उल्लेखित सूक्ष्म देही जीवात्मा था.

* कान, आंखें, नाक, जिह्वा, त्वचा, इन पांच ज्ञानेन्द्रियोंमें रहनेवाले विषयोंके ग्रहण करनेकी शक्ति और मन, अर्थात् मनसहित इन्द्रियां, ये सब जड़ पदार्थ हैं. चैतन्य नहीं हैं और चैतन्य विना ये अकेली हों तो किसी कामकी नहीं; उन्हींके संघसे आत्मा, जो बिलकुल निराकार, निरंजन, चिद्रूप है, ऐसा साकार और दृश्यमान हुआ है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामान्य प्राकृत जन तो इस पांचभौतिक स्थूल देहके स्वरूपको भी देख नहीं सकते तो चैतन्यकी तो बात ही क्या ?' इतनेमें वरेप्सु अकस्मात् बोल उठेः—"गुरुदेव ! इस धुएंकी तो सुन्दर आकृति बन गयी, और वह भी फिर इस मृतक देहके समान ही है !"

यह सारी पुरुषाकृति यद्यपि धुएं जैसे पदार्थसे बनी हुई जान पड़ती है सही, परन्तु फिर भी वह निर्मल और पारदर्शक है, इससे आप ही आप पहँचानमें आजाती है कि यही इस मृतका लिंगदेह है. इसके पासमें वस्त्रादि कुछ भी नहीं है. अब यह सचेत है और ऐसा मालूम होता है मानों कुछ बोलता है, इसलिए हमें वह सुनना चाहिए."

यह धूमाकृति पुरुष प्रार्थना करनेके समान हाथ जोड़ उन भयंकर पुरुषोंसे बोलाः—"ऐसी भयंकर आकृतिवाले तुम कौन हो ? तुम यहां क्यों आये हो ? मैंने तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं किया तो भी तुम मुझे असह्य दुःख क्यों देते हा ?" उस लिंगदेही मृतकके ऐसे वचन सुन, वे यमदूत उससे कहने लगेः—"हम महात्मा धर्मराजके नौकर हैं और उनकी आज्ञासे तुझको ले जानेके लिए आये हैं. तूने हमारा अपराध नहीं किया, परन्तु हमारे स्वामीके स्वामी—धर्मराजका अपराध किया है और ऐसे अपराधियोंको उनकी आज्ञासे दंड देना हमारा कर्तव्य है." धूमाकृतिरूप लिंगदेही जीवात्माने कहाः—"तुम्हारे स्वामीका मैंने कौनसा अपराध किया है ?" उसके उत्तरमें वे बोलेः—"यह पुरद्वार* उस पवित्र अच्युत-मार्गका द्वार है; इससे होकर अच्युत प्रभुकी शरण जानेवालोंको उनका मार्गश्रम निवृत्त होनेके लिए ही यहां सिर्फ कुछ समय निवास करनेकी आज्ञा है तो भी इस स्थानको अपने रहनेका सत्य—नित्य—स्थान मानकर उसके योग्य पदार्थोंका जो मनुष्य निरंतर यथेच्छरूपसे, अपने शरीर-सुखके लिए उपभोग करता और परलोकके साधन—स्वात्मस्वरूपका विचार नहीं करता, वह जीव हमारे प्रभुके प्रभुका अपराधी है. इस स्थानके पुरद्वारका आधिपत्य हमारे स्वामीके हाथमें है. पर अरे देहभोगी ! सत्यासत्य, नित्यानित्यका भेद न जाननेवाला ! जगन्नगरसे † अच्युतपुर जाने-

* मनुष्यदेह—मनुष्यदेहसे सत्‌ज्ञान प्राप्त कर जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता है, इसे पुरद्वार माननेका कारण यही है कि इस द्वारसे ही परम ज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है, दूसरे पश्वादिक द्वारसे जीवात्माको ज्ञान या मोक्ष प्राप्त नहीं होता।

† विश्व। इस विश्वके अनेक देह—अंडज, उद्‌भिज्ज, स्वेदज और जरायुज भोग-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की प्रतिज्ञा कर तू निकला था या नहीं ?" इसके उत्तरमें उस लिंगदेही जीवात्माने कहा:—"हां हां." तब धर्मदूत बोले:—"इसके बाद वहां जानेका प्रयत्न न कर, यहां क्यों लिपट गया ?" जीवात्माने कहा —"थकावट लगनेसे कुछ देर विश्राम करनेको बैठा और अब उठता हूँ * ऐसा विचार करता था, इतनेमें नींद आगयी. जब चेतमें आकर चारों ओर देखा तो मेरे सब साथी आगे निकल गये थे. मैं निरुपाय घबराकर चिन्ता करने लगा. परंतु इतनेमें एक स्त्री † वहां आ मुझे धैर्य देकर कहने लगी, 'तुम क्यों चिन्ता करते हो ? तुम अपनेको अकेला मत समझो, मैं भी तुम्हारी तरह पीछे रह गयी हूँ और साथ खोजती हूँ, परन्तु मुझे तो इन सब पथिकोंकी दौड़ धूपपर धिक्कार लगता है, क्योंकि ऐसा सुन्दर स्थान छोड़कर उस ओर क्यों दौड़ मरें ? जहांका कुछ भी नहीं जानते. आप आगे जाना रहने दें, यहीं मुकाम करें. मैं तुम्हारी सेवा करूंगी और हम दोनोंजन आनंद करेंगे.' इस तरह कह और अनेक प्रकारके हावभाव दिखा उसने मुझे अच्युतपुरकी ओर जानेसे रोका. बस, उसके साथमें यहीं रह गया ! फिर दिनोंदिन मैं अच्युतमार्ग जानेकी बात भूलता गया. मैं की हुई प्रतिज्ञा भी भूल गया और इससे प्रीतिमें ऐसा जकड़ गया कि मुझे इस बातका स्मरण तक नहीं हुआ." "बस, बहुत हुआ, तेरे कुकर्म हमें सुनना नहीं हैं. उन्हें हमारे प्रभुके दरबारमें उनका बड़ा कारबारी सुनेगा. परन्तु अब तू समझ गया होगा कि इतने ही के लिए तू मेरे स्वामीका अपराधी है, और उस अपराधकी सजाके लिए तुझे उनके दरबारमें ले जानेके लिए हम आये हैं इस लिए चल, आगे हो. देर करनेका काम नहीं है. तेरे जैसे दुष्ट प्राणीको बांध कर ले जानेके लिए हमने यह पाश धारण किया है, पर क्या करें ? तेरे लिए किसी पुण्यवान् महात्माने सर्वेश्वर अच्युत प्रभुके नामकी गर्जना की, जिससे उस महाप्रभुके आदरार्थ हम तुझपर पाश नहीं डाल सकते; परन्तु चलनेमें विलंब करेगा तो यह तीक्ष्ण

—और उनमें कष्ट सहकर किसी जन्मके कुछ सत्कर्म और परमात्माकी कृपासे प्राणीको मनुष्यशरीर प्राप्त होता है, जिससे वह सत्को जाने।

* टीका—कल ईश्वरको भजूंगा, बड़ा होनेपर हरिको भजूंगा आदि आलस्य और उसमें हरिभजन भूल जाना ही निद्रा है।

† माया-मिथ्या मोह।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंकुश और मुद्गर तेरे ही लिए हैं. अरे मूढ ! इस देहादिसे संबंध रखनेवाले पदार्थोंमें तूने ममत्व माना और यह मतिरूप बंधन तेरे इसी अज्ञानसे तुझे प्राप्त हुआ है और इसीसे तुझे यह क्लेशका समूह बटोरना पड़ा है. तूने इस मिथ्या शरीरको सत्य मान, 'मेरा मेरा' कर, विषयोंद्वारा पुष्ट किया, विषयोंका ही सेवन और रक्षण किया. तूने अज्ञानका नाश नहीं किया, परन्तु कुसियारे (रेशम, कोसे) के कीड़ेकी तरह विषयोंमें बँधा रहा. इन अनात्म पदार्थोंमें ही आत्मबुद्धि रक्खी और महामोहरूप मगर मच्छके पेटमें पड़कर, जिस आत्मज्ञानके लिए तूने प्रतिज्ञा की थी, अच्युत प्रभुके मार्गमें हो–प्रवास कर वहां पहुँचनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसे भंग कर, बुद्धिकी कल्पित की हुई अनेक अवस्थाओंको सत्य मान उनके भोगनेमें मस्त रहा ! हे दुर्बुद्धि ! तू विषयरूप विषसे भरे हुए अपार समुद्रमें इसीलिए अब गोते खाता है, यह क्या थोड़ा अपराध है ? " इतनेमें कमरेके पास बैठे हुए दूतोंमेंसे एक दूतने भीतर आकर कहा:–" इतना विलंब क्यों करते हो ? क्या तुम्हें इस जीवपर दया आती है ? " फिर उसने जीवात्माको सम्बोधन कर कहा:—" चल, जल्दी कर, क्या तू यहां किसीकी सहायता चाहता है ? तेरे किये हुए अपराधोंसे तो कोई भी यहां ऐसा नहीं है जो तुझे छुड़ा सके, इससे चल आगे हो ? " इतना कह उसके साथके दूसरे दूतने, दो तीन मुद्गर मारे, बस भारी चीत्कार कर वह परवश हुआ जीवात्मा वहांसे बाहर होनेको तैयार हुआ, पर वहांसे निकलना उसे बहुत ही दुष्कर लगा. जिस देहमें रहकर उसने जीवन भर अनेक सुख (तामसी और राजसी सुख–विषयजन्य सुख) भोगे थे उस देहको छोड़ पराधीन होकर जाते उसे ऐसा दुःख हुआ मानों उसपर ब्रह्माण्ड टूट पड़ा हो. यह देह जिस त्वचा, मांस, मेद और हड्डियोंका समूह है, उसमें जिसने अनात्मज्ञबुद्धिसे अभिमान कर उसको सत्य माना हैं उसे शान्ति नहीं होती. मूढबुद्धि और अनात्मज्ञ, इस देहको ही 'मैं' मानता है, कोई विवेकी लोग जीवको 'मैं' मानते हैं; परंतु इन सबको अंतमें अशांति ही है. ऐसी ही अशान्ति इस मूढ जीवको होती है. वह बारबार पीछे फिरकर अपने त्यक्त देहकी ओर देखने लगा और निःश्वास—उच्छ्वास छोड़कर रुदन करने लगा कि 'ऐसा उत्तम मनुष्यदेह मुझे प्राप्त हुआ था, तो भी उसके आश्रयसे मैंने सत्कर्म न किये ! अरे ! सत्कर्म तो क्या, परंतु मुझ दुष्टने उल्टे कुकर्माका ही आचरण किया जिससे मेरी यह दशा हुई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है. मैं यमदूतोंके अधीन हुआ हूँ और न जाने अब आगे मेरा क्या होगा. यदि कुछ समयको भी यह देह मुझे फिर मिले तो मैं कुछ सत्कर्म करूँ! मैं यहींसे इस सब कुटिल कुटुम्बका त्याग कर अच्युतमार्गमें चला जाऊं.' ऐसा वह अब विचार करता था.

तो भी इस आत्माको अबतक घरसे निकलना भाता नहीं था. उसे अपनी प्रत्येक समृद्धि देखकर बड़ा शोक होता है कि:—"इनमेंसे एक भी वस्तु अब मेरे काममें न आयेगी. अब ये मेरी नहीं हैं. अरे! जबतक मेरी थीं, तबतक मैंने इनका कुछ भी सदुपयोग नहीं किया. मुझे प्राप्त हुआ यह अमूल्य देह भी मैंने सत्कर्ममें नहीं लगाया. मैंने आदि अंतसे रहित, अद्वितीय, विशुद्ध, विज्ञानमय, प्रशान्त, सत्य परब्रह्मका विचार ही नहीं किया; परन्तु भ्रान्त मनुष्य जैसे रौप्यरूप प्रतीत होती सीपके प्रकाशको भ्रमसे सत्य चांदी मानता है, इसी तरह मैंने इस जगत्के सब भोग्य पदार्थोंको ही सत्य माना. परन्तु अरे हाय! विवर्तरूप भ्रमरूपसे विद्यमान सब पदार्थ मिथ्या हैं; ये सब दृश्य पदार्थ कल्पित हैं; नाशवंत हैं; देह और उसके संबंधी सब पदार्थ असत्य हैं. पर मेरे जैसा जगत्में कौन होगा जिसे सत्यासत्यका विचार ही न हो?" ऐसा खेद करते फिर भी वह उस क्रूर दूतोंकी मारसे महाभय और त्रास पाकर अपने भविष्यत्की चिन्ता करने लगा कि; "अभीसे ही जब मैं इन दूतोंके स्वाधीन होकर महा असह्य पीड़ा भोगता हूँ, तो आगे अब वे मुझे कहां ले जायेंगे और मेरी कैसी दुरवस्था करेंगे? जिसके सेवक—दूत ऐसे भयंकर और क्रूर हैं, उनका स्वामी यमराज कैसा भयंकर होगा? वह मुझे क्या दंड देगा? वहांसे मुझे कौन छुड़ायेगा? हाय! जिस समर्थ प्रभुके नामकी गर्जना बिलकुल अंतरिक्ष (आकाश) में हुई और जिसके सुननेसे इन दूतोंने मुझे तुरंत ही अपने भयंकर पाशसे मुक्त किया उस पवित्र प्रभुको मैं पापी बिलकुल भूल गया। जिस समर्थका सिर्फ एक पवित्र नाम ही प्राणीको ऐसे महद्भयसे छुड़ाता है, ऐसा मैं अच्युतपथके पथिकोंसे बारंबार सुनता था, उसपर मैंने, धन यौवनादि मदके कारण विश्वास नहीं किया. अरे! इसके सिवाय मैंने दूसरा भी कुछ सदाचरण नहीं किया. अरे! यहां पड़े रहकर मैंने अच्युतमार्गका त्याग किया तो किया परन्तु यदि उस मार्गसे जानेवालोंकी बारम्बार आगत स्वागतरूप सेवा की होती तो भी कदाचित् उससे मैं इन क्रूर पुरुषोंके हाथसे मुक्त हो सकता. पर अब मैं क्या कहूँ? किसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोष दूँ ? उस स्वार्थिनी दुष्टा–मायारूप स्त्रीने ही बलात्कारसे जगत्में बांध-कर इन यमदूतोंके स्वाधीन किया है और अब मेरे दुःखके लिए नहीं, पर अपने ही स्वार्थकी हानिके लिए वह जोरसे रो रही है. इस कुटिल स्त्री और स्वार्थी कुटुम्बको * मैंने अपना माना यह मैंने कितना खोटा काम किया है ?" वह जीवात्मा ऐसा महाशोक और पश्चात्ताप करता था, इतनेमें उन दूतोंमेंसे एकने उसे लोहमुद्गरका धक्का मारकर कहा:–" अरे दुष्ट ! अब तू किसमें मुग्ध हो रहा है ? तेरा जो प्यारेसे प्यारा शरीर, जिसके द्वारा तू इस लोकमें था, और जिसे दयालु प्रभुने तुझे अपने पवित्र मार्गमें जानेके लिए दिया था, उसे तो तू टेढ़े मार्गोंमें ले जाकर अंतमें खो बैठा और अपने किए हुए कर्मोंका अब अनवसर शोच करनेवाला तू जिस शरीरको अनेक जन्मोंके बाद महाकष्ट विना प्राप्त नहीं कर सकते, उसका शोच क्यों करता है ? जिसके हृदयमें क्षणभर भी अहंकारकी निवृत्तिका विचार नहीं होता, जो देहमें ही आसक्त रहता है और देही विषयोंमें ही लुब्ध रहता है, उसका कल्याण कहां है ? तेरा आत्मा देहसे भिन्न है, इसका तुझे ज्ञान नहीं हुआ, परंतु आत्मा ही देह है, ऐसा विश्वास हुआ था. इससे क्या विषयोंको भोगनेके लिए तू यह देह चाहता है? तेरे इस अज्ञानके लिए क्या कहें ? अब तो तुझे अंतिम न्यायके लिए हम यमलोकमें ले जायेंगे. वहां तू अपने अपराधोंका दण्ड भोगेगा. परंतु अब यह आशा रखना व्यर्थ है कि वहांसे कुछ समयमें लौट इस लोकमें फिर आकर तू सत्कर्ममें प्रवृत्त होगा और पुण्यलोक प्राप्त करेगा. अरे मूर्ख ! हाथमें आया हुआ अमृत जो जीव नहीं पी सकता वह अमृत वह जानेपर पछताय तो उससे क्या लाभ ? " ऐसा कहकर दो दूत आगे और दूसरे दो उस जीवात्माके पीछे रहकर चलने लगे !

पुरद्वारसे बाहर आते तक तो वे धीरे धीरे चलते रहे; परंतु सीमा पार करते ही वे उस जीवात्माको ले आकाशमार्गमें बड़े वेगसे चले. इस समय उन्होंने जीवात्माको बहुत बुरी तरहसे अधर उठा लिया था ! उन विमान-वासियोंने भी, जो विमानको पुरद्वारपर स्थिर कर एकचित्तसे यह सब देखा करते थे, उस जीवात्माको सुदूर गया हुआ देख, थोड़ी देरमें विमान-को उसके पास पहुँचा दिया,

---

* काम क्रोधादि षड्रिपुको.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्षणभरमें वे भयंकर दूत उस जीवात्माको लेकर आकाशसे नीचे आने लगे और किसी ऐसी अपरिचित कराल कंटकाकीर्ण भूमिपर उतरे जिसे देखते ही महात्रास पैदा हो. यह देख विमानमें बैठे हुए महाराजा वरेप्सु, गुरुचरणोंको प्रणाम कर बद्धांजलि हो बोले:—"कृपानाथ! ये पुरुष इस अनाथ जीवको यहां कहां ले आये? यहां तो पुरद्वार या जगन्नगरका कोई भी जीव नहीं है. वहांका जैसा कुछ भी दृश्य नहीं दीखता. यहां तो जितना दीखता है उतना सभी अमंगल और कष्टरूप ही दीखता है. यह पवन गर्म और दुर्गंधित है. गर्मी असह्य पड़ती है. उस रास्तेकी रेत तप्त हो गयी है. फिर वहां ठौर ठौर पड़े हुए पत्थरोंके नुकीले टुकड़े तथा बड़े बड़े कांटे भालों जैसे खड़े हैं. छायाके लिए कहीं वृक्ष तो देखनेमें भी नहीं आते, परंतु वे दूर दूर वृक्ष दीखते हैं. वे किसके होंगे? ऐसे दुर्वृक्ष मैंने कभी नहीं देखे. उनमें पत्तोंका तो नाम भी नहीं है. जडसे सिरतक सर्वत्र भाला जैसे कांटे ही हैं. फिर बहुत गर्मी और चारों ओर मृगजलके कारण यह सारा महाघोर वन ऐसा मालूम होता है मानों धक धक जल रहा हो. ऐसे दुःखरूप स्थानमें ये यमदूत इस जीवात्माको क्यों लाये हैं? देखो, उस जीवको धधकती हुई रेतमें खड़ा किया है और ऊपरसे मुद्गरकी मार देते हैं (फिर दूसरे पुण्यजनोंकी ओर देखकर राजा बोला) यह भीषण चीत्कार क्या तुम सब सुनते हो? यह उस जीवात्माका है. अरे! उस बेचारे अनात्मज्ञका इस निर्जन वनमें कौन साथी है? दूत उसे ऐसे अग्निसम तपे हुए दुर्गम्य मार्गमें चलनेको कहते हैं. उसके कोमल पैर नंगे हैं, सारा शरीर भी नंगा है. ऊपर असह्य ताप और नीचे ऐसा दुस्तर मार्ग जहां किसीसे भी चला नहीं जा सकता वहां चलाते हैं और जब यह जीव नहीं चल सकता तब दूत उसे मारते हैं, अब उसका क्या वश?" इतना कह राजा फिर बोला:—"यह उसीके जैसा परंतु बहुत दूरसे सुन पड़नेवाला दयापूर्ण चीत्कार सब लोग सुनो. गुरुदेव! यह फिर किसका चीत्कार है? कहांसे सुनाई पड़ता है?" यह सुन महात्मा वामदेवजी बोले:—"राजा, यह चीत्कार इस जीव जैसे दूसरे पापियोंका है. वह यहां इस अरण्यमेंसे ही सुनाई पड़ता है. यह बड़े विस्तारवाला घोर वन ऐसे पतितोंके यमलोक जानेका मार्ग है. यह बहुत दुस्तर है. इस मार्गसे होकर आनेसे असह्य कष्टकी यातनाएं, जगन्नगरमें रह ईश्वर, पुण्य, ज्ञान और भक्तिको भूल कर किये हुए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पातकोंके फलरूपसे भोगते उन अनात्मज्ञ प्राणियोंको होती हैं जो अच्युतमार्ग भूल गये हैं और विषयानुरागी बन देहरूप घरको नित्यका स्थान मान जिन्होंने विषयोंकी ही कामना (इच्छा) की है, देहको ही आत्मा मान लिया है और विषयोंकी खोजमें तत्परता दिखाई है इससे संसाररूप बंधनमें पड़ नैत्यिक अचलित ब्रह्मभावनाकी वासनापर प्रीति न कर उल्टे उसका क्षय (नाश) कर संसाररूप वासनाके बंधनको न तोड़ उसे बढ़ने दिया है, वासनाका ही चिन्तन किया है और बाहर—व्यवहारकी क्रियासे वासनाको दृढ कर, बढ़ती हुई वासनासे संसारमें लिपट कर नये संसारको पैदा किया है तथा परमात्माके निर्मित नियम अर्थात् सब काल सारी अवस्थाओंमें चिन्तनक्रिया और वासनाका क्षय करना चाहिए उससे विरुद्ध, स्त्री, पुत्र, पैसे, देह, गेह, और अनित्य पदार्थोंको सत्य–सर्वस्व–त्राता मान उनमें प्रेम कर अकर्म ही किये हैं और इस प्रकार वासनाके अधीन होकर कुकर्मही नहीं परंतु पापकर्ममें भी प्रवृत्त हो न करने योग्य कार्य किया और करने योग्य नहीं किया, ऐसे अधर्मोंके जानेका यह मार्ग है, इसे यातनामार्ग कहते हैं. देखो ! वह प्राणी फिर चीत्कार करता है. वह चल नहीं सकता इससे दूर उसे मारते और अपने साथ चोटी पकड़ कर घसीटते जाते हैं. शरीरसे निकलनेवाला पसीना और आँखोंसे गिरनेवाली अश्रुधारा भी इस गर्म वायुके सपाटेसे तत्क्षण सूख जाती है. ऐसे सुखसाधनोंसे परिपूर्ण विमानमें रहनेपर भी हमें असह्य तापसे भारी भय होता है, तब इस नूतन देहधारी और वस्त्रादिरिक्त जीवात्माको कितना भारी कष्ट होता होगा, इसका विचार तुम्ही करो. उसके दोनों पैरोंमें बड़े २ काटे चुभे हैं उनको निकालनेके लिए वह नीचे झुका जाता है, बस झुकते ही पीठपर मुद्गर पड़ते हैं और चलनेमें विलंब होनेसे उसी दशामें दूसरा दूत फिर उसे, घसीटकर आगे चलता है. जो जीव करने योग्य नहीं करते और जो नहीं करना हैं उसे करते हैं, उन दोनोंको समान फल यही मिलता है, इनमेंसे बहुतसे जीवोंने प्रभुका स्मरण ही नहीं किया, जाना ही नहीं. बहुतसे जीवोंने संसारको ही भजा (ध्यान किया) है, उन सबकी ऐसी ही अवस्था है, अहो कष्ट ! अहो कष्ट !"

अत्यंत दयार्द्र होकर राजा वरेण्सु बोले:–"कृपानाथ ! मेरे मनमें प्रश्न होता है कि जब मरनेवाले प्राणीको, एक देह छूटनेके बाद ऐसा दूसरा देह प्राप्त होता है, तब उस देहको अच्छादनरूप वस्त्रादि क्यों प्राप्त नहीं होते, जो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसे कष्टमें काम आवें ?" वामदेवजी बोलेः–"ये भी प्राप्त होवें ही परन्तु देहकी तरह अटल रूपसे नहीं ! यह देह तो उसके पूर्वदेहमें रहते समय भी सूक्ष्मरूपसे प्राप्त होता है. पूर्वका स्थूलदेह नष्ट हो जानेपर, उस देहसे किये गये कर्मोंका दंड भोगनेके लिए अब स्पष्ट रूपसे वह सूक्ष्म देहके रूपसे दीखता है. वह भी सिर्फ हम लोगोंको ही दीखता है, दूसरोंको नहीं. यह लिंगदेह है. परन्तु स्थूल देहमें रहनेपर भी अपने भोजन आच्छादनादिके लिए प्राप्त हुई सामग्रीसे थोड़ी बहुत यदि उसने परोपकारार्थ काममें लाने और परब्रह्मकी भक्तिके लिए दी हो तो वह उसे इस स्थानमें अवश्य काम आती और नहीं तो उसे उसके विना ही रहना पड़ता है. इस निर्भाग्य प्राणीने परोपकारके लिए कुछ भी किया हो ऐसा मालूम नहीं होता ! सुनो, वह उन दूतोंसे कुछ कहता है. "

दुःख और मारसे भयभीत वह जीवात्मा बड़ी करुणापूर्ण रीतिसे अश्रुधारा बहाते, हाथ जोड़ दूतोंसे कहने लगाः–" हे यमानुचरो ! मुझ अनाथपर कुछ दयादृष्टि करो. इस अग्निसदृश तापसे मैंने अत्यंत दुःख पाया है और मुझे बड़ी प्यास लगी है. इस तापकी ज्वालासे मेरा कंठ सूखा जाता है और आँखोंमें अँधेरा आता है ! यहां कहीं जलाशय हो तो कृपा कर दिखाओ. " यह सुन एक दूतने धम्मसे पीठ पर मुद्गरका प्रहार कर कहाः–" चल, पानी पीनेवाले ! जीवन भरमें कभी किसी गरीब प्यासेको पानी पिलाया है कि योंही अब पानी मांगता है ?" ऐसी महा दुरवस्थामें रगड़े और मार खाते, वह जीव बहुत दूर निकल गया. इतनेमें उस दुःखदायी मार्गकी बाजूमें एक बड़ा घटादार वृक्ष आया उसकी छायाके तले बुहार झाड़ कर सफाई की गयी थी. वहीं शीतल जलकी एक सुराही, गीले कपड़ेसे ढँकी हुई रखी थी और पास ही एक बर्तनमें खानेका कुछ पदार्थ भी रखा था. यह सब दूरसे देखते ही बड़ी प्याससे घबरा हुआ वह जीवात्मा यद्यपि पराधीन और अशक्त हो गया था तो भी मनको दृढ़ करके उस ओर दौड़ा. उसने यह सोचा कि यमदूत अपनी कुटिलताके कारण इन्कार करते होंगे; परन्तु यह जल यहां तैयार है और छाया भी है इस लिए कुछ समयके लिए यहां जाकर शरीर ठंढ़ा करूँ और पानी पी लूं. परन्तु दौड़ कर कैसे जासके ? पीछेसे दूतने तुरंत उसके पीछेके हिस्सेमें अंकुश मार कर खींच लिया और दूसरोंने ऊपरसे धड़ाधड़

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दो चार मुद्गर जमाये. अनात्मज्ञ देह और उसके भोगोंको सर्वस्व माननेवाला वह भाग्यहीन जीव, तुरंत चक्कर खाकर गिर पड़ा और अचेत हो गया.

इतनेमें उसी मार्गसे होकर उसके आगेवाला एक दूसरा जीवात्मा, अपने साथके दूतोंको रास्तेमें खड़ा कर उस वृक्षतले आया और इच्छाभर उस ढँके हुए बर्तनमेंसे भोजनके पदार्थ लेकर खाने लगा. फिर पानी पी थोड़ी देर शान्त होकर दूतोंके बुलानेसे लौटने लगा. इसने पैरोंमें सुन्दर कोमल जूते, शरीरमें श्वेत वस्त्र पहरे थे और सिरमें छाता लगाये था. इससे रास्तेकी कठिनाई संबन्धी इसे कुछ दुःख न होता था और दूत भी उसे कोई दुःख नहीं देते थे. यह देख मूर्छासे सचेत हुआ भाग्यहीन जीव भारी करुणासे विलाप करने लगा. "यहां तो सब अपना ही अपने काम आते दीखता है. मैंने लोगोंके मुँहसे सुना है कि 'जो हाथमें वह साथमें,' परन्तु मुझ दुष्टने लोगोंका यह कथन तुच्छ माना. मेरे मतसे वह लोकही सत्य था, इस लोककी बात मैंने मानी ही नहीं, न शास्त्रको माना, गुरुजन और शिष्ट जनोंके वचनोंका विश्वास भी नहीं किया. सन्तोंको नहीं, परंतु ठग धूर्त आदिके-व्यवहारको पार लगानेवाला माना. संसारमें मग्न हुआ. अब कौन सहायता करे ? वास्तवमें मुझ पापीने किसी प्यासेको पानी पिलाने तकका उपकार नहीं किया, तो मुझे सुख कहांसे मिले ? यह कोई पुण्यात्मा मेरे आगे जाता है. इसे कोई दुःख नहीं है. अरे ! मैंने कभी भी ईश्वर, प्रभु, परमात्मा, परब्रह्म अद्वैत ब्रह्मका विचार नहीं किया और लोक, शास्त्र तथा वाणीसे पुण्यकर्मोंकी ओर भी नहीं झुका." इस प्रकार बारम्बार निश्वास छोड़ सिर कूट रोते कोसते वह जीव चलने लगा. फिर उन दूतोंमेंसे एक बोला:—"भाग्यहीन प्राणी ! पुण्यवान् प्राणीको दुःख होता ही नहीं. तेरे आगे जानेवाले उस जीवको देख. ऐसे दुःखद मार्गमें भी वह कोई क्लेश नहीं भोगता. उसने प्रभुकी भक्तिके लिए निष्कामनासे निरंजन प्रभुको जान कर बहुतसे पुण्यकर्म किये हैं, बहुत दान दिये हैं, अपने शरीरसे दुःख उठा कर भी अनेक लोगोंका उपकार किया है और प्रभुकी कृपासे अपने मिले हुए अन्न और कपड़े आदि सब भोज्य पदार्थोंको प्रभुके लिए ही अर्थात् परोपकारके लिए ही काममें लाया है. मानवलोकमें भूखेको भोजन, प्यासेको पानी और अविद्यावालेको विद्यादान देना मनुष्यमात्रका कर्तव्य ही है—अर्थात् इनके देनेसे पुण्य होगा, इस लिए देना चाहिये यह नहीं, परन्तु इन विद्या, अन्न, जलमें सबका भाग है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस लिए वे अवश्य ही देना चाहिये. फिर यह जीव सबमें सब जगह ब्रह्मभावसे देख कर संसारका अनुधावन करता था; परंतु मायाद्वारा ठगा गया पुरुष ही ब्रह्ममें भेद देखता है और जो ब्रह्ममें भेद देख कर, 'मैं और मेरा' कर बैठता है, वह वारम्वार जन्म मरणका क्लेश भोगता है और अच्युत प्रभुको भूल जानेसे महाकष्टको प्राप्त होता है. जो जीव द्वैत और अद्वैत, ऐसे भेदोंकी कल्पना करता है वह महाकष्ट पाता है. परंतु जो जीव जगत्में अभेददृष्टिवाला है, वही क्लेशसे मुक्त रहता है; परंतु उनमेंसे तू कुछ समझ नहीं सका. तूने तो–उल्टे–दूसरे और घड़ी भरके लिए विश्राम करनेको मिले हुए पदार्थोंका इच्छानुसार दुरुपयोग किया है. पुरद्वारके विश्रामालयमें आज पर्यंत रह कर तूने जो जो कर्म किये हैं, उन्हें क्या तू भूल गया ? तू भोगेच्छामात्रका ही स्वामी था; परंतु तूने इतना नहीं जाना था, जाननेका विचार भी नहीं किया कि भोगेच्छामात्र बंधन है और उसका त्याग ही मोक्ष है. आगे पीछेका विचार न कर दृढ़ भावनासे जिन जिन पदार्थोंका ग्रहण–सेवन–प्रीति–ममत्व किया जाय वही वासना है. तूने भोगोंकी वासना तजी नहीं; परन्तु उसे बढ़ाया, देहवासना त्यागी नहीं, परन्तु उसे वृद्ध की; अब सुखकी इच्छा क्यों करता है ?"

ऐसा सुन भारी निश्वास छोड़ महाअसह्य दुःखका अनुभव करनेसे उस जीवात्माकी आखोंसे आंसू चलने लगे. धीरे धीरे मार्ग विकट आने लगा. गर्मीका अपार ताप कम होनेसे अब ठंढ लगने लगी. धीरे धीरे ठंढ इतनी बढ़ी कि मानों हिमालयकी हेमन्त ऋतु वहां पास ही बसी हो ! ऐसी ठंढमें कोमल नूतन देहधारी उस जीवात्माके शरीर पर कपड़े और पैरमें जूते भी नहीं हैं इससे यह विकट रास्ता चलना दुःखद होगा. इसकी कल्पना वासनाबंधनसे बँधे हुए जीवको होना भी दुर्लभ है. इस समय वह पुण्यहीन जीवात्मा जोरसे रोने लगा, और वह इस आशासे सबकी ओर देखने लगा कि कोई भी मुझे इस दुःखसे छुड़ानेवाला मिलेगा. परन्तु वहां कौन था ? उल्टे यमके दूत धमका कर उसे शीघ्र चलनेकी सूचना देने लगे. इतनेमें कर्मभोगसे एक बड़ा कांटा उसके पैरमें ऐसा चुभा कि पैरकी तली भेद कर ऊपर निकल आया. उसको निकालनेके लिए नीचे झुक कर उसने बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु वह नहीं निकला. तब निरुपाय वह यमदूतोंकी मारके डरसे ज्योंका त्यों रोते और लँगड़ाते चला. कुछ आगे जाने पर एक बड़ा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दुर्घट पर्वत आया. यह पर्वत बहुत ऊँचा और नोकदार पत्थरों, कांटेवाले वृक्षों और बीछी, सांप बाघ आदि प्राणियोंसे परिपूर्ण था. इस पर चढ़नेके लिए बँधा या खोदा हुआ मार्ग नहीं था. परन्तु पत्थरोंके खंडोंको पकड़ कर चढ़ना पड़ता था. मध्यमें हजारों हाथ गहरी खाई थी, जिसकी तली दीख भी नहीं पड़ती थी. ऐसा दुर्गम पर्वत देख कर अर्थात् दुःखके पहाड़को देख कर ही वह जीवात्मा थरथर कांपने लगा और यमदूतोंसे झुक झुक विनय करने लगा कि:-" हे यमानुगो ! (यमदूतो !) बहुत हुआ. दया करो, दया करो. मुझ अशक्तको चलनेके लिए कोई सुगम मार्ग बताओ. इस विकट पर्वत पर मैं किस तरह चढ़ सकूंगा ?" यमदूतोंने उससे कहा:—"अरे मूर्ख ! दया कौन करे ? दया तो सिर्फ सर्वेश्वर अच्युत करता है और हमारा काम तो पापियोंको दंड ही देना है. तूने किसी पर किसी दिन भी दया की है या योंही हमसे दया चाहता है ? जो किसी पर दया नहीं करता, वह किसीसे दया मांगनेका अधिकारी नहीं है. शीघ्र चल, इस पर्वतसे होकर ही आगेकी ओर जाना है. " यह पापी जीवात्मा क्या करे ? निरुपाय अपने शिरमें हाथ मार रोते २ उस पर्वत पर चढ़ने लगा. चढ़ाव बिलकुल कुढ़ंगा होनेसे ज्योंही कुछ चढ़ता त्योंही वहांसे फिसल कर नीचे गिर पड़ता. ऐसा करते कुछ ऊंचे चढ़ा. इतनेमें एक वृक्षकी खोहसे बहुतसे भ्रमर उड़े और इसके सारे नंगे शरीरसे लिपट पड़े. वह 'त्राहि ! तोबा !' की चीत्कार मारने लगा. इतनेमें अँधेरेमें पड़े हुए एक पत्थरकी नोकको हाथसे पकड़ पैर रखना चाहता था कि एक छिपी बैठी बड़ी जहरीली बीछीने जोरसे उसे डंक मारा. अहो त्रास ! अहो कष्ट ! इस डंकसे अकस्मात् चमक भीषण चीत्कार कर गिरते ही वह जीव एक नोकदार पत्थरसे टकराया. इतना होने पर भी ऊपरसे मार पड़नेके भयसे ज्यों त्यों कर, वह असीम दुःखसे फिर चढ़ने लगा. भ्रमरोंके डंक और जगह जगह पछाड़ खाकर गिरनेसे उसका सूक्ष्म शरीर रक्तमें सराबोर हो गया था, इससे मांसके समान जान कर कड़ी चोंचवाले बड़े क्रूर कौवे और गिद्ध बारम्बार झपटते थे. यह सब उसे कम था, इससे फिर उसके साथके एक दूतने एक बड़ा पत्थर लेकर उसके सिर-पर रखा और कहा:—"अरे ! तू एकेले कहां जाता है ? ले यह तेरे माल असबाबका भार. इसपर तेरी अधिक प्रीति होनेसे इसको छोड़ कर तू कैसे जा सकेगा ?

यह सब घटना देखते हुए विमानवासी अब तो बड़े ही दुःखित हुए.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वरेप्सु हाथ जोड़ कर गुरुजीसे कहने लगे-" हे कृपानाथ ! यह तो असीम यातना है. मुझे मालूम होता है कि ऐसे निर्दय यमदूत विना कारण सिर्फ कुतूहलसे ही अपने अधीन हुए दीन प्राणियोंको दुःख देते हैं." गुरु वामदेवजी बोले:-"वरेप्सु, तू राजा होकर क्यों भूलता है ? किसी अपराधीको उसके घोर अपराधका दंड़ देनेके लिए फांसीकी सज़ा देनेवाला राजा क्या निर्दय माना जायगा ? इसमें तो धर्माधर्मका निर्णय करनेवाला न्याय ही कारण है और इसमें भी साक्षात् धर्ममूर्ति यमराजका न्याय तो बिलकुल निष्कलंक है और इसीसे इनका नाम धर्मराज पड़ा है. परन्तु यह जीवात्मा दूतोंसे क्या कहता है, वह सुनो."

जीवात्मा बोला—" हे यमानुगो ! मुझ दीनको तुम क्या हर प्रकारसे अधिक दुःख देनेमें ही राजी हो ? मेरी ऐसी दशा होने पर भी मैं यह भारी पाषाण उठा कर पर्वत पर कैसे चढ़ सकूंगा ? " एक दूत बोला:—" अरे दुष्ट ! तेरे जैसे हृदयशून्य हों तब तो इससे भी बड़ा दूसरा पाषाण उठवायें; अपनी कृति क्या तू इतनी देरमें भूल गया ? एक ब्रह्मवेत्ताकी आर्तपूर्ण प्रार्थना सुनने पर भी क्रोधान्ध होकर तूने जो पत्थर मारा था, क्या यह वही पत्थर नहीं है ?" दूतोंके मुँहसे अपने पूर्वकृत कर्मोंका यथार्थ वर्णन सुन कर अतिशय पश्चात्ताप करते वह जीवात्मा चुपचाप आगे चलने लगा, तब यह सब सुन कर यहां विमानवासियोंके मनको भी समाधान हुआ और वे स्वस्थ चित्त होकर देखने लगे कि अब फिर क्या होता है.

जीवात्मा थक कर निरा निर्बल हो गया था तो भी कड़ा हृदय कर पैर रखता था. इतनेमें एक तिरछी शिलापर चढ़ाव आया. शिला प्रत्येक स्थानमें फटकर फैल गयी थी और उसके पास ही हजारों हाथ गहरी एक बड़ी खाई थी. शिलापर संभाल कर पैर रखते ही उसका फटा हुआ भाग खसका और साथ ही उस जीवात्माको लेकर धड़ड़ड़ करते उस खाईमें जा पड़ा. गिरते हुए उस जीवात्माके " अरे गिरा ! गिरा !" की चीत्कार करते ही सारे विमानवासी भी चीत्कार कर उठे और बड़ा खेद करने लगे "कि वह तो अब साफ ही हो गया होगा. नीचे वह और ऊपर पत्थर पड़ा है, अतः उसके दबनेमें शक ही नहीं है. अब तो वह मर गया होगा." परन्तु सूक्ष्म *शरीरकी मृत्यु नहीं होती. मृत्यु स्थूल देहकी ही होती है.

*—मृत्यु होनेपर-देह पड़नेपर फिर पुण्यपापका भोक्ता लिंगदेह रहता ही है.-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इससे वामदेवजी बोलेः—" अब क्यों भूलते हो ? अब उसे मृत्यु कैसी ? मरण तो स्थूल देहका ही होता है और यह तो अब उसका यातनाभोगी देह है, यही सूक्ष्म देह है, अर्थात् इसके द्वारा तो वह अपने पूर्वकृत कर्मोंके फलरूपसे यातनाओंका ही अनुभव करता है. इससे इसे मृत्यु तो नहीं परन्तु मरणान्तसे भी बढ़ कर दुःख होता है. "

उस जीवात्माको गिरा देख दो दूत खाईमें कूदे और कुछ देरमें उसे खोज कर बाहर खींच लाये. खाईका एक बड़ा विषधर सर्प उसके पैरोंमें लिपटा था, जिसे यमदूत बहुत मारते थे, परन्तु छूटता नहीं था. मारसे उस जीवके सारे अवयव चूरचूर हो गये. उसमें फिर इस सर्पका हलाहल जहर सारे शरीरमें व्याप गया, इससे वह अपार दुःखमें पड़कर मूर्छित जैसा हो गया. फिर बाहर लाकर दूतोंने उसे जमीन पर रक्खा. वह बहुत धीरे धीरे दुःखकी हिचकियां लेता और कुछ हिलता भी था. ऐसा देख उन यमदूतोंने उसे पाशद्वारा गलेसे बांध लिया और जैसे कोई नीच अंत्यज मृत कुत्तेको घसीटते ले जाता हो वैसे उस जीवको अपने पीछे घसीट कर चलने लगे. वे बहुत शीघ्र चलने लगे. कुछ देरमें इस विकट पर्वतको पार कर वे आगे चले. वहां ऐसा वन आया जिसमें तरवारकी धारके समान तीक्ष्ण पत्ते उगे थे. रास्तेमें फैलायी और खड़ी की गयी चार धारवाली तरवारोंसे होकर चलना और इन पत्तोंके वनमें चलना एकसा था. उस वनमें वह जीव कटते चुभते खिंचता जा रहा था. उसके आगे घना अँधेरा आया. उस मार्गमें सर्वत्र पैने नोकदार भाले खड़े किये गये थे. अँधेरेमें चलते और फिर रास्तेमें जगह जगह भालोंके

-इस लिंगकी काया १६ पदार्थोंसे बनी हैः—पांच ज्ञानेन्द्रिय—कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका; पांच कर्मेन्द्रिय—वाणी, हाथ, चरण, गुदा, उपस्थ, ग्यारहवां मन और पांच विषय—शब्द स्पर्श, रूप, रस, और गंध. इन सोलह पदार्थोंसे लिंगदेहकी रचना होती है. इसे अनेक लोग वासनादेह भी कहते हैं. यह देह—यद्यपि पार्थिव देह नहीं है तो भी उसके दश इन्द्रियां हैं, जो उन इन्द्रियोंमें इन्द्रियत्व धर्मसे रहती हैं और उनेस संबंध होता है. मन उभयात्मक अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय माना जाता है और वह सबका एक नायक रूप है, जो जीव सूक्ष्मदेह—लिंगदेहमें रहता है, वह निराकार होते भी इन्द्रियों द्वारा विषयोंका यथार्थ अनुभव करता है. विषय, सुखदुःख मिले होते हैं. यह सूक्ष्म देहवाला जीव, अपने कर्मानुसार सुख-दुःखात्मक विषयोंका अनुभव करता है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बीचसे जाते हुए वह जीव बुरी तरह छिद गया था. विमानवासी उसकी बड़ी दयापूर्ण चीत्कार सुनते थे. इस प्रकार यमपुर जाते हुए असंख्य पापियोंका संघ इस जीवात्माकी तरह अपार कष्ट सहते जा रहा था और उसकी वारंवार त्राहि त्राहिकी पुकार सुनी भी नहीं जाती थी. रास्तेमें कभी बहुत खारा पानी मिलता, कभी गर्म लाख जैसी कीचसे होकर उसको चलना पड़ता, कभी तप्त की हुई रेतमें, कभी ताम्बे जैसी तप्त भूमिमें, कभी बहुत घने कुहासेमें, कभी दावानलमें, कभी कुढंगे चढ़ाओंमें, कभी भयंकर गुफाओंमें और कभी मल-मूत्र, पीव इत्यादि कुत्सित पदार्थोंसे भरे हुए गहरे गढ़ोंसे होकर पापियोंके उस संघको बड़े बड़े दुःख उठा कर चलना पड़ता था. आगे चलते समय कभी रास्तेमें खलबलाते हुए गर्म पानीकी वर्षा होती थी, कभी पत्थर बरसते थे; कभी अग्नि गिरती थी, कहीं पर सिर्फ खून ही बरसता था, तो कहीं हथियार और खारे कीचकी इसपर वर्षा होती थी. इतने दुःखमें फिर भी यदि शीघ्र न चल सके तो ऊपरसे यमदूत संघवालोंको लोहमुद्गरोंसे ताड़न करते जाते थे. निरा कष्ट ही कष्ट ! संसारमें भोगेच्छासे–वासना बढ़ानेवाले जीवोंको विश्राम या सुखका तो स्वप्न भी नहीं होता. इस सब दुःस्वरूप मार्गमें उस पुरद्वारके जीव ठोकरें खाते थे.

आगे जाने पर महाघोर मार्ग आया. दूरसे बहुत अशुभ धुआं बरसते दीखा और असह्य दुर्गंध आने लगी. कौवे, गीध और दूसरे मांसाहारी घोर पक्षियोंके कर्कश शब्द दशों दिशाओंमें सुनाई दिये. समीप जाने पर मालूम हुआ कि वह भयंकर और पापरूप बड़े विस्तारवाली नदी थी. उसके किनारे, जीवोंकी हड्डियाँ और सिरके बने थे और उसमें मांस तथा खून जैसे रौद्र पदार्थोंकी गाढ़ी कीच जमी थी. सिवारकी जगह उसमें प्राणियोंके सिरके बाल तैरते थे. फेनवाला खून पीव और घृणा पैदा करनेवाले पदार्थ उसमें जलकी जगह जोरसे बहते थे. यह नदी जैसी भयंकर थी, वैसे ही उसमें भयंकर मच्छ, कच्छ, बड़े क्रूर मगर, शिशुमार, जलसर्प, सुई जैसे मुँहवाले कीड़े और खून पीनेवाले जलजीव, मांसको छेदनेवाले जोंक आदि जलचर खदबद कर रहे थे. नदीके दोनों कूलों और उसके ऊपर वज्र जैसी चोंचवाले गिद्ध और कौवे आदि मांसाहारी प्राणी उड़ रहे थे. उबलती कढ़ाईमें जैसे घी उछला करता है वैसे उछाल मारती यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भयंकर नदी ऐसे बड़े विस्तारमें वहती थी कि किनारे ही नहीं दीखते थे. यमपुर जानेवाले जीवोंको यह नदी पार कर यमदूत दूसरे किनारे ले जाते थे.

पुरद्वारके उस मूर्छित प्राणीको उस नदीके किनारे जाकर यमदूतोंने खींचा. महादुःखसे दुःखित वह जीव जब श्वास भी बड़ी कठिनाईसे ले सकता था तब चल सकना तो दुर्लभ ही था. दूतोंने उसे ज्यों त्यों बैठा कर पूछाः—"अरे प्राणी! यह तेरे कर्मका संचय उछाल मार रहा है उसे देख. इस प्रकार थक जानेसे काम नहीं चलेगा. अभी तो बहुत दूर जाना है. चल, खड़ा हो और नदी उतर कर उस ओर चल. परंतु अरे जीव! क्या तूने ऐसा कोई सुकर्म किया है कि जिससे आनंदसे इसे पार कर सके?" यह जीव तो घोर गर्जना करती अपार दुःखरूप नदीको देखते ही गतचेतन हो गया था, इससे तुरंत उसके गलेमें पाश डाल पहलेकी तरह वे यमदूत उस नदीमें घसीटते ले चले. वह प्राणी नदीमें घसीटता जाता, डुबकी खाता था और उसके गलेके पाशकी डोर पकड़ कर यमदूत नदीसे अधर चलते थे. इसी प्रकार असंख्य जीवोंका समूह इस दुःखरूप अथाह गहरी नदीमें पड़ा था. वहां कोई जीव पाशसे बाँध कर खींचा जाता था, कोई अंकुशादि शस्त्रकी नोकोंसे छिदता था, किसीको नाकसे छेद कर खींचते तो किसीको मछली पकड़नेके कांटेसे खींचते थे. बहुतोंसे तो लोहे आदिका भार उठवाया था और ऊपरसे मार भी पड़ती थी. इस समय उन प्राणियोंकी दयाजनक पुकारका भारी कोलाहल हो रहा था. इस असह्य दुःखको देख, वे अपने पिछले कुकर्मों, प्रभुकी विस्मृति, अपरार्थबुद्धि, विषयासक्ति, अधमाचरण, आत्मरसायन रोकने, सद्गुरुके उपदेशका तिरस्कार करने, निंद्य व्यवहार, देहवासना, जगत्की उपाधिमें लीनता, काम, संकल्प, अश्रद्धा, अधृति, निर्लज्जता, मनके विकार, बुद्धिके विप्लव, इन्द्रियोंकी निरंकुशता, मनोनिग्रहकी विमुखता, परब्रह्मसे होनेवाली विमुखता, क्रोधावेशमें होनेवाले कुकर्म, लोभमें ललककर वासनामें लिपटने और संसारकी आसक्ति आदिको स्मरण करते थे. कोई मंदबुद्धि वहां भी 'ऐ पुत्र! हे भाई! अरी मा! रे धन! अरे ऐश्वर्य! ओ प्यारी!' आदिकी जल्पना (पुकार) करते थे.

यह महात्रास देख विमानवासी बहुत दुःखी हुए. वे गुरुदेवसे विनय करने लगे किः—"हे कृपानिधे! यह रोमांचकर दुःसह प्रसंग तो अब हमसे देखा नहीं जा सकता. अब बहुत हुआ. इस लिए यहांसे लौटकर फिर परम-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पवित्र अच्युतमार्गमें पधारो." महात्मा वामदेवजी बोलेः—"जब तुम्हें यह सब देख कर ही ग्लानि होती और भयसे रोमांच होता है, तो उसमें पड़कर दुःख भोगनेवालोंको कैसा होता होगा ? उन्हें जब ऐसी घोर यातना भोगनी पड़ती है तो उस प्रमाणमें उनकी कृति कितनी अधम, क्रूर और निंद्य होगी ? विश्वके सुख या दुःखोंका दाता कोई नहीं है, कोई उन्हें देता है, पैदा करता है, ऐसा मानना बुद्धिकी न्यूनता है और 'यह मैं करता हूँ' यह अभिमान मिथ्या है, वैसे ही 'वह कराता है, वह सबको देता है, वह प्रेरणा करता है, वह बुद्धिसे बताता है;' यह भी अविद्या ही है; परन्तु यह सारा जगत् अपने अपने कर्मसे ही गुँथा है. धृति, क्षमा, दम, शम, अस्तेय, शौच, इंद्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य ये सब धर्मके लक्षण हैं; परंतु इनको त्याग कर जो अधम कर्ममें लीन रहते तथा भोगेच्छामें श्रेय मान उसका अभिनंदन करते हैं वे बारम्बार जन्म-गर्भवासका दुःख, जरा-बूढ़ापनका दुःख और मृत्युका दुःख भोगते हैं. जो मूढ़ इस नाशवंत जगतके सुखों और कर्मोंको सर्वोत्तम सुखका स्थान मानते और यह नहीं जानते कि परम हित और श्रेय क्या है वे इससे भी हीन लोकमें निवास करते हैं. जब सुकृत्य* भी बंधनका कारण है तब कुकृत्यके लिए तो कहना ही क्या ? जगतमें रह, उसे सत्य मान, भय या लज्जारहित, दया या करुणाशून्य कर्म करनेवालोंकी यही गति है. यह गति उन्हींकी है जो विषयोंके गुरु हैं, यह गति उन्हींकी है जिन्होंने श्रीहरिको जाना नहीं, पूजा नहीं, विचार नहीं किया. यह गति उन्हींकी है जो अनात्मज्ञ हैं. पर अब तुम खेद मत करो. हमें इस मार्गमें बहुत देरतक रहना नहीं है; परन्तु तुम्हें आगे चलकर बहुत कुछ देखना शेष है. यह तो सिर्फ यमलोकका रास्ता ही है. परंतु जहां जाने पर प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मोंका न्याय कर उनके कर्मानुसार दंड दिया जाता है वह स्थान देखना अत्यावश्यक है." फिर राजा वरेप्सु हाथ जोड़ कर बोलेः—"गुरुदेव ! इस नरकनदीके उस पार जाना तो अत्यंत कठिन है, यदि कोई पुण्यात्मा प्राणी आता होगा तो क्या वह भी ऐसे दुःख सहन कर पार उतरता होगा ?" गुरुजीने कहाः—"ऐसा क्यों होगा? पुण्यात्माके लिए पापिष्ठों जैसा ही प्रबंध हो तो नियंताके न्यायमें दोषा-

* यज्ञादि, तप और व्रतादि काम्य कर्म भी जीवको बंधनमें डालनेवाले हैं, मोक्षदायी नहीं हैं.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रोप हो. उनके लिए जुदा प्रबंध किया जाता है. इस नदीको आनंद-पूर्वक पार करनेके लिए वितरण–दान करना पड़ता है अर्थात् जो सत्पात्र वेदवेत्ता अच्छी तरह गौका पोषण कर सकें उन्हें गोदान* दिया हो और यथाशक्ति गौओंका पालन किया हो वही प्राणी यह नदी विना प्रयास पार कर सकता है. देखो ! वैसे प्राणियोंको पार उतारनेके लिए उस किनारे पर नाव तैयार है और ऐसे वितरण–दानसे यह नदी पार की जा सकती है. इस लिए इसका नाम वैतरणी है. वे बहुतसे पुण्यात्मा नावमें बैठ कर जाते हैं. वह देखो."

इस प्रकार बातचीत होते हुए विमान ऐसे वेगसे चलने लगा कि थोड़ी देरमें वह वैतरणीको लांघ गया. वैतरणीमें भारी दुःख उठा कर पार हुए प्राणी, नाना प्रकारसे रोते, मार्गके अनेक दुःख सहन करते और दूतोंकी मार खाते हुए चले जाते थे. उनको देखते हुए विमानवासी विमानकी तीव्र गतिसे एक नगरमें जा पहुँचे. यमलोकके मार्गमें जानेवाले पापी प्राणियोंको इस स्थानमें कुछ विश्रांति दी जाती थी. परन्तु वहां अधिक देर टिकने न देकर फिर उन्हें मार्गस्थ करते थे. यहां सहज विश्राम लेकर जब वे अपने स्त्री पुत्रादि स्वजनों तथा घरके सुखकी याद कर निश्वास छोड़ते तब उस नगरके निवासी और यमदूत उनसे कहते थे कि:–"अरे मूढ़ो ! ऐ अनात्मज्ञो ! रे पापात्माओ ! किसका घर, किसका स्वजन और किसका धन ? उनकी प्रीतिके लिए किये हुए कर्म ही अब इस लम्बे मार्गमें तुम्हें भोगने हैं. अब तुम अपने कर्मोंके लिए पछताते हो तो बालकसे वृद्धावस्था तक सबके जाने हुए इस मार्गसे क्या तुम अनभिज्ञ थे ? शायद अनजान थे तो सद्गुरुके मुँहसे या पवित्र पुरुष द्वारा शास्त्र क्यों नहीं

---

*—गो अर्थात् इन्द्रिय, गो-गाय, और गो–सरस्वती-विद्या–ब्रह्मविद्या और गो–पृथ्वी (देह पृथ्वीका भाग है) गो-दान अर्थात् इंद्रियोंको इस प्रकार स्वाधीन–निग्रहमें–करदे कि जिससे विकार-वासना पैदा न होने पावे. दान अर्थात् देना इन्द्रियोंको देना अर्थात् उनके वशसे छूटना, सरस्वती अर्थात् विद्या. परमात्माका ज्ञान प्राप्त करना, दूसरोंको उपदेश करना भी गोदान है. गो-पृथ्वी अर्थात् देह. देहकी ममताका त्याग कर उसे परमात्माको अर्पण करो अर्थात् उसमें लीन करो और गायका दान अर्थात् ब्रह्मवेत्ताओंका निर्वाह करनेके लिए गाय, जो सब रसोंकी दाता है, देना. ऐसा गोदानका अर्थ है.साम्प्रत ब्रह्मबंधुओंकी गोदानविधि तो पेट भरनेकी व्यर्थ विडंबना है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुना ? अब तो कृत कर्म भोगो. " यह सुन निराश होकर रोते हुए ये जीव फिर मार्ग चलते थे. यह सब देखते हुए विमान आगे चला, तब वरेप्सुके पूछनेसे वामदेवजीने बताया कि:–" हम लोगोंने जो देखा वह सौम्यनगर है. यह इस महामार्गका पहला विश्रामस्थान है. यह नगर प्राणियोंके लिए सुखरूप है.

इस तरह बातें होते, मनोवेगसे उड़ा हुआ वह विमान वहांसे सैकड़ों कोस दूरस्थ एक दूसरे नगरके ऊपर जा पहुँचा. उसको दिखा कर गुरुजी बोले:–" राजा, यह दूसरा विश्राम है और इसका नाम सौरिपुर है. यहां जंगम नामका महाभयंकर रूपवाला एक राजा रहता है–इसे देख भय-प्राप्त प्रेतोंको, उनके मरणके पीछे किये गये*पुण्यादि कर्मानुसार यहां कुछ अन्नोदक (भोजन पानी) मिलता है और इसी तरह अब फिर आनेवाले सब विश्रामस्थानोंमें भी प्रेत अपने पीछे दिये गये पुण्यादिका भक्षण कर निर्वाह करते हैं. जो आगे दीखता है वह गंधर्वपुर है. प्रेतोंको दूरसे यह ऐसा मालूम होता है मानों नगर हो और इससे वे थक जानेके कारण वहां विश्राम करनेको तड़फड़ा रहे हैं. परन्तु पास आने पर गंधर्वनगरके समान ही उसके अदृश्य होजानेसे अनात्मज्ञ और पापकर्मसे पूर्ण जीव निराश होते हैं. जो आगे आयेगा वह अनेक दुःखोंवाला दुःखपुर, फिर नानाक्रन्दपुर, फिर सुप्तपुर, अपार भयवाला रौद्रपुर, जहां दुःखरूप वर्षा हुआ करती है वह पयोवर्षपुर और इसके बाद हिमालयसे भी शतगुणा हिम जहां बरसता है वह शीताढ्यपुर है और जो सबसे पीछे दीखता है वह बहुभीतिपुर है. " इन सबको पार कर विमान आगे चला और कुछ देरमें यमपुरके पास जा पहुँचा.

अत्यंत बड़े विस्तारवाली यमपुरीके चार † प्रधान द्वार थे. उनमेंसे दक्षिण दिशाके महाद्वारके पास जाकर वह महामार्ग समाप्त हुआ था. उसके पास जाकर इन पुण्यात्माओंका विमान भी अंतरिक्षमें स्थिर होगया.

---

* मृत्युके पीछे पुत्रादिके किये हुए क्रियारूप पुण्यके अनुसार अर्थात् त्रिपाक्षिक, श्राद्ध आदि कर उसके पुत्रादिने जो अन्नोदक उसके लिए पुण्यार्थ दिया हो; उसको प्रेत वहां खाता है.

† पहला उत्तरद्वार ब्रह्मवेत्ताओंका, दूसरा पश्चिमद्वार पुण्यात्मा प्राणियोंका, तीसरा पूर्वद्वार भक्तशिरोमणियोंका और दक्षिणद्वार पापात्माओंका है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विमान खड़े होते ही पुण्यात्मा लोग नीचे देखने लगे, तब गुरु वामदेवजीने कहा:-" देखो, वह जो दीखता है वही यमपुर है. रास्तेमें हम लोग जिन्हें देखते आये हैं वे सब पापी प्राणी अपार दुःखके बाद यहीं आयेंगे, यहीं उनका न्याय होगा." फिर राजा वरेप्सु बोले:-" कृपानाथ ! यमपुर क्या यही है ? जब मैंने देखा था तब तो यह बहुत ही दिव्य, शोभायमान और आनंदप्रद था." वामदेवजीने कहा:-"हां, यह सत्य है, परन्तु यह नगर बहुत ही बड़े विस्तारवाला और अति विचित्र है. तूने जिस यमपुरको देखा था वह यही है. परन्तु जिसे तूने देखा था अथवा जहां तुझे लाये थे वह स्थान यह नहीं है. पुण्यवानों, धार्मिकों और पापशून्य जीवोंको भी अंतिम न्यायके लिए इस नगरमें लाते हैं सही; परंतु उन्हें दूसरे ही मार्गसे होकर और दूसरी ही रीतिसे लाते हैं. तुझे लाये थे वह मार्ग कैसा था, और वहां जाने पर कैसा हुआ यह सब तूने अपने मुँहसे पहले ही हमसे कहा है. इस नगरकी चार दिशाओंके चार महाद्वार हैं. उनमेंसे पूर्व, पश्चिम, और उत्तर दिशाके तीन द्वार पुण्यात्माओंके लिए हैं. वहां किसी प्रकारका दुःख नहीं है. यह अंतिम दक्षिणद्वार जो महाभयंकर और दुःखरूप है, पापियोंके ले जानेके लिए है. तूने जसी यमसभा देखी थी वैसी यमसभा और नगरकी रचना भी पापियोंको नहीं दीखती. वैसे ही यमराजका वैसा सौम्य शान्त-स्वरूप भी उनको दिखायी नहीं देता. उनके कपालमें तो यहां भी मार मार और भय ही भय है. (फिर सबको सम्बोधन कर बोले) अब उस अनात्मज्ञ और संसारासक्तोंके बड़े संघको देखो ! बड़ी कठिनाईसे वे यहांतक आ पँहुचे हैं तो भी अभी यमदूत उन्हें मारते ही ले आते हैं. वे द्वारमें प्रविष्ट हो गये, हम भी चलें और उनका अब क्या होता है उसे देखें " धीरे धीरे विमान उनके ऊपर अंतरिक्षमेंसे उतरने लगा.

फिर मोह ममतामें फँसे हुए, विषयासक्त, व्यवहारकुटिल और परमार्थ-हीन उन पापात्माओंको एक दुःखरूप स्थानमें खड़ा कर कुछ दूत एक बड़े दुर्गवाले स्थानमें गये. कुछ देरमें वहांसे लौटकर उन्हें भीतर ले गये. विमान भी दुर्गके ऊपर जा खड़ा हुआ. विमानसे दुर्गके भीतरकी सब व्यवस्था भली भांति दीखती थी. भीतर एक बहुत ही विस्तारवाली भव्य महासभा थी. उसके बीचमें काजलके बड़े पर्वतके जैसा एक विकराल शरीरवाला पुरुष, वैसे ही विकराल काले भैंसेपर बैठा मालूम होता था. उसका स्वरूप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसा भयंकर था कि उसको देखते ही प्राणी, वायुसे हिलते हुए पत्तेकी भांति कांपने लगे. विमानके पुण्यात्मा भी उसे देखकर ऐसे भयभीत हुए कि वे अपने मनोभाव एक दूसरे पर प्रकट करनेके लिए परस्पर सामने भी देख नहीं सके. इस पुरुषका स्वरूप महात्माओं द्वारा देखे गये जगन्नगरके उस कालपुरुषसे बहुतांशमें मिलता था, इससे उसे भी सब लोग काल ही समझने लगे. कालपुरुष और इसमें इतना ही अंतर था कि इसके दो पांव और बत्तीस * हाथ थे. समस्त हाथोंमें बिजली जैसे नाशकारक अनेक आयुध पकड़े था. प्रलयके मेघके समान गर्जना कर रहा था. विशाल बावडी अथवा कुए जैसे उसके गहरे रक्तनेत्र अग्निके समान जल रहे थे. गुफाके समान उसकी नाक थी और मुँहके दोनों जबड़ोंसे बाहार निकली हुई बड़ी कराल दाढ़ी अकथनीय भय पैदा करती थी. वह एक भयंकर कालदण्ड पकड़े हुए था. उसकी ओर उँगली बताकर गुरु वामदेवजीने कहा:—"देखो, ये स्वयम् ही यमराज हैं और यही उनका मुख्य काल (यम) स्वरूप है. पुण्यात्माओंका न्याय करनेवाले धर्मराज भी यही हैं. इस समय उनकी सभा और सभासद भी भयंकर हैं. उनकी दाहिनी ओर जो बड़ा भीषण पुरुष खड़ा है, वह प्रधान चित्रगुप्त है. बांयीं बाजूमें काला कराल और दंडधारी पुरुष मृत्यु है. अनेक प्रकारके क्रूर शरीरवाले जो घातक पुरुष खड़े हैं, वे सब ज्वर और रोग हैं. देखो ! वे सब कैसी भयंकर गर्जना कर रहे हैं. इनके सामने खड़े हुए उन पापियोंका न्याय देखो."

इतनेमें प्रधान चिगुप्तने, यमराजकी आज्ञासे, वहां आकर खड़े हुए सब प्राणियोंके पापपुण्यकर्म पलभरमें कह सुनाये और उनके अनुसार उनके दंडकी व्यवस्था होनेपर फिर चित्रगुप्त प्राणियोंको सम्बोधन कर कुछ कहने लगे, बस सबलोग सुनने लगे:—"अरे दुष्कर्मियो ! ऐ दुराचारी पापात्माओ ! अहंकारसे पूर्ण कुटिलो ! दयारिक्त प्राणियो ! तुम्हें पापाचरण करते

---

* यमराजका स्वरूप शास्त्रमें इस प्रकार वर्णन किया गया है:—

पापिष्ठास्ते प्रपश्यन्ति यमरूपं भयंकरम् । दण्डहस्तं महाकायं महिषोपरि संस्थितम् ॥
प्रलयाम्बुदनिर्घोषं कज्जलाचलसंनिभम् । विद्युत्प्रभायुधैर्भीमं द्वात्रिंशद्भुजसंयुतम् ॥
योजनत्रयविस्तारं वापीतुल्यविलोचनम् । दंष्ट्राकरालवदनं रक्ताक्षं दीर्घनासिकम् ॥
मृत्युज्वरादिभिर्युक्तश्चित्रगुप्तोऽपि भीषणः । सर्वे दूताश्च गर्जन्ति यमतुल्यास्तदन्तिके ॥
तं दृष्ट्वा भयभीतास्तु हाहेति प्रवदन् खलाः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समय विचार क्यों न आया ? और अब निष्कारण क्यों कांपते हो ? काम, क्रोध, लोभ आदिके अधीन होकर जो जो पापकर्म तुमने किये हैं, उन सबका फल तो बिलकुल दुःख ही है, अब उसे भोगो. पाप करते तुम प्रसन्न होते थे, लज्जित नहीं होते थे, तो अब क्यों लज्जित हो ? अब उसी प्रसन्नतासे इसका फल भोगो ! मृत्युलोकमें अनेक गुप्त और प्रकट पापकर्म किये, ठगाई की, हिंसा की, द्रोह किया, झूठ बोले, व्रत, तप, दान कुछ नहीं किया, परम प्रभुको याद नहीं किया, रातदिन विषयोंका ही रटन किया, मिथ्यात्वको अपनाया और सत्यका नाश किया, लोगों तथा राजासे छिपाया, जगन्नगरमें धन, बल आदि उपायोंद्वारा निरपराधी ठहरे; परन्तु यहां यह धर्मस्वरूप यमराजका पवित्र न्याय तो धनवान् और निर्धन, बलवान् और निर्बल, पंडित तथा मूर्ख, राजा और रंक, पुण्यात्मा और पापी आदि सबके लिए समान हैं. यहां किसीका झूठ कपट, छल, या पक्षपात नहीं चलता. जाओ अपने जीवन भर किये हुए कुकर्मोंके लिए तुम्हे ये धर्मराजके दूत जहां लेजाकर जैसा दंड दें वैसा भोग करो. "

प्रधान चित्रगुप्तकी ऐसी दुर्घट (असह्य) आज्ञा होते ही निर्दय दूत, उन पापियोंको झटपट पाशसे बांध ले चले और एक अपार बिस्तारवाले महादुःखमय स्थानमें ले गये. वहां उन्हीं जैसे अगणित अभागी प्राणी दुःखकी पुकार कर रहे थे. उनकी अतिशय करुणाजनक चीत्कारसे, सुननेवालेका हृदय भिद जाता था. उनका होता हुआ असह्य दंड और नाना प्रकारसे की जानेवाली शरीरकी दुर्दशा देख कँपकँपी छूटती थी. दयालु हृदयके मनुष्यको, इसे देखते ही मूर्छा आजाती थी. वहां जो भिन्न भिन्न असंख्य स्थान दंडके लिये बनाकर रखे गये हैं, उनमें पापात्माओंके समूहको उनके पापकर्मानुसार दंड दिया जाता है. आनेवाले इन जीवोंकी भी वैसी ही दशा हुई.

लोहेके मुद्गर, गदा और तोमरादिसे मारनेसे अचेत हुए उन प्राणियोंसे यमदूत बोले:—"अरे दुष्टो ! रे दुराचारियो ! तुम पहले क्यों नहीं चेते ? एक ग्रास अन्न तो क्या, परंतु सस्तेसे सस्ता जलतक तुमने किसीको नहीं दिया; अपने मुँहसे किसीको अच्छा लगनेवाला आदरवचन भी नहीं बोले. असत्य और परद्रोह तथा विषय और वासनामें ही मग्न रहे, तो अब उस पापका फल भोगो. " इस प्रकार अनेक कठोर वचन कहकर, बहुतोंको एक बड़े वज्र जैसे कांटेवाले और अंगारके समान जलते वृक्षसे उल्टे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लटकाया. कइयोंको खड़े कर आरे जैसे अस्त्रसे चीरने लगे. कितनोंके शरीरको कुल्हाड़ोंसे काट टुकड़े कर कुत्तोंको खिलानेके लिए डालने लगे. अनेकोंको कमरतक जमीनमें गाड़ ऊपरसे असह्य मार मारने लगे. बहुतोंको यंत्रमें डाल ईखके समान पेरने लगे. अनेकोंको जलती आगमें डालकर लोहेके गोलेकी तरह धौंकने लगे. कई एकोंको घी या तेलकी कड़कड़ाती हुई कढ़ाईमें डालकर तलने लगे. कुछको अंधेरे और बहुत गहरे कुएमें डाल दिया. किसीको ऊंचे पहाड़से नीचे गिराकर पथरीली जमीनपर पटकने लगे. अनेक जीवोंको मलमूत्रसे भरे हुए गढ़ेमें—जहां वज्रकी सुईके समान चोंचवाले कीटाणु खलबला रहे थे—फेंक दिया और कई एकोंको ऐसी क्रूर भूमिमें रखा, जहां बहुत बड़ी और तीक्ष्ण चोंचवाले गीध और कौवे, उनके शरीरसे मांस और आँखें निकालकर खाने लगे. इस तरह इन जीवोंको दुःखमय स्थानमें लेजाकर रखा.

यह सब देख विमानवासी विस्मित होगये. वरेप्सु हाथ जोड़ महात्मा बटुकसे कहने लगे—" कृपालु गुरुदेव ! यहां तो सर्वत्र दुःख ही दुःख देखनेमें आता है. इन भिन्न भिन्न अनेक दुःखालयोंमें अनेकानेक असह्य संकट भोगते हुए इन दीन प्राणियोंके दुःखोद्गारोंका अति कठोर कोलाहल, सारे गगनमंडलमें व्याप रहा है. उनकी दुर्दशा आँखोंसे देखी नहीं जाती. उनकी दयापूर्ण दुःखमय चीत्कार सुनी नहीं जाती. यह महाअमंगल प्रदेश है. यहां सुख, सुन्दरता या शुभ वस्तुका तो स्वप्न ही है. यहां अब हमसे रहा नहीं जाता. शरीरमें कँपकँपी छूटती है. रोएं खड़े होजाती हैं. हृदय महाखेदसे पूर्ण होगया है और कोट्यवधि योजन पर भी जरा विश्राम या सुखका अंश होगा या नहीं इसके लिए मनमें भारी शंका होती है और इससे मन जरा भी विकलता त्याग कर नीचे नहीं बैठता. अब तो बहुत हुआ. यह दुःखमय कारागार चाहे जैसे बड़े न्यायपुरःसर निर्मित हुआ हो, चाहे जिस हेतुसे बनाया गया हो और उसका नियामक (स्वामी) यमराज चाहे जैसा न्यायी हो, परंतु हमें तो यहां एक निमिष भी सौ दुष्कालके वर्षों जैसा दुस्तर लगता है. कृपा ! कृपा ! देव ! कृपा ! आप हमें फिर पवित्र अच्युतमार्गका दर्शन कराओ. "

यह सुन महात्मा गुरु वामदेवजी, सब पुण्यात्माओंको सम्बोधन कर राजासे कहने लगे:–"राजा! अब तुम सब लोग हैरान होगये हो, इससे हम लोग यहांसे शीघ्र ही लौटेंगे. नहीं तो, देखना अभी बहुत कुछ बाकी है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुमने जो सब दुःखमय–यातनारूप स्थान देखा वह नरक है. यह सब उन कुकर्मियोंके कुकर्मका फलरूप दंड देनेके लिए बनाया गया है, जो माया-संसारको सत्य मान मौज भोगनेमें कर्म अकर्म नहीं समझते. यह नरक-लोक बहुत विस्तृत है और इसमें भिन्न भिन्न यातनावाले असंख्य नरक हैं. जो मनुष्य जगत्पुरमें रह कर जन्मपर्यंत जैसी कृति करता है, वैसा उसका अच्छा वा बुरा फल उसे परलोकमें भोगना पड़ता है. जगत्पुरनिवासियोंके लिए यह भी एक परलोक है. परंतु इसमें सिर्फ पापियोंको लाते हैं. जब तुम्हें यह नरक दूर रहकर सिर्फ देखनेसे ही इतना बड़ा विषाद उत्पन्न होता है, तो इसमें रहकर असह्य दुःखका अनुभव करनेवालोंको भला कैसा होता होगा ? वास्तवमें ! यह दृश्य ही बड़ा दयाजनक है, तो भी उन्हें वह दुःख कुछ अकारण नहीं दिया जाता. वे जगत्पुरमें रह कर ऐसी कृति करते हैं कि जिसके प्रमाणमें ये दुःख बहुत कम हैं. जो वहां बिलकुल स्वतंत्र, मनस्वी बन जाते और अपने ऊपर इस लोक या परलोकमें कोई नियंता ही नहीं, ऐसा मानकर उन्मत्ततासे, इच्छानुसार काम करते हैं; थोड़ेसे स्वार्थके लिए दूसरे हजारों प्राणियोंको बड़ा दुःख होता है इसका जिन्हें विचार न हो; जिनके हृदयमें दयाका लेश भी न हो; काम, क्रोध, लोभ और मदादिके अधीन होकर जो चाहे जैसा अघटित कार्य करते हैं; अपने समान दूसरोंको भी दुःख होता होगा, यह बात जिनके ध्यानमें नहीं होती; चाहे कोई हित या अहित करे, परन्तु जिनका सबसे निष्कारण ही वैर होता है, जो हृदयके बड़े ही कठोर, कपटी, मैले, निरंतर दूसरेका अहित चाहनेवाले, विना कारण नित्य कटुवादी और झूठा व्यवहार करनेवाले हैं, फिर परद्रोह करना, दूसरेकी स्त्री और धन चुराना तथा दूसरोंको उलझनमें डालना जिनका स्वभाव ही है, चाहे जैसे अनुचित कर्म कर उदर और इंद्रियोंका पोषण करना ही जो अपना कर्तव्य समझते हैं, दूसरेका हित या बड़ाईको जो जरा भी नहीं सह सकते, पर यदि किसीको दुःख या विपत्तिमें पड़े देखें तो बड़े हर्षित होते हैं ऐसे महा-अधम जन क्या कोई अधर्म और कोई पाप करनेमें चुकते होंगे ? जिनकी स्थिति और कृत्य जीवन भर निरे पापपूर्ण होते हैं वैसे दुष्टोंको यह नरककी यातना क्या कुछ अधिक है ? लो, चलो अब."

इतना कहते कहते विमान सरसर करता आकाशमार्गको उड़ा और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शीघ्रतासे मार्ग तय करते जगत्पुरकी ओर आने लगा. जाते समय तो रास्तेका सब कुछ देखते देखते जाना था, इससे विमान अपार वेगवाला होते भी उन्हें बहुत समय लग गया, परन्तु इस समय वैसा नहीं था. सायंकाल होने लगा, सब पुण्यात्मा गुरुदेवको प्रणाम कर स्नान संध्यादि करनेको चले गये. * रात होते ही सभास्थान भर गया. नित्य नियमानुसार श्रीअच्युतके कीर्तनका आरंभ हुआ. इस अद्भुत विमानमें समग्र आनंदमय लीलाका समावेश होनेसे और उसमें भी परमानंददायी अच्युतकीर्तनके रंगतरंगमें निमग्न होजानेसे दुर्दर्शन यममार्ग देखते देखते अतिशय भयभीत हुए सब पुण्यजन अनुपम सुखका अनुभव करने लगे. बीचबीचमें बारबार अच्युत नामकी जयगर्जनाएं होती थीं, कीर्तन और नामकी ध्वनिके कर्णपावन शब्दोंके साथ वीणा वंशी आदि बाजोंके स्वतःसिद्ध मधुर शब्द हो रहे थे. इतनेमें अंतरिक्षसे होकर जानेवाले कई दिव्य विमानोंका समूह यह अद्भुत दृश्य देख स्थिर हो गया. पुण्यजनोंके विमानने अब तक बहुत रास्ता तय किया था और रात भी बहुत बीत गयी थी इससे अब वह मंद होजानेसे, दूसरे विमानके देवादि और अप्सरादि गण यह कीर्तन आदि सारी दिव्य घटना अच्छी तरह देख सके और इससे बहुत विस्मित होकर अत्यंत प्रेमावेशके कारण वे सब भी एक साथ ही लगातार अच्युतनामकी जयध्वनि करने लगे. एक साथ होनेवाली भगवन्नामध्वनि अखंड आकाशमें छा गयी. सब प्रेमानंदमें मग्न होगये. कीर्तन समाप्त हुआ और पुण्यजनोंको आज्ञा मिली कि विमानमें अपने अपने शयनस्थानमें जाकर विश्राम करें. उनका चपल विमान दूसरे सब विमानोंको + वहीं छोड़, बड़ी शीघ्रतासे फिर चलने लगा और सब पुण्यात्मा जन सो गये. परंतु गुरुभक्तिपरायण महाराजा वरेण्युने निद्राको आदर नहीं दिया. उन्हें तो अभी समर्थ गुरुदेव और उनके वृद्ध मातापिताकी चरणसेवासे अवकाश मिलनेको बहुत देर थी. नित्यनियमानुसार पहले सब वृद्धजनोंको सुला कर वे गुरुदेवके पास आकर चरण दाबने लगे. अपनी मनमानी अनेकानेक शंकाएं और धर्मके रहस्य उनसे पूछते थे और गुरुदेव

* विमानमें ही बैठकर समय समय पर स्नानादि करनेको नदी, सरोवर आदि स्थानोंमें जाते थे. विमान ऐसा अद्भुत था, यह पहले ही कहा गया है.

+ रास्तेमें आते हुए जो विमान कीर्तन सुननेको ठहर गये थे.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शास्त्र तथा अनुभवसे उनका अच्छी तरह समाधान करते थे. ऐसा करते करते जब गुरुदेव निद्रित हो गये, तब वे उनके चरणोंके पासही लेट गये.

इस तरह जब सभी शान्त हो गये, तब वह अतुल वेगगामी विमान जगन्नगर और पुरद्वारको पार कर अच्युतपथके पास ही किसी अतिरमणीय स्थानमें जाकर गगनस्थ हो गया.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तृतीय बिन्दु–तृतीय सोपान.

अनेक–मार्ग–दर्शन.

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये ।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किंचित्कर्मकोटिभिः ॥ [विवेकचूडामणि]

अर्थः—कर्म चित्तकी शुद्धिके लिए है, वस्तुकी प्राप्तिके लिए नहीं; वस्तुकी सिद्धि (आत्मसाक्षात्कार) तो विचारसे होती है, करोड़ों कर्म करनेसे बिलकुल जरा भी नहीं होती.

आनन्दप्रद उषःकाल हुआ. धीरे धीरे प्राचीमें सूर्यप्रभा दीखने लगी. नित्य नियमानुसार वरेप्सु आदि पुण्यजन तुरंत निद्रा त्यागकर विमानमें बैठने लगे. बारंबार अच्युतनामकी जयगर्जना होने लगी. बड़े मधुर स्वरसे प्रातःस्मरणका आरंभ हुआ. प्रभातका प्रशान्त समय, मंदमंद प्रवाहित सुगंधसना सौरभ, पुण्यजनोंका उत्साह और उसके साथ ही अत्यंत प्रेमभावसे गाये जानेवाला सर्व समर्थ प्रभुका मंगलमय गुणगान इन सबका ऐक्य भगवद्भक्तिकी साक्षात् मनोहर मूर्तिको प्रकट करनेवाला था. प्रातःस्मरण कर चुकने पर तुरंत सब पुण्यजन स्नान संध्यादि प्रातःकर्म कर तैयार हुए और सद्गुरुको प्रणाम कर आसन पर बैठ गये. सूर्योदय हुआ. भारी गर्जनासे भगवन्नाम और गुरुनामकी जयध्वनि हुई और सबने नीचे भूमिकी ओर दृष्टि की ! वहां अत्यंत सुन्दर लीला विराजमान थी. उसे देखते ही अत्यंत हर्षित हुए वरेप्सु गुरुवामदेवजीसे कहने लगेः—"अहो कृपानाथ ! आज तो हम लोग फिर ठेठ अपने पवित्र अच्युतपथपर (अर्थात जहांसे पश्चादवलोकनको लौटे थे, वहीं पर) आ पहुँचे हैं. कैसा सुखमय पवित्र मार्ग है ! फलफूलोंकी खिली हुई वनवाटिकाएं देखकर नेत्रोंको कितना आनन्द होता है. अहा ! उन सुन्दर घेरदार वृक्षोंमें बैठकर बोलनेवाले कोकिलादि पक्षी, सूर्योदय देख, निद्रा त्यागकर, मधुर कलरवसे मानों अच्युत प्रभुके अद्भुत गुण गा रहे हैं. वे सामने देखकर फिर बोलेः—" अहो ! यह तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुण्यरूप अच्युततीर्थ ही आ गया, क्यों गुरुमहाराज ?" फिर पुण्यजनोंको सम्बोधन कर बोले:—"देखो ! अच्युतमंदिरके उस ऊंचे स्वर्णशिखरके दर्शन होते हैं. यह अतिमंगलरूप भव्य शंखध्वनि सुनो ! यह घड़घड़हट करता घंटानाद, मधुरालाप करती नौबत और दुंदुभीका तालसह नाद, समर्थ प्रभुकी अगाध शक्ति—समृद्धिका वर्णन कर रहे हैं."

यह सुन सब पुण्यात्मा जयगर्जना करते खड़े हुए और उस ओर देखकर कहने लगे:—"सत्य ही हमलोग पहले देखे हुए अच्युततीर्थपर आ पहुँचे हैं. अहो ! कैसी सुखमय भूमि है. दुःखमय नरकलोक देखकर भयभीत हुए मनको अभी ही पूर्ण शान्ति मिलेगी. हे ईश्वर ! इस क्रूर मार्गको अब स्वप्नमें भी न दिखाना ! ऐसा परम सुखमय पवित्र मार्ग त्यागकर जो कृपण इस क्रूर मार्गमें जाकर उसकी ही ऐसी कृति करते हैं, उनके दुर्भाग्यकी परिसीमा ही समझनी चाहिए.

यह सुन महात्मा बटुकने कहा:—सोचो कि जिस स्थानमें जानेका मार्ग ऐसा सुखरूप है, वह स्थान कैसा सुखपूर्ण होगा ? और फिर जिसकी अपार सत्तासे यह सुखपूर्ण बना है, वह सत्ताधीश प्रभु कैसा सुखरूप होगा ? जिसे वेदका तत्त्व जाननेवाले पुरुष आत्यंतिक सुख—अपार सुखके नामसे बताते हैं, जो सिर्फ बुद्धिसे ही अनुभव किया जा सकता है, इन्द्रियोंसे नहीं, वही यह (प्रभु) है. अरे, अधिक तो क्या, पर सुखमें जो सुखपन है, आनंदमें आनन्दपन है, तत्त्वमें तत्त्वपन है, ऐश्वर्यमें ऐश्वर्यपन है, वहीं यह प्रभु है. इस पवित्र मार्गकी पथदर्शिकामें भी इस विषयका उल्लेख है कि, 'सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्.' वहां जो आत्यंतिक सुख है, वह सिर्फ बुद्धिसे ग्राह्य और अतीन्द्रिय है तथा उसका वहीं अनुभव होता है." यह सुन वरेप्सु आदि पुण्यजन बोल उठे:—"कृपानाथ ! यह बात यथार्थ है. जब इस सुखधामके स्वामीकी मात्र प्रतिमाके कारण यह सारा तीर्थ सुखपूर्ण है तब फिर जहां वह प्रभु स्वयं विराजता होगा, वहांके आत्यंतिक सुखका क्या कहना ? गुरुदेव ! एक बार कृपा कर फिर इस अच्युतमूर्तिके दर्शन कराओ."

सब जनोंकी ऐसी प्रार्थनासे विमान तुरंत अच्युतमंदिरके पास जा खड़ा हुआ और सब लोग बड़े प्रेमसे उसमें की महामनोहर अच्युतमूर्तिका दर्शन करने लगे. इतनेमें उन्हें बहुतसे यात्रियोंका समूह उस अच्युतमूर्तिको प्रणाम कर वहांसे बाहर निकलते दिखायी दिया. उनकी ओर हाथ कर, गुरु वामदेवजी बोले:—" अरे ! वे कौन मनुष्य हैं ? तुमने उन्हें पहँचाना ?" राजा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वरेप्सु बोलेः–"कृपानाथ ! ये तो जगन्नगरके वे पथिक हैं ! और जो सबके आगे हैं वह अगुआ महात्मा सत्साधक है. क्या अब वे यहांसे चलनेकी तैयारीमें हैं?" वामदेवजी बोलेः–"हां, उनका तीर्थवास पूर्ण हुआ है इस लिए अब वे फिर अच्युतपथमें आरूढ़ होंगे. क्योंकि देखो, वे अपने पाथेयकी पोटली भी लेकर निकले हैं." तब वरेप्सु बोलेः–"कृपानाथ ! पर बहुत लोगोंके पास तो पाथेयकी पोटली ही नहीं है और बहुतोंके सिरपर पहलेसे भी अधिक भार है, यह क्यों ?" वामदेवजीने कहाः–"इसमें भी बहुत कुछ ज्ञातव्य रहस्य है. इससे यह स्पष्ट मालूम होता है कि इस पवित्र पथमें आरूढ़ हुए प्रत्येक पथिककी आत्मनिष्ठा कैसी है, हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि, इस मार्गमें आरूढ़ पथिकको, देहनिर्वाहसंबंधी किसी साधनकी अपेक्षा नहीं है. भोजन-पानादि जब जो चाहिए सब भगवदिच्छासे तैयार ही है; तब फिर पाथेयकी पोटलियां उठाकर कष्ट क्यों सहना चाहिए ? तुम अपना ही दृष्टान्त देखो ! जबसे यज्ञशालासे हम लोग इस पुण्यपूर्ण विमानमें बैठे हैं, तबसे क्या किसी भी समय हमे किसी वस्तुकी न्यूनता मालूम हुई है ? अथवा कोई साधन या भक्ष्य अथवा पेय पदार्थ हमने साथ लिया है ? नहीं ! तो भी सब वस्तुएं इच्छानुसार प्राप्त होती हैं. इस विमानका ऐसा अद्भुत प्रभाव और सर्व-सुखपूर्णता* हम जानते ही हैं. साथ ही हमें पूर्ण भरोसा है कि जो चाहिए यथासमय यथेच्छासे मिल ही जायगा और इस लिए हम सिर्फ इस मार्गके अवलोकन और समय समयपर अच्युतकीर्तनादिमें ही परायण होकर, सर्वथा निश्चिंत हैं. इसी तरह इन पथिकोंको भी निश्चिन्त रहकर रास्ता चलना चाहिए, नहीं तो इस पवित्र पथमें आरूढ़ होनेका फल ही क्या ? मूर्ख पथिक हाथमें आयी हुई अमूल्य वस्तुकी महत्ता जाने विना उसे यों ही खो देते हैं अथवा उसे मनमाने कार्यमें लाते हैं इससे उसके द्वारा जो अपूर्व लाभ होता वह नहीं होता और फलमें सिर्फ परिश्रम ही उनके हाथ लगता है. मैंने अभी ही तुमसे कहा है कि–'इस परसे इन पथिकोंकी आत्मनिष्ठा जानी जाती है. वह क्या है ?' इस अच्युतपथमें आरूढ़ हुए प्रत्येक पथिकको इतनी बातका तो नित्य ही स्मरण रखना चाहिये कि, 'जगन्नगर, जो सिर्फ क्षणभंगुर अर्थात् कालपुरुषके भक्ष्यके समान है, उसके मुँहमें ही पड़ा है, उसमें पैदा होने और निवास करनेसे मैं कालका भक्ष्यरूप ही हूँ; उसीमें आलस्यसे पड़ा रहूँ

* सब सुखपूर्णता–सारे सुखोंसे परिपूर्ण होना.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो वह काल मुझे निश्चय ही खा जायगा और मेरा समूल नाश होगा; इस लिए वैसा होने न देकर, कालसे बचनेके लिए मैं वहांसे भाग बचनेको बड़े कष्टसे इस अभयपथमें आ चढ़ा हूँ; इस लिए अब यदि यहां मैं प्रमत्त[1] रहूंगा या जगन्नगरकी तरह दुराशाग्रस्त[2] रह कर मिथ्या विचार[3] नहीं छोड़ूंगा, तो जिस निर्भय स्थानमें जानेकी प्रतिज्ञा करके निकला हूँ, वहां न जाकर मार्गमें ही भटक मरूंगा या फिर उस कालपुरुषके मुँहमें जा पड़ूंगा.' ऐसा जो विचार हुआ वह भी एक प्रकारकी आत्मनिष्ठा है. योगीमात्रको मत्त बन परमात्माकी प्राप्ति होना, मनोनिग्रह पर अवलंबित है; वैसे ही दुःखक्षय, प्रबोध और अक्षय शांतिका आधार भी वही है. चित्त ही संसार वासना और अनर्थका कारण है. चित्तसे ही जगत् है. चित्त क्षीण हुआ कि सब क्षीण हुआ. इस लिए महात्मा वसिष्ठ कहते हैं कि, चित्त स्थिर करो; क्योंकि चित्तकी ऐसी स्थिरता आत्मनिष्ठा है. ऐसा अनुभव करनेवाले पथिक तो समय समय पर बहुत सावधान रह कर, जैसे बने वैसे अपने साथके बोझको खा खर्च कर या फेंक कर कम कर देते हैं और फिर निश्चिन्तरूपसे विना प्रयास मार्गक्रमण करते हैं. परंतु, जो सिर्फ देखादेखी चल निकले हैं और मार्गकी महत्ता नहीं जानते, वे विना जाने ऐसे मार्गमें भी व्यर्थ भार-कर्मबल उठा कर दुःखित होते हैं. उनके मनसे जगन्नगरमें होनेवाला दीर्घकालका दृढ़ और उल्टा संसार नहीं जाता. जैसे भारी निर्धनताके अंतमें धनवान् हुए कृपण मनुष्यने चाहे जितना धन प्राप्त किया हो तो भी उसमेंसे व्यय-भोग नहीं कर सकता, बल्कि बड़े परिश्रमसे उसकी रक्षा कर, उसके बढ़ानेका भारी प्रयत्न करता है और फिर दैवयोगसे कदाचित् चोरादि या ऐसे दूसरे उपद्रवसे वह धन हर (चला) जाय, तो वह पहलेसे भी अधिक दुःखी होता है; उसी तरह यह बोझ (भार) उठा कर मरनेवाले मूर्ख पथिक भी मार्गका सत्य रहस्य-तत्त्व न समझनेसे

---

१ प्रमत्त अर्थात् प्रमादग्रस्त, गाफिल. २ दुराशाग्रस्त-खोटी आशाएं, जैसे कलतकका तो भरोसा नहीं है और मनमें ऐसी आशा होती है कि अरे, इस धनको मैं दानपुण्यादिमें खर्च कर डालूंगा तो आगे क्या खाऊंगा ? इसे रहने दूंगा तो मेरे खानेके काममें आवेगा, अमुक तो मुझे भविष्यत्में भोगना होगा, अमुक प्राप्त करूं तो आगे सुखी होऊं, ऐसी बड़ी खोटी आशाओंके फेरमें निरंतर दुःख भोगना और इतनेमें मौत आजाय तो बस, हुआ. सब पूर्ण हुआ. ३ बुरी आलोचनाएं अर्थात् जिनका कुछ अर्थ नहीं, और जो किसी तरह प्राप्त न हो सकें, ऐसी वस्तुओंका चिंतन.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंतमें उभयभ्रष्टके समान होते हैं, अर्थात् बीचमें ही भटकते हैं." यह सुन कुछ पुण्यात्मा बोले:—"अहा, किसी सामान्य लौकिक रास्ते जाना हो तो अपने साथ खानेपीनेका सामान रखना ही पड़े, न रखे वह दुःखी हो; किन्तु इस पवित्र मार्गमें तो उससे उल्टा ही है. कैसा चमत्कार है? प्रभु अच्युत अपने शरणागतपर कैसे दयालु हैं, यह इससे स्पष्ट मालूम होता है."

इतनेमें महात्मा वटुकने सबसे कहा:—"अब एकाग्रचित्त हो, इन पथिकोंकी ओर नजर रखो, जिसे अभी ही तुम्हारी शंकाका अधिक दृढ़ और प्रत्यक्ष प्रमाणपूर्वक समाधान हो जाय."

निष्कामपनकी आवश्यकता.

अच्युत-परब्रह्ममार्गमें आरूढ़ सारे पथिक, इस पवित्र क्षेत्रसे बाहर निकले, तब अपने अगुआ सत्साधकसहित उन्होंने इस क्षेत्रको प्रणाम कर भारी जयगर्जना की और प्रभु अच्युतका मंगलनामोच्चारण करते २ रास्ते लगे. अच्युततीर्थका विस्तार बहुत बड़ा था. पथिक अनुमान पहर भरसे चल रहे थे, तो भी उस क्षेत्रकी सीमा पूर्ण नहीं हुई. कुछ देरमें एक विश्राम आया. वहां एक सुन्दर मुकाम था. पास ही निर्मल गंगाके समान पवित्र जलका एक झरना भी बहता था. मुकाम (पड़ाव) के आसपास ऋषिके आश्रमकी तरह अनेक सुन्दर वृक्षोंकी घटा थी. छोटी छोटी पुष्पवाटिकाएं, प्रफुल्लित पुष्पोंद्वारा पथिकोंके मनको बहुत हर्ष पैदा करती थीं. उनपर गुंजार करते भौंरे और वृक्षोंपर कलरव करते पक्षी, अपने आनंदित मधुर शब्दोंद्वारा, उस स्थानकी रमणीयता, और बहुत स्वादिष्ट फल तथा फूलोंकी बहुलता सूचित करते थे. मध्याह्न होने लगा. उसी समय यह सुन्दर विश्रामस्थान भी आया. उसे देख, सबने वहीं मध्याह्न बितानेका निश्चय किया: तुरंत उनका अग्रणी महात्मा सत्साधक, अपने कपड़े उतार मध्याह्नसंध्यादि नित्य कर्म करनेके लिए निर्मल जलप्रवाहकी ओर चला. उसे देख श्रद्धालु पथिक भी वहां गये और स्थिरचित्त कर संध्यावंदनादि करने लगे.

अपने पुण्यजन भी उनके साथ ही अंतरिक्षमें चले आते थे, वे यह घटना स्थिर रूपसे देखने लगे. फिर गुरु वटुकने कहा:—"इस बड़े संघका अग्रणी वह सत्साधक अवश्य ही बहुत बड़ा पुरुष है. इसमें महात्मा पुरुषके सब लक्षण पूर्णरूपसे विद्यमान हैं. स्वयम् उत्तम आचरण कर लोगोंमें उसका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दृष्टान्त दिखाकर, उन्हें धर्ममार्गकी ओर लाना सत्पुरुषके लक्षण हैं. इस मार्गकी पथदर्शिकामें इसके लिए स्पष्ट कहा है कि,

" यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥

अर्थ---श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है उनको देखकर इतर जन भी आचरण करते हैं; वह जिस बातको मानता है, वही लोग भी मानते हैं और उसके अनुसार व्यवहार करते हैं.

" यह बात हम लोग अब प्रत्यक्ष देखते हैं. यह महात्मा सत्साधक यदि आलस्य कर, संध्यावंदन करनेको न उतरा होता तो ये सारे पथिक भी न उतरते और मध्याह्नकाल व्यर्थ गप्पोंमें ही बिता देते, पर अपने गुरुको देखकर सब ईश्वरोपासनामें तल्लीन हो गये हैं. पर भला, क्या उनको ही संध्योपासना कर्त्तव्य है और हमारे लिए अभी समय नहीं हुआ ?" यह सुन सब पुण्यजन भी तुरंत विमानमें संध्योपासना करनेको चले गये.

संध्यादि कर्मसे निवृत्त हो, वे फिर अपने अपने आसनोंपर बैठ गये. नीचे सब पथिक भी मुकाममें आकर भोजन करनेको बैठे. जिनके पास पाथेय था, वे पोटली खोलकर बैठे और बहुतसे लोगोंने वृक्षघटामेंसे मीठे वनफल ला, प्रभुको अर्पण कर, प्रसाद पाया. भोजन हो चुकनेपर वे रम्य विश्रामस्थानकी शोभाका अवलोकन करने लगे. उस स्थानके बीचमें एक बहुत सुन्दर मंडप था. उसके आस पास सुन्दर फूल खिल रहे थे. यह स्थान अमूल्य पाषाणोंसे बना हुआ एक भव्य प्रासादके समान मालूम होता था. उसके भीतरकी बैठक और नाना प्रकारके क्रीड़ास्थानोंकी शोभा अवर्णनीय थी, पर उसमें एक रचना ऐसी थी, जिसपर सब पथिकोंका मन एक बार ही जा टिका. उस मंडपमें एक विशाल दीवार पर बना हुआ अतिविचित्र चित्र था. उसमें एक सारे नगरका दृश्य था. चित्रके भीतर विचित्रता यह थी कि जितने आदमी इसमें चलते फिरते और कामकाज करते थे, वे सभी किसी न किसी सवारीपर होते भी शरीर या सिरपर अनेक प्रकारका भार उठाये थे. उत्तम वस्त्रालंकारसे सजी हुई सुन्दर नाजुक स्त्रियां, सुशोभित रथ, म्याना, या पालकीमें बैठी हुई भी सिरपर बेड़े बजनकी गठरी लिये बैठी थीं. सुन्दर स्वरूपवाले युवकोंमेंसे कोई घोड़े, कोई पालकी और रथमें बैठनेपर भी, कंधे और सिरपर बड़ी बड़ी गठरियां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पोटलियां उठाये थे. इसी तरह बहुतसे वृद्ध स्त्री, पुरुष और बाल, बालाएं आदि सब नागरिक, गाड़ी, गाड़े, नाव, हाथी, घोड़े या ऊंटों और ऐसे ही निर्जीव सजीव चाहे जैसे वाहनोंपर होनेपर भी अपने २ सिरपर कुछ न कुछ भार उठाये ही थे. इसमें एक किनारे राजाका बड़ा रिसाला था. उसका राजा सजे हुए बड़े हाथीपर, रत्नजड़ित अंबारीमें बैठनेपर भी अपने सिरमें एक वजनदार गठरी उठाये था. यह देख बहुत आश्चर्यप्राप्त सब पथिक, परस्पर कहने लगे कि:—"अहो ! यह कैसी विचित्रता और अज्ञानता है कि स्वयं वाहनोंपर होते भी सिरपर बोझ उठाये हैं ! ऐसा क्यों किया होगा, यह समझमें नहीं आता. क्या इससे कुछ वाहनका बोझ कम हो सकता था ? सबने यदि अपना भार वाहनपर रखा होता, तो भी सब वजन वाहन पर ही होता, तो यह व्यर्थ भार उठाकर मरना कितनी बड़ी मूर्खता है ? यह तो शायद किसी चतुर चित्रकारने दर्शकोंको हँसानेके लिए, खेल जैसी रचना की होगी. नहीं तो सारा नगर ऐसी उल्टी बुद्धिका नहीं हो सकता." यह सुन उनके गुरुरूप महात्मा सत्साधक बोले:—"वास्तवमें यह तो कुछ विचित्र ही दीखता है, पर उस ऊपरके हिस्सेमें बड़े सुवर्णाक्षरोंमें लिखा हुआ जो दीखता है वह क्या है ? इसका नाम तो न होगा."तब एक पथिकने उसे झटपट बांचकर कहा:—"हां हां, महाराज ! ऐसा ही दीखता है, पर कुछ समझमें नहीं आता. मुकुरपुर ! अर्थात् क्या ?" यह सुन सत्साधक यह जाननेके लिए विचार करने लगा कि 'इसका क्या मतलब होगा ?' इतनेमें वह पथिक फिर बोला:—"कृपानाथ ! इस नामके नीचे कुछ और भी पद्यरूपमें लिखा है:—

चित्रं न चित्रं न सृतिर्विचित्रा पान्थेषु चैतत्परमं विचित्रम् ।
अध्वानमाप्ता ह्यभयं तथापि दृढं प्रसक्ताः खलु खाद्यभारे ॥

अर्थ—चित्र भी विचित्र नहीं, और मार्ग भी विचित्र नहीं, परन्तु पथिकोंमें यह परम विचित्रता देखी जाती है कि वे अभयमार्गमें आनेपर भी वासनारूप भोजनके भारपर अत्यंत आसक्ति रखे हुए हैं."

यह पद्य पढ़ते ही महात्मा सत्साधक बोल उठा:—"वाहवाह ! धन्य प्रभु तेरे इस देशको ! यह पद्य तो अपनी शंकाके लिए हमें वास्तवमें प्रत्युत्तर ही देता है और इस विचित्र नगर (चित्रित हुए)का 'मुकुरपुर' नाम भी अब इस परसे यथार्थ ही है. अहो ! हे पथिको ! यह सुवर्णपद्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हमें क्या कहता है, उसे देखो ! अरे ! वह हमें कैसा हितकर उपदेश करता है उसे सोचो. जैसे अपने मुँहका कलंक-कालिमा मनुष्यको आप ही आप नहीं दीखता; पर यदि सामने आयना अर्थात् दर्पण (मुकुर) हो तो प्रत्यक्ष दीखता है, उसी तरह मुकुरपुर भी हमें दर्पणरूप होकर हमारी बहुतसी भूलें दिखा देता है और वह उस पद्यद्वारा स्वष्टीकरण करता है तथा हमारे आश्चर्यकी हँसी उड़ाकर कहता है कि:—

'हे पथिको ! तुम इस चित्र और उसी तरह मार्गके विषय विचित्रता मानते हो पर जैसी बड़ी विचित्रता (आश्चर्य) तुममेंसे मूढ़ पथिकोंमें दीखती है, वैसी इस चित्र या इस मार्गमें नहीं है. इस चित्रकी विचित्रता—विपरीतता तो एक देखने ही भरको है; परन्तु तुम्हारे तो सब कर्तव्य ही उल्टे और आश्चर्यवत् मूर्खतासे पूर्ण हैं. कालके भयसे तुम अपना सर्वस्व त्याग कर अभयपथमें आरूढ़ हुए हो और मार्गमें किसी वस्तुकी कमी नहीं है तो भी सिर्फ एक भाररूप खानेके पाथेयकी पोटलीमें ही आसक्त होकर उसे बड़े परिश्रमसे उठा रहे हो. यह क्या वाहनमें बैठकर सिरपर भार उठानेसे भी अधिक मूर्खतापूर्ण नहीं है ?' ऐसा भावार्थ उस पद्यमें सन्निविष्ट है और वह अक्षरशः सत्य है. जो जीव मिथ्या कामनासे रहित अर्थात् बिलकुल निष्काम—निःस्पृह होता है, वही इस मार्गमें आरूढ़ होता है. जगन्नगरमें हमें जितने चाहिये उतने सब सुखसाधन थे तो भी कालपुरुषके भयके कारण, वे सब झूठे ही थे. इसलिए उनकी पुनः कामना या स्पृहा—उनका संग सेवन—तो झूठी ही कामना कही जायगी. जब हम जगत्की कामनाका त्याग कर बिलकुल निष्काम हो यहां आये हैं और अब उनमेंसे किसी वस्तुकी हमें यहां आवश्यकता नहीं, क्योंकि हमें जो चाहिये वह वस्तु यहां इच्छानुसार मिलती है तो फिर हम इन पोटलियोंका व्यर्थ भार उठा मरें तो क्या हमारी मूर्खताका पारावार नहीं है ? यह तो फिर ज्योंका त्यों ही हुआ. इन पोटलियोंमें बँधी हुई आसक्ति फिर देखते ही देखते बढ़कर हमें फिर कालपुरुषके हस्तगत करदे तो संशय नहीं है और ऐसा हो तो यहांतकका सब परिश्रम योंही गया या नहीं ? इतना ही नहीं पर अपना नाश अपने ही हाथ करना हुआ या नहीं ? इस लिए यह स्वर्णपद्य और इस सारे मुकुरपुरका विचित्र चित्र, हमें और हम जैसे इस मार्गके सब पथिकोंको, ऐसी सूचना करता है कि—चाहे भयसे हो या प्रीतिसे किसी तरह भी सर्वस्वका त्याग कर सारा भार उसके ऊपर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

डाल, इस मार्गमें आनेवाला पथिक, समर्थ, अच्युतप्रभुके शरणागत है. इस लिए शरण आनेकी इच्छा करनेवालेके सब योगक्षेमको वही वहन करते हैं * इस लिए तुम सब बातोंसे निश्चिन्त हो जाओ और इस क्षुद्र तथा दुःखदायी वस्तुमें आसक्ति करानेवाले 'मैं' और 'मेरे' पनका समूल त्याग करो; क्योंकि अब तुम्हें 'मैं' और 'मेरा' कहनेका अवसर नहीं रहा. इस अभय अच्युतपथमें आरूढ़ होकर तुम अच्युत प्रभुके शरण आये और शरण आनेपर सब तरह उसीके हुए. अब विचार करो कि जब तुम स्वयम् उसके हो गये तो फिर तुम्हारा क्या रहा ? और जब उसके अधीन हो तो मैं–पनका अभिमान भी क्यों रहना चाहिये ? फिर इस मार्गमें ऐसी विचित्रता है कि जो पथिक 'मैं' और 'मेरा' भूल गया, जिसकी मिथ्या कामना मर गयी और जो सिर्फ निःस्पृहतासे चला, उसका सारा भार आप ही आप कम हो जाता है और वह सिर्फ शान्तिके स्थानरूप अच्युतपुरमें पहुँच जाता है. अपनी इस पथबोधिनीमें भी एक बात ऐसे ही अर्थवाली है:—

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

अर्थ—जो जीव कामना–वासना त्याग निस्पृह होकर विचरण करता है और जिसकी अहंता ममता दूर हो जाती है वही शान्ति पाता है.

इस लिए अब इस बातको अच्छी तरह ध्यानमें रख, जिनके पास भार है, वे सारा भार यहीं छोड़कर आगे चलें. इस जलप्रवाहके जलचर, वृक्षोंके पक्षी और दूसरे वनचर प्राणी तुम्हारा भाररूप पाथेय क्षणभरमें पूर्ण कर देंगे. बस, चलो अब समय होगया है और हमें अभी संध्यातक बहुत रास्ता तय करना है."

इतना कह वह सत्साधक चलनेको तैयार हुआ. तुरंत ही बहुतसे बुद्धिमान् और अंतर्निष्ठ पथिकोंने झटपट अपने सिरका पाथेय त्याग कर जलमें और वृक्षोंके नीचे छितरा दिया और छुट्टे होकर निश्चिन्तसे खाली

* अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥
अर्थः-जो जन अनन्य (संपूर्ण) रीतिसे मेरा चिंतवन कर उपासना करता है, उस नित्ययुक्तका योगक्षेम मैं वहन करता–चलाता हूँ.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हाथ ताली बजाते और हँसते खेलते चलने लगे. इतना होनेपर भी अभी उस संघमें ऐसे अनेक पुरुष थे, जिनके अंतःकरणमें इस बातका जरा भी असर नहीं हुआ. वे तो अबतक भी अपनी पोटली ज्योंकी त्यों ही उठाकर चलते थे !

कर्ममार्ग–यज्ञमार्ग.

संघ चलता हुआ. पुण्यजनोंका विमान भी धीरे धीरे उसके पीछे अंतरिक्षमें तैरने लगा. फिर गुरु वामदेवजी बोले:—" वरेप्सु ! इन मूर्ख पथिकोंकी जड़ता देखी ? कोई उदाहरण या कोई उपदेश उनके काममें आया ? मुकुरपुरका चित्र कैसा सुस्पष्ट हृदयग्राही उपदेश करता है और महात्मा सत्साधकने उसका कैसा उत्तम व्याख्यान कह सुनाया, तो भी मूर्खोंको उसका कुछ अर्थलाभ नहीं हुआ ! जिनके मनमें 'मैं' और 'मेरे 'पनका दीर्घकालसे[1] दृढ़ संस्कार हो गया है उनकी आसक्ति एकाएक किस तरह छूटे ? उस ओर देखो ! कई स्त्री पुरुष अपने सिर, कंधे, बगल और हाथोंमें अनेक भिन्न भिन्न पोटली, मानों किसी बड़े जोखों और वजनकी हों, इससे उठा भी नहीं सकते, तो भी मथमथकर उठाये जाते हैं. अरे ! इतनी बड़ी मूर्खता होते भी वे ऐसे पवित्र पथपर आरूढ़ हुए हैं यह सिर्फ सत्साधकके प्रथमोपदेश और आवेशमें आये हुए अधिकारी पथिकोंकी देखादेखीसे ही है; पर देखो अब क्या होता है. "

बहुत देरतक इसी तरह यह संघ चला गया. मार्गमें दोनों बाजुओंमें सुन्दर सफल[2] कुसुमवृक्षोंकी श्रेणी, छायाके लिए छा रही है. थोड़ी थोड़ी दूरपर दोनों ओर मीठे अमृत जैसे जलके सरोवर, कुंड, बावली आदि स्वच्छ जलाशय स्थित हैं. स्थान स्थानपर नाना प्रकारके निर्लेप निर्बाध्य और पवित्रतासे[3] बनाये हुए पक्वान्नादि पदार्थोंके सदाव्रत स्थापित किये हुए हैं. जो पथिक ऐसा धर्मार्थ अन्न ग्रहण न करें उनसे उसका उचित बदला लेकर देनेका नियम भी है. अनेक प्रकारके स्वादिष्ट फल, मार्गके वृक्षोंके नीचे जितने चाहिये उतने पड़े हैं. उनके द्वारा अन्नसे भी अधिक तृप्ति होती है.

१ दीर्घकाल, सिर्फ इसी जन्मका नहीं पर अनेक जन्मान्तरोंका समझना चाहिये; क्योंकि देह तो प्रत्येक जन्ममें बदलता है, पर जीवात्मा उसका वही रहता है अर्थात् उसकी पड़ी हुई अच्छी बुरी आदतें वही रहती हैं. २ सफल कुसुम=फल और फूलवाले वृक्ष. ३ जो अपवित्र न हो.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतनी सब सुविधाएं होते भी वे अज्ञान पथिक अपने कर्मका पाथेय उठाये मरते हैं, यह बहुत खेदप्रद है. विमानवासी वरेप्सु राजा महात्मा बटुकसे बारंबार खेद प्रदर्शित करते हैं. इतनेमें उन महात्माने सबका चित्त आकृष्ट कर कहा:—" देखो, फिर इन सब पथिकोंके लिए एक बड़ा भुलावा आया है. " यह सुन वरेप्सु बोले:—" हां कृपानाथ ! मार्गमें आगे जाकर अनेक शाखाएं फूटी हुई दीखती हैं. वही है क्या ? सदाका अग्रणी सत्साधक भी देखो, वहीं पर रुक गया है. अब क्या होता है, वह देखो. "

सत्साधकको खड़े देख सब पथिक उसके पीछे आकर खड़े रहे. सबकी ओर फिरकर उँगलीद्वारा दिखाते हुए सत्साधक जोरसे कहने लगा:—"सचेत हो ! सचेत हो ! फिर भी संकट आया है. अब हमें खूब सावधान होकर आगे पैर रखना चाहिये. हमने जैसे पुरद्वारमें देखे हैं वैसे और भी अनेक भुलावे अपने रास्तेमें आकर उपस्थित हुए हैं,इससे सच्चे सनातन सरल मार्गको भूलकर भयपूर्ण दूसरे रास्ते भटक जानेका पग पग पर बड़ा भय रहता है. देखो ! देखो ! यहांसे अपने मार्गकी दोनों बाजुओंमें दो बड़े पवित्र, रम्य और समृद्ध मार्ग आरंभ होते हैं. मार्गके सच्चे रहस्यसे अज्ञात मनुष्य कदाचित् इस रास्तेमें आरूढ हो जाय तो इससे उसे कुछ अकस्मात् दुःख, संकट या भयप्राप्ति नहीं होती और न वह इस मार्गसे जाकर निर्भय अविनाशी सुखधाम अच्युतपुरमें ही जा सकता है. इस रास्तेसे जानेमें मार्गके नियंता (प्रबंध करनेवाले) जानेवालेको कुछ समयतक उत्तम प्रकारका स्वर्गसुख या दूसरा सुख देते हैं:—परंतु उसका निर्माण किया हुआ समय पूर्ण होते ही उसे तुरंत वहांसे निकाल देते हैं. "

सत्साधकके ये अंतिम शब्द पूरे होते ही उस मार्गके मूलके पास स्थित एक भव्य भवनसे, कोई दिव्य पुरुष शीघ्रतासे इस संघकी ओर आते दीखा. वह बड़ा तेजस्वी और सुशोभित था, उसकी आकृति कुछ विचित्र प्रकारकी थी. उसके मस्तकपर सुन्दर सुवर्ण जैसा तेजस्वी जटामुकुट सुशोभित था. कानोंमें कनककुंडल, गलेमें रुद्राक्षमाला, बगलमें दर्भका पूला और मृगचर्मका आसन, एक हाथमें स्रुव और स्रुक्, एक हाथमें घृतपात्र, एक हाथमें समिध तथा एक हाथमें श्रुतिसमूह (वेदसंहिताकी पुस्तकें) धारण किये था. सारे शरीरमें यज्ञभस्म लगायी थी. दूरसे धुएंसे घिरी हुई धुँधुवाती अग्निके समान दीखता था: वह बड़ी शीघ्रतासे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चलता था, तो भी ऐसा जान पड़ता था मानों शास्त्रकी आज्ञाके बाहर एक पैर भी रखनेको बहुत डरता है. अपने नित्य नैमित्तिक कर्मरूप तपके अनुष्ठानके तेजसे वह ऐसा प्रज्वलित दीखता था कि अधिक देरतक उसकी ओर देखा भी नहीं जा सकता था. महात्मा सत्साधकके अंतिम शब्द सुनकर उसका प्रत्युत्तर देनेको तैयार हुआ वह, संघके समीप आते ही, बहुत गंभीर और शांत वाणीसे बोला:—"अहो महात्मन्! आपके दर्शन मात्रसे सिद्ध होता है कि आप कोई बड़े [2]तत्त्वज्ञ और पवित्र पुरुष हैं और इस समग्र पथिकसमाजके अग्रणी होनेसे बड़े [3]मार्गवित् मालूम होते हैं तो भी अपने साथियोंको विपरीत उपदेश क्यों करते हैं? इस पवित्र और सनातन मार्गके रहस्यका जाननेवाला महात्मा कभी इसकी निंदा नहीं करता." यह बात सुन इसकी तेजस्वी आकृतिपरसे कोई देव समझकर सत्साधक प्रणाम कर बोला:—"नारायण! नारायण! कृपासिन्धु, कहो, आप कौन हैं? और यह आप किस परसे मानते हैं कि मैंने इस मार्गकी निन्दा की है?" उसने उत्तर दिया:—"मैं इस मार्गका रक्षक अधिकारी हूं और जिस मार्गका अनुसरण करनेसे, दिव्य लोकमें चिरकालपर्यंत दिव्य सुखके भोक्ता होते हैं उस मार्गमें आरूढ़ होनेसे तुम अपने साथियोंको मना करते हो, यह इस पवित्र मार्गकी निन्दा नहीं तो क्या है?" सत्साधक बोला "आप किस मार्गके लिए कहते हैं? जिस पवित्र मार्गमें हम आरूढ़ हैं, वह तो सदा सर्वदा ही स्तुत्य है:— पर ये दोनों नये, अर्थात् इस मुख्य मार्गकी शाखा जैसे दीखनेवाले मार्गोंके लिए ही तो मैं कहता हूँ. यह मार्ग कहांके हैं कि जिनके लिए मेरे कहे हुए शब्दोंको आपने निन्दा-रूप माना?" यह सुन उस मार्गाधिकारीने कहा:—"ये पवित्र मार्ग अनेक अद्भुत दिव्यलोकोंमें जानेके हैं. वहां जानेवाला प्राणी चिरकाल-पर्यंत अनेक सुखोंका भोक्ता होता हैं." सत्साधकने कहा:—"अस्तु! पर इससे क्या लाभ? इस मार्गसे होकर दिव्य लोकमें जानेवाला प्राणी चिरकाल दिव्यसुख भोगता; पर यह दीर्घकाल पूर्ण होते ही उसकी क्या

---

१ स्नान, संध्या, पंचमहायज्ञ, देवार्चन इत्यादि प्रतिदिन अवश्य किये जानेवाले कर्म नित्य और किसी प्रसंगविशेष पर ही किये जानेवाले जो कर्म हैं वे नैमित्तिक कर्म-जैसे पिताकी मरणतिथि आनेपर पितृश्राद्ध करना आदि. २ तत्त्व-परमात्मरूप तत्त्वको जाननेवाला. ३ मार्गवित्-मार्ग जाननेवाला.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गति होती है ?" मार्गाधिकारीने उत्तर दिया:—"दीर्घकाल पूर्ण होनेकी बातही क्यों करते हो ? वहां जानेवाला तो अक्षय सुखका भागी होता है. हरे ! हरे ! क्या तुम इस श्रुतिप्रतिपादित मार्गकी महिमा या उसके नामसे भी अज्ञात हो ? "

सत्साधकने कहा:—" नहीं निरे तो ऐसे नहीं है पर आपके जैसा पूर्ण अनुभव कहांसे हो ? इस लिए हम सबपर कृपा कर इसका सविस्तर माहात्म्य बताओ." यह सुन मार्गाधिकारीने कहा:—"यह मार्ग अनेक प्रकारके दिव्य सुख देनेवाला और अविनाशी परम पदमें जानेका है तथा इसका अनुधावन करनेवाले प्राणीको किसी न किसी सतत अमुक अमुक प्रकारकी नियमित क्रियाएं अर्थात् कर्म करने पड़ते हैं:—इससे इसका नाम कर्ममार्ग है और इस मार्गका नियामक होनेसे मेरा नाम भी कर्मदेव है. " सत्साधकने पूछा:—" इस मार्गसे जानेवालेको कौन कौनसी क्रियाएं सतत करनी पड़ती हैं और वे किसके लिए ? "

कर्मदेवने कहा:—" हे ब्रह्मन् ! तुम जहांसे आये उस जगत्-पुरमें निवास करनेवाला और इस अभयपथपर आरूढ़ होनेवाला कोई भी प्राणी, शरीर और मनद्वारा निरंतर कोई न कोई क्रिया किये विना क्षणभर भी नहीं रह सकता; क्योंकि प्राणीमात्र, प्रकृति-ईश्वरी मायाके अधीन है अर्थात् इस प्रकृतिके गुण उन सब जीवोंसे बलात्कार क्रिया कराते हैं. तुम्हारे पास तुम्हारी मार्गबोधिनी तो होवेहीगी. हो तो देखो. यह बात उसमें है:—

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

इसमें कहा है कि ' कोई भी प्राणी एक क्षण भी कर्म किये विना नहीं रह सकता; क्योंकि सबको धर पकड़ कर (बलात्कार) प्रकृतिके गुण कर्ममें ही प्रेरित करते हैं.' ऐसी प्रकृतिके वश रहनेवाले प्राणी जो जो क्रियाएं करते हैं उनका नाम कर्म है. अब प्राणीमात्र जब इस प्रकार निरंतर क्रिया-कर्म किया ही करते हैं तब उन क्रियाओंका व्यवहार निरा मिथ्या ही न होकर उत्तरोत्तर उनकी अभिवृद्धि और उन्नति करनेवाला होकर अंतमें उन्हें उत्तम गतिमें पहुँचावे, इस लिए उनके कल्याणका विचार कर सृष्टिके आरंभमें ही, सृष्टिकर्ताने उन क्रियाओंको कल्याणकारी व्यवहारोंके साथ नियमिततासे जोड़ दिया है. सृष्टिकर्ताके स्थापित किये हुए जो ये कर्म-क्रियाके कल्याण-कारी नियम प्रयोग हैं—वे यज्ञ हैं. इस प्रकार कर्ताने जब सृष्टि-प्रजा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्पन्न की तो उसके साथ ही उसके कर्म-क्रिया भी उत्पन्न हुए. उपरोक्त कथनानुसार उन कर्मोंके यज्ञरूप कल्याणदायक नियम भी साथ ही उत्पन्न किये और उन प्रत्येकके नियामक और योग्य फलदाता अधिकारी किसी न किसी देवताको ठहराया. फिर उसने समस्त प्रजाको आज्ञा दी कि 'इस यज्ञके योगसे तुम वृद्धि प्राप्त करो और यह (यज्ञ) तुम्हारे इष्ट मनोरथ प्राप्त करानेवाला हो.' देखो पथबोधिनी प्रस्थान प्रथम, उसमें इस अर्थका स्पष्ट उल्लेख है.

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

अर्थ—प्रजापतिने * पहले यज्ञाधिकारी प्रजा पैदा कर कहा, इससे तुम वृद्धि प्राप्त करो. यह तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करनेवाला कामधेनु हो.

" इसके बाद फिर उस सृष्टिपिताने कहा है:—

" देवान्भावयताऽनेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥

"इस वार्तामें ऐसा भी कहा है कि, इस यज्ञद्वारा तुम देवोंको संतुष्ट करो, जिससे देव तुम्हें आनन्द दें. इस प्रकार परस्पर-एक दूसरेको संतुष्ट करनेसे तुम भारी सुख प्राप्त करोगे, अर्थात् तुम्हारी की हुई यज्ञरूप क्रियासे तृप्त हो कर देवता तुम्हें इच्छित सुखभोग देंगे. पर उनकी प्रसन्नतासे प्राप्त हुए पदार्थ यज्ञक्रियाद्वारा उन्हें अर्पण किये विना ही भोग किये जायँ तो वह यथार्थ चोरीका ही काम समझो. ये देव ही सब सुखके दाता सब कामना पूर्ण करनेवाले परम प्रभु हैं और इनको प्राप्त करना ही जरूरी है. इस लिए हे साधो ! सृष्टिके आरंभसे ही उस सृष्टिकर्ताकी आज्ञासे यह यज्ञरूप कर्म प्रवृत्त हुआ है, जो परम कल्याणप्रद होनेसे अच्युतमार्गारूढ़ पथिकको अवश्य करना पड़ता है और इसीसे तरना होता है—मुक्ति मिलती है. यह पवित्र पथ 'कर्ममार्ग' के नामसे प्रसिद्ध है."

* सृष्टिकी उत्पत्ति तो अच्युत परमात्माकी मायाशक्ति (प्रकृति) द्वारा होती है. पर उसमें सबसे पहले पैदा होनेसे परमात्माने ब्रह्माको सृष्टिका मुख्य नियामक अधिकारी ठहरा कर, अधिक सृष्टि पैदा करनेकी आज्ञा दी. अर्थात् उनसे ही. दूसरी सब सृष्टि पैदा होने लगी. इसीसे ब्रह्मदेवके स्रष्टा, सृष्टिकर्ता, सृष्टिपिता, पितामह इत्यादि नाम हैं.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह सुन सत्साधकने पूछाः—"सृष्टिकर्ताने प्रजाके प्रति जो यह आज्ञा दी थी उसे आपने मुझे भले ही कह सुनाई, पर यज्ञके योगसे ही प्रजा उन्नति और वृद्धि प्राप्त करती है यह कैसे, क्या इसीसे यह यज्ञकर्म आवश्यक माना जाता है?" कर्मदेवने उत्तर दियाः—"हे ब्रह्मन्! जैसे कोई सुन्दर नवपल्लव और फलपुष्पादि समृद्धिसे अतिशय शोभायमान और अनेक प्राणियोंको आहार, निवास और छायादानसे पोषण करता हुआ सुवृक्ष किस तरह सीधा निराधार खड़ा है, कैसे बढ़ता है और किससे हरा रहता है, ऐसा कोई विचार करने लगे तो बाहरसे उसे उसका कुछ कारण समझमें नहीं आयेगा. पर आंतर्दृष्टिसे विचार कर देखते ही मालूम होगा कि इस वृक्षके सुशोभित होनेका मार्ग उसका मूल है और मूलद्वारा भूमिके पेटसे जलके साथ उसका चूसा हुआ पोषक रस, उसके प्रति अंगोंमें जाकर उसे जिलाता और बढ़ाता है; उसी तरह इस समस्त पूजाका यज्ञकर्मसे संबंध है. पहले प्राणी मात्रकी उत्पत्ति और वृद्धि किससे होती है, इसका विचार करें तो साफ जान पड़ता है कि, यह काम अन्नका है. जिस प्राणीका जो आहार वह उसका अन्न है. अपना अपना अनुकूल आहार किये विना प्राणी जी या बढ़ नहीं सकता. इस अन्नकी उत्पत्तिका आधार आकाशसे होनेवाली जलवृष्टि है और वृष्टि यज्ञके पुण्यसे होती है. सृष्टिकर्ताने यज्ञ उत्पन्न कर उसका नियामक देवताओंको ठहराया है, वही देवता आकाशसे होनेवाली वृष्टिरूप क्रियाके नियामक हैं; जो प्रजाके भूमिपर किये हुए यज्ञरूप कर्मसे प्रसन्न होकर, उनकी वृद्धिके लिए जल बरसाते हैं. यह बात साधारण मनुष्यके विचारमें नहीं आसकती. पर पवित्र पथबोधिनीमें इसका स्पष्ट रीतिसे वर्णन किया है. देखो प्रस्थान प्रथममेंः—

"अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥

अर्थ—प्राणी अन्नसे उत्पन्न होते हैं, अन्न पर्जन्य अर्थात् जल-वृष्टिसे उपजता है, पर्जन्य यज्ञसे होता है, यज्ञकी उत्पत्ति कर्मसे है, कर्म वेदसे है वेद अक्षर ब्रह्मसे होता है, इससे सर्वव्यापी परब्रह्म यज्ञमें नित्य वसता है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" इस लिए सबमें व्याप्त होकर रहनेवाला यह ब्रह्मस्वरूप, यज्ञमें तो सर्वदा परिपूर्ण है अर्थात् यह स्वयं ही अच्युत परब्रह्म है. श्रुतिमें कहा है कि, ' यज्ञो वै विष्णुः'-(यज्ञ व्यापक परमात्मा है) ऐसा यह सनातन यज्ञरूप कर्ममार्ग है. ये जो दो मार्ग दीखते हैं, वे उसीके भेद हैं. एक श्रौत और दूसरा स्मार्त, अर्थात् एकमें श्रुति अर्थात् वेदमें बताये हुए नियमानुसार यज्ञक्रिया की जाती है और दूसरेमें स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्रमें बताये हुए नियमोंसे यज्ञक्रिया होती है. ऐसे सुन्दर मार्गमें आरूढ़ होनेसे तुम अपने साथियोंको मना करते हो, यही इसकी निन्दा है. ऐसा करनेसे तो तुम सर्वेश्वर अच्युत प्रभुकी आज्ञाका भंग करनेवाले कहलाओगे और बड़े दोषके भागी बनोगे.

देखो पथबोधिनीः—

" एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
" अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥

अर्थ-ऐसे प्रवृत्त हुए चक्रका अनुसरण जो नहीं करता वह पापी जीवात्मा निरा इंद्रियोंका ही पोषण करनेवाला है और अपना जीवन व्यर्थ बिताता है.

कर्मदेवका ऐसा सप्रमाण वचन सुन सत्साधक बोलाः—" हे देव ! आपने जो कहा वह यथार्थ है और कर्ममार्ग, आदरणीय, आचरणीय और निःसंशयी है; क्योंकि उस मार्गसे होकर भी अविनाशी अच्युतपुरमें जा पहुँचते हैं; परन्तु उस मार्गसे जानेवालेको बीचमें कभी कभी बड़ी रुकावटें होती हैं, तब कहो भला; इस मार्गके नियामक सिर्फ आप ही एक हैं या दूसरा भी कोई है ?" तब कर्मदेवने कहाः—" इस मार्गपर दूसरेका भी अधिकार है. मैं अधिकारी हूँ, पर मेरा काम प्रत्येक कर्मकी परिपाटी बना रखना है और मुझसे बड़ा अधिकारी एक दूसरा है. उसका नाम कामदेव है. उसकी बड़ी सत्ता है और जहांसे तुम आये उस जगत्पुरसे लगाकर इस मार्गके सारे भागोंपर उसीका अधिकार है. "

यह सुन सत्साधक बोला'-धन्य ! धन्य ! सही कहा; ठीक याद आया ! हम जो कहते हैं वही वह है. वही इस मार्गका विघ्नकर्त्ता है. बड़े परिश्रमसे चल कर आगे गये हुए बेचारे पथिकोंको रोकनेवाला भी वही है और वही उनको थोड़ेसे सुखमें ललचा भटका कर पीछे गिरानेवाला है. हे देव ! मैं इस सनातन कर्ममार्गकी कुछ निंदा नहीं करता, पर मेरा पहलेसे ही यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कथन है कि, इसमें कामदेवका ही सबसे बड़ा विघ्न, पथिकोंको पीड़ित करता है. हजारों और लाखों पथिकोंमेंसे कोई एकाधिक ही पथिक कामदेवकी सत्ताको लांघकर आगे अच्युतपुरकी ओर जा सकता होगा. सिर्फ आपके मुँहसे अपने इन साथियोंको अधिक स्पष्टीकरण करनेको ही मैंने आपसे प्रश्न पूछा है, नहीं तो जिसमें अच्युतपुरतकके समग्र मार्गका यथार्थ रहस्य वर्णित है, वह पथबोधिनी प्रभुकी कृपासे हम सबको मिली है और हम सतत उसके आधारसे ही चले जाते हैं. कोई भी पथिक इस कर्ममार्गकी निंदा कैसे कर सकता है ? आप तो कर्ममार्गमें श्रौत और स्मार्त ऐसे दो भेद बताते हैं पर हम तो अंततकके सारे मार्गको कर्ममार्ग ही जानते हैं; क्योंकि किसी भी मार्गके अनुधावकको कुछ समयतक भी क्रिया तो करनी ही पड़ती है, अधिक तो क्या, पर सिर्फ मार्गमें चलना भी एक क्रिया है और क्रियामात्रका समावेश कर्ममें विलीन है. प्राणी मात्रका उत्पन्न होना कर्ममय है, जीना कर्ममय है और अंतमें मृत्युवश होना भी कर्ममय ही है. यह सारी सृष्टि कर्ममय है. पर जहां जहां आपके श्रेष्ठाधिकारी कामदेवकी सत्ता है, वहां वहां सर्वत्र ये कर्म अपने आचरण करनेवालेको बलात्कार बंधनमें डालनेवाले और दूर फेंककर धक्का देनेवाले होते हैं. इसी लिए हे देव ! हमने बीचका यह छोटा पगडंडी जैसा सबसे सादा मार्ग ही अच्युतपुर जानेके लिए योग्य माना है. क्यों कि इसमें बहुधा कामदेवका अधिक आगमन न होने और प्रभु अच्युतकी सत्तासे, वह विघ्न नहीं कर सकता. रही कर्मकी बात, सो तो इस मार्गमें जाते भी हमें वैसा ही (श्रौत-स्मार्त विधिके अनुसार ही) मानना पड़ता है. पर तुम्हारी जैसी दृढ आसक्ति-कामनासे नहीं और इसीसे उसकी पद्धतिमें कभी कभी कुछ परिवर्तनसा दीखता है. शौच, स्नान, भोजन, पान इत्यादि कायिक कर्म तो सर्वत्र समान ही हैं. ये ऐसे आवश्यक हैं कि इनके किये बिना गुजर ही नहीं होती, इससे नित्य प्रति आसक्ति बिना भी करने ही पड़ते हैं, इसी तरह दूसरे वाचिक और मानसिक आदि सब कर्म भी हम आसक्ति अर्थात् प्रीति बिना, या उनसे कुछ फलाशा रखे बिना किया ही करते हैं. कहो भला, अब हम कर्ममार्गके निंदक हैं या पोषक ?" इतना कह सूर्यकी ओर दृष्टि कर महात्मा सत्साधक फिर बोलाः—"बस, कृपानाथ ! अब तो हम आज्ञा लेते हैं, क्योंकि समय थोड़ा और चलना बहुत है. आपको जो परिश्रम दिया उसके लिए क्षमा करना." कर्मदेवने आजकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रात वहीं रहनेका आग्रह किया तब उसने कहा कि:—"आप जैसे सत्पुरुषका एक घड़ी भी अधिक समागम होनेसे बड़ा लाभ है, पर इस मार्गमें हमें प्रतिक्षण तुम्हारे बड़े अधिकारी कामदेवका भारी भय है. उसका छलबलिया स्वभाव हम जानते हैं. वह क्षणमें पथिकके मनको भ्रमाकर अनेक प्रकारके सुखका लालच दे आगे जानेसे रोक देता है. वह बड़ा स्मरणगामी* और स्वेच्छानुगामी† होनेसे जहां हो वहां क्षणभरमें आकर खड़ा हो जाता है. इस लिए बस, अब तो सर्वेश्वर प्रभु अच्युतका स्मरणपूर्वक प्रणाम करते हैं." ऐसा कह कर्मदेवको प्रणाम कर अच्युत प्रभुकी जयध्वनि करते सत्साधकका संघ वहांसे चलता हुआ.

कामागमन.

विलंब हो जानेके भयसे, एकचित्त होकर सब पथिक, सत्साधकके पीछे पीछे श्री अच्युत प्रभुका स्मरण करते हुए शीघ्रतासे चले जाते थे. कुछ रास्ता तय किया था कि फिर सत्साधक सारे संघको सावधान कर कहने लगा:—"प्रिय पथिको ! निष्काम अच्युतमार्गियो ! सचेत रहना, जागृत रहना ! किसीके कथनपर ध्यान नहीं देना, क्योंकि फिर अपने सिरपर एक भारी संकट आरहा है." यह सुन कुछ पथिकोंने पूछा:—"महाराज ! अब फिर कौन संकट आनेवाला है ? देखो न वह सामने कोई सुन्दर पुरुष आता दीखता है. यह तो बड़ा तेजस्वी और पवित्र जैसा मालूम होता है. क्या इसीको आप संकटरूप कहते हैं ?" सत्साधक बोला:—"हां, हां, यही ! यही ! यही अपना संकट है. यही हमें गिरानेवाला है ! यह पवित्र नहीं महामैला है, दुष्ट है. यही मनुष्य प्राणीको, इच्छा न होनेपर भी बलात्कार वासनाकी ओर प्रेरणा करता है ! यही सबको पवित्र मार्गसे भ्रष्ट करता है, यही डुबाता है, यही ऐसे सन्मार्ग-अति पवित्र मार्गमें आरूढ़ और अपार परिश्रमसे यहांतक या यहांसे भी दूर पहुँचे हुए पथिकको चाहे जैसे भुलावेमें डाल फँसाकर फिर जगत्में रगड़े खिलाता है."

---

*स्मरणगामी अर्थात् स्मरण करते ही तुरंत वहां जा पहुँचनेवाला. †स्वेच्छानुगामी—जहां जहां जानेकी अपनी इच्छा हो वहां वहां तत्काल जा पहुँचनेवाला. देखो, कामफलप्राप्तिकी इच्छा—मनुष्यके मनमें स्मरण होनेके पहले ही पैदा होती है. इसीको इस मार्गके बडे अधिकारीका रूपक दिया है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह सुन पथिक बोले:-"महाराज ! यह कौन है?" सत्साधकने उत्तर दिया:-"यह राजराजेश्वर कामदेव* है जिसकी हम लोग अभी बातें करते आये यही इस मार्गका प्रधानाधिकारी कामदेव है. यह भारी वटभार है. इसकी भूख किसी प्रकारसे भी तृप्त नहीं होती. यह अत्युग्र है, महाप्रपंची, कुटिल और महाबलवान् है. इस पवित्र मार्ग या सारे लोकमें यही भारी शत्रु है. अपनी इस पथबोधिनीमें इसकी यथार्थ पहँचान कराकर इससे बारंबार बचते रहनेके लिए आज्ञा की है. पहला प्रस्थान देखो:—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥
धूमेनाव्रियते वह्निर्यथाऽऽदर्शो मलेन च ।
यथोल्वेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण दुष्टेन दुष्पूरेणानलेन च ॥
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥

अर्थ—काम यही, क्रोध भी यही; क्योंकि यह काम आया हो और इसे कुछ बाधा उठानी पड़े तो न जाने क्रोध कहांसे आप ही आप वहां तुरंत आ पहुँचता है. इसकी उत्पत्ति रजोगुणसे है. जैसे आगको धुआं ढँक रखता है, स्वच्छ दर्पणको मैल ढँक देता है और गर्भके जालसे जैसे गर्भ ढँककर आवृत हो जाता है उसी तरह इस सारे संसारको इस कामने अपने जालसे ढँक दिया है. यह दुष्ट कामरूप नित्यका शत्रु, कभी भी तृप्त न होनेवाली अग्नि है. बड़े ज्ञानी पुरुषोंके ज्ञानको भी इसने अपने मोहजालके आवरणसे ढँक दिया है. मनुष्यके ऊपर किस तरह यह अपनी सत्ता चला सकता है यह देखो। मनुष्यकी इन्द्रियां, मन और बुद्धि सब उस (काम) के आश्रयस्थान कहाते हैं. पहले उन स्थानोंमें बलात्कार पैठकर वहां यह अपना मुकाम करता है और फिर तत्काल देहधारी मनुष्यके ज्ञानको ढँककर मोहमें फँसा देता है."

"इस लिए मनुष्यको इससे बहुत ही सचेत रहना चाहिये. जो कामके फंदेमें फँसा उसके जप, तप, व्रत, दान, भक्ति सब ऐश्वर्यहीन हो जाते हैं."

* काम अर्थात् यहां प्राकृत लोग जो अर्थ करते हैं, वह मलिन वासना नहीं, परन्तु फलकी इच्छासे किये जानेवाले कर्मोंको ही जानो. राग (अभिलाषा-इच्छा).

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतनी बातचीत होते होते तो अतिचपल और दर्शनमात्रसे ही प्राणियोंको मोहित करनेवाला यह देव संघके समीप आ पहुँचा और अपने चातुर्यपूर्ण मधुर वचनोंद्वारा सबका चित्त आकृष्ट कर कहने लगा:—" अहो ! हे पुण्यशाली जनो ! हे भाग्यवंतो ! ऐसे निर्भय और पवित्र पथमें भी मानों पीछे कोई बड़ा भय आरहा हो, इस तरह तुम सब इतनी उतावलीसे क्यों भागे जाते हो ? क्या तुम्हारे मार्गका कोई अगुआ गुम होगया है या आगे चला गया है कि जिससे उसकी खोजमें इस तरह दौड़ धूप करते हो ? या कि रास्ता भूल गये हो ? वास्तवमें तुम्हें किसीने भ्रमाया है और इससे तुम सत्य, सरल तथा शीघ्र फलप्रद* मार्गको छोड़कर टेढ़े मार्गपर आरूढ़ हुए जान पड़ते हो. खड़े रहो ! खड़े रहो ! घबराना नहीं, तुम्हारे सौभाग्यसे ही मैं अनायास यहां आ पहुँचा हूँ. यहांसे कुछ दूर पीछे दो सुन्दर धुरंधर रास्ते हैं, उन्हें तुमने यहां आते क्या देखा नहीं है ? ऐसे समृद्ध मार्ग त्यागकर आगे चले आये यह तुमसे भारी भूल हुई है. वहां लौटकर उस कर्ममार्गमें फिरो. सारा विश्व कर्मके अधीन है और भले या बुरे कर्मका ही फल प्राणी सुखदुःखादि रूपसे भोगते हैं. कर्म कैसे करना चाहिये और उनका उत्तम फल किस प्रकार प्राप्त हो सके इसके लिए यह कर्ममार्ग निर्माण हुआ है. यही मार्ग आचरण करनेके योग्य है और इसमें तत्काल सिद्धि मिलती है. देखो ! तुम्हारी पथबोधिनी इस बातकी साक्षी देती है—

" क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ।

अर्थ—मनुष्यलोकमें कर्ममार्गमें आरूढ़ मनुष्यको शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है.

" इतना होते भी तुम ऐसा व्यर्थ परिश्रम क्यों करते हो ? पीछे फिरो, पीछे आओ, मैं तुम्हें उत्तम श्रेयस्कर मार्ग दिखाऊं. वहां जानेसे तुम कुछ ही समयमें बड़े सुखके भोक्ता होंगे. अहा ! तुम बिना जाने बूझे आगे बढ़ आये, तो भी चिन्ता नहीं. अभी तो आगे बहुत दूर तक मेरी सत्ता है. पर इससे आगे जानेमें फल नहीं है. जिस मार्गमें तुम जा रहे हो वह तो निराश्रय मार्ग है, बिलकुल उदासीन मार्ग है. इस मार्गमें कृत कर्मोंका कुछ फल ही नहीं है. हरे ! हरे ! व्यर्थ ही परिश्रम है. ऐसा कौन निर्बुद्धि होगा जो बड़े परिश्रमसे अनेक अन्नसामग्री एक

* तुरंत फल देनेवाला.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर उसका सुन्दर पाक बना, पेटमें क्षुधा होनेपर भी उस स्वादिष्ट पाकका भोजन न करे और मतंग सांडको खिलादे ? समर्थ अच्युत–प्रभुने ही सारे कर्मोंके फल रचे हैं, उनका अनादर कर व्यर्थ परिश्रम क्यों उठाते हो ? "

ऐसे ऐसे अनेक मोहित वचनोंसे मुग्ध करके उसने अनेक जीवोंपर प्रभाव डाला, पर उसके आते ही महात्मा सत्साधक अपने साथियोंको पहलेसे भी अधिक शीघ्रतासे लिये जाता था और जोर जोरसे कहता जाता था कि 'सँभालो ! यह सब बिगाड़ेगा, इसकी सिर्फ बातें मधुपूर्ण हैं पर भीतर हालाहल भरा हुआ है, इस लिए उन्हें कोई नहीं सुनना. दौड़ो, चलो, उसकी सीमा शीघ्र पार कर दो.' इतना होनेपर भी कामने अपना बोलना बंद नहीं किया. कुछ दूरतक उनके साथ जाते हुए भी उसने पथिकोंको पीछे फिरानेका प्रयत्न किया. वह फिर बोला:—" अरे मूर्ख पथिको ! तुम मेरा कहना न मान कर दौड़े जाते हो, इससे मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, पर इस मार्गसे जैसे अनेक जीव आगे जाकर अंतमें कुछ फल न देखनेसे निराश हो पीछे लौटे हैं वैसे ही तुम भी लौटोगे, पर तबतक व्यर्थ ही भटक मरोगे. अब भी मेरी बात मान कर सुखी हो. देखो, कर्ममार्ग फल देनेमें कैसा उदार है. चातुर्मास्य यज्ञ करनेवालेको अक्षय सुकृत–पुण्य होता है जिससे वह चिरकाल तक स्वर्गसुख भोगता है. सोमयज्ञ करनेवाला अक्षय अर्थात् कभी नाश न होनेवाला सुख भोगता है. अरे ! और तो क्या, पर एक मात्र शरीरका मल दूर करनेवाले स्नानके समान सामान्य नित्यकर्म भी जब बड़ा फल देनेवाला है तो फिर दूसरे श्रेष्ठ कर्मोंका तो कहना ही क्या ? इस लिए हे पथिको ! अपने भलेके लिए मेरा कहना नहीं मानते तो अब आगे जब बड़ा भयंकर निराशारण्य आयेगा और उसमें तुम सब प्रकार निराश हो जाओगे तो हाथमें आयी हुई यह संधि खो देनेसे तुम्हें भारी परिताप होगा. "

उसके ये अंतिम वचन सुन, अस्थिरचित्तके पथिक घबराये और तत्काल मंद पड़ गये. एकको देखकर दूसरा और दूसरेको देखकर तीसरा ऐसे अनेक लोग कामके जालमें फँसे. महात्मा सत्साधकने बहुत कुछ मना किया तो भी भ्रमित हुए वे भले बुरेका विचार शीघ्र न कर सकनेसे पीछे रह गये. संघसे उनका फासला पड़ गया. बस हुआ, कामको इतना ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चाहिए था. वह उनको अनेक आशाओंमें ललचाते और रिझाते पीछे फिराकर कर्ममार्गकी ओर ले चला.

यह सब घटना देखते हुए विमानवासी तो इस समय निरे स्तब्ध ही हो गये. कामदेवकी चमत्कारिक सत्ताके लिए उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ. वरेण्सुने महात्मा वटुकसे कहाः—"गुरुदेव! वास्तवमें इस पवित्र मार्गमें कामदेव तो बड़ा विघ्नकर्ता है. देखो, महात्मा सत्साधकके संघमें उसने फूट डाल दी. उसने इन अनेक पथिकोंको पीछे फिराकर सच्चे मार्गसे भ्रष्ट किया. अब न जाने वह बेचारे भोले लालचियोंको कैसे कुमार्गमें घसीट फेंकेगा? शिव! शिव! ऐसे मार्गमें ऐसे अधिकारीको कैसे योग्य माना होगा?" यह सुन वटुकने कहाः—"राजन्! तेरी समझमें फेर है. काम कुछ अंतःकरणसे दुष्ट या पथिकोंका अनिष्ट करनेवाला नहीं, और यदि वैसा हो भी तो उसकी यहां आवश्यकता है. काम सारे पथिकोंका शुद्ध परीक्षक है. अच्युतपथ जैसे निर्भय और सीधे मार्गसे तो सब निरुपद्रवरूपसे चले जायँ और बिलकुल अच्युतपुर तक जा पहुँचे, पर वहां तक सिर्फ जानेसे ही क्या? वहां जाकर भी पुरमें प्रवेश करना, सर्वथा दुर्लभ है. बहुत बड़ा अधिकार और अन्तःकरणकी बहुत बड़ी स्थिति हो तभी पथिकोंको पुरमें प्रवेश करनेकी योग्यता प्राप्त होती है. इसके लिए दुर्बल हृदयके सहज श्रद्धावान्—सहज आत्म-निष्ठ अधिकारी जनोंको काम यहींसे रोक देता है और दृढ़ अन्तःकरणको अधिक दृढ़ कर आगे बढ़ाता है. अच्छा, अब मार्गपर क्या होता है; उसपर ध्यान दो. देखो! उन पीछे लौटनेवालोंको तो कामदेव इतनी देरमें बिलकुल ही कर्ममार्गपर ले गया और अनेक प्रकारका रुचिकर बोध कर जिसकी जैसी इच्छा है वैसे फलवाले कर्मोंमें वह उनको नियोजित करता है. पर स्थिर मनका साधु सत्साधक अब क्या करता है, वह देखो."

बहुत देरतक तो सत्साधक अपने समस्त पथिकोंको स्थिरतापूर्वक साथ ले सपाटेसे इसी लिए चला जा रहा था कि कहीं कामका उल्टा उपदेश उसके अनुयायी पथिकोंको न सुनना पड़े और न उसका असर अपने या अपने साथियोंको हो, परन्तु जब उसको मालूम हुआ कि अब काम लौट गया और जिनका भाग्य फिर गया था उन अनेक पथिकोंको भी साथ लेता गया, तब तो वह कुछ धीरे चलने और कहने लगाः—"प्रिय पथिको!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काम कैसा बलवान् और विघ्नरूप है, उसे तुमने अब भलीभांति जाना होगा. देखो, हममें अनेक कच्चे मन और अस्थिर बुद्धिके आत्मरसायनसे विमुख-जीव थे, वे उसकी बलि हो गये. हरे हरे ! उन बेचारोंका अंतमें अब कालपुरुषके मुँहमें जाकर ही छुटकारा होगा. आरंभमें काम उन्हें कदाचित् न्यूनाधिक सुख दिखायेगा पर उससे क्या ? इस लिए अपने संघमें जो अब शेष रहे हैं, उनसे मेरा यही कथन है कि पहले हम सब स्थिरबुद्धि हों और अपने पवित्र मार्गके मुख्य तत्त्वोंको अच्छी तरह समझकर बारंबार उनका मनन करनेवाले बनें. जो कामके अधीन हुए हैं उनकी बुद्धि अनेक प्रकारकी शाखावाली होती है. वे वेद-वचनोंके प्रमाण देकर व्यर्थ बड़बड़ करते सही हैं, पर उनका सिद्धान्त ऐसा होता है कि जगत्में दूसरा कुछ भी नहीं है. श्रेष्ठ यही है कि उत्तम कर्म करना और उसके फलमें स्वर्गसुख—वैकुंठ-कैलास-इन्द्रलोकका सुख भोगना. पर ये मूढ़जन ऐसा नहीं समझते कि इन कर्मोंका फल फिर पुनर्जन्म अर्थात् जगत्पुरमें पीछे फिर कर कालपुरुषके मुँहमें जा पड़ना है. इनकी दृष्टि सिर्फ ऐश्वर्यभोगहीकी ओर होती है, पर उनकी बुद्धि अविनाशी अच्युतपुरकी ओर जानेके लिए दृढ़ प्रवृत्ति करानेवाली नहीं होती, वह बेचारा कर्मदेव फिर भी कुछ अच्छा था. अधिक ममता नहीं करता था, पर यह चपल कामदेव और उसके अनुयायी तो कर्ममार्गके नामसे बड़ी धांधल मचाते हैं.

उनके कहने और समझानेका मूलमंत्र यही है कि सिर्फ इस कर्ममार्ग-हीका अनुसरण करना, अर्थात् यज्ञादिक क्रियाएं ही करना कर्म है. इसमें उन्हें फलकी आशा है. पर अच्युतमार्ग और तदंतर्गत कर्मादि सब मार्गोंका सच्चा सिद्धान्त, सब पथिकोंके कल्याणके लिए, परम दयालु श्रीअच्युत प्रभुने स्वतः गुरुरूप होकर, अपने एक प्रियतम पथिकसे कहा है, वही इस अच्युतपथबोधिनीके नामसे इस लोकमें प्रसिद्ध है. उसमें प्रभुने श्रीमुखसे कहा है :—

" कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।
कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थ—"हे प्रिय पंथी ! तेरा अधिकार मात्र कर्म करनेका है. कर्मके फलोंमें तेरा अधिकार कदापि नहीं है. फलकी आशासे कर्म करनेवाला तू न हो तथा कर्म बिलकुल न करनेका अनादर भी न करना; क्योंकि जो पथिक स्थिरप्रज्ञ और विचारशील होते हैं, वे कर्मके फलकी आशा छोड़ देनेसे, जन्मबंधन अर्थात् जगत्पुरमें फिर जा पड़नेके भारी भयसे मुक्त होकर दुःखरहित अच्युतपदमें जा पहुँचते हैं."

" फिर हे पथिको ! ये फलमार्गी, जो फल पानेकी इच्छासे काम करनेवाले हैं, अपने कर्ममें वेदविहित नियमसे जरा भी भूल करें तो उनका वह कर्म बिलकुल व्यर्थ जाता और परिश्रम भी योंही जाता है, या इससे विपरीत वे कर्मदेवके अपराधी होकर बड़ा अनिष्ट फल भोगते हैं. कहा है कि, शास्त्रविधि छोड़कर यज्ञ करनेवालेका यज्ञ, शत्रुरूप अर्थात् बुराई करनेवाला हो जाता है. उनके मार्गमें यह एक भारी भय है. अपने सरल मार्गमें वैसा कुछ भी नहीं है. हम लोग तो अपने आवश्यक कर्म निष्कामरूपसे करते ही रहते हैं और उनके करनेमें यदि अपनी कुछ भूल भी हो तो उसका दोष (प्रत्यवाय) हमें नहीं लगता; क्योंकि हमारा तन, मन, सर्वदा श्रीअच्युतके स्मरण तथा गुणगानमें प्रवृत्त रहता और अपनी बुद्धि उस समर्थ प्रभुके चरणोंमें जा पहुँचनेके विचारोंमें स्थिर रहती है इससे वे कृपालु प्रभु, हमारे सब दोषोंको क्षमा करते हैं ! पथबोधिनीमें इसकी स्पष्ट साक्षी है. इसमें कहते हैं कि, 'न इसमें आरंभका नाश है न पाप ही लगता है.' अच्छा, अब ऐसा है तो मन तथा बुद्धिको भ्रममें डालनेवाली कामदेवकी वाणी न सुन हमें बुद्धिको अपने मार्गमें स्थिर रखना चाहिए. अब देर होने लगी है और विश्रामस्थान दूर है, पर तुम सबको बारबार मेरी यही चितावनी है कि काचका टुकड़ा दिखाकर हीरा खींच लेनेवाले कामदेवसे सदा सचेत रहना. वह तो बहुरूपी है. इतना कह वह महात्मा शीघ्रतासे आगे चलने लगा.

कर्ममार्ग—दानमार्ग.

कुछ रास्ता तय कर वे आगे गये, इतनेमें फिर एक नूतन घटना घटी. उस मार्गकी दाहिनी बाजूसे एक सुन्दर मार्ग फूटता था. "यह मार्ग अपना नहीं है, तुम सब और आडे तिरछे कहीं न देख केवल मेरे ही पीछे लगे चले आओ." ऐसा पथिकोंसे सत्साधक कहता ही था, कि इतनेमें उस मार्गसे एक सुंदर, श्रीमान् और अनेक प्रकारके विचित्र सुख भोगनेवाला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसा दिव्य पुरुष, उस संघकी ओर आते दीखा. उसके मुखमंडलसे सहज ही मालूम होता था कि वह अतिशय उदारमना था. शीघ्रतासे पास आकर संघके आगे पीछे घूम फिरकर उसने सत्साधक आदि सब पथिकोंको प्रेमसे प्रणाम किया. फिर गंभीर किन्तु नम्र स्वरसे बताया कि "हे पुण्यात्माओ ! इस निर्भय मार्गसे इतने घबराये हुए तुम क्यों जाते हो ? घबराओ मत और न दौड़ादौड़ करो. दिन थोड़ा है, यह विचार कर उतावली करते होगे पर अब तो तुम पथिकाश्रमके* समीपमें ही आ पहुँचे हो. वह जो सुशोभित और विशाल मंदिर दीखता है वही तुम्हारे उतरनेका पशिकाश्रम है. इस पवित्र मार्गके सारे पथिक यहां पड़ाव डालते हैं; क्योंकि इसमें पथिकोंके लिए सब प्रकारके सुखोंकी योजना की गयी है. यह देखो, इसकी दोनों बाजुओंमें दो पवित्र जलाशय हैं, जिनमें एकका जल स्नानके और दूसरेका पीनेके काम आता है. इसके निकटही वाटिका है, जिसमें अगणित वृक्ष, अनेक प्रकारके स्वादिष्ट पके फलोंसे झुक रहे हैं, वे पथिकोंके सुखके लिए ही हैं. फिर यहांसे आगे पासमें अब दूसरा कोई पथिकाश्रम नहीं है, इस लिए प्रिय भाइयो ! तुम यहीं विश्राम करो." मुख्य मार्गके पाससे यही निकले हुए इस दूसरे मार्ग और उससे आये हुए इस पुरुषको देख, सत्साधकके मनमें भारी भय समा गया कि, कहीं यह उस काम जैसा फिर कोई हमारा अनुयायी न हो और हमें फँसा कर अपने कामुक और नाशवंत मार्गपर लेजानेको न ललचावे, इस लिए हम यहां खड़े ही न हों, ऐसा उसका निश्चय था. पर यहांसे आगे पासमें कोई दूसरा पथिकाश्रम नहीं है ऐसा उस पुरुषका वचन सुन और उसके वचनोंमें अबतक बिलकुल निःस्वार्थभाव देख, सत्साधक तुरंत खड़ा हुआ और सब पथिकोंके एकत्र होने पर, उन्हें लेकर उस पथिकाश्रमकी ओर गया. वह आनेवाला नूतन पुरुष भी संघके उतरनेकी व्यवस्था कराकर तुरंत ही वहांसे चला गया.

दिन कुछ बाकी था, सायंसंध्योपासनाको देर होनेसे, अवकाश मिला देख, सत्साधक अपने साथियोंके प्रति समर्थ अच्युतप्रभुके अद्भुत चरित्रोंका कथन करने लगा और उस कृपालुके अलौकिक सामर्थ्यका वर्णन

* पथिकाश्रम—पड़ाव, पथिकोंके विश्राम करनेका स्थान, रातको निवास करनेका मुकाम.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर उसीकी शरणमें जा रहना सबसे श्रेष्ठ अभयस्थान है, और उसकी शरणमें जानेके लिए हम लोग जा रहे हैं, यही सबसे उत्तम मार्ग है, इस लिए चाहे कोई कारण हो, पर इस मार्गसे पतित न होनेके लिए सचेत रहना चाहिए, ऐसे अनेक दृष्टान्तोंसे दृढ़ीकरण करने लगा.

इतनेमें वह मार्गस्थ दिव्य पुरुष वहां फिर आता मालूम हुआ. इस समय उसके साथ दो दूसरे लोग थे; एक नवयौवना स्त्री और एक अत्यन्त सुन्दर युवा पुरुष. उन दोनों पर स्वाभाविक ही सबका चित्त चला जाता था. वे बिलकुल पथिकाश्रममें संघके समीप आ पहुँचे, तब पथिकसमाज दूसरी सब बातें छोड़कर इकटक उनकी ओर देखने लगा और चाहने लगा कि वे हमारे समीप आकर बैठें तो अच्छा हो. केवल सत्साधकका मन उनको देखकर नहीं लुभाया. वह युवा पुरुष आते ही विनयपूर्वक बोला:–" अहो ! धन्य है ! ऐसे वीरपुरुष ! अरे ऐसे अच्युतप्रिय[1] पुरुष ही परम नाशवन्त और दुःखमय जगत्पुरसे सारे प्रयत्नोंद्वारा निकल इस पवित्र मार्गमें आ सकते हैं. मार्गमें आ जानेपर भी (सत्साधककी ओर उँगली उठाकर) ऐसे पुरुषका अनुसरण करनेसे ही परम श्रेय प्राप्त होता है. अहो महापुरुष ! आप धन्य हो; क्योंकि इस जनसमूहको कालभयसे बचाकर यहांतक ले आये हो. आप जो संघको लेकर दौड़ते थे, वह भी मुझे जान पड़ता है इस महाभयके कारण ही होगा. इस दौड़ादौड़में ही रास्तेमें आया हुआ अत्युत्तम मार्ग लांघकर आप सब आगे चले आये होंगे. नहीं तो आप जैसे परम सुज्ञ ऐसे परमावश्यक मार्गका अतिक्रमण करेंगे ही नहीं. पर होगा ! हर्ज नहीं. आप अभी कुछ उसकी परिसीमासे बाहर नहीं हो गये. आपका यह पवित्र मार्ग भी उस महामार्गका अंग है और अंतमें अपार दिव्य सुखके स्थानमें पहुँचानेवाला है. "

उसका ऐसा अंतिम वाक्य सुन सत्साधक तो मनमें चमक उठा. उसने देखा वास्तवमें यह तो उस कामदेवका छोटा भाई है ! अरे यहां तो लिया ! और उस उचाटमें ही वह बोल उठा:–" अच्छा, यह तो सब ठीक है, पर आप हैं कौन ? आपको क्या उस कामने भेजा है कि जिससे बीचमें पड़े हुए श्रेयस्कर मार्गकी आप बड़ाई कर रहे हैं?" यह सुन वह पुरुष बोला:–"ब्रह्मन् !

---

१ अच्युतप्रिय अर्थात् जिसे प्रभु अच्युत ही प्रिय हैं या प्रभु अच्युतको जो प्रिय हैं, वे.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आप शान्त हो निर्भय रहो. इस निर्भय मार्गमें आपको कोई भी सता नहीं सकता. हम तो सिर्फ यह जाननेके लिए अपना धर्म ही पालते हैं कि सत्य क्या है. मैं इस दीखते हुए सुखद मार्गका अधिकारी हूँ. यह मार्ग उस कर्ममार्गका सिर्फ प्रकारान्तर ही है और इसमें की जानेवाली मुख्य क्रिया दान होनेसे इसका नाम दानमार्ग है. इस मार्गका परिपालक होनेसे मेरा नाम दानाधिप है. मेरे साथका यह युवा मेरा पुत्र है. इसका नाम द्रव्य है. यह मेरे दानाधिपत्यकार्यमें प्रधान सहायक है. पर इससे भी बढ़कर इसकी करुणा, दया और उदारता नामकी स्त्रियां सहायिका हैं. हमारे मार्गमें आनेवाले पथिकमात्रसे ये दोनों आवश्यक पदार्थका प्रबंध कर बारंबार दानकर्म कराते हैं; अन्नार्थीको अन्न और तृषातुरको जल देते हैं; रोगीकी सेवा करते हैं; कन्यादान दिलाते हैं और उनके द्वारा पथिकोंको खूब धर्मात्मा और उन्नत बनाकर अनेक प्रकारके दिव्य सुख दिलाते हैं. आपके सारे संघको वे उसी तरह दिव्य सुख देनेवाले हों."

इतना कहकर वह दानाधिप फिर बोला; "हे साधो! आप जिसका अतिक्रमण कर आये उस श्रेयस्कर मार्ग—यज्ञमार्गकी कुछ मैं ही तारीफ नहीं करता, पर सर्वेश्वर अच्युत प्रभुने भी स्वयं कहा है. अपनी पथदर्शिकाका तीसरा प्रस्थान देखो.

"त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ॥
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।

अर्थः—कर्म सदा दोषवाला है, इस लिए त्याग देना चाहिए ऐसा अनेक पंडित (ज्ञानी) कहते हैं, पर यह सत्य नहीं है. यज्ञ, दान और तपरूप कर्मका तो कभी त्याग ही नहीं करना चाहिए; क्योंकि ये यज्ञ, दान और तपादि कर्म तो पंडितजनोंको पावन करनेवाले हैं.

परन्तु होगा, कुछ चिन्ता नहीं. आप इस यज्ञमार्ग—कर्ममार्गको छोड़कर जो आगे चले आये यह एक तरहसे अच्छा ही हुआ; क्योंकि हमारा यह दानमार्ग यज्ञमार्गका ही अंग है. पर उसके जैसा कठिन नहीं है. यज्ञकी क्रियाओंमें पग पग पर बहुत सचेत ही रहना चाहिए; पर यहां तो मार्ग चलते ही तुरंत मेरा पुत्र द्रव्य और पुत्रवधू करुणा तुम्हारे साथ होगी और जिस पथिककी जैसी तथा जहां जानेकी इच्छा और शक्ति होगी, तदनुसार ये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोनों आवश्यक साधनोंका प्रबंध कर उसको उन सुखमय स्थानोंमें पहुँचा देंगे. इसके सिवा फिर परम साध्वी परमार्थश्रद्धा नामकी देवी है, वह भी नित्य आकर सहायता करती रहेगी. हमारे इस दानमार्गका मुख्य तत्त्व इतना ही है कि रास्ता चलते हुए पथिकके पास जो कुछ उपयोगी पदार्थ या निर्वाह वा सुखका साधन हो, उससे अपना स्वत्व उठा कर वह उसे किसी दूसरे पात्र मनुष्यके उपयोगके लिए श्रद्धापूर्वक देदे. इसीका नाम दान है. इस दानकर्मके फल बहुत बड़े हैं. जैसा दान, वैसा फल. दानमार्ग बड़ा परोपकारी मार्ग है. परोपकारशील और दयालु मनुष्योंको तो यह मार्ग बहुत ही प्रिय लगता है. वे तो स्वभावसे ही दानमार्गमें चलते हैं और इस मार्गमें आरूढ़ पथिक अच्युत प्रभुको बड़ा ही प्यारा लगता है. वास्तवमें, जो परोपकारार्थ और दयाके कारण भी दानमार्गमें आरूढ़ नहीं होते, वे जगत्पुरसे यहां तक आनेका व्यर्थ प्रयास भोगते हैं, वे भक्त ऐहिक और पारलौकिक सुखके भोक्ता कैसे हों? सिर्फ थोड़ेसे परिश्रम और जरासी वस्तु परोपकारमें सुपात्रको दान करनेसे लोग कैसे दिव्य लोकमें जाते और कैसा दिव्य सुख भोगते हैं, इस विषयमें शास्त्रकी क्या आज्ञा है, यह देखना चाहिए. दान अनेक प्रकारके हैं, पर दश उनमेंसे महादान माने जाते हैं.

" कनकाश्वतिला नागा दासी रथमहीगृहाः ।
कन्या च कपिलाधेनुर्महादानानि वै दश " ॥

अर्थ--सुवर्ण, घोड़ा, तिल, हाथी, दासी, रथ, भूमि, घर, कन्या और कपिलाधेनु इनमेंसे किसी भी वस्तुका दान करना, महादान माना जाता है.

इस दानका फल बहुत बड़ा है. विधिपूर्वक केवल सोनेकी सौ मुद्राओंका दान करनेवाला पुरुष ब्रह्मलोकमें जा पहुँचता है और ब्रह्मदेवके साथ वहां आनन्दसे रहता है. सब शृंगारोंसे सजा हुआ और निर्दोष तरुण घोड़ा किसी सुपात्रको दान देनेवाला मनुष्य सूर्यलोकमें जाकर आनंद करता है. उसी प्रकार पूर्णिमाको तिलका दान देनेवाला अश्वमेधयज्ञ जितने पुण्यका भोक्ता होता है. हाथीका दान करनेवाला स्वर्ग या शिवलोकमें जाता है. दासीके दानसे अक्षय सुखभोग, रथदानसे शिवलोक–प्राप्ति, भूमिदानसे स्वर्गादि दिव्य लोक, गृहदानसे ब्रह्मलोक, कन्यादानसे सपितृ ब्रह्मलोक और कपिलाधेनुके दानसे भी इच्छामें जो आवे उस स्वर्ग या चिरकाल तक रहनेके लिए ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है. इनके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिवा और भी अनेक दान हैं जो करनेमें सरल होने पर भी अपार पुण्यप्रद और उत्तम स्वर्गसुखके देनेवाले हैं. ऐसी दशामें हे महाजन ! कौन ऐसे पुण्यदायक मार्गके अनुसरण करनेकी इच्छा न करेगा ? आप सब पथिकों सहित रात भर यहां सुखसे रहें. सवेरा होते ही दूसरी सारी चिन्ताएं छोड़ कर इस पुण्यपथसे प्रयाण करें. मेरा पुत्र और स्नुषा* (द्रव्य और उदारता) दोनों तुरंत आपके साथ होंगे और जब जितनी सहायता चाहिए देंगे. श्रद्धादेवी भी सदा साथ ही रहेगी."

दानाधिकारीने जब इस प्रकारका सप्रमाण उपदेश दिया तो अनेक पथिक जो अकाम† अच्युतपथके सच्चे तत्त्वसे अभी पूर्ण ज्ञाता न हुए थे निश्चयपूर्वक अपने मनमें समझ गये कि हमारे गुरु महात्मा सत्साधक अब हमसे आगे चलनेका आग्रह नहीं करेंगे; क्योंकि हमें तो ऐसा जान पड़ता है यह दानमार्ग उन्हें अच्छी तरह पसंन्द है. इतनेमें वह महात्मा दानाधिकारीको संबोधन कर बोलाः—"देव ! आपने जो कहा वह ठीक है. आपके कथनानुसार दानमार्ग अतिशय पुण्यप्रद है और उससे परोपकाररूप बड़ा परमार्थ सिद्ध होता है. इस लिए इसमें संदेह नहीं कि दानमार्गी अच्युत प्रभुको प्रिय होते हैं; क्योंकि अच्युत प्रभुको सिवा इसके और कुछ भी प्रिय नहीं है कि परोपकार अर्थात् दूसरेके दुःख दूर करना, आवश्यकतावालेके अभाव दूर करना और प्राणिमात्रका भला कर उन्हें सुखी करना. पर आपके मार्गमें पथिकोंको जो एक सर्वोच्च भय सताता है वह तो आप जानते ही होंगे. आपके ऊपर क्या कोई बड़ा अधिकारी है ?" दानाधिपने नम्रतापूर्वक उत्तर दियाः—"हां, सारे कर्ममार्ग पर जिनकी संपूर्ण सत्ता वे कामदेव हमारे बड़े अधिकारी हैं." सत्साधक बोलाः—"बस हुआ, यही तो बड़ा भय है. यह कामदेव सारे पंथानुयायियोंको भ्रष्ट करता है. वह पथिकोंके दानादि कर्म करते समय ही आकर उन कर्मोंके उत्तम फलके लिए ललचाता है अतः बेचारा भोला पथिक उत्तम दानकर्म करने पर भी उनके फल भोगनेके लिए पृथ्वी पर जगन्नगरमें आकर ऐसी दशाको प्राप्त होता है.

" दानं दत्त्वा वाञ्छति स्वर्गलोकं स्वर्गं गत्वा भुञ्जते दिव्यभोगान् ।
भोगान् भुक्त्वा क्षीयते पुण्यमेतत् क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके गतिर्वै ॥

* स्नुषा-लड़केकी स्त्री. † अकाम—कामनारहित—फलेच्छाहीन.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थ–दान देकर दाता उसके फलद्वारा स्वर्गादिके सुखकी वाञ्छा करता है, इससे स्वर्गमें जाकर दिव्य भोग भोगता है, पर यह भोगरूप फल भोगनेसे दानकर्मसे होनेवाले पुण्य भुक्त (पूर्ण) होजाता और उसके पूर्ण होते ही उसे मृत्युलोकमें पुनः आना पड़ता है.

" यह मृत्युलोक उस कालपुरुषके मुँहमें पड़ा हुआ जगत्पुर है, जहांसे हम बड़ी कठिनाईसे छूटकर यहां तक आने पाये हैं. इसी प्रकार, उस श्रेयस्कर यज्ञमार्गमें भी जिसे तुमने अभी बताया, कामदेवके बड़ा अधिकारी होनेसे बेचारे भोले पथिकोंकी महादुर्दशा होती है. इस विषयमें तो प्रभु श्रीअच्युतने अपने ही एक प्रियतम पथिकसे पहले कहा है कि:—

" त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥

अर्थः–कर्मका प्रतिपादन करनेवाले तीनों वेदोंको* अनुसरण कर चलनेवाले और सोमरस † पीनेवाले जो लोग यज्ञद्वारा मेरा यजन कर, पापोंसे शुद्ध हो उसके फलमें स्वर्गकी इच्छा करते हैं, वे पुण्यवान् सुरेन्द्र‡ लोकको प्राप्त करते हैं और वहां स्वर्गमें वे देवोंके जैसा दिव्य सुख भोगते हैं. फिर वे उस विशाल स्वर्गलोकको भोगकर, पुण्य पूर्ण होते ही मृत्युलोकमें आते हैं. इस प्रकार यद्यपि वे वेदोंके अनुसार ही चलते हैं तथापि कामके भ्रमानेसे भोगेच्छासे काम करते हैं, इससे उन्हें वारम्वार आवागमन § प्राप्त होता है."

" हे मार्गाधिप ! उस घोर कराल कालके पंजेसे छूटनेकी आशासे यहां तक आने पर भी हमें स्वर्गभोगमें ललचाया, तो फिर जगत्पुर तो जाना आया ही. तो फिर जितना आप कहते हैं उतना श्रेयस्कर मार्ग यह कैसे कहा जा सकता है ? अरे ! नहीं, मैं भूलता हूँ. मार्ग तो सब श्रेयस्कर ही हैं, पर जिसका स्वत्व चपल कामदेवके हाथमें है उस मार्गसे पतन निश्चय है, और जो पथिक गिरता है उसकी दुर्दशा हुए विना रहती नहीं. फिर

---

* वेद चार हैं, पर वास्तवमें जिनमें यज्ञादिक कर्म क्रियांएं विस्तारसे वर्णन की गई हैं वे ऋक्, यजुष् और साम तीन माने जाते हैं और इससे कर्ममार्गी उन्हें वेदत्रयी कहते हैं. †यज्ञक्रियामें काम आनेवाली सोमवल्ली नामकी औषधिका रस. ‡ देवोंके पति इन्द्रका लोक अर्थात् स्वर्ग. § आनाजाना, जन्ममरण.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस कामके भुलानेसे पथिक यज्ञ दानादि मार्गोंमें जानेकी भूल भी कर बैठता है. अतः उसके वे कर्म भी यथार्थ नहीं होते. देव ! आप जानते ही होंगे कि प्रत्येक काम तीन प्रकारका है. उत्तम, मध्यम और अधम. सात्विक कर्म उत्तम, राजसी मध्यम और तामसी अधम है. जो काम नित्य नियमानुसार, आसक्तिहीन हो, रागद्वेष त्यागकर और फलेच्छा न रख कर किया जाता है, वह सात्विक कर्म कहाता है. पर जो काम कामना रख कर (फलकी इच्छा रख कर) या अहंकारसे बड़ा क्लेश उठा कर किया जाता है वह राजस कर्म कहाता है और जो काम करनेसे भला या बुरा क्या परिणाम आयेगा, धन और समयादिका कितना क्षय होगा, औरोंको कितना कष्ट होगा, और हम इसे कर सकेंगे वा नहीं इत्यादिका विचार न कर मोहसे किया जाता है वह तामस कर्म कहाता है. "

" इस लिए हे मार्गाधिप ! मैं जानता हूँ कि खास कर उस (कर्म) मार्गसे जानेवाले पथिकोंमेंसे कोई विरला ही पुरुष कामको कुछ न समझ, ऐसा उत्तम सात्विक कर्म कर सकता होगा और वैसे महात्माको तो अंतमें कृपालु अच्युत प्रभु अपने ही मार्गकी ओर खींच लेते हैं. कोई कोई लोग जो जरा सचेत होंगे वे कदाचित् मध्यम राजसी कर्म करते होंगे, पर वे स्वर्गादि भोग कर फिर जगत्पुरमें जा पड़ते होंगे, पर शेष तो सब अधम-तामसी ही कर्म करते होंगे, ऐसा मेरा निश्चय है और इससे उन्हें ' अतो भ्रष्टास्ततोऽपि भ्रष्टाः, अर्थात् न यहांके न वहांके; 'धोबीका बैल न घरका, न घाटका,' ऐसा समझना चाहिए."

इसके उत्तरमें क्या कहूँ, इसके लिए दानाधिप विचार कर रहा था, इतनेमें महात्मा सत्साधक फिर बोलाः-" मार्गाध्यक्ष ! इस परसे आप शायद यह सोचते होंगे कि, इस तरह कह कर मैं दानादिक कर्ममार्गका निषेध करता हूँ, पर ऐसा नहीं है. इससे तो उस मार्गका तत्त्व खुलता है. अंधपरंपराके समान दानादिमार्गोंमें गये हुए पथिकोंको यह तत्त्व शिक्षा-रूप है. इससे वे यह जानेंगे कि दान क्या है और किस तरह करना चाहिए. यज्ञ दानादि जो जो कर्म तुम्हारे मार्गमें किये जाते हैं, वे ही सब, हमारे इस निर्द्वन्द्व शान्त अच्युतमार्गमें भी अवश्य किये जाते हैं, पर उस मार्गसे जानेवालोंके जैसे तुच्छ हेतुसे नहीं, किसी फलाशासे नहीं,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वर्गादि लोकोंमें जानेकी इच्छासे नहीं, किंतु इस अच्युतमार्गमें चलते हुए तन, मनकी अत्यंत पवित्रता रखनेके लिए किये जाते हैं; क्योंकि उसे न रखे तो मार्गसे पतित हो जाय और अंतमें अच्युतपुर भी न पहुँचे. इस लिये वे सब अच्युतार्पण करके किये जाते हैं. उनके करनेसे तन, मन सदा उत्तरोत्तर पवित्र-शुद्ध होते जाते हैं. हमारे मार्गसे अंतमें अखंड प्रेमानंद जैसे समर्थ अच्युत प्रभुका योग होता है; इस लिए वहां जानेवाले पथिकोंको हमारी मार्गबोधिनीमें 'योगी' नामसे बताया है. अतः वे योगी अच्युत प्रभुसे योग होनेकी इच्छा करनेवाले—मंथन करनेवाले अपने चित्तकी शुद्धि होनेके लिए फलाशा त्यागकर अपने शरीर, मन, बुद्धि और सिर्फ इन्द्रियोंद्वारा भी कर्म करते हैं. पथबोधिनी प्रस्थान प्रथममें कहा है:—

"कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वाऽऽत्मशुये॥

अर्थः--संग त्यागकर शरीर, मन, बुद्धि और केवल इन्द्रियों द्वारा योगी भी आत्मशुद्धिके लिए कर्म करता है.

"पर तुम्हारे दान-मार्गकी व्यवस्था इससे विपरीत है. प्रत्येक कर्म जैसे उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकारका है, वैसे ही प्रत्येक दान भी है. तुम्हारे मार्गसे जानेवाला मध्यम तथा अधम दो ही प्रकारके दान कर सकता है, पर जो सत्य श्रेयस्कर उत्तम प्रकार है उसका आचरण वह नहीं कर सकता. प्रत्युपकारार्थ अर्थात् किसीने कुछ उपकार किया हो, उसके बदले उसे जो दान दिया जाय, या फलाशासे अथवा मनमें दुःखक्लेश पाकर बलात्कारसे दिया जाय, वह दान राजस अर्थात् मध्यम प्रकारका कहा गया है; और जो अयोग्य स्थान, अयोग्य समय और अयोग्य पात्रको जो मनुष्य दान लेनेके योग्य न हो *अहंकार और तिरस्कारसे दिया जाय वह तामस अर्थात् अधम प्रकारका दान कहा गया है. पथबोधिनी प्रस्थान तीसरेमें कहा है:—

"यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्॥
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥"

* महाभारतके वनपर्वमें दान ग्रहण करनेका अधिकारी कौन है, यह बताया है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थः—उपकारके बदले या फलाशा रख (कि मुझे धन, पुत्र, स्त्री और सुख मिले) कदराते मनसे दान करना राजस दान है और देश कालका विचार किये विना अपात्रको असत्कार और अनादरसे जो दान दिया जाता है, वह तामस दान है.

"तुम्हारे दानमार्गमें ऐसे दो प्रकारके ही दान हो सकते हैं. मुख्य अधिकारी कामदेवकी सत्तामें रह कर पहले या दूसरेसे श्रेष्ठ, निष्कामपनसे दान किसीसे नहीं हो सकता. क्योंकि यह प्रकार तो इन कहे हुए प्रकारोंसे निराला है. किसी भी उपकारके बदलेमें नहीं, पर ऐसा जान-कर कि यह मनुष्य दानरूप मेरे इस उपकारका बदला नहीं चुका सकेगा. योग्य स्थान, योग्य काल और योग्य पात्रको, किसी फलकी आशा विना, दान देना मेरा कर्तव्य है, ऐसा समझ कर जो दान दिया जाता है, वह सात्विक अर्थात् उत्तम दान कहा गया है.

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं विदुः॥

अर्थः—देना ही चाहिए ऐसा मान कर अनुपकारीको देश, काल या पात्रापात्रके भेद विना जो दान दिया जाता है, वह सात्विक दान है.

अर्थात्, हमारे पास जो कुछ है, हमें जो कुछ प्राप्त होता है और जो कुछ हमारे उपयोगमें आता है, वह सब प्रभु अच्युतका है, और उनही की कृपासे हमें मिला है तो वह सब उनके पवित्र आज्ञानुसार, उनकी प्रीतिके लिए, उनकी शरणमें पड़े हुए योग्य मनुष्यको यदि दें तो इसमें किसी भी फलकी आशा हम कैसे रख सकते हैं? यह तो सिर्फ हमारा कर्तव्य ही कहा जायगा. यह कर्तव्य सतत करते रहनेसे हमारा मन प्रभु अच्युतके अपराधरूप पापमें लिप्त न होकर, सदोदित पुनीत होता जायगा. इस लिए भूखेको भोजन, प्यासेको पानी, नंगेको वस्त्र, बलहीनको सहायता और अज्ञानीको सच्चा मार्ग बतानेका दान करानेवाला हमारा कर्तव्य ही हमारे प्रत्येक पथिकको सदा समझनेका विषय है. तुम्हारे मार्गसे हो कर भी सचेत पथिक वैसा ही कर्तव्य पूर्ण कर न्यूनाधिक फेरमें भी पड़-कर कदाचित् निर्भय पदमें* जा सके; पर चपल कामकी सत्ता लांघ कर तो कोई बाहर ही नहीं जा सकता. इस लिए आप अपने घरको पधारो.

* निर्भय स्थान, विना भयका स्थान, अभयस्थान.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस संघसे कोई भी पथिक आपके मार्गमें नहीं जायगा." ऐसी सार्थक और सप्रमाण बात सुन कर निरुत्तर हुआ. मार्गाधिप प्रसन्न होकर बोला:- "अहो महापुरुष ! आप धन्य हो ! मार्गका सत्य तत्त्व पूर्ण रूपसे जानते हो, इस लिए आप अनेक विघ्नदुर्गों * को लांघकर अवश्य सुरक्षितरूपसे अच्युतपुरकी ओर जा पहुँचोगे. आपके निष्कामपनसे मुझे बड़ा संतोष होता है; इससे मैं प्रसन्न होकर कहता हूँ कि, मेरा यह पुत्र और यह पुत्रवधू तुम्हारे मार्गमें, सेवा करनेके लिए अंत तक तुम्हारे साथ जायँगे." सत्साधकने कहा:-"हमें इनकी जरूरत नहीं है; पवित्र और सुखरूप मार्गमें तो ये उल्टे हमें उपाधिरूप हो पड़ेंगे. प्रभु अच्युतकी कृपासे जिस समय हमको जो चाहिए वह, सब सदा तैयार ही रहता है, तो वहां द्रव्य और उदारताका क्या काम है ? ये यहां रह कर आपकी सेवा भले ही करें." यह सुन परम संतुष्ट होकर, दानाधिप वहांसे चला गया.

संध्याकाल होजानेसे, संध्यावंदनादिसे निवृत्त हो सब पथिकों सहित महात्मा सत्साधक रातको श्रीअच्युत प्रभुके स्मरणकीर्तनमें निमग्न होगया.

कर्ममार्ग-तपव्रतमार्ग.

सुखरूप रात्रि गत होते ही सब जाग उठे. स्नान संध्यादि प्रातःकर्म कर प्रभुके मांगलिक नामकी गर्जना करते महात्मा सत्साधकका संघ पथिकाश्रमसे धीरे धीरे बाहर निकल रास्ता चलने लगा. अंतरिक्षका दिव्य विमान भी चलने लगा. वरेप्सु आदि विमानवासी भी गुरु वामदेवजीको वंदन कर, अपने अपने आसन पर बैठ गये.

संघ चलने लगा. सब पथिकोंको बुलाकर महात्मा सत्साधक बोला; "अच्युतमार्गियो ! सचेत हो जाओ ! कल रातके विश्राममें जो जो घटनाएं घटी हैं, उन्हें तुम भूले न होगे और उनसे तुम्हें अपने मार्गका सत्य तत्त्व भी मालूम हुआ होगा; इतने पर भी किसीकी समझमें वह स्पष्टरूपसे कदाचित् न आया हो तो चित्त लगा कर फिर सुनो. इस लम्बे अच्युत मार्गमें अनेक भूलभुलैयां हैं. अनेक उपमार्ग और काम जैसे अनेक मोहक अधिकारी आड़े आ रहे हैं और आवेंगे. तो भी उन सबसे बचनेके लिए हमें पथबोधिनी निरंतर स्मृतिपथमें रखनेके लिए सबसे

* विघ्नरूप दुर्ग-किला.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सरल एक ही उपाय बताती है, कि, जो पथिक सब *कामोंको त्याग निःस्पृह होकर चला जाता है और जिसे किसी पदार्थ पर ममत्व या गर्व नहीं होता वह परमशान्तिके स्थानरूप अच्युतपुरको पाता है; इस लिए मनमें इस पवित्र वाक्यका वारम्वार पाठ करते, तुम सब आनन्दसे चले आओ. समर्थ अच्युत प्रभु सबका कल्याण करें."

इस प्रकार जाता हुआ संघ, महात्मा सत्साधककी कल्याणकारिणी और अमृत जैसी वाणीका कर्णद्वारा पान करते, बहुत दूर निकल गया. इतनेमें फिर एक घटना घटी. मुख्य पथकी बाजूसे छोटे छोटे पर बड़े शुद्ध, सुप्रकाशित और मानों उस मुख्य मार्गपर होकर जानेवालोंके लिए ही नियमित पैर रखनेके लिए बनाये गये हों, ऐसे दो मंगलमार्ग निकले मालूम हुए. जहांसे ये दोनों मार्ग आरंभ होते थे, वहां पर एक सुन्दर पर्णशाला थी. सुन्दर नवपल्लवित वृक्षलताओंसे चारोंओर आच्छादित उस पर्णकुटीके द्वारके समीप एक छोटे चबूतरेपर, बड़ा कृष्णाजिन बिछा हुआ था. उसकी चारों ओर भिन्न भिन्न पांच अग्निकुण्ड बने थे. उनमें अग्नि जल रही थी. यह पवित्र स्थान किसका होगा, ऐसा विचार करते हुए सत्साधकादि पथिक आगे बढ़े जाते थे; इतनेमें पर्णशालाके पाससे एक निर्मल तेजस्वी पुरुष आते दीखा. उसका शरीर अत्यंत कृश और सर्वांग भस्म लगी थी तथापि बड़ा तेजस्वी मालूम होता था. मस्तकपर दीर्घकालकी बढ़ी हुई लम्बी जटाओंका मुकुटकी तरह जूट बाँधे था. नख बहुत बढ़गये थे. हाथमें जल भरा कमंडलु था, इस लिए जान पड़ता था मानों समीपके किसी जलाशयसे स्नान करके वह आ रहा था.

उसकी पवित्र आकृतिसे स्वाभाविक ही सबके मनमें आया कि यह कोई महात्मा होगा, इस लिए चलो हम लोग उसको प्रणाम करते चलें, और इस लिए संघ जब कुछ मंद पड़ा, तो उसकी मनोवृत्ति जानकर महात्मा सत्साधकने, उस महापुरुषको प्रणाम किया और संघको भी प्रणाम करने देकर तुरंत चलनेकी सूचना की. ऐसा देख वंदन करनेवालोंको, 'कल्याण! कल्याण'का आशीर्वाद देकर वह तपस्वी बोला:-" अरे सन्मार्गगामियो!

* कामके अधीनस्थ अधिकारी भी काम ही माने जाते हैं--उन सबको छोड़कर अर्थात् सब प्रकारकी कामनाओंको (फलाशाओंको) त्यागकर.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कल्याण और अपार सुख प्राप्त करनेकी इच्छावाला होने पर भी जो आप ही आ मिला, उसकी प्राप्तिके मार्गोंको कौन अज्ञात मनुष्य अतिक्रमण करेगा ? अहा ! अति सुखरूप अंतरिक्ष लोक, इन्द्रादि देवोंका स्वर्गलोक, तपलोक, चन्द्रलोक, सूर्यलोक, और दूसरे अनंत दिव्य लोक, जिनमें अधिकाधिक दिव्य सुख संपत्तियां विराज रही हैं, उन सब स्थानोंमें, इन दो पवित्र मार्गोंसे होकर जाना होता है, उनमेंसे यह तपमार्ग है और यह व्रतमार्ग है. दोनों मार्ग ठेठ (सीधे) अच्युतपुर तक साथ ही जानेसे एक ही जैसे हैं तो भी तपोमार्ग स्वच्छ, सादा और सीधा है; किन्तु व्रतपंथ बड़ी समृद्धिवाला है. तपोमार्गीको आरंभमें शरीरसे कुछ कष्ट तो सहना पड़ता है पर अंतमें वह मार्ग इच्छित लोकमें पहुँचा देता है. व्रतमार्ग भी वैसा ही है, पर उसमें और कई सुख होनेसे कष्ट मालूम नहीं होता ! " इतनेमें एक परम साध्वी सुशीला, प्रेमिका, सुशोभित होने पर भी बड़े सादे वस्त्राभूषणोंवाली स्त्री वहां आयी. उसकी ओर हाथ कर वह बोलाः— यह सती स्त्री पथिकको इन दोनों मार्गोंमें बड़ी ही सहायता करती है, इसका नाम तपव्रतश्रद्धादेवी है. शीतकालमें ठंड, उष्णकालमें ताप और वर्षाकालमें बूँदाघात सहकर बड़े बड़े नियम पालना, आहारका त्याग करना, जल त्याग देना, वायुरुंधन[1] करना, एकासन[2] बैठना, निरासन[3] रहना, अग्नितापन[4] करना इत्यादि अनेक प्रकारके तप हैं. उनका पालन करते समय शरीरको कष्ट पड़नेसे पथिक कदराकर मार्गसे कदाचित् उतर न पड़े, इस लिए यह स्त्री उसको सहायिका होती है, और इस श्रेष्ठ मार्गसे भ्रष्ट होने नहीं देती. उसी प्रकार मौन[5], ऐकाशन[6], नैक्ताशन[7], अनशन[8], पक्षोपवास[9], मासोपवास[10], भूमिशयन[11], एकान्नभोजन[12], गोपूजन[13], तरुसिं-

१ वायु—प्राणवायुको बहुत समयतक रोक रखना. २ मात्र एक ही आसनपर बैठना वहांसे खिसकना या उठना नहीं. ३ विना आसन अर्थात् कहीं बैठना ही नहीं खड़े ही रहना या फिरना. ४ अग्निके कौड़े लगाकर मध्यमें बैठना. ५ बोलना नहीं. ६ दिनमें एकवार खाना. ७ पिछली चार घड़ी दिन रहते खाना. ८ कुछभी न खाना—निराहार रहना. ९ पक्ष लगते ही उपवास करना. १० महीनेभर नित्य उपवास करना. ११ भूमि पर सोना, मंच आदि सुखसे सोनेके साधनोंका त्याग करना. १२ सिर्फ एक ही अन्न दिनमें एक ही वार खाना. १३ गायका पूजन, पोषण आदि करना. १४ वृक्षोंको सींचना.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चन, नित्यान्नदान,[1] देववंदन, दीपपूजन,[2] द्विजपूजन,[3] मासस्नान[4] इत्यादि असंख्य पुण्यप्रद व्रत, और तप्तकृच्छ, चांन्द्रायण,[5] कृच्छ्रचान्द्रायण[6] इत्यादि पापनाशक प्रायश्चित्तरूप व्रत भी करना कठिन होनेसे, यह देवी पथिकोंको सर्वदा उनके करनेमें सहायता देती है, यह पथिकोंकी भलाई सदा चाहती है; इस लिए हे पथिको ! इस लम्बे रास्तेका आगे जाना छोड़कर इस सीधी सड़कसे चलो, भूल मत करो, इससे थोड़े ही परिश्रमसे दिव्य लोकमें जापहुँचोगे, इतना कह उसने उस श्रद्धा देवीको आज्ञा दी कि, 'तू आगे जाकर उनको इस पवित्र मार्गसे-जिसकी जैसी और जहाँ जानेकी इच्छा हो वहां लेजा.' यह सुन महात्मा सर्तसाधक उस देवीको प्रणाम कर, तपस्वीसे फिर बोला:-" तपोधन ! आपको और इस मातासम कल्याणकारिणी देवीको हमारा प्रणाम है; इस देवीकी सत्ता सिर्फ यहीं नहीं, सारे अच्युतपथपर भी है, इस लिए हमारे मार्गमें ही वह हमें सदा सहायिका हो. क्योंकि आपका यह तपव्रतमार्ग उत्तम-श्रेयस्कर है, पर हमसे इसपर नहीं चला जायगा; क्योंकि हम सब निःस्पृह—किसी चीजकी इच्छा न रखनेवाले हैं और यहां तो हमें तुम्हारे बड़े अधिकारी कामके अधीन होना पड़ेगा, यह हमसे कैसे सहा जायगा ? फिर हमारा मार्ग भी महातपोमय है और उसके तप, जिनमें सब व्रतोंका भी समावेश है, तुम्हारे मार्गसे भी निराले हैं. शरीर, इन्द्रियों और मनकी शुद्धि करने और उसी प्रकार उनको स्थिर तथा वश कर, पवित्र प्रभु अच्युतके रास्तेमें दृढ़तासे प्रवृत्त करनेके लिए ये तप किये जाते हैं. ये तप तीन तरहसे किये जाते हैं; शरीरसे, वाणीसे और मनसे. देव, द्विज—सत्पात्र, ब्रह्मविद्यासंपन्न ब्राह्मण, गुरु—ब्रह्मविद्योपदेशक और विद्वानका पूजन करना, सदा शरीरसे पवित्र रहना, सबसे सरल स्वभा-

---

१ नित्यप्रति गरीबोंको अन्नादि देना (सदाव्रत). २ देवस्थानोंमें दर्शनादिको जाना. ३ दीपका पूजन करना. ४ विद्वान्, धर्मज्ञ, उपदेशक जैसे ब्राह्मणका पूजन करना. ५ कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ, वैशाख आदि महीनोंमें किसी तीर्थादिमें किसी समय विधिवत् स्नान करना. ६ गोमूत्रका ही पानकर नियत दिनोंतक किये जानेवाला व्रत. ७ जैसे सुदीमें चन्द्र बढ़ता है और वदीमें घटता है, वैसे ही प्रतिपदासे पूर्णिमातक एक एक कवल (ग्रास) बढ़ाना और अमावास्यातक एक एक घटाना और उनके अतिरिक्त और कुछ न खाना, तथा दूसरे भी अनेक प्रकारके चान्द्रायणव्रत हैं. ८ यह चान्द्रायणका ही एक भेद है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वसे वर्ताव करना, ब्रह्मचर्य पालना, और अहिंसा अर्थात् प्राणिमात्रके साथ दयापूर्वक और निर्वैरपनसे रहना, कायिक अर्थात् शरीरसे किया जानेवाला तप कहाता है. किसीके भी मनको उद्विग्न न करना पर सत्य, प्रिय और हितकर वचन बोलना और स्वधर्मका अध्ययन करना, वाचिक अर्थात् वाणीसे करनेका तप कहाता है. उसी प्रकार मनकी प्रसन्नता, शान्ति, और मननशीलता–इंद्रियोंको विषयोंसे दूर रखना, अन्तःकरणकी शुद्धता—कपटरहित शुद्धभाव—अस्लियत—यह मानसिक अर्थात् मनसे करनेका तप कहलाता है. ये तीन प्रकारके तप, श्रद्धादेवीकी भारीसे भारी सहायता द्वारा पथिक करे और उनसे किसी भी प्रकारके फलकी कोई आशा न रखे तभी वे सात्विक अर्थात् श्रेष्ठ तप कहे जायँ. पर जो इस दंभसे किये जाते हैं कि लोगोंमें मेरा सत्कार हो, मान मिले, पूजा हो वह चंचल—अस्थिर तप, तो राजस अर्थात् मध्यम माना जाता है और इससे भी अधम तामसी तप तो दुराग्रह और दुःखकर आचरण करनेपर भी मार्गसे भ्रष्टकर नरकमें लेजाता है. इस लिए हे तपोधन ! आप तो इस सारे तत्त्वके ज्ञाता हो, तो भी हमें प्रभु अच्युतके सेवकोंसे क्षुद्र कामदेवके सेवक क्यों करना चाहते हो ? कृपा रखो. आपकी तपश्चर्याका समय बीता जाता है और हमें चलनेको देर हो रही है." इतना कह श्रद्धा देवीको पुनर्वंदन कर, सत्साधक अपने संघसहित चलने लगा. वह तपस्वी तत्काल उस जलती हुई पंचाग्निके मध्य बैठ गया और मन स्थिर कर जप करने लगा.

देवतादर्शन.

संघको तपोधनके पास देर होजानेसे, विलम्ब तो हो गया था, पर उसके बदले आज उसको चलना भी थोड़ा था. समय होनेको आया, साथ ही पथिकाश्रम भी नजदीक आया. दूरसे उसे देखते ही सत्साधक शीघ्रतासे चलते हुए अपने संघसे धीरेसे कहने लगा;–"मित्रो ! अब आज अपना मुकाम यहीं करना है; इस लिए इस रम्य पथिकाश्रममें आनन्दसे उतर, उस पवित्र जलवाहिनी सरितामें स्नान संध्यादि करो और उन समर्थ प्रभु अच्युतका कीर्तनोत्सव आरंभ करो, जिन प्रभुकी कृपासे हम सारे कर्ममार्गको लांघकर, चपल, घातकी कामदेवके पाशमें न फँस, यहाँतक निर्विघ्न आ सके हैं."

संघको पांथिकाश्रममें उतरा देख, विमान भी उसके ऊपर ही अंतरिक्षमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्थिर हुआ. संध्याकाल होजानेसे सब विमानवासी नियमानुसार सायंकालके नित्यकर्ममें प्रवृत्त हो गये. नित्य नियमानुसार रात्रि होते ही मंडपरचना हुई और उसमें सब पुण्यात्माओंने गुरुदेवके समक्ष अत्यानन्दसे अच्युतकीर्तन किया और फिर गुरुदेवको प्रणाम कर वे अपने अपने शयनस्थानकी ओर जाने लगे; तब गुरु वामदेवजीने कहाः—"आज तुम अभीसे नींदके वश न हो जाओ. भूमिपर आज अच्युतमार्गी अच्युतकीर्तन करनेवाले हैं. अग्रणी सत्साधकके कथन परसे हमें मालूम हुआ है, उसे क्यों भूले जाते हो? आज वे सारे कर्ममार्गको पारकर इसे मुकाममें आ पहुँचे हैं और पवित्र अच्युतमार्गका तृतीय सोपान भी यहीं समीपमें समाप्त होता है, इससे कल वे चौथे सोपानमें आरूढ होंगे. चलो अपने अपने आसन पर सब बैठ जाओ. जान पड़ता है, कीर्तनारंभ हो गया. सुनो, यह कर्णपावन अच्युतनामकी मांगलिक और मधुर ध्वनि सुनाई देती है. देखो, कैसे प्रेमपूर्ण आवेशमें उनका उत्सव प्रारंभ हुआ है! अनेक प्रेमी पथिक प्रभु अच्युतके नामसे नृत्य कर रहे हैं, अनेक मधुर स्वरसे कीर्तन करते हैं और कई उसके साथ वीणा, ताल, मृदंग आदि वाद्योंको एक स्वरमें मिलाकर बजाते हैं. इसका नाम संगीत अच्युतकीर्तन है.*ये बाजे आदि सब कीर्तन-सामान उन्हें इस पथिकाश्रमसे ही मिला है. देखो, कीर्तनमें प्रत्येक पथिकके चित्तकी कैसी एकाग्रता हो गयी है! ऐसी एकाग्रता यदि कुछ समय स्थिर रहे तो अवश्यमेव प्रभु अच्युतका यहां प्राकट्य हो; क्योंकि ये परम पुरुष—आनंदमूर्ति केवल प्रेमभक्तिके अधीन हैं. प्रेम ऐक्यका सच्चा तत्त्व है. ऐक्य होते ही द्वैतापत्तिरूप जड़ ग्रंथि छूट जाती है, भिन्नता बतानेवाला अज्ञानपटल दूर हो जाता है, अच्युत और हमारे मध्य रहनेवाला अंतर टल जाता है. फिर जो बच रहता वह स्वयं ही आनंदमूर्ति है."

अच्युतमार्गमें बहुत देरतक ऐसी एकाग्रतामें कीर्तन हो ही रहा था कि इतनेमें एक चमत्कार दीखा. पथिकाश्रमके द्वारसे बहुतसा प्रकाश पड़ा. उसे देख बहुतसे पथिकोंका ध्यान उस ओर गया. वहां एक स्त्री आती दीखी. इसकी मुखाकृति देखनेपर सबको परिचित जान पड़ी, पर शरीर

* संगीत—गाना, बाजे बजाना और नाचना, इन तीनोंके साथ किया जानेवाला कीर्तन संगीत कहाता है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर धारण किये हुए दिव्य वस्त्राभूषणों और शरीरका दिव्य तेज देख सब विचारमें पड़े. वह धपाकसे उनके कीर्तनके बीच आ खड़ी हुई, और मानों बहुत ही प्रसन्न हुई हो इस प्रकार 'जय जय' शब्द करती हुई कीर्तनकारोंको आशीर्वाद देने लगी. महात्मा सत्साधकने तो उसे देखते ही पहँचान लिया. उसने इसके चरणोंमें पड़कर साष्टांग प्रणाम किया और अपने सब साथियोंसे प्रणाम करनेको संकेत किया. सत्साधक तुरंत पथिकाश्रमसे एक सुन्दर आसन लाकर उस पर उसे बड़े आदरसे बैठा सामने खड़े हो हाथ जोड़कर बोलाः-"माता ! देवि श्रद्धा ! मैंने तो तुम्हें पहचान लिया पर स्थानपरत्वे तेरा रूपान्तर हुआ देख, ये पथिक पहले नहीं पहँचान सके. देवि ! इस समय तेरा शुभागमन कहांसे हुआ है ?"

देवी प्रसन्न मुखसे बोलीः-"साधो ! तपोमार्गपर जो उस तपस्वीकी परिचर्या करते आपने मुझे देखा था, मैं वही श्रद्धा हूँ. इस सारे मार्गपर अनेकरूपसे दर्शन दे, मैं सारे पथिकोंको उनके भिन्न भिन्न शाखामार्गोंमें भी सहायता करती हूँ. तुम्हारा यह अच्युतकीर्तनका प्रेमोत्सव देख कर, यहां सहज ही चली आयी. मैं सारे पथिकोंके साथ अदृश्यरूपसे निरन्तर रहती हूँ. पर प्रसंग आनेसे प्रकट दर्शन देती हूँ. पुण्यात्मा ! आज तुम सब पथिक धन्यवादके पात्र हुए हो; क्योंकि महाढीठ और बली कामदेवकी जहां पूर्णसत्ता है, वह कर्ममार्ग आज तुम निर्विघ्नतासे पार कर चुके. फिर सारे अच्युतमार्गके मुख्य विभाग, जो भिन्न भिन्न प्रस्थानोंके नामसे जाने जाते हैं, उनका पहला कर्मप्रस्थान भी यहीं पूर्ण हुआ है. मैं सोचती हूँ, पथिकोंको प्रभु अच्युतके दर्शन होनेमें आड़े आनेवाली पापादि मलिनताओंको दूर करनेवाली महा पवित्र देवी चित्तशुद्धि भी तुम्हें यहीं आ मिलेगी. कामदेवके लालचमें जरा भी न लुभाकर अपने सब काम निःस्पृहता और विधिपूर्वक, मात्र प्रभु अच्युतकी प्रसन्नताके लिए, जो सदा मुझे साथ रखकर करता रहता है, उसे इस महादेवी चित्तशुद्धिके अवश्य दर्शन होते हैं. कल तुम्हारे दूसरे प्रस्थानका आरंभ होगा. उसमें भी कामदेवकी सत्ता आजू बाजू बहुत दूरतक फैली है इस लिए उससे बराबर सचेत रहना; मैं अब जाती हूँ, पर अदृश्य रूपसे तुम्हारे साथ रहकर तुमको सदा सहायता देती रहूँगी." यह अंतिम शब्द बोलते ही वह उठी और पथिकाश्रमके द्वारके पास जाकर अदृश्य हो गयी.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देर हो गयी थी, सब थक गये थे, इससे कीर्तन समाप्त किया. पथिक धड़ाधड़ निद्रावश होने लगे. सत्साधक भी आँखें झपनेसे लेट गया, इतनेमें स्वप्नके समान उसे कुछ आभास दीखा. मानों किसीने उससे कहा:–"अरे पथिक ! उठ ! उठ ! क्यों सो रहा है ?" वह तुरंत ही उठ बैठा और शान्त होकर देखताहै तो उसके सामने एक अद्भुत तेजोमूर्ति आकर खड़ी हुई है ! यह उसे पहंचान तो नहीं सका, पर उसकी मंगलमय आकृति देख सहज ही पुण्यभाव पैदा होनेसे उसको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर पूछा:–"पहले कभी न देखनेसे आपको मैं पहंचान नहीं सका. कृपा कर कहो, आप कौन हो ?" उत्तर मिला:–"मैं कौन हूँ, यह तू अपने अन्तःकरणमें ही देख. बस स्वयं ही जान सकेगा !" यह सुन सत्साधक आँखें बंदकर अंतर्दृष्टिद्वारा हृदयमें देखने लगा, तो भीतर मानो एक छोटा सूर्य उगा हो, ऐसा स्वच्छ प्रकाश दीखा, उसमें दूसरी कुछ मलिनता नहीं दीखी; इससे उसे सहज हर्ष हुआ इतनेमें उस दिव्य मूर्तिने फिर कहा:–"साधो ! अबसे मैं इस प्रकाशरूपसे निरंतर तेरे हृदयमें निवास करूंगी. क्योंकि आजतक कुटिल कामको–कर्मके फलको कुछ भी न समझ कर बड़े परिश्रमसे तूने मार्ग तय किया." इस परसे सत्साधक उसे तुरंत पहचान कर बोला:–"अहो ! आप क्या देवी चित्तशुद्धि हैं ! आज आपका दर्शन होगा, ऐसा मुझे श्रद्धादेवीने बताया था. कहो अब मैं कौनसी आज्ञाका पालन करूँ !" देवी बोली:–तूने मेरी सब आज्ञाएं मानी हैं; अब तो मुझे तुझपर प्यार करना है. तेरे मार्गमें, अब मैं तेरे चित्तमें बैठी हुई सर्वदा प्रकाश करती रहूंगी और इससे तुझे प्रत्येक वस्तुका यथार्थ तत्त्व मालूम होता रहेगा. जगत्पुरसे लगाकर बिलकुल अच्युतपुर तक दृश्य और अदृश्य जो कुछ है, उन सबमेंसे सार और असार, अच्छा और बुरा, कामका और बिना कामका, सत्य और असत्य, तू ठीक ठीक जान सकेगा, सारका ग्रहण और असारका त्याग कर सकेगा और जो तूने अपने भीतर देखा है उसी शुद्ध प्रकाशके द्वारा तू उसके भीतर ही समर्थ अच्युत प्रभुके व्यापक स्वरूपको देख सकेगा.

इन दोनोंकी ऐसी बातचीत, जो कई सावधान और सजग पथिक, जाग्रत् सुप्तावस्थामें सुन रहे थे, वे तुरंत उठ बैठे और देवी चित्तशुद्धिके पास आ प्रणाम कर खड़े रहे. वह उनसे प्रसन्न चित्तसे कहने लगी:–"तुम भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस सत्पुरुषके संगसे पात्र हुए हो. तुम्हारे हृदयमें भी मैं प्रकाशरूपसे निवास करूँगी. मैं प्रभु अच्युतकी दासी हूँ, तो भी उस समर्थ प्रभुकी मुझ पर बड़ी कृपा है, इससे जहां मैं रहती हूँ, वहीं वे स्वेच्छासे आनंदकी तरंगोंके रूपसे प्रकट होते हैं. वे प्रभु सबसे निर्मल और पवित्र हैं. अंधकारसे सदा ही दूर रहते हैं, इस लिए जिसका अन्तःकरण अपवित्र, पापरूप मलसे युक्त और मेरे प्रकाशसे शून्य अर्थात् अज्ञानरूप अंधेरेवाला होता है वहां वे नहीं जाते. मेरा जो प्रकाश है, वह उनके ही तेजका है. देह और इन्द्रियोंके कर्म, मनके कर्म, नित्यकर्म, नैमित्तिक कर्म और यज्ञ, दान, तप, व्रत, तीर्थादिक कर्म, ये सब साधु पुरुष सिर्फ मेरी प्राप्तिके लिए ही करते हैं; क्योंकि मैं प्रभु अच्युतका मिलाप करानेवाली हूँ. पर जिनके हृदयमें, ये सब कर्म करते हुए कामदेवका बताया हुआ जरा भी लालच भरा हुआ है, वे यहां तक नहीं आसकते और कदाचित् कष्टसे इस साधु (सत्साधककी ओर हाथ कर) पुरुष जैसेके संगसे आते हैं, तो भी उन्हें मेरी प्राप्ति नहीं होती; और मेरे विना वे आगे नहीं बढ़ सकते. शायद ऐसे संघके साथ एक दूसरेकी देखादेखीसे चले जाते हैं, तो भी कुछ ही दूर जाने पर जब कोई भूलभुलैयां आती हैं कि तुरंत उसमें फँस जाते और बीचमें भटकते फिरते हैं. इस लिए तुम सब सचेत रहना. क्योंकि आगे भी अभी बहुत दूर तक कामदेवकी सत्ता है. अपना कर्तव्यकर्म कभी नहीं चूकना और न उसके फलकी आशा रखना. बस, मैं सदा तुम्हारे साथ ही साथ हूँ. तुम्हारा कल्याण हो. " ये अंतिम शब्द बोलते ही वह बड़ी विचित्र रीतिसे तेजरूप हो गयी. यह तेजोमय प्रकाश उसके पास खड़े सत्साधक आदि पथिकोंमें बँट कर लय हो गया ! ऐसा देख सानंदाश्चर्यमें मग्न हुए वे जाग्रत पथिक सत्साधककी इस परकल्याणकी सर्वोत्कृष्ट बुद्धिके लिए उसे नमन कर अपने अपने बिस्तर पर जाने लगे. फिर सत्साधक दूसरे सोये हुए पथिकोंके पास निःश्वास छोड़ कर बोलाः–

---

१ देखना, सुनना, छूना, सूंघना, खाना, सोना, चलना, श्वास लेना, बोलना, मलमूत्रका त्याग करना, लेना, देना, पहरना, ओढ़ना, जाना, आना, इत्यादि क्रियाएं. २ विचार करना, चिंतन करना, ध्यान करना, इत्यादि क्रियाएं. ३ स्नान, संध्या, पूजन, स्वाध्याय, पंचमहायज्ञ इत्यादि नित्यप्रति आवश्यकरूपसे की जानेवाली क्रियाएं. ४ कारण आ पड़नेसे की जानेवाली क्रियाएं जैसे-व्याह, श्राद्ध इत्यादि प्रसंगानुसार शास्त्रसंबंधी क्रियाएं.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"अरे! इन पथिकोंके लिए मुझे बडा खेद होता है. इन बेचारोंको देवी चित्तशुद्धिके दर्शन नहीं हुए; न जानें ये अब अपने साथ कहां तक निभेंगे? होगा, चाहे जैसा हो वे अच्युतपथ पर आरूढ हैं, उनका नाश तो होगा नहीं. प्रभु अच्युत उनकी रक्षा करें." फिर सब निद्रावश हो गये.

मार्गभ्रष्टोंकी गति.

इस प्रकार विमानवासी यथावत् देख रहे थे, उन्होंने सत्साधकको इस प्रकार खेद करते देख गुरु वामदेवसे पूछा:-"कृपानाथ! इन बेचारे सोये हुए पथिकोंकी, जिनको चित्तशुद्धि देवीके दर्शन नहीं हुए तथा जिनके लिए सत्साधक यों चिन्ता करता है, क्या दशा होगी? और जब पीछेसे वह चिन्ता करता है, तो उसी समय उसने उन्हें क्यों नहीं जगा लिया? चित्तशुद्धिकी प्राप्ति न हुई इससे क्या उनके यहां तक आनेका प्रयत्न व्यर्थ जायगा?" वामदेवजीने कहा:-"चित्तशुद्धिके दर्शनोंके लिए उन्हें जगाना सत्साधकके हाथमें नहीं था; क्योंकि जिनको अधिकार मिला हो उन्हींको इस देवीके दर्शन होते हैं. अधिकार विना यदि वह उनको जगाता भी तो वह तत्काल अदृश्य हो जाती. क्योंकि जो पथिक किसी भी फलकी आशा रखे विना अपना कर्तव्य समझकर निरंतर अपने काम अचूकपनसे करते आये हों, उन्हींको यह देवी दर्शन देकर अधिकारी बनाती है. पर जिनका मन ऐसे निष्कामपनके लिए स्वाधीन नहीं हुआ, किन्तु श्रद्धादेवीके दर्शन पा चुके हैं उन्हें वह सदा सहायिका देवी श्रद्धा, दुर्गतिमें जाने नहीं देती. ऐसे कल्याणमार्गमें आरूढ हुएकी कभी दुर्गति होती ही नहीं. ये कदाचित् महात्मा सत्साधकके साथ अधिक दूरतक नहीं जा सकेंगे और कर्मादिकी बातें सुन बीचमें भटक रहेंगे. तो भी आस पासके चाहे जिस शाखामार्गसे होकर, बडे पुण्यसे प्राप्त होनेवाले पवित्र लोकमें जा पहुँचेंगे और वहां दीर्घकाल तक सुख भोगकर, यद्यपि फिर जगन्नगरमें जा पडेंगे सही, तथापि वहां पवित्र और श्रीमान् पुरुषोंके घर जन्म लेंगे या किसी बुद्धिमान् योगीके[1] घर पैदा होंगे.

---

१ अच्युतमार्गकी योगसंज्ञा है; क्योंकि इस मार्गसे प्रभु अच्युतका योग (मिलाप) होता है. इस मार्गसे जानेवाले पथिकको योगी कहा है; इस लिए जिस घरसे इस मार्गमें अनेक पुरुष आरूढ़ हुए हों, उस घरमें यह योगभ्रष्ट (अच्युतमार्गसे भ्रष्ट हुआ) पथिक जन्म लेता है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जगन्नगरमें ऐसा जन्म होना भी अतिशय दुर्लभ है; क्योंकि वहां जन्म लेकर पहले जन्ममें अपनी बुद्धिपर होनेवाले उसके संस्कारोंका स्फुरण होता है और वहींसे फिर वह इस पवित्र मार्गमें आरूढ़ हो, अच्युतपुर जानेके लिए प्रयत्नशील बनता है. इस प्रकार प्रयत्न करते करते भी शायद भूल जाय, मनकामनाके वश हो जाय तो भी अनेक वार आवर्जन-विसर्जन-जन्ममरण होते हुए वह पथिक पापसे मुक्त हो शुद्ध होजाता है. इसके लिए जो नियम हैं और अच्युतमार्गमें आरूढ़ होनेका ही सिर्फ कितना माहात्म्य है, उसे प्रभु अच्युतने अपने एक प्रियतम पथिकसे कहा है, वह इन पथिकोंकी पथबोधिनीमें वर्णित है:—

" प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥
प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥

"ऐसा इस अच्युतमार्गका प्रभाव है; क्योंकि जिसको मार्गमें आरूढ़ होनेकी सिर्फ इच्छा पैदा हो वह मनुष्य भी शब्दब्रह्म वेदके परे चला जाता है अर्थात् उत्तम गतिको प्राप्त करता है."

इतना कह कर वह महात्मा बोला:-"उठो, अब रात बहुत हो गयी है." इस लिए सब अपने अपने शयनस्थानमें चले जाओ. गुरुदेवकी आज्ञा होते ही सारा पुण्यजनसमाज अच्युत नामकी जयगर्जनासहित खड़ा हुआ और उनके पवित्र चरणारविन्दको प्रणाम कर सो रहा.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुर्थ बिन्दु–चतुर्थ सोपान.

योगमार्ग.

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ।
नैवास्ति किञ्चित्कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित् ॥

अर्थ—ज्ञानामृतसे तृप्त हुए कृतकृत्य योगीको कुछ भी करने योग्य नहीं है. यदि कदाचित् हो तो वह तत्त्वको–परमात्माको नहीं जानता है.

महात्मा सत्साधक मनमें बोलाः–" अहो ! पूज्य महात्माओ ! तुम्हारे परमतत्त्वका यशोगान, जिस अनादि तत्त्वज्ञानसे पैदा कर, अनेक युगोंसे परम रहस्यरूपसे सुरक्षित रखा है उसे, लोकव्यवहारमें रखना और मार्गमें अनेक तरंगोंमें डूबे हुए जीवोंका कल्याण होनेके लिए टूटे फूटे प्रयत्न करना, इस स्थूल देहद्वारा मनुष्य जो कुछ अणुमात्र करता है उसे कौन कराता है और उसके विना ज्ञानके स्थूलका रहस्य कैसा अद्भुत है, वह देखो. अनेक शास्त्र पुराण हुए हैं, अच्युतपुरमें जानेके अनेकानेक मार्ग दिखाये हैं, पर पंडित, साधुजन, गुह्यागारके द्वारपर जा खड़े होनेवाले, भक्त और महात्मा थककर हार गये हैं और कहते हैं कि, 'यहां नहीं, यहां नहीं, हमारा वहां जानेके लिए प्रयत्न है. इस प्रकार तुम्हारे निःशंक सिद्धान्त, मार्ग, क्रिया, विचार और स्वरूप समझमें नहीं आते. स्थूलमें रहनेवालेको विविध रंग दीखते हैं, और स्थूलको ही माळूम होते हैं; परन्तु प्रेम–विशुद्ध प्रेममंत्रका स्वरूप—जो परमात्मा है उसे वह नहीं जानता, इससे वह इधर उधर भटकता अटकता है और कामनासे, कर्म तथा भक्तिका आदर करनेसे ज्ञानसे भ्रष्ट होजाता है. सिर्फ विशुद्ध साधु तत्त्वदर्शी ही उसे पाते हैं, शेष सब, इस विश्वचक्रके देशमें चिपटे हुए विनाशको ही प्राप्त होते हैं. विनाशसे बचनेके लिए, ब्रह्मतत्त्व—परमात्माके साक्षात्कारका ज्ञान होनेपर 'मैं' और 'मेरा' ऐसी वासनाका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विनाश करनेमें प्रयत्नपूर्वक लगे रहनेसे, धीरे धीरे वासना क्षीण होकर बिलकुल मृतप्राय हो जाती है और यही मुक्तिका मार्ग है. यही सर्वोत्तम है. ऐसा होनेपर भी इस शान्त गहन विश्वमें यह अशेष जगत् कहां लोप हो गया, यह मालूम नहीं होता. यही स्थिति परम परमात्माके विशुद्ध स्वरूपके दर्शन कराती है और उसीमें लीन करती है." ऐसी लहरमें लगा हुआ सत्साधक, अंतिम विचारकी ध्वनि सहित ऊंघकर गिरताही था कि आसनपर बैठ गया और जोरसे हरिका नाम लेने लगा. तुरंत ही उसका संघ जाग उठा. सब लोग निर्मल मनसे स्नान संध्या करने लगे और प्रवासके लिए तैयार हो गये.

विमानस्थित मुमुक्षुजन भी सत्साधकके संघके पथिकोंकी हरिनामकी ध्वनि सुन तुरंत उठ बैठे. यह देख महात्मा वटुकने कहाः—"देखो, संघ प्रातःकार्यसे निवृत्त होकर अपने रास्ते जा रहा है. तुम भी शीघ्र ही तैयार हो जाओ." गुरु-आज्ञा शिरोधार्य कर, विमानवासी विमानस्थित परम पापनाशिनी गंगामें स्नानके लिए गये. स्नान कर ईश्वरोपासन किया और शीघ्र ही गुरुके पास आ बैठे उस समय गुरुको प्रणाम कर, राजर्षि-मुमुक्षु—मुक्त—वरेण्यने पूछाः-"देव ! अब यह संघ कहां जायगा ?"

वटुकने कहाः—"अब उनका मार्ग रमणीक है और उसमें अधिक शाखाएं भी नहीं हैं और न बीचमें भय ही है. तो भी नयी नयी शोभासे चलायमान करनेवाला है, और परमतत्त्वके ज्ञाताको भी डगमगा देनेवाला है. यहींसे अब उनकी खरी कसौटी होनी है, पर देखो, यह संघ तो चला. सत्साधक हरिस्मरण करते, सबको उत्तेजन देते, दृढ़ करते और विचलको भी धीरज देते चला जाता है." वरेण्यने पूछाः-"देव ! क्या ये सभी पथिक अच्युतपुर पहुँच जायँगे या इनमेंसे भी कुछ ही पहुँचनेको भाग्यशाली होंगे ?" वामदेवजीने कहाः—"अधीर ! पूर्वापर जो दर्शन हुआ है, उसका स्मरण कर, फिर प्रश्न कर. अनन्त तेजोरूपी आत्मज्योति नारायणका साक्षात्कार सबको सहजमें नहीं होता. जो पथबोधिनी सत्साधकके हाथमें है, उसमें बताया है कि अनेक जन्मोंके अंतमें मुझको ज्ञानी पाता है, क्योंकि सब वासुदेवरूप हैं, ऐसा अनुभव करनेवाला महात्मा तो दुर्लभ ही है. जब तक ऐसा अनुभव न हो तबतक आत्मा और परमात्मामें अभेदता नहीं दीखती, तबतक परमधाम—अच्युतपुरमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाना कठिन ही है. परमधाममें—परमात्माके धाममें पहुँचनेका कार्य सिर्फ क्षुद्र श्रमसे या बातोंके तड़ावेसे अथवा वर्ष दो वर्षके प्रयत्नसे या एक ही जन्ममें नहीं होता; पर अनेक जन्मोंमें अनेक कालतक, आत्माको ढूंढ़ा हो, विचार किया हो, निश्चय किया हो कि यह यही है, दूसरा नहीं, इसमें और मुझमें भेद नहीं है—सर्वत्र अद्वैत ब्रह्म व्यापक है—जीव ही शिव और शिव ही जीव है, जब ऐसा स्वरूप निश्चित होता है तभी परमात्माके धामका साक्षात्कार होता है. परमात्माके धाममें जानेके लिए, ये सारी स्थूल भावनाएं कुछ भी सहायता नहीं करतीं, पर सर्वत्र वासुदेवमय-परमात्मारूप ही दिखाई दे और ये प्राणिमात्र तो इसके खिलौने हैं, वे कुछ भी करनेको समर्थ नहीं हैं, ऐसा दृढ़ निश्चय हो, तभी साक्षात्कार होता है. आत्मासे भिन्न जगत् है ही नहीं, ऐसे निश्चय विना, परमधामकी प्राप्ति नहीं होती. पर ऐसे निश्चयवाला दुर्लभ ही है. सत्साधकके इस संघमें, आत्मा और जगतकी अभिन्नता माननेवाले थोड़े ही हैं. वासनासे मुक्त इनसे भी कम हैं, जगत्-बंधनकी जो थैलियां उनके शिरपर हैं, उनके मोहसे मुक्त भी थोड़े ही हैं, अर्थात् जो जगत्के स्थूलरूपपर मोहनेवाले हैं, वे गिरेंगे ही. देखो, अभी भी इस संघके कई लोगोंके शिरपर भिन्न भिन्न प्रकारकी थैलियां हैं, उनके त्यागनेकी वे इच्छा भी नहीं करते. जबतक इन थैलियोंका प्रेम नहीं जायगा, तब तक उनके लिए अच्युतपुरका द्वार नहीं खुलेगा."

सत्साधकका संघ, उसकी अध्यक्षतामें धड़ाकेसे आगे बढ़ता चला जारहा था, इसी बीचमें अनेक पथिक घसड़पसड़ चलते, कई थक-जानेसे सिरपर अपनी पोटलियोंका भार होनेसे और आग जैसी धूपके तपनेसे मंद पड़ गये थे. वे पानी पानी और भूख भूख चिल्लाकर तड़फ रहे थे, किन्तु सत्साधकको इनमेंसे कुछ भी विकार नहीं होता था, वह तो निर्गुण निर्विकार होकर चला जारहा था और पीछेके पथिकोंको धीरज देरहा था कि " जरा धैर्य धर, आगे बढ़ो, आगे बढ़ो; तुम्हारे लिए निर्मल जल और उत्तम भोजन तैयार मिलेगा. जिन्होंने व्यर्थ ही सिरपर पोटलियोंका भार उठाया है, उन्हींको यह श्रम मालूम होता है, दूसरोंको नहीं; इस लिए ये पोटलियां फेंक दो, जिससे तुम आनंदसे अनंत आकाशमार्गमें प्रवेश कर सको और सत्त्वोंका दर्शन होते ही आनंदगान, रमणीय स्थान और निर्मल प्रेमके निकट जासको. आनन्दस्थानमें अभी जो प्रगाढ़ भय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्याप रहा है वह, महापर्वतके भार और काली भेड़ जैसी उन पोटलियोंके कारण ही है, जो तुम्हारे सिरपर हैं, उनके कारण ही अंगारके समान तुम जले जा रहे हो. इनका त्याग करनेसे ही सब यातनाओंसे मुक्त होंगे. निर्मल हुए विना—चित्तशुद्धि विना—जो जीव, इस मार्गमें आता है, उसे अनंत कालकी दुःसह पीड़ा भोगनी पड़ती है, पर निर्मल आत्मसंयमवाला—मनको नियममें रखनेवाला आत्मज्ञानी जो अभेदस्थानकी महिमासे मोहित और परम श्रद्धावाला है, उसके लिए यह मार्ग नंदनवन जैसा सुखकर है."

सत्साधकके ऐसे वचन सुन, अनेकोंके मन डिगे. वे सिरकी पोटली फेकनेको तैयार हो गये. अनेकोंने फेंक भी दी; पर कई पथिक, जो इस पोटलीको ही सर्वस्व मानते थे, और इसीसे अच्युतपुरमें शीघ्र प्रवेश किया जाता है, ऐसी धारणावाले थे, उन्होंने कहा:-"ये पोटलियां भाररूप भले ही हों! पर हम तो इनका त्याग नहीं करेंगे. हमारी पोटलियां हमें भाररूप नहीं पर सुखरूप मालुम होती हैं. हम अच्छी तरह जानते हैं कि जिस परमसत्त्व—परमात्माके हम दर्शन करना चाहते हैं उसकी इच्छावाले पूर्वकालमें अनेकानेक लोग थे और वे ऐसी पोटलियोंसे ही सुखपूर्वक उसके समीप जा सके हैं. सत्साधकको ये पोटलियां भयरूप मालुम होती हैं, पर वह इनके विना वहां पहुँचे तो सही! हम तो निःसंदेह पहुँचेंगे; क्योंकि इन पोटलियोंसे ही अच्युतपुरमें प्रवेश हो सकता है, ऐसा हमें सदासे उपदेश मिलता है."

ऐसे विचारके अनेक लोगोंने पोटलियोंका भार सिरपर रहने भी दिया, कई एकोंने अपनी अपनी पोटलीमेंसे थोडा सामान कम कर दिया और कुछ हल्के हुए, तथा दूसरोंसे आगे होकर अधिक शीघ्रतासे चलने लगे. ठीक मध्याह्न होने लगा था और सबको आश्रमकी आवश्यकता थी, इससे सत्साधकने इधर उधर देखा तो उसे एक सुन्दर मंदिर दिखायी दिया. वह उसी ओरको मुड़ा.

सत्साधकके संघको तिरछे मार्गमें मुड़ते देख विमानवासी महात्माओंने गुरुदेवसे पूछा:-"महाराज! यह तो कुछ नया ही मालूम होता है. क्या यह कोई सुन्दर महल है, या अनंत तेजके धामवासी परमात्माका स्थान है? यह मंदिर बड़ा ही विचित्र और अद्भुत है. देखो, यह सारा मंदिर एक ही अखंड मणिका बना हुआ है. इसके शिखर गगनमंडलमें कहां समाये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं, यह मालूम नहीं होता, पर उनकी प्रभासे अपना यह गगनगामी विमान भी प्रतिभासित हो गया है. यह अपने समीप आरहा है. अपने ऊपर होकर चला जारहा है और थोड़ी देरमें अपने स्थानमें जाकर स्थिर हुआ मालूम होरहा है. इसमें अनेक दिव्य स्त्रियां हैं, जो ऐसी मालूम होती हैं मानों प्रभुपार्षद या स्वर्गकी अप्सराएं हों! देखो, देखो, इस मंदिरके निवासी हमसे करोड़ों कोस दूर होते भी, हमारे सामने खड़े हुए, हमारी ये सब बातें सुनते मालुम होते हैं. यह मंदिर भी ऊंचा नीचा होता है और यह गुप्त मंदिरके समान होते हुए भी इसके सब पदार्थ हमें अदृश्य मालूम नहीं होते. यह मंदिर सब सुख, सब लीला और सब आनन्द का धाम मालूम होता है और इसमें निवास करनेवाले जीव क्षणमें अनेक और क्षणमें एक, अभेदताका अनुभव करते हैं! क्या यही परमधाम है? इसमें जो भव्य दिव्यमूर्ति, एक मणिमय आसनपर सुशोभित है, उसका भी दर्शन अद्भुत ही है. क्या यही साक्षात् परमात्मा है? पर इस मंदिरके चारोंओर जो काला भैंसे जैसा पुरुष फेरे किया करता है और इस मंदिरको घेर लेनेका प्रयत्न करते मालुम होता है, पर उसके तेजसे भयभीत हुआ थर थर कांप रहा है, वह कौन है?"

महात्मा बटुकने कहा:–"जगन्नगरके द्वारपर जिस काल पुरुषको हमने सबका संहार करते देखा है, वही यह है. वह नया रूप धरकर, यहां फिरा करता है. यह कुछ उस ज्योतिर्मय प्रभुका धाम नहीं है जो अविनाशी है, अजन्मा है, नित्य यौवनमय है, निर्गुण और निराकार है. सत्साधक जिस स्थानमें इस संघको अपने साथ लिए जाता है तथा जो परम है वह स्थान भी यह नहीं है. पर देखो, सत्साधकका जो संघ जा रहा है उससे मार्गमें एक स्वरूपसौन्दर्यवती देवांगना मिलती है, वह क्या कहती है सुनो."

सुन्दर आश्रम विचार, थोड़ी देर वहां रह, श्रम दूर कर, आगे बढ़नेके हेतुसे ही सत्साधक दूसरे पथिकोंसहित उस आश्रमकी ओर फिरा. इस आश्रमका मार्ग नये किस्मका था. मार्गपर हीरा मोती, माणिक, नीलम, पुखराज, गोमेद, आदि जड़े हुए थे. वहां अनेक सिद्धियां रमण कर रही थीं और ध्यानस्थ महात्मा, स्थिर चित्त और निश्चल दृष्टिसे, अनेक प्रयोग कर रहे थे तथा उसी तत्त्वके अनेक चमत्कारोंसे वहां आनेवालोंकी जीवन-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शक्तिपर असर करते हुए वे सर्वव्यापी हो रहे थे. वे करोड़ों कोसोंकी बातें जानते, जीवितको मार डालते और निर्जीवको सजीवन करते मालूम होते थे. यद्यपि वे ऐसे ज्ञान पड़ते थे मानों हजारों और लाखों वर्षोंसे भ्रमण कर रहे हैं और उतना ज्ञान भी रखते थे, तथापि वृद्ध होनेपर भी वे तरुण जैसे थे. क्षणभरमें वे अनेक चमत्कार दिखाते और उन चमत्कारोंमें वे एकही परमात्माके दर्शन भी कराते थे.

इस आश्रमके अनेक लोगोंकी रीति भांति भिन्न ही मालूम होती थी. वे मनुष्य मात्रका कल्याण करनेके लिए अनेक गुप्त ज्ञानके बलसे परोपकार और प्रेमकी गहरी छाप मारते थे. उनमें सार्वजनिक कल्याणकी बलवती अभिलाषा थी. उनकी मुखाकृति परोपकार और दयासे परिपूर्ण दीखती थी, पर उनके मुखपर गूढ़ता तो अलौकिक ही थी और इससे यद्यपि वे सिद्ध थे और सिद्धिके स्वामी थे, तो भी उनके सारे मुखपर एक प्रकारकी स्पष्ट उदासीनता मालूम होती थी और इससे प्रेमी होनेपर भी, ऐसा भाव प्रकट होता था मानों वे निष्ठुर हृदयके हैं. उनके बाहरी दिखावेसे तो भय ही होता था. इनमें अनेक तो ऐसे भी मालूम होते थे मानों वे दुनियाको तृणवत् समझते हैं—दुनिया है ही नहीं. वे भला करनेकी वृत्तिसे भी रहित और बुरा करनेकी वृत्तिसे दूर रहनेवाले थे. वे कृत्यसे किसीको सहायता नहीं देते थे और न वाणीसे धैर्य ही देते थे. वे न आवेशमय थे, न आवेशशून्य ही थे. उनके पास कुछ पोटली थीं सही पर वे ऐसे मालूम होते थे मानों संसारके बाहरके हैं और समाधिरूपमें मग्न मस्त होकर इन्होंने भोगकी आहुति दे दी है. उनमेंसे अनेक जटाजूटवाले और अनेक तो प्रेममत्त भी थे. सौन्दर्यको देखकर कई उसमें लीन होते और कई वनस्पतिके तत्त्वसे शोध करते मालूम होते थे. इस मंदिरके चारोंओर वृक्षोंकी घटा छा रही थी. ये सारे वृक्ष नवीन और हरित लताभवन जैसे थे. उनकी छाया सुखद मालूम होती थी, पर हृदयमें शान्ति आने नहीं देती थीं. यहां एक चमत्कार था. प्रत्येक वृक्षकी डालियोंसे सुवर्ण और रौप्यकी नकासीसे पूर्ण अनेक उथली थाली, प्याले और लोटे आदि निकले हुए थे और उनमें भांति भांतिके पकान्न तथा सब रसमय पदार्थ भरे थे. लोटेमें शीतल जल भी भरा था. इनमेंसे जिसे जो चाहिए उसके लेनेकी मनाई नहीं थी. कई वृक्षोंमेंसे धोतियां और अनेकोंमेंसे गहने (अलंकार) फूटकर लटक रहे थे. उनके भी लेनेकी मनाई नहीं थी.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सत्साधकका संघ इस नवीन और भव्य मंदिरके समीप नहीं पहुँचा उसके पूर्वही, जिस देवीको विमानवासियोंने देखा था, वह उसके समीप आकर बोली:—"महात्मा ! इस दैवी लीलाका खेल अनुपम है, इसमें कई लोग फँस गये हैं और अनेक फिसल पड़े हैं. कोई विरला ही पार उतरा है. इस लिए परम निष्ठापर दृढ़ विचार रखना." ऐसा कहकर देवी मानों सत्साधकके अंगमें समा गयी हो, इस तरह वहीं अन्तर्धान हो गयी. सत्साधक स्थिर हो गया. सत्त्ववृत्तिको फिर बलवती कर, वह मंदिरकी ओर चला और उस मंदिरमें स्थित अनुपम तेजोज्योतिके दर्शन कर, सब यात्री-पथिक—मंदिरकी गूढ़ता, उसकी अनुपम कारीगरी, उसमें व्याप्त अनुपम शक्ति आदिका विचार करते हुए निकटके मनोहर स्थानोंमें विश्राम करनेको बैठे. अनेक पथिक जिन्होंने अपने पास पाथेयकी पोटली रखी थी उसे खोलकर उसमेंसे थोड़ासा भोजन करने लगे. पर जो बिलकुल ही निर्गुणी थे तथा जिन्होंने पाथेयकी पोटली मार्गमें ही त्याग दी थी, वे हरिनामका भजन और अच्युतपुरकी शोभाका विचार कर आनंदकीर्तन करने लगे. इस लीलाका लाभ वे ही लेते थे जिनकी वृत्ति शुद्ध और शान्त तथा इच्छाएं (कामनाएं) शिथिल हो गयी थीं.

थोड़ी देरमें एक विचित्र घटना घटी. बाह्य लीलाके आवेशसे आत्माको जो विकार होता है वह इस समय सबको होगया और किसी अवर्ण्य तथा अपरिचित शक्तिके प्रतापसे सारे पथिक क्रमशः दूसरी ही तानमें मस्त हो गये. सबकी आंतर सृष्टिमें नये नये तरंग व्याप गये. इतनेमें एक ऐसी सुगंधमय लपटका धुआं (धूम्र) आया कि जिससे अनेक पथिक क्षणभर निश्चेष्ट हो गये. कई उसके सौरभके मजेमें बड़े ही हर्षित हो गये और जो सुगंधित धुएंके इकट्ठे हुए समूह वहां फिर रहे थे, वे उन्हें अनेक चमत्कार दिखाने लगे. इस समय सत्साधक और दूसरे कुछ पथिक सावधान मालूम होते थे.

सब आकाशकी ओर देखने लगे. विश्वरचनाके नूतन दृश्योंपर स्थिर हो देखने लगे. उनका आत्मा आत्माको देखने लगा सही, पर सृष्टि-संबंधसे रहित नहीं हुआ. उनकी नसमें बंधनकी जो गांठ थी, वह छूटकर दूर नहीं हुई और काले भैंसेके समान जो पुरुष, इस स्थानके आसपास विकराल आँखें निकाल और दांत कटकटाकर भयभीत कर रहा था, वह भय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्यून हुआ नहीं जान पड़ा. तो भी सब कोई इस प्रकार आनंदमें तैरने लगे—बल्कि डूब गये अथवा तैर कर पार हो गये; मानों उन्हें कोई बड़ा लाभ हुआ हो, कोई अद्भुत—दिव्य स्वतंत्रता प्राप्त हुई हो और यह देह हल्के फूल जैसा हो गया हो! संघके लोग इस विश्वको पैर तले देखने लगे! और सब समाधिस्थ हो आत्माको आत्मासे मिलते हुए देखने लगे.

आकाशवासी विमानस्थ जीव यह सब घटना देख रहे थे. वे भी यह घटना देखकर दंग रह गये और धूम्रदल उन्हें भी पथिकोंकी नाईं अचेत कर देता, पर गुरु वामदेवजीने सबकी ओर देखकर कहा:—" सावधान, जिस स्थानके अलौकिक माहात्म्यसे पथिक अचेत होकर समाधिस्थ हो गये, उस स्थानकी बलि होनेसे बचना! यहीं सँभलना है. इस सबका कारण अहंकार है. यहां भी अहंकार निवास करता है. यह अहंकार इस जगतका नहीं, पर अच्युतपुर जानेवाले मार्गका है. जो स्थान तुम देखते हो, वह योगधाम है और यहां अनेक तरहके योगी निवास करते हैं. उन्होंने जगतको त्याग दिया है, पर परमात्माके धाममें प्रवेश करनेकी जो आत्मनिष्ठा है उसका दूसरे ही प्रकारसे सेवन किया है. धीरजयुक्त नम्रभावसे परम ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए, पूर्ण श्रद्धा सत्य और मानसिक साहससे, अनेक वर्षों तक जाड़े, गर्मी और वर्षामें, प्रणव ब्रह्मका आराधन किया है. पर आत्माकी एकता प्राप्त करनेके बदले मानव्यवहारमें ही मग्न रहे और उसमेंसे दूसरेको तारते रहे तथा 'वह काम मैं कर सकूंगा' ऐसे अहंभावसे, जो सत्य है, उसे उन्होंने खो दिया है. यह भी योग है. यह योग मानुष व्यवहारकी उत्कृष्टताका है. जिन सुगंधपूर्ण धूमदलोंसे तुम तर हो गये हो वे अनेक प्रकारकी सिद्धियां हैं और इन धूमदलोंके द्वारा कालके सिर पर पैर रखा जाता है; पर कालान्तरमें यह काल इस स्थानमें रहनेवालोंको पछाड़कर उनका कलेवा करता है. यहां रहनेवाले योगी अनेक प्रकारसे संसारको लाभ पहुँचाते हैं. वही दया और परोपकारका कार्य करते हैं, बहुतेरोंको सृष्टिके दर्शन करानेके लिए समर्थ हैं, नित्य परमात्माको देखते हैं, युगयुगान्तरोंतक तरुण बने रहते हैं, पलभरमें सारे विश्वकी बातें जान सकते हैं, विश्वके चक्रकी गति भी फेर सकते हैं, नई सृष्टि उत्पन्न कर सकते हैं, पर वे कालमानका नाश नहीं कर सकते; क्योंकि वे वासनारहित नहीं हुए हैं, इससे पुनः पतित होते हैं, और अच्युतपुर जानेके सरल मार्गको भूलनेसे फिर रगड़े खा २ कर, बहु काल पर्यन्त इस लोकका वैभव भोग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर ही इस मार्गमें फिर आते हैं–और तभी जानते हैं कि अपना मार्ग न्यून था; और इसका संपूर्ण विचार होनेपर, सब वासनाओंका क्षय कर अच्युत-मार्ग—अच्युतपथमें जाकर सुख भोगते हैं.

ये जो सब सुगंधमय धुएंके दल मालूम होते हैं ये उनकी शक्ति है जो बड़ी ही चमत्कृतिवाली है. जो कालके फलपर्यंत परब्रह्मको जानने और देखनेको संसार मथे डालते हैं और देखते भी हैं वे ऐसे ही पीछे रह जाते हैं. इसका कारण उनका अहंकार और वासनाका निर्मूल न होना ही है. वे कामनाहीन नहीं हुए. जगतके कल्याणमें तत्पर हैं ऐसा अहंकार होनेसे वे अनेक विक्षेपोंमें उसी प्रकार विक्षेप भाव (अस्थिरता) भोगते हैं. जैसे वायु मेघदलको पीछे हटाता और इसीसे पतित होते हैं. इसके लिए अहं-कारका निग्रह कर, सब इच्छाओंका क्षय करनेके साथ ही विषयका अर्थात् संसारके किसी भी हितकर या अहितकर भोगका चिन्तन (ध्यान) करना रोकना चाहिए. अन्यथा जैसे शुष्क काष्ठको जल पुनः जीवनदान करता है वैसे ही अहंकार उनके जगत्-संबंधी ध्यानको पुनर्जीवित करता है." इतनेमें वरेप्सु बोले:–"गुरुदेव! देखो, इस संघकी ओर वह कोई महात्मा आता हुआ जान पड़ता है. वह कौन है?" गुरु बोले:–"वत्स! वह इस मार्गका स्वामी है और इस मार्गपर आरूढ़ होनेवाले पथिककी यह रक्षा करता है. इसने असीम पुरुषार्थ प्राप्त किया है और आनंदके दर्शन प्राप्त कर, परम ज्योतिके सूक्ष्मतर तत्त्वको जान लिया है. यह परार्थहीका मूर्ति-रूप है. इसके पीछे जो देवी आती है वह केवल बुद्धिकी ही विलासिनी है और यह योगीन्द्र उस देवीकी सहायतासे अनेक महात्मा पैदा करनेकी शक्ति रखता है. यह बिलकुल ही योगमूर्ति है, इससे वह जिस मार्गमें महात्मा पैदा कर सकता है वह महाविकट और दुस्तर है और ऐसे दुस्तर मार्गमें जाना यह महत्ता मानता है. इसका निश्चय अचल है और उस निश्चयको पूर्ण करनेके लिए चाहे अनेक ब्रह्माण्ड चूर्ण हो जायँ, चाहे उसका संहार हो जाय, अनेक जीव इस मार्गसे आकर लौट जायँ पर उनकी इसे जरा भी परवा नहीं. यह उसकी प्रतिमासे प्रतिभासित होता है और यह उसीमें आनंद मानता तथा मनाता है. उसके ज्ञानसे उसे अनेक भोग प्राप्त हुए हैं और अनेक भोग भोगने पर भी यह तृप्त नहीं हुआ इससे वारम्वार नये नये भोग भोगनेको तैयार होनेसे ही अब भी वह संघकी ओर आया है. योगक्रमकी जो विधि है उसे वह जरा भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हटानेको तैयार नहीं है और इस विधिके परिपालनसे अनेक भोग पीछे रह जायँ तो उनकी भी उसे परवा नहीं. उसके साथ जो देवी है वह उसकी श्रद्धा है. यह श्रद्धा, स्वरूपमें यदि निर्गुण बने तो परम धाममें सहज ही प्रवेश हो जाय पर वह इस उपाधिके साथ ही जब प्यार करती है तो पीछे गिरना पड़ता है. देखो, यह योगी, अपनी भव्यता दिखाते, अपने दिव्य जीवनको सुशोभित करते, अनेक तरंगोंमें गोते खाते, निष्प्रेम और विरक्तिसे आवृत इन पथिकोंकी ओर देखते चला आ रहा है. सुनो, वह क्या कहता है ?"

अच्युतपुर जानेके मार्गकी ओर आते हुए उस योगीकी कान्ति, भव्य, गंभीर, किसीको भी दृष्टिपातसे ही घबरा देनेवाली पर कृश, कुछ उदासीनतावली, प्रेम और भक्तिसे शून्य थी. उसकी दृष्टि निश्चल और चित्तवृत्ति स्थिर थी. वह ऐसा मालूम होता था मानों अनेक पेचीले हिसाबोंको धोखते मार्ग चल रहा है ! उसका पैर जहाँ पड़ता अचल रहता पर कुछ कुछ काँपता था. उसमें ज्योतिर्मय तेजोबिन्दुके गूढ़ तत्त्वसे अद्भुत असर करनेकी शक्ति थी. उसने उस शक्तिका प्रयोग करना आरंभ किया और संघके प्राणियोंकी जीवनशक्ति पर अद्भुत और गूढ असर कर दिया. इस शक्तिमें जीवधारी जंतु खिंच गये, सिर्फ सत्साधक ही बचा और जो उसके आश्रयसे रहे थे तथा जो प्रवासमें पाथेयकी पोटली विना थे, वे ही, खिंचनेसे बच गये.

वह महात्मा इस संघकी ओर आया. उसको देखते ही सत्साधक विचारने लगा कि, "यह मार्गदर्शक कौन है ? अहो ! इसके पीछे आती हुई इस देवीके मैंने वहां दर्शन किये हैं सही, पर उसका आजका चेहरा उदास होनेसे यह नहीं जाना जा सकता कि वह कौन है. है तो परिचित, पर महात्मा कौन है ? इसके दर्शनसे जो आनंद होना चाहिए वह नहीं होता; पर हृदयमें उदासीनताका उद्भव होता है. इसके मनोविकार विशुद्ध हैं और यह कामको पार किये हुए जान पड़ता है. क्योंकि इसका अनुधावन करनेवाला काल इसके देखते ही थर थर कांपते मालूम होता है, पर वह दूर क्यों नहीं हुआ ? इसके साथ संघमें जो अनेक लोग हैं उनके पास जो पोटलियां हैं वे किस चीजकी हैं ?" इतनेमें वह महात्मा संघके समीप आया और सत्साधकको सम्बोधन कर उसने बहुत ही उचित उद्गार निकाले.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसने कहा:-"अच्युतपथप्रवासी ! यहाँ ठहर ! यह वही तेजोमय स्थान है, जहाँ अच्युत नारायण निवास करते हैं. इस स्थानमें दीर्घकालपर्यंत रहनेसे भी कालका भय नहीं है. काल डरवाता नहीं और परमात्माके आनन्दमय दर्शन होते हैं. तू जिस गूढ़ मार्गमें जा रहा है उसका यह अन्त है. तेरी धारणा तत्त्वविचारसे शुद्ध हुई है इस लिए यहाँ ठहर, और प्रणवब्रह्मके दर्शन कर. यहाँ रहनेसे तू अनेक परोपकार कर सकेगा, अनेकोंके जीवन सार्थक करेगा और अनेकोंको तार सकेगा. इस विश्वमें अनेक दुर्घट कार्य कर सकेगा और इसमें तुझे अभेदताका अनुभव होगा. यह मार्ग स्वतः वासनारहित है. यहाँ बंधनका नाम नहीं है, पर यहाँ नित्य विश्वलीलाको देखकर आकाशके अवकाश और ताराओंकी गतिसे दिव्यता—भव्यता जान पड़ती है, उससे परब्रह्मका परम तत्त्वमय ज्ञान प्राप्त होता है और उस ज्ञानद्वारा आत्माकी शुद्धि होती है तथा उसीसे जीव परम तत्त्वमें लीन होते हैं. ये सब इस स्थानमें हैं. परब्रह्मके इस अपार गूढ़ मार्गमें—विश्वके तमागारमें गुप्त रहनेवाली बातें गुप्त नहीं रह सकतीं. इन गुप्त बातोंको भी जानकर हम अनेक जीवधारियोंको अनंत लाभ पहुँचा सकते हैं और वे जीव तर कर पार हो जाते हैं."

सत्साधकने पूछा:-"आप कौन महात्मा हो ?" योगीने उत्तर दिया:-"मैं इस मार्गका पथप्रदर्शक हूँ. मेरा नाम योग और इस मार्गका नाम योगमार्ग है. इस मार्गकी महत्ता विश्वविदित है और स्वयं परमात्माने भी स्वमुखसे वर्णन की है. योगसे श्रेष्ठ दूसरा कोई साधन नहीं है. इस योगसे परमेष्ठी, महेन्द्र और सार्वभौमपद, रसाधिपत्य, योगसिद्धि तथा अपुनर्भव (मोक्ष) प्राप्त होते हैं. इस मार्गका जीव जबतक चाहे इस लोक, देवलोक, इन्द्रलोक, विष्णु या शंकरके लोकमें रह सकता है और सब इच्छित कार्य कर सकता है. हम मनुष्योंपर अनेक उपकार करते हैं. अनेकोंको अपने योगबलसे धन, संतति और ऐश्वर्य देकर जगतमें बड़े महात्मा बना देते हैं. इससे श्रेष्ठ और मार्ग परमात्माने रचा ही नहीं. जो इस मार्गसे जाता है वह सब सुखोंका भोक्ता होता है. यहाँ सारे विश्वकी सकल लीलाएँ हैं और इनमें डूबे रहनेवालोंको आवागमनका अनेक वर्षों और कालके अंततक भय नहीं रहता. इस स्थानमें सब लीलाएँ प्राप्त होती हैं. यहाँके निवासी गर्मीमें सर्दी और सर्दीमें गर्मी कर सकते हैं. इस पृथ्वीकी घड़ीको चाहे जब फेर सकते हैं, चन्द्र सूर्यको अपने अधीन कर सकते हैं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और सबसे बड़ा सामर्थ्य यह है कि वे चाहें तो नूतन सृष्टिकी रचना भी कर सकते हैं. इस मार्गमें एकनिष्ठ होनेवाला स्वयं ही स्रष्टा है. वह एक ही स्थानमें रहकर तीनों लोगोंकी गति जान सकता है और स्वस्थानमें बैठे हुए तीनों लोकोंको केवल निमिष मात्रमें देख सकता है. ऐसे श्रेष्ठ स्थानमें तुम कल्लोल करो और फिर योगमार्गमें जाकर परमात्माको प्राप्त करो. योगी तपस्वी, ज्ञानी और कर्मीसे भी श्रेष्ठ है. "

सत्साधकके संघवाले ऐसा उत्तम स्थान देखकर वहीं रहनेको तैयार हो गये; पर सत्साधकने कहा:-" मित्रो ! इस स्थानमें तुम लुभाना नहीं. यह योगमार्ग कामयोगमार्ग है. यहाँ भी महात्मा कामदेवकी दुहाई फिर रही है और यहाँ रहनेवालेको पीछे लौटना पड़ता है; देखो, तुम्हारी पथ-बोधिनीमें महात्माने स्पष्ट बतलाया है कि कामनावाले योगीको अयोगी होना पड़ता है. क्या यह महात्मा बतायेगा कि इस मार्गमें जानेवालेको वास्तवमें भ्रष्ट होनेका भय है या नहीं ? उसे वास्तवमें अहंता ममता हैं या नहीं ? "

महात्मा योगीने कहा:—" हाँ होगा ! पर हमारी अहंता ममता जन-सुखार्थ और परहितार्थ है स्वसुखार्थ नहीं ! हम लोकोपकार कर सकते हैं और जो अनुचित मार्गमें जाता है उसे शासन भी करते हैं. ऐसे प्रयासमें रहने पर भी हम कालको लाँघ जाते हैं और जिसने कालका अतिक्रमण किया उससे अधिक बली कौन हो सकता है ? अपने दिव्य ज्ञानद्वारा हम चाहे जब पूर्ण मोक्षको प्राप्त होते हैं. वेद, यज्ञ, तप और दानमें जो पुण्य-रूप कहा है उस सबको जान और अतिक्रमण कर हम परम स्थानको पाते हैं, इस लिए इस मार्गमें लौटकर मोक्ष प्राप्त करो. "

सत्साधकने कहा:-" तब तो तुम्हारे हालके प्रयत्नसे मनुष्य बने रहकर मनुष्योच्च होना शेष ही रहा. तुम कहते हो कि मोक्ष चाहे जब होता है. इस परसे समझ पड़ता है कि कामनायुक्त कर्म करनेसे तुम्हें पुनः जन्म मरणके अधीन रहना पड़ता है और मनुष्यमेंसे मनुष्य ही होनेके लिए किये गये श्रमके लिए अधिक दण्ड भोगना पड़ता है और जिस मार्गसे आये उसीमें लौट जानेके लिए ऐसा व्यर्थ परिश्रम-प्रयास करना पड़ता है. हे संत ! सच कहें तो इस कामयोगमार्गसे न दिव्य ज्ञान प्राप्त हो सकता है और न आत्माकी एकता ही होती है; हाँ, इस कामयोगके सेवनसे लोक-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कल्याणकी वासनाका बल बढ़ता है और वह बल बढ़ते तथा विद्यामदादिसे अहंभाव प्राप्त कर, न्याय अन्याय-पुण्यपापकी खोजमें वासनावृत्ति रहनेसे क्रोधवश या शान्तिके अधीन होकर आशीर्वाद या शाप देनेसे जिस वासनाका क्षय होना जरूरी था. वह बढ़ानी पड़ती है. इस प्रकार इस वासना–बंधनद्वारा भ्रष्ट होना पड़ता है, फिर जन्म लेना पड़ता है और वहाँ रहकर फिर मोक्षसिद्धिके लिए प्रयत्न करना पडता है. उसमें सफलता होनेपर ही परब्रह्म प्राप्त होनेवाले मार्गकी ओर फिरा जा सकता है और तब ही मुक्ति प्राप्त होती है. पर सच्चा योगी वही है जो सारे कर्मोंका त्याग करता है. केवल अक्रिय ही योगी है और वही मोक्षको पाता है. जो कर्मबलता या कर्मफलमें आसक्त है वह योगी नहीं माना जाता. श्रीव्यासजीका वचन है कि:—

" न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनाऽन्यत् ॥

भगवानके अंशावतारी व्यासजीके इस वचनानुसार जिन्हें परमेष्ठिपदादिप्राप्तिकी इच्छा ही नहीं तथा परब्रह्ममें जिसने आत्मार्पण किया है वही योगी है. तुम्हारे मार्गमें वह नहीं है पर उसमें कामनाएँ अनेक वसती हैं और जितना ही जितना संबंध यह जीव अपने मनसे प्रिय मानता है उतना ही उतना उसके हृदयमें शोकका कांटा चुभता है. योगसे परमेष्ठिपदादिकी प्राप्तिको जो आप प्रिय मानते हो वह यथार्थमें किसकी वासना है ? सारे संसारके चरित्र देखनेकी इच्छा क्या योगीको होनी चाहिए ? मोक्षमार्गमें जानेवालेको ये सब कंटकरूप ही हैं. आपके योगमार्गसे दिव्य ज्ञान प्राप्त होता सही है और वह मानवव्यवहारकी उत्कृष्टतापर्यन्त जाता है तथा उससे परम कार्य सधता है और आनंद भी होता है पर उसमें भरी हुई लोकव्यवहारको वशमें रखनेवाली जो तृष्णा है वह नीचसे नीच जड़ताका भक्ष्य बनाती है. इसके सिवा यह मलिन वासना है और यही भ्रष्ट करती है तथा इससे शान्ति नहीं मिलती इस मार्गमें जैसा आनंद है वैसा दुःख भी है. जबतक लोकवासना–देहवासना–स्वसामर्थ्यवासना–अहंकारवासनाका क्षय नहीं होता तबतक परम आनन्दके मार्गमें फिरा ही नहीं जाता, तब पहुँचनेकी तो बात ही क्या कहें ? हमें सिर्फ आनन्दमार्गमें ही जाने और वहीं रहनेकी कामना है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस लिए तुम्हारा मार्ग उत्तम है तो अच्छी बात है पर हम तो तुमसे आज्ञा चाहते हैं. कालके कालतक जीवित रहने और जीवित रहकर वेला कुवेला (समय कुसमय) कालका भक्ष्य बननेकी जिसकी इच्छा हो और जो परम योग जाननेसे विमुख रहा हो उसीके लिए यह मार्ग कल्याणकारी होगा. यह हमारे ग्रहण करने योग्य नहीं है. जो स्थिर चित्तमें रहनेवाला योग ब्रह्मभावमें तातथेई कर रहा हो, वही निष्काम योग अपरोक्ष साक्षात्कारमें मस्त कर अच्युतमार्गमें लेजाता है. फिर हमारी इस पथबोधिनीमें तुम्हारे मार्गसे श्रेष्ठ एक दूसरा मार्ग भी बताया है:—

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मे भक्तः स मे प्रियः ॥

अर्थः-संतुष्ट, सतत योगी, यतात्मा, दृढ़ निश्चयवाला और मन तथा बुद्धि प्रभुमें ही लगा देनेवाला प्रभुका भक्त और प्रिय है.

" फिर कहा है कि ' सुकृत किये हुए लोग प्रभुको भजते हैं. ऐसे मनुष्य चार प्रकारके हैं; आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी;' इनमें तुम अर्थार्थी हो और इससे कामनायुक्त हो. पर हमें बताया गया है कि एक नित्ययुक्त और भक्त ज्ञानी ही परमात्माको परम प्रिय है ! और निष्कारण अनन्य प्रेमलक्षणा भक्तिसे एकाकार हुआ भक्त परमात्मामय ही बनता है. ऐसा भक्त परब्रह्मको बहुतही प्रिय है. इस प्रकार यह ज्ञानभक्तिमार्ग तुम्हारे मार्गसे श्रेष्ठ है तो हम उससे नीचे मार्गमें कैसे रह सकते हैं ? हम आज्ञा लेते हैं. राम राम ! "

इतना कह कर सत्साधकने, जय महेश्वरकी गर्जना करके अपना संघ आगे चलाया. इस समय भी अनेक पथिक, जिनके सिरपर अनेक थैलियाँ थीं, उन थैलियोंको फेंक कर आगे चले. पर अनेक पथिक वहीं रह गये. वे परस्पर कहने लगे कि:—"जिस योगसे सारा विश्व अपने हाथमें मालाके मनका (गुरिया) के समान फिरा करता है, और जिस योगसे चाहे जैसे दुर्गम कार्य करनेकी शक्ति आती है, उसे त्यागकर हम दूसरे विकट मार्गसे आगे क्यों बढ़ें ? और व्यर्थ परिश्रम उठावें ? यहाँ रहनेसे हम अनेक लोगोंका कल्याण कर सकेंगे. इससे अधिक लाभ और क्या होगा ? ", इस विचारसे वहां रहनेवाले जीवोंसे, सत्साधकने कहा:—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" इतनी दूर आनेपर जहाँसे कभी भी गिरनेका भय नहीं, जिसके दर्शन कर लेनेपर फिर दूसरेके दर्शन करना ही नहीं पड़ते, उसे त्यागकर जहाँसे गिरने (पतन होने) का डर है, वहाँ रहनेका विचार कर, क्यों इतना श्रम यों ही जाने देते हो ? ध्यान रक्खो कि, जो अच्युतस्थान है, जो कालसे मुक्त है, और जिससे आगे कुछ भी नहीं है, उस ओर एकनिष्ठा-वाले पान्थके जो पैर उठते हैं, वे किसी भी संकल्प विना ही उठते हैं. तुम यह मिथ्या संकल्प क्यों करते हो कि इस मार्गसे ऊँचे दिव्य स्थानमें जायँगे ? अंतर (अन्तःकरण) में अनुभव हुए विना, परम स्थानकी दिव्यता अन्य नहीं जान सकता. जैसे नदीके वेगमें लकड़ी चाहे जहाँ ऊंचे नीचे स्थानमें तैरकर जा पड़ती है, वैसे पामर जीव, जो अमृतके स्वादको नहीं जानते और दैवद्वारा अहंकारयुक्त उपभोगकी ओरको खिंच जाते हैं. ऐसी ही हे पथिको ! तुम्हारी भी गति है. "

इतना कहकर उन महात्मा योगी और उसके साथवाली उस देवी–योगश्रद्धा–के विदा होकर पथिकों पर कुछ भी असर फैलनेके पहले ही उस स्थान पर लाये हुए दिव्य भोजनों--सिद्धियोंका त्याग करके, सत्साधक और उसके साथके दूसरे पथिक आगे बढ़े.

गगनस्थित विमानवासी, सत्साधककी इस दृढ़ताको देखकर चकित हो गये. उनमें राजा वरेप्सु अधिक चकित हुआ. उसे विचार हुआ:–"जिस योगसे हजारों योगी परम धाममें जा बसे हैं, वैसे योगियोंके योगमार्गका अनादर करके, सत्साधक आगे चला, इसका क्या कारण है ? और यह परमधाम, सकल दिव्य पदार्थोंसे परिपूर्ण है, यह यदि ब्रह्मधाम न हो तो फिर ब्रह्मधाम कैसा होगा," यह जाननेकी इच्छा हुई ! गुरुदेव उसका मनोभिप्राय जान गये, इससे बोले कि:–"जिस योगसे परमधाम प्राप्त होता है, वह योग निर्विकल्प समाधियोग है. वह सिर्फ श्रवण मननसे ही प्राप्त नहीं होता; पर जब एकाकारता–निदिध्यासन–होता है तब ही उसका उदय होता है. जिसे सब एक ही है, जो विना सुहृद्, मित्र या शत्रुके है, जिसका किसीसे भी संबंध नहीं है, वही योगी है. वह एकान्तमें ही रहता है, अकेला ही रहता है, आत्मापर आसक्त है, चित्त तथा देह स्वाधीन किये है, आशारहित है, जिसने आवरणशक्तिको नष्ट कर दिया है, जो नित्य आत्मयोगहीका साधन करता है, वही योगी, और उसी मार्गमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाना ही सच्चा योगमार्ग है. आत्मामें ही आत्माका जिसने लाभ किया है और परमात्मामें जो एकाकार है, वही योगी है. पर जो अहंकार-वश है, वासनावश है, कर्म करनेमें, सिद्धियां प्राप्त करनेमें, उनकी प्राप्तिका फल भोगनेमें और उनका उपयोग करके किसीका हित और किसीका अहित करनेमें प्रवृत्त है, वह योगी नहीं, पर मात्र तपसे कर्ममें प्रवृत्त हुआ, और मनुष्यमें ही मनुष्य बना हुआ वासनालीन जीव है. उसमें उत्तम गति है सही, पर मृत्युके जिस गढ़ेमें कीच भरा है, उसमेंसे उन्नत स्थानमें जानेकी जो वह आशा रखता है, वह निराशाजन्य हायहाय ही है. उसमें वासना बसती है. उस वासनासे मुक्त होनेके लिए विशुद्ध भावनाके विचारमें जो निमग्न रहना चाहिये, उसे वह योगी जानता ही नहीं. उसमें प्रेम है, पर वह प्रेम हलकेसे हलके और नीचसे नीच मनुष्यमें रहनेवाला जो प्रेम है, वैसा भी बन जाता है. वह प्रेम इस भोगवृत्तिका, अहंकारका ही प्रेम है ! ऐसे प्रेमी और वासनावालेसे, भूल चूक होना संभव है; और इससे भूल हुई कि, जो काल इससे आसपास फिरा करता है, वह झटसे आ लिपटता है और उसे भ्रष्ट कर देता है. जो योगी है, वह ज्ञानामृतसे तृप्त और कृतकृत्य रहता है, उसे कुछ कर्तव्य नहीं—हो तो वह तत्त्ववित् नहीं हुआ, ऐसा श्रुतिवाक्य है. इस योगीका इतना सुभाग्य है कि अपने संस्कारके योगसे भ्रष्ट होनेके पीछे भी, जैसे कोई भी कल्याण करनेवाला दुर्गतिको नहीं पाता, वैसे वह भी नहीं पाता. वह नये जन्ममें पौर्वदेहिक बुद्धियोग पाता है और उसमें रहकर पूर्वके संस्कारके योगसे सावधान रह, सब वासनाओंका लय करनेसे उस शब्दब्रह्म—परमात्माको प्राप्त करता है."

महात्मा वामदेव, इस प्रकार विमानवासियोंसे बातें कर ही रहे थे, इतनेमें सत्साधकका संघ आगे चला गया. इस समय कुछ पथिक बिना थैलियोंके मालूम होते थे. पर वे बहुत थोड़े थे. संघ जब जगन्नगरमेंसे निकला था, तब उसके साथ असंख्य पथिक थे, पर अब तो उसमें पांच पंद्रह जान पड़ते थे. इनमें भी कई पथिकोंके सिरपर भार था सही पर उनके चलनेकी झपटसे जान पड़ता था कि, वह भार बहुत हलका हो गया है,

इस प्रकार पथिकोंको झपाटेसे चलते देख कर वरेप्सुने गुरुदेवसे पूछा:—"देव ! ये पथिक अब बड़े झपाटेसे दौड़ते हैं और उनके सिरका भार भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कम हुआ जान पड़ता है, इसका क्या कारण है ?" गुरुदेव बोले:—"वत्स ! अच्युतपुरमें प्रवेश करनेके लिए जीवकी वासनाका क्षय होना चाहिए. जगन्नगरमेंसे निकले हुए सब जीवोंकी वासनाका क्षय नहीं हुआ था और अपनी थैलियोंके भारके कारण उनसे जल्दी जल्दी चला भी नहीं जाता था. वासनाका भार बहुत बड़ा है, और वह भार न हो तो जीवका मोक्ष ही है. वासनाक्षयके दो मार्ग हैं, एक तो सगुण उपासना और दूसरा निर्गुण उपासना. सगुण उपासनावाला सगुणोपाधिवाला रहता है, पर उसके अंतःकरणकी शुद्धि हुए विना, अच्युतपुरमें नहीं जाया जाता; पर जो निर्गुण भाव नावाला है उसके पास ही अच्युतपुर है. इनमें अनेकोंके सिरपर सगुणोपाधिक थैलियां हैं; पर ये बहुत हलकी हैं. इससे झपाटेसे आगे बढ़े जाते हैं. निर्गुण भावनावाले, सत्साधक आदि तो अकेले ही चले जा रहे हैं."

इतनेमें संघ एक मुकामपर आ पहुँचा. यहाँ भी एक सुन्दर आश्रम था. बहुतसे पथिकोंको क्षुधा तृषाकी कोई भी पीडा नहीं थी. वे एकान्तमें बैठ कर हरिकीर्तन करने लगे. अनेक पथिक जिनमें वासनाका कुछ अंश अब भी शेष था. भूखप्याससे पीड़ित हुए, पर उन्हें ऐसी डकार आई मानों कल्पवृक्षके समान उनकी इच्छाके विना ही, उनका पेट भर गया हो, और वे शान्त हो गये हों. दिन भरके थके हुए थे, इससे सब आराम करने लगे. सत्साधक एक स्थानमें लेट गया. उसको निद्रा, तंद्रा, भूख या प्यास कुछ भी नहीं थी. वह जाग्रतावस्थामें, पड़े हुए अनेक ब्रह्मतरंगोंमें विचरण करने लगा.

इस समय नभगामी विमान भी वहीं ठहर गया, और सत्साधक जो तरंगानुभव कर रहा था उन्हें दिव्यदृष्टिसे देख सुन रहा था. सत्साधक थोड़ी देर तक आँखें बंद कर पड़ा हुआ था कि इतनेही में वह एकाएक बोल उठा:—

"शान्ति देवी, शान्ति देवी, शान्ति सर्व व्यापी;
माया त्यागी, मुक्त हुआ वासना सर्व भागी—शान्ति०
निर्विकल्प ब्रह्म बना हूँ, बना हूँ विरागी;
अविद्यान्धकार हट्यो, देखता ज्योति जागी—शान्ति०
मैं हूँ ब्रह्म मैं हूँ स्रष्टा, कृष्णका उपासी;
सर्वव्यापी मैं रहा हूँ, निर्गुणका हूँ भागी—शान्ति०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसके बाद वह विचारकी तरंगोंमें निमग्न हो गया. वह स्वतः बोल उठाः—"जगत् गया, वासनाका क्षय हुआ, अब मैं तेजरूपमें लीन हूँ और उसीमें लीन रहूँगा. जिसका जिसपर प्रेम है, उसमें उसका निवास. अब मुझसे कुछ लगता लिपटता नहीं है. मार्गमें आनेसे जब अहंता ममताका नाश होगया है तो अब अच्युतपुरमें ही प्रवेश होगा. विश्वव्यवस्थानुसार कल्पान्तमें चाहे जो रचना हो, पर उसमें पिण्डब्रह्माण्डैक्यके अनुभव करनेमें बाधा नहीं है. मुक्तका सुख कल्पान्तरस्थायी सुखसे भी अधिक है—उसका वर्ण कैसे हो सकता है ? तो भी इस मार्गमें आनेवाले अनेक पथिक उससे कैसे दुर्भागी बने रहते हैं ? यह वास्तवमें कौतुक ही है.

ममत्वकी दृढ़ता ही दुःखका कारण है.

यह मुझे निश्चयपूर्वक जान पड़ता है. किसी पुरुषने कमाकमाकर एक लाख रुपया एकत्र किया, और वह 'मेरा है' इस वासनासे, उसमेंसे किसीको एक पाई भी नहीं देता और न अपने काममें ही लाता. उसे यह भय लगा रहता है कि वह धन जाता रहेगा या कम होजायगा, और इससे शोक होता है. पर पूर्वजन्मके संस्कारसे वैराग्य प्राप्त हुआ और वह सब त्यागकर वनमें चला गया, उस समय, 'मेरा है,' यह वासना जाती रहनेसे, वह धन कोई लूट ले जाय, खर्च कर डाले, फेंक दे, दे दे, या जल जाय, इसका उसे कुछ भी शोक नहीं होता. इस प्रकार ममत्वकी दृढ़ता ही दुःखका कारण है. पर वह ममत्व जिस मनमें होता है, उस मनका निरोध (रोकना), इस सुखकी प्राप्तिका स्थान है. जीवको सर्वथा इस ममत्वका त्याग करना आवश्यक है. पर—

माने हुएमें ही ममत्व है.

जीवने जिसे अपना मान लिया है, उसमें ही ममत्व है. जगन्नगरमें मैंने देखा है कि, एक मनुष्यके पास तोता था. वह मर गया तो वह मनुष्य रोने लगा. एक संतने उससे पूछा कि, 'भाई ! क्यों रो रहे हो ?' तब वह मूढ़बुद्धि बोला कि, 'मेरा तोता मर गया ! अहा ! वह मेरे घरमें रहता था, मेरा अन्न खाता था, घरमें रौनक मचा देता था, वह मर गया तो क्यों न रोऊं ?' संतने कहाः—'मूढात्मा ! तेरे घरमें बहुतेरे चूहे रहते हैं, वे तेरा ही दाना खाते हैं, रातदिन शोर मचाये रहते हैं उन पर तेरा प्रेम नहीं है और इस तोतेका शोक करता है ?'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह उचित उपदेश है. पर सत्य तो यह है कि, उस पुरुषने तोता 'मेरा है!' ऐसा मान लिया है. मेरा माननेके कारण उसकी सुन्दरता मनमें बसी है, पर चूहेकी सुन्दरता उस मनुष्यके मनमें नहीं बसी. वह 'मेरा नहीं है' ऐसा माननेसे उसे शोक नहीं होता. यह मेरा मनानेवाला मन है. इस मनको किसी भी ओर ढलने नहीं देना चाहिए, ऐसा होनेहीसे शान्ति मिलती है. मनही सबका कारण है. किसी विषयी पुरुषके पासमें आँखें बन्द कराके एक सुन्दर कुटनी स्त्रीको खड़ी करो या किसी गायन-शौकीनके पास उसके कानमें फाहा लगाकर गान करो, तो इससे उसे कुछ भी असर नहीं होता. वह आनन्दित नहीं होगा, मोहित नहीं होगा. यदि स्त्रीमें आनन्द हो तो वह पास ही खड़ी है, तो भी आनन्द क्यों नहीं है? सुख क्यों नहीं है? गायनमें आनंद हो तो, पास ही मनुष्य गा रहा है. क्यों आनन्द नहीं होता? इसपरसे जाना जाता है, कि स्त्रीमें सुख नहीं है, गायनमें सुख नहीं है, धनमें सुख नहीं है, पर जो आनंद होता है, वह मनके माने हुए ममत्व—अहंकारमें ही हमें प्रतीत होता है. यह आनंद-मोह और मनकी मानी हुई सुन्दरताहीमें है. जगन्नगरमें किसी सेठका गुमास्ता है. इसे वर्ष भरमें पांच सौका वर्षाशन (सालभरका भोजन-वेतन) मिलता है. वही सेठका कामकाज करता है. पर सेठको लाख रुपयेकी हानि होती या लाभ मिलता है तो न उसको हर्ष होता है और न शोक ही; क्योंकि उसे यह धन मेरा है, ऐसा ममत्व नहीं हुआ.

"इसी नगरमें मैंने यह भी देखा कि, एक सेठके एक लड़का था, उसके लिए उसने एक दूध पिलानेवाली रक्खी थी. लड़केके सुखके लिये धाय परहेज रखती थी. पर वह लडका मर गया तो धायको शोक नहीं हुआ. उसने तो मनसे ऐसा मान रक्खा है कि एक लड़का गया तो दूसरा लडका पालन करनेको मिलेगा, इससे उसको दुःख नहीं होता. सच्चा दुःख तो उसकी माताको ही उपजा था; क्योंकि उसने 'मेरा लड़का' ऐसा मान रक्खा था, और वैसा ही निश्चय भी कर लिया था. यह सब मनने मनाया है. सारा संसार वह मन ही है, तीनों लोक भी मन है, मनसे सुख, दुःख, काल और रोग है. मनसे संकल्प और मनसे जीवन है. माया, शोक, मोह, ये सब मन ही है. स्पर्श, रस, गंध, कोश, ये सब मन ही है. समुद्र पिया जा सकता है, मेरु पर्वतको जडमूलसे उखाड

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सकते हैं, अग्निका प्राशन (भक्षण) भी किया जा सकता है पर मनका निग्रह इन सबसे कठिन है. यह निग्रह करनेवाला ही तर जाता है.

दुःखका कारण, 'मैं' और 'मेरा'

ऐसा जिसने मुझे मनाया है, वही है और वही वासनाको बढ़ानेवाला और ब्रह्ममार्गमेंसे गिरानेवाला है और उससे ही जगन्नगरमेंसे इस संघके साथमें आये हुए अनेक पथिक पीछे फिर रहे हैं. यदि यह 'मेरा' 'मेरा' मनमेंसे निकल जाय तो मनुष्यकी वासना क्षयको प्राप्त हो. यह 'मेरा मेरा' मनानेवाला मनका माना हुआ ममत्व ही है. एक साहूकार व्यापारके लिए देशान्तर गया था. यहाँ बीस वर्ष हो गये, पर घर नहीं आया. कागज पत्रसे सब कुशल समाचार मिलते थे. घरमें एक पुत्र छोड़ गया था, पर वह छोटा था, उसे वैसी ही अवस्थामें छोड़कर वह साहूकार देशान्तर चला गया था. बहुत वर्ष हुए पिता घर नहीं आये, इससे वह पुत्र उससे मिलनेके लिए निकला. उधर पिता भी घर आनेको निकला. मार्गमें आते हुए किसी धर्मशालामें दोनोंका मुकाम हुआ, दोनों आमने सामने बैठे, पर एक दूसरेको नहीं पहँचानते. दैवेच्छासे उस लड़केको हैजा हुआ. इस समय, उसके साथ उसका लड़का और स्त्री थी, वह इनको उस साहूकारको सौंपने लगा. उस साहूकारने कहा कि, "भाई ! हम कहां और तुम कहां ! हमें तो कल चले जाना है, इस लिए किसी औरको सोंपो." वह साहूकार तो इतना कहकर अपनी कोठड़ीमें आकर जो रसोई बनाई थी उसे खानेको बैठ गया, और उसी क्षण इस लड़केका आत्मा उसका देह त्यागकर चला गया. पर वह सेठ ऐसा समझकर कि इस मनुष्यके मरणसे, न मुझको स्नान करना है और न सूतक है, महाप्रसाद उड़ाते बैठा ही रहा ! इतनेमें उस मृतककी पत्नी विलाप कर रोने लगी कि, 'हाय ! हाय ! मेरा कैसा दुर्भाग्य है कि श्वसुरजीसे भी भेट नहीं हुई. वे तो दूर ही रहे ! नहीं तो इस लड़केकी सेवा करते. हे जगज्जीवन श्वशुरजी ! अपने इस पुत्रकी सँभाल करो !' इस प्रकार जोरसे खूब रोई. इस समय उस सेठके नौकरने पूछा कि, 'तुम्हारा श्वसुर कौन है ? उस स्त्रीने नाम निशान बतलाया, जिसे वह सेठ भोजन करते हुए सुन रहा था. वह झटसे उठ बैठा और सब भोजनसामग्री छोड़कर उस स्त्रीके पास जाकर सब हाल पूछने लगा जब उसे मालूम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुआ कि मेरा ही पुत्र मरणको प्राप्त हुआ है तो, 'हा पुत्र ! हा वीर !' इस प्रकार रोता हुआ मूर्छा खाकर गिर पडा.

इस परसे जान पड़ता है कि, जब तक 'मेरा' यह ममता नहीं है तब तक शोक नहीं होता, भय नहीं लगता. पर 'मेरा' माना और 'मैं' 'मैं' ऐसा अहंकार उत्पन्न हुआ कि सारी वासनायें आ लिपटती हैं. इसी प्रकार एक दूसरे सेठकी भी बातका मुझे स्मरण होता है. बहुत कुछ धन अपनी स्त्रीको सौंपकर कोई सेठ कमानेके लिए विदेशको गया था. कर्मधर्मके योगसे उसकी स्त्रीके पासका पैसा जाता रहा और उसने उदरनिर्वाहके लिए भीख माँगी. जैसे वैसे दिन काटनेका समय आया और मनमें विचार करने लगा कि, घर जाकर स्त्रीको कुछ बनवाकर खुश करूँगा और उसका विरह-दुःख शान्त करूँगा तथा अमुक वस्त्र देकर आनंद दूँगा. अब अपने घर आते समय रास्तेमें उस सेठने पडोसके किसी गाँवकी धर्मशालामें मुकाम किया. जिसके लाड़ प्यार करनेकी तरंगोंमें उस सेठका मन आनंदमें लहरें ले रहा था वही उसकी गृहिणी भीख माँगती हुई वहाँ आ पहुँची! उसने बहुतेरा गिड़गिडाकर सिर्फ एकही पैसा माँगा कि, मैं तीन दिनोंकी भूखी हूँ, इसलिये पैसेकी लाई लेकर देहको आधार देऊंगी! उस समय उस सेठने कि जिनसे अपनी घरवालीको आनन्दित करनेके लिए अनेक विचार मनमें किये थे और कर रहा था जरा भी दया न दिखाकर नौकर द्वारा धक्का मारकर, बड़ा अपमान कर, बाहर निकलवा दिया. वह स्त्री फटे पुराने कपड़े पहिरे और पेटमें पैर लगाए, रात भर धर्मशालाके बरामदेमें पड़ी रही. सवेरा होते ही, सेठके गुमास्तेने सेठानीको पहँचाना और सेठसे जाकर यह बात कही, तब सेठ तुरंत दौड़ता हुआ वहाँ आया और सेठानीसे लिपट गया और रातको जो निरादर किया था, उसके लिए बड़ा दुःखित हुआ.

इससे मालूम होता है कि जबतक 'मेरा' माना है तभी तक शोक या हर्ष होता है यह सब मनका कारण है—इसलिए मनको मारना, निरोध करना चाहिए, जिससे ममत्व न हो सके. ममत्व होते ही हर्ष शोक होता है. इस ममत्वका नाश होते ही शोक हर्ष भी नष्ट होजाता है, और जब शोक या हर्ष, मेरा या तेरा नष्ट हो जाता है और अद्वैत ब्रह्मभाव प्राप्त होता है तो नित्यकी अपूर्व आनन्दमय स्थिति हो जाती है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मायावश जीव.

निश्शंक, मनने ही सारा माना है, इससे मन ही बंध और मोक्षका कारण है. मनमें ही आनंद और शोक है; पर अन्य पदार्थमें नहीं है. यदि अन्य पदार्थमें आनन्द हो तो, विषयी पुरुषकी आँखोंमें पट्टी बाँध कर सुन्दर स्त्रीको खड़ी रक्खो, पर उसको आनन्द नहीं होता; क्योंकि आँखोंसे उसकी सुन्दरता नहीं दीखती. वह सुन्दर है या बदशकल है यह मनको मालूम नहीं होता है और मनको मालूम हुए विना आनंद नहीं होता. इसलिए मनको रोककर, इस जगतमेंसे सारी वासनाका क्षय करना ही पर-ब्रह्मप्राप्तिका उपाय है. जैसे ईंधन विनाकी अग्नि अपने ही स्थानमें स्थिर रहती है, और कुछ उपद्रव नहीं कर सकती, वैसेही मायिक वस्तुके ऊपरके प्रेमकी वृत्तिका क्षय होनेसे, मन-चित्त अपने मुख्य स्थानमें ठहरता है।

स्वप्नमें राजाकी कंगालीका दुःख जाग्रतके राजसुखमें नहीं है; जाग्रतके राजवैभवका सुख स्वप्नकी कंगालीमें नहीं है. उसी प्रकार ब्रह्ममें जगतका संकल्प नहीं और जगतमें ब्रह्मानन्दका सुख भी नहीं है. प्रश्न होगा कि एकमें सब कैसे ? इसपर एक बात याद आती है. कोई राजा किसी वेश्याके चंगुलमें जा फँसा था। वेश्या जैसा कहती वह वैसा ही करता. उसका राज्यपद वेश्याके आगे निर्जीव था. उस वेश्याके सिखावपरसे राजाने एक सच्चे अपराधीको अपराधमुक्त कर दिया. पर इसी वेश्याको राजा अपने ही समक्ष, न्यायालयमें खड़ी रखता तो वह राजाको भ्रममें नहीं डाल सकती. वेश्या यही माया है. राजा यह जीव है. मायावश जीव मिथ्या संकल्प कर फँसता है, पर वह मायाको लात मार कर दूर कर दे तो वह उसे कैसे फँसावे ? वह कभी फँसा नहीं सकती। जिसने इस मायाका बल तोड़ दिया है, वही अच्युतपुरको जा सकता है. पर कई जीवोंकी—

ज्ञान होनेपर भी स्थिति वही

—रहती है, इसका क्या कारण है ? और उसको परम शान्ति प्राप्त नहीं होती, इसका क्या कारण है ? इसका कारण प्रत्यक्ष है. कोई रोगी है. वह रोज वैद्यके पास जाकर औषध लेता है. वैद्य ऐसी अच्छी दवा देता है कि, रोग दूर हो और वह सुखी हो. जो पथ्य-बताकर वह पालन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करनेका आदेश करता है, रोगी उसका पालन नहीं करता और तेल मिर्च आदि मनमाना खाता है; इससे उसका रोग कैसे जा सकता है ? वह नहीं जा सकता बल्कि रोग और बढ़े तो इसमें आश्चर्य नहीं है और रोग न जाय तो वैद्यका दोष नहीं है; उसी प्रकार महावाक्य–उपदेशरूप 'तत्त्वमसि'का ज्ञान प्राप्त करके उसे ठीक ठीक जान लिया हो तो भी संसारकी विषयवासना बनी रहे तो शान्ति कैसे हो सकती है ? और उसमें गुरु तथा शास्त्रका क्या दोष है ? जिसने वासनाका क्षय किया है, उसको ही महावाक्यका फल मिलता है, वह आसक्तिवालेको नहीं मिलता; छुरी मोममें पैठ जाती है, पर पत्थरमें नहीं पैठती। पत्थरके समान आसक्तिसे भरे हुए चित्तवालेको कुछ भी असर नहीं होता, तो शान्ति कहाँसे हो ? पर जो निर्गुण भक्तिवाला होता है और जिसका वैराग्य दृढ़ होता है, उस जीवको उपदेश लगता है और वह स्वरूप-स्थितिको जानता है. अनेक काचमणि हैं, पर चन्द्रोदयसे चन्द्रकान्त ही द्रवने लगता है; अनेक पक्षी हैं, पर मेघघटाओं मयूर ही प्रफुल्लित होता है. जलके अनेक फूल हैं, पर सूर्योदयसे कमल ही खिलता है; ऐसे ही लाखों जीव हैं; पर अधिकारी–संस्कारी–श्रद्धावान्-आत्मामें परमात्माको देखनेवाला परब्रह्मस्वरूप जाननेका उपदेश ग्रहण कर सकता है और वही मुक्तिमार्गपर जा सकता है.

एकही जन्ममें कैसे हो सकता है ?

पर यह महत् कार्य एकही जन्ममें कैसे हो सकता है ? यह तो अनेक जन्मोंमें होनेवाला है. लगे रहनेसे हो सकता है. नित्यके वैराग्य और अभ्याससे हो सकता है. कोई एक राजा महापराक्रमी था. उसने विवाह किया. प्रथमसमागमके समयमें उसकी रानीने कहा:–"आप तो समर्थ हैं; इस लिए ऐसा गर्भदान दें कि जिससे इस प्रथम समागमसे ही मुझे गर्भ रह जाय और पराक्रमी पुत्र पैदा हो." राजाने कहा:–"ऐसा कैसे हो सकता है ? गर्भ तो समयमें ही रहता है, उसके लिए तुझको योग्य होना चाहिए." रानी बोली, "तो क्या तुम पुरुषत्वहीन हो या मेरे स्त्रीत्वमें कुछ कमी है ?" राजाने कहा, "ऐसा नहीं है, पर ऋतुकालमें ही गर्भधारण होता है." इसी प्रकार 'ब्रह्मास्मि' यह ज्ञान तत्क्षण नहीं हो सकता. जिन्होंने बहुत समय तक परिश्रम कर भोग भोगकर मुक्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होकर वैराग्यवृत्तिमें प्रवेश किया है और जो निष्काम हो गये हैं, आत्माको ढूँढ़ लिया है, वासनाका क्षय कर दिया है, सब कर्मको त्याग कर एक आत्मज्ञान-भक्तिहीको जाना है, जिनकी चित्तवृत्ति निर्मल हो गयी है, और जिनका कुछ अधूरा संस्कार पूर्ण हो गया है वे ही ब्रह्मकी प्राप्ति कर सकते हैं और वे ही अच्युतपुरमें प्रवेश कर सकते हैं.

वासना-त्याग ही श्रेष्ठ है.

पर इस सब संकटका मूल वासना है. इस वासनाका त्याग करनेके लिए निर्मल और दृढ़ वैराग्य होना चाहिए. प्रिय पुत्र या स्त्रीके मरणसे, द्रव्यके हरणसे, शरीरके रोगसे या किसी और कारणसे, जगतपरकी आसक्ति न्यून होकर जगतपरका भाव उठ जाय, सबको असार समझे तो न यह दृढ़ वैराग्य है और न वासनाका क्षय ही है. पर उपदेशसे, विचारसे, शोधनसे, अनुभवसे, ऐसा निश्चय हो कि, जगत् मिथ्या है और इसके पीछे सबका त्याग करे,वहीं दृढ़ वासनात्याग कहा जाय. किसी मनुष्यके यहाँ दश करोड़ धन है पर उस पर सर्प बैठा है और इससे धन काममें नहीं लाया जा सकता, वह देख देख-कर दुःखी होता है. किसीके उपदेशसे तेल आगपर रख कड़ाकड़ा कर उस सर्प पर डाल,सर्पको भस्म किया, इससे उसके मनको सुख हुआ, पर धनका सुख नहीं हुआ; क्योंकि वह स्वयं मृत्युको प्राप्त हुआ, उसी प्रकार जगतमें रह कर दूसरेकी कामना या वासना रहे—स्वर्गलोक मिले, इन्द्रलोक मिले, ऐसी वासनाका, इमशानवैराग्यवालेने त्याग नहीं किया, इससे उसे केवल व्यव-हारके त्यागनेसे ही सुख नहीं होगा. जगतको मिथ्या जानने और वैसा ही व्यवहार करनेसे दुःखकी निवृत्ति होती है, पर अन्यलोककी प्राप्तिकी कामना होनेसे परमानन्दकी प्राप्तिका सुख नहीं होगा. जगतको मिथ्या जानने और वैसा ही व्यवहार करनेसे दुःखकी निवृत्ति होती है, पर अन्य-लोककी प्राप्तिकी कामना होनेसे परमानन्दकी प्राप्तिका सुख नहीं मिलता. ब्रह्मानंदकी प्राप्ति आत्माको जाने विना नहीं होती; आत्माको जानना, यह वासनाके क्षय विना नहीं हो सकता; वासनाका क्षय किये विना परमान-न्दकी प्राप्ति नहीं होती; एकाग्रता विना आत्मसुख नहीं मिलता; यह आ-त्मसुख एक जन्में नहीं, पर अनेक जन्ममें प्राप्त होता है. आज इस जी-वके अनेक जन्म सार्थक होनेसे, वह अच्युतपुर जायगा. जय हरि !"

ऐसे ऐसे अनेक तरंगोंमें तैरता हुआ सत्साधक कुछ समयमें शान्त हो गया.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंचम विन्दु–पंचम सोपान.

भक्तिमार्ग.

आत्मारामा हि मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ॥ श्रीमद्भागवत।

अर्थ—आत्माराम होने और जगतकी मायाकी ग्रंथि टूटने पर भी मुनिगण, महा विक्रमवाले विभुकी निर्हेतुक भक्ति रखते हैं—हरिप्रेम भक्तिरूपही है।

निर्मल प्रभात हुआ. वनके पक्षी मधुरस्वरसे बोलने लगे। सुगंधमय पवन मंद मंद बहने लगा. अरुणोदयसे दिशाएँ रक्तवरणी दीखने लगीं. जलाशयोंमें कमल खिलने लगे. ऐसा देख कर पिछली रातका जागरण होने पर भी, प्रातःसंध्योपासनाका अमृतवत् समय निकल जायगा ऐसा विचार कर, महात्मा सत्साधक झटसे उठ बैठा, और अपनी जिव्हासे प्रातःस्मरणके निमित्त प्रभु अच्युतके मंगल नामका घोष करनेके लिए, मधुर और उच्चस्वरसे उपदेश करने लगाः—

श्रीकेशवाच्युत मुकुंद रथांगपाणे। गोविन्द माधव जनार्दन दानवारे॥
नारायणामरपते त्रिजगन्निवास। जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि॥
अच्युताच्युत हरे परमात्मन्। रामकृष्ण पुरुषोत्तम विष्णो॥
वासुदेव भगवन्ननिरुद्ध। ईश्वरति सततं जप जिह्वे॥

अर्थ—हे जिह्वा! तू निरन्तर हे केशव, हे अच्युत, हे मुकुंद, हे रथांगपाणि (चक्रपाणि), हे गोविन्द, हे जनार्दन, हे दानवारे, हे नारायण, हे अमरपते, हे त्रिजगन्निवास[1] ऐसे सम्बोधनपूर्वक, प्रभु श्री अच्युतके मधुर अक्षरवाले नामोंका जप कर। हे जिह्वा, तू निरंतर हे अच्युत, हे हरे, हे परमात्मन्, हे राम, हे कृष्ण,

---

१ सब स्वर्ग, सारा पाताल और यह मृत्युलोकरूपी जगत् इत्यादि तीनों जगत् कि जिनमें सारे विश्वका समावेश होता है, उसमें व्याप्त हुए अच्युत प्रभु.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हे पुरुषोत्तम, हे विष्णो, हे अनिरुद्ध, हे ईश्वर, ऐसे प्रभु अच्युतके हेतुक नामोंका उच्चारण कर.

क्योंकि --

" अक्षरं हि परं ब्रह्म अच्युतेत्यक्षरत्रयम् ।
तस्मादुच्चरितं येन ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ "

अर्थ—" श्री ' अच्युत ' ये तीन अक्षर साक्षात् अविनाशी परब्रह्मरूप हैं, इस लिए जो इनका (सतत) उच्चारण करता है, वह ब्रह्मप्राप्ति (अच्युत प्राप्ति) के योग्य होता है. "

वह इतने ऊंचे स्वरसे उपदेश दे रहा था कि सोये हुए पथिकोंको भी जाग्रत् करनेके सम्बोधनरूप था। अच्युतके नामसे मिली हुई इसकी अमृतमय वाणीसे पथिक तड़ाक फड़ाक उठ बैठे और शौच स्नानादिक कार्यमें प्रवृत्त होने लगे.

यहाँ अंतरिक्षमें विमानस्थ पुण्यजन समाज भी उस समय तैयार हो आसनासीन हो गया था. महात्मा सत्साधकका इस प्रकारका अच्युतस्मरण सुनकर महाराजा वरेप्सु, बटुकको प्रणाम कर बोले; " गुरुदेव ! सत्साधक अपनी जिह्वाको समर्थ अच्युत प्रभुका स्मरण करनेको सूचित करता है, तो उसमें केशव, मुकुंद, गोविन्द, कृष्ण इत्यादि नाम बोलनेको क्यों कहता है ? " बटुकने "कहा; राजा ! ये केशवादिक सब नाम अच्युतके ही हैं. उनके जुदे जुदे गुणोंपरसे ऐसे ऐसे असंख्य नाम प्रसिद्ध हुए हैं. वे कृपालु प्रभु अनंत अद्भुतगुणोंके सागररूप हैं, इससे उनके अनंत नाम हैं. वे अनंत शक्तिमान् हैं. अनंतरूपी हैं. अनंत आनंदमय हैं. देखो, अब उस अनंत सामर्थ्यवान् प्रभुके मंगल नामोंकी ध्वनि करनेको पथिक तैयार हुए हैं. आज उनमें नया उत्साह और नया धैर्य भरा हुआ दीख रहा है. "

पथिकाश्रमके द्वारके पास आकर पहले सत्साधक खड़ा रहा और उच्च स्वरसे सारे पथिकोंको बुलाकर कहने लगा; " अच्युत मार्गियो ! आज अब हम लोगोंको नये मार्गमें प्रयाण करना है. उत्तरोत्तर अच्युतपुर अब समीप आता जाता है. अब प्रत्येक पंथीको, अच्युत मार्गके रक्षक साधन जैसे निर्मल मन, मनोनिग्रह, वासनाक्षय, दृढ़ वैराग्य, परमश्रद्धा, निर्गुण भावनासे पूर्ण होना होगा. इसलिए मार्गके आरंभमें हम सबको जो साधना, मार्गके अधिकारियोंको पाससे प्राप्त हुए हैं, वे प्रत्येकके पास हैं या नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह देख लो; क्योंकि विना साधनके मनुष्यको हर समय बीचमें ही अटक जाना संभव रहता है." उस महात्माकी ऐसी सूचना होते ही, प्रत्येक पथिक अपने अपने पासके सुवर्णपत्र जो उनको पुरद्वारसे मिलेथे, और पथबोधिनीकी पुस्तक खोलकर, उसे बतला बतलाकर बाहर निकलने लगे. जब सब निकल गये तो बारबार अच्युत नामकी जयध्वनि करते हुए, संघ पवित्रमार्गमें चलने लगा. उस समय सत्साधक बोला; " मेरे पुण्यवान् पथिको ! तुममेंसे जिन लोगोंको देवी चित्तशुद्धिके दर्शन हुए हैं, उनको तो मैं पूरा भाग्यवान् मानता हूँ; क्योंकि उन्हें अब उनके मार्गमें ठेठ तक, उल्टा सीधा समझाकर कोई नहीं फँसा सकेगा. चित्तशुद्धि देवीके प्रतापसे अब उनमें सत्यासत्य—नित्यानित्यके यथार्थ निर्णय करनेकी बुद्धि और निर्वासनापन प्राप्त हुआ है; तो भी हम सबको अभी उस छलबलिया काम-देवसे बहुत सचेत रहना है. मार्गमें अभी गुप्तरूपसे सब उसकी बनी हुई है. उसमें अधिक सचेत रहना यह है कि, वह कामदेव शायद आगे दूर हो, तो भी उसीके समान अद्भुत गुणवाली उसकी स्त्री श्रद्धादेवी, पथिकोंको बारंबार अपने सैकड़ों जाल फेंककर फँसा लेती है, पर वह अभी दूर है. मैं तुरंत ही तुम्हें उन सबकी पहिचान करा दूँगा. "

इतना कह कर वह फिर बोला; " यहाँ तक आनेका भारी कष्ट उठाकर भी उसके उत्तम फल स्वरूपसे होनेवाले देवी चित्तशुद्धिके दर्शन जिनको अबतक नहीं हुए, उनके लिए मुझसे बड़ा दुःख होता है. तो भी अभी कुछ बिगड़ा नहीं है इस पवित्र देवीकी प्राप्तिके लिए एक सरलसे सरल उपाय मेरे ध्यानमें है. उसका अवलंबन करनेसे अवश्य ही श्रीअच्युतप्रभुकी प्रिया देवी चित्तशुद्धि पथिकोंको प्राप्त होती है.

इतना कह कर वह महात्मा फिर बोला; " प्रिय पथिको ! प्राणीमात्रका चित्त अविद्याके अंधकारमें ढँका होता है, इससे उन्हें सत्य मार्ग नहीं सूझता और न सत्यासत्यका विचारही हो सकता. ऐसी स्थितिमें भला अच्युतप्रभुका प्रवेश उनमें कैसे होता ? अच्युतप्रभु तो अंधकारसे परे हैं. यह जानना आवश्यक है कि जीवमें जो अज्ञान भरा हुआ है, वह अज्ञान किसका है, कि जो सारे चित्तमें व्याप्त होकर उसको अशुद्ध—मलीनकर डालता है. मनुष्यप्राणी जो सारे कुछ कर्तव्य करता है, वह सब अपने चित्तमें निश्चय करके करता है. जिस कर्तव्य कर्मसे दूसरे किसी प्राणीको दुःख

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होना संभव नहीं है, और न उनके किये विना हमें छुटकारा ही है तथा जो परम्परासे चला आता और सत्पुरुषों द्वारा स्थापित किये गये मार्गसे जो कर्म उल्टा नहीं है, वैसा कर्तव्य कर्म करनेसे, करनेवालेका चित्त शुद्ध ही रहता है ! पर उससे विपरीत कर्म करना परम मार्गसे गिरा देनेवाला है.

उससे चित्तमें अंधकार (अज्ञान) पैठता है. अज्ञानीकी जो वासना है, वही अंधकार और वही पाप है ! पाप अर्थात् जगतकी वासना ! यही वासना प्राणीको नीचे गिराती है. इसीसे उसका नाम पातक[1] पड़ा है. ज्यों ज्यों पाप बढ़ता जाता है, त्यों त्यों अंधकार बढ़ता जाता है और पवित्र चित्तको अपवित्रकर ढँकता जाता है. पाप ही गाढ़ी मलीनता है. जैसे किसी स्वच्छ आयनेमें सामनेकी प्रत्येक वस्तुका यथार्थ प्रतिबिम्ब पड़ता है, पर ज्यों ज्यों वह मैलसे आच्छादित होता जाता है, त्यों त्यों उसमें वस्तुका प्रतिबिम्ब धुँधला पड़ता है और जब सारा आयना मैला हो जाता है तो प्रतिबिम्ब पड़ता ही नहीं; उसी प्रकार मनुष्यके चित्तको भी पापरूप काला मैल ढँक देता है—और वह मलीन अपवित्र होजाता है. उसको कोई सहज कारण मिलते ही तुरंत वह निम्नमार्गको दौड़ जाता और फिर असह्य दुःख सहन करता है. इस प्रकार वह पाप, प्राणीमात्रका अहितरूप है. वह ऐसा चिकना मैला है कि किसी तरह नहीं निकलता. वह सब घना अंधकार है और सारे दुःखोंका बीज है, पर जैसे कोई धातुका वर्तन अधिक मैलसे ढँककर मैला हो गया हो, और उसको पहले जैसा स्वच्छ-तेजस्वी करनेके लिए खट्टे पदार्थसे अच्छी तरह माँजना पड़ता है, तबही वह अमित प्रयत्नोंके अंतमें शुद्ध होता है, उसी तरह पापरूप मैलसे मलीन हुए मनुष्यप्राणीके चित्तको शुद्ध करनेके लिए भी निष्काम कर्म करके भलीभांतिसे माँजना पड़ता है; क्योंकि काम्यकर्म तो इस समग्र कर्ममार्ग में जैसे हम आज तक देखते आये, उसी तरह सबही उस कामदेवके कारण दूषित हो गये हैं; इससे वे चित्तको शुद्ध करनेके बदले उलटा उसको और मैला कर देते हैं, पर जिसे कामदेव दूषित न कर सके, ऐसा बलिष्ठ एक ही कर्म सुप्रसिद्ध है जिसको करनेसे चित्त बहुत शीघ्र शुद्ध होजाता है. इतना ही नहीं, वह कर्म यदि यथार्थ और निर्मल प्रेम—भक्ति—श्रद्धा से किया जाता है तो,

१ पातक अर्थात् गिरानेवाला; सत्यमार्ग—उत्तम मार्ग उच्चस्थितिसे जो गिरानेवाला हो वह पाप है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवोंके देव और सर्वेश्वरके समान अच्युत प्रभु पथिकको अच्युतपुर पहुँचनेके पहले मार्गमें ही कभी कभी आ मिलते हैं. पुराणकालमें ऐसी अनेक घटनाओंके होनेके अनेक उदाहरण प्रसिद्ध हैं."

इतना कह कर वह फिर बोला; "प्रिय पथिको ! इस परसे तुम्हें सहज ही शंका होगी कि, ऐसा कौनसा कर्म होगा कि जिसके द्वारा पथिकके सारे पाप दूर होकर, चित्त शुद्ध हो ? उसके समाधानके लिए सुनो. ऐसा सर्वोत्तम कर्म यही है कि सिर्फ प्रभु श्रीअच्युतकी शरणमें जाना चाहिए. इन समर्थकी शरण सारे पाप और समग्र शोक दुःखको दूर करनेवाली है. इसके लिए श्रीअच्युत प्रभुने स्वयं ही एकंवार अपने एक प्रिय पथिकसे कहा है कि:—

" सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ "

अर्थः—"सब धर्मोंका परित्याग करके तू मुझे एक ही की शरणमें जा. मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त करूंगा, शोक न कर."

यह सुन संघका एक पथिक बोल उठा; " महाराज ! जब अच्युत प्रभुकी शरणमें जाना ही मुख्य कर्म है, तब तो इस पंथ (मार्ग) में आरूढ़ हुए सब लोग उनकी शरण ही में जा रहे हैं ! पर अच्युत प्रभुका स्थान तो अभी बहुत दूर है, अतः उनकी शरण तुरंत ही हमे कैसे प्राप्त होगी और हम सब लोग कैसे मुक्त हो सकते हैं ? "

महात्मा सत्साधक बोला, " तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया. यह सत्य है कि हम सब पथिक जबसे इस पवित्र अच्युतपथमें आरूढ़ हुए हैं, तबहीसे उस कृपालु प्रभुकी शरणमें पड़ चुके हैं. कालपुरुषके भयसे भागकर जबसे इस ओरको पैर रक्खा, तभीसे समझना चाहिए कि श्री अच्युतकी शरण-को प्राप्त हो गये, और उसी समयसे हम इस बातका प्रत्यक्ष रीतिसे अनुभव भी करते आये हैं कि इस ओरको पैर रखनेवाला जीव कालपुरुषसे बहुत कुछ निर्भय हो जाता है. इस प्रकार इस मार्गमें आरूढ़ जो जीव कहीं, इधर उधर न भटक कर सीधे अच्युतपुर पहुँच गया, वह तो पार ही हो गया. वह सदाके लिए निर्भय हो गया. पर ऐसे मार्गमें सीधे सादे पहुँच-जाना कितना कठिन है यह तो हम सभी लोग देखते आये हैं. मनुष्यका शरीर इन्द्रियोंके अधीन है, इन्द्रियां मनके आधीन हैं, मन नित्य अस्थिर और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पलभरमें लिपट—फँस जानेवाला है. इस लिए अन्यत्र कहीं न फँस कर यह मन जब पूरी भावनासे अच्युत प्रभुकी शरणमें जाता तभी, समझना चाहिए कि यथार्थ अच्युत शरण प्राप्त हुए हैं. इसके लिए प्रभुने स्वयं उस पवित्र पथिकसे कहा है कि:—

" मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ "

अर्थ—" तू सब पदार्थोंसे अपने मनको खींच कर यदि सिर्फ मुझमें लगा; मेरी भक्ति कर, मेरा पूजन कर और मुझको नमस्कार कर, तो मैं सत्य प्रतिज्ञा-पूर्वक कहता हूं कि, तू मुझको ही आ मिलेगा, क्योंकि तू मुझे प्रिय है.

इस प्रकार अच्युतप्रभुमें मनको लगाओ–स्थिर करो. इसके द्वारा, सबसे श्रेष्ठ कर्म जो अच्युत शरण गति है, वह सिद्ध होती है. प्रभु परमात्मामें मनको स्थिर करनेके लिये उपरोक्त अच्युतमुखकी गाथामें, ' मेरी भक्ति कर,' ऐसी जो आज्ञा है, वह मुख्य साधनरूप है. ' भक्ति कर ' इस शब्दको समझनेके लिए ' मेरा पूजन कर ' यह आज्ञा प्रभुने फिरसे की है, और ' मुझे नमस्कार कर,' ये उपरोक्त दोनों आज्ञाओं–भक्ति कर और पूजन करनेका सरल उपाय बतानेवाली है. इस परसे स्पष्ट मालूम होता है कि सारा भय, त्रास, दुःख, शोक, ताप इत्यादिसे छूटनेके लिए समर्थ प्रभु अच्युतकी शरण ही श्रेष्ठ साधन है और उसको प्राप्त करनेके लिए इन समर्थ प्रभुकी भक्ति, मुख्य उपाय है.

" भक्ति अर्थात् भजन करना, स्मरण करना, सेवन करना, अनुसरण करना. अच्युतकी भक्ति करना अर्थात् अच्युतको भजना याने उनका अनुधावन करना, उनकी आज्ञा मानना, उनकी प्रसन्नता प्राप्त करना, उन्हें स्मरण करना, उनकी सेवा करना, उनके गुण गाना, उनमें दृढ़ निर्गुण प्रीति करना है. अच्युतभक्तिकी अनेक विधि हैं. उनमेंसे सबसे सरल और पहली विधि अच्युतस्मरण है. चित्त बारंबार प्रभु अच्युतको स्मरण करने ही का नाम अच्युतस्मरण है. अच्युतको बारंबार स्मरण करनेसे चित्त शुद्ध और उनमें प्रीति करनेवाला होता है. निर्गुण प्रीति होते ही प्रभु अच्युत उस जीवमें प्रकाशरूपसे प्रकट विराजते हैं. पर जैसा हमने आगे कह दिया है कि यह चित्त इन्द्रियोंमें लुब्ध होनेसे अस्थिर और मलीन है. इस लिए बारंबार प्रभुका स्मरण करेगा क्यों ? इस लिए उसको धीरे धीरे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और क्रम क्रमसे इस काममें लगाना चाहिए. चित्त जब इन्द्रियोंके साथ गुँथा हुआ और उनसे गाढ संबंध किये हो, तो उन इन्द्रियोंके द्वारा ही उसे अच्युतस्मरणका अभ्यास कराना चाहिए. हस्तपादादि कर्मेन्द्रियोंकी अपेक्षा चक्षुःश्रवणादि ज्ञानेन्द्रियाँ यह कार्य अधिक अच्छा कर सकती हैं. चक्षु इन्द्रिय अच्युत प्रभुकी दिव्य मूर्ति, सृष्टिलीला इत्यादिका अवलोकन करनेके साथ ही उन कृपालुका स्मरण करावे, तो श्रवणेन्द्रिय उन सर्वेश्वरके गुण, कथा चरित्र, कीर्तन आदिको सुननेसे चित्तमें उनका स्मरण कराती है. इन दोनोंसे भी जो स्वयं ही प्रभुका स्मरण करके, चित्तको भी स्मरण कराती है, ऐसी ज्ञानेन्द्रिय तो वाचा (वाणी) है. इसे बाहरके साधनकी अपेक्षा नहीं रहती. इस लिए सबसे पहले उसीको अच्युतस्मरणका अभ्यास कराना चाहिए ! इस स्मरणभक्तिके भी अनेक भेद हैं, अच्युतके गुणोंका स्मरण, उनके चरित्रोंका स्मरण, उनके रूपोंका स्मरण, उनके नामोंका स्मरण इत्यादि. इन सबमें नामस्मरणही सबसे सरल भेद है. अनंत शक्तिमान् अच्युत प्रभुके अनंत पवित्र नाम हैं. उनमेंसे जो जो याद हो आवे और उच्चारण करनेमें सुगम जान पड़े; उनका या उनमेंसे एकाधिक नामका उच्चारण करना नाम-स्मरण है. स्मरण करनेके लिये कौन नाम लेना चाहिए, इस बातका पहले निश्चय किये विना, प्रभुके अनंत नाम होने और उन नामोंको स्वतः न जान-नेके कारण, स्मरण करनेवाला पथिक, इसका स्मरण करूं, या उसका स्मरण करूं ऐसी गड़बड़से भुलावेमें न पड़े इसके लिए जो महानुभाव पहले इस मार्गसे होकर प्रभु अच्युतकी शरणमें पहुँच गये हैं और उन समर्थ प्रभुके प्यारे हो चुके हैं, पवित्र पथिकोंने दूसरे पीछे रहनेवाले सब पथिकोंके लिए अच्छे अच्छे नियम बना दिये हैं. पहले तो जगत्पुरमें अज्ञानके अँधेरेमें पड़े रहकर, अंतमें कालपुरुषके मुखमें जा पड़नेवाले मनुष्यप्राणीको उस अज्ञानमेंसे जाग्रत कर,वहाँसे समयानुकूल भगाकर, इस निर्भय पथमें आरूढ़ करानेवाला जो सत्पुरुष है, वही इस प्राणीका तारनेवाला माना जाता है. इस लिए इस पथिकको उसीकी शरणमें जाना चाहिए, उसीके उपदेश मानने चाहिए, उसीकी आज्ञा माननी चाहिए और अनन्यभावसे उसीकी सेवा करनी चाहिए. अभयमार्ग कल्याणमार्गमें आरूढ़ होनेसे वह इसका गुरु है; इस प्रकार उसका अनुसरण करनेसे वह इसको मार्गमें आनेवाले अनेक संकटोंके मुखमेंसे मुक्त करता है, भुलावे और विडंबनाओंमेंसे बचाता है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और मार्गमें साथ रहकर देखते हुए सकल साधनोंकी योजना करता है. अच्युत शरण प्राप्तिका सरल साधनरूप जो अच्युतनामस्मरण है, उसकी भी कठिनाई दूर करके वह सरल उपदेश करता है. ऐसे पवित्र गुरुदेवकी मैंने स्वतःभी हो सकने योग्य सेवा की है, और उनकी कृपासे मुझे सर्वोत्कृष्ट मार्गके सारे सिद्धान्त प्राप्त हुए हैं. "

यह सुनकर सब पथिक एक साथ बोले; " कृपानाथ ! तो जैसे पवित्र गुरुका अनुग्रह आपको प्राप्त हुआ है, वैसेही पवित्र गुरुदेव हम सबको आप मिले हैं, तो हमें भी अब इस मार्गमें कौनसी कमी रहेगी ? हम सब आपकी शरणमें हैं, आपके भक्त हैं, आपके अनुयायी हैं और आपके आज्ञापालक हैं; इस लिए हम पर कृपा कर, अच्युतनामस्मरणका निश्चयपूर्वक सरल उपदेश कीजिए. आपही हमारे तारनेवाले हैं और आपही कालपुरुषके नाशकारक पाशमेंसे मुक्त कर हमें अभयपदके दाता भी हैं. हम पुनः प्रार्थना करते हैं कि, हम तो आपकी शरणमें हैं. आपकी कृपासे ही हम पापियोंको सर्वथा अलभ्य समर्थ अच्युत प्रभुकी सुखप्रद शरण प्राप्त होगी. " इस प्रकारसे प्रार्थना कर वे सब पथिक तत्काल महात्मा सत्साधकके चरणोंमें गिर पड़े और बारंबार चरणरजकी वंदना करने लगे. तब वह दयालु महात्मा बोला; " ब्रह्मपदके जिज्ञासुओ ! अपने निर्माण किये हुए इस ब्रह्ममार्गपर समर्थ अच्युत परब्रह्मकी कितनी प्रीति है, और इस मार्गके अनुयायियों पर कितनी बड़ी कृपा है उसे प्रकट करनेको वे कृपालु बारंबार अपने इस मार्गके भेद स्पष्ट करने और मार्गके पथिकोंको उनके सफल साधन प्रकट कर देनेके लिए, किसी प्रीतिपात्र पथिकमें अपनी अद्भुत ज्ञानशक्ति प्रेरण करते हैं, या किसी समय स्वयं ही पथिक रूप धर कर दूसरे अज्ञ पथिकोंके अग्रणी बन इस मार्ग पर विचरते हैं. पहले ऐसा कई वार हुआ है और अच्युतके प्रीतिपात्र पथिकोंने उनकी प्रेरणा की गई ज्ञानशक्तिके द्वारा स्मरणभक्तिके लिए अनेक साधन प्रकट किये हैं. उन्होंने अच्युतके अनंत नामोंमेंसे उत्तमोत्तम सहस्र नाम एकत्र कर, उनका एक साथ पाठ हो सकनेके लिए स्तोत्र रच दिया है; और उसमेंसें भी अत्यंत विख्यात अनेक नाम चुनकर, शतनामस्तोत्र, तथा उससे भी छोटा मुख्य मुख्य नामोंका संक्षिप्त स्तोत्र, पथिकोंको अहर्निश स्मरण करनेके लिए एकत्र किया है. फिर उससे भी सरल किसी एक नाम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर ही अभ्यास रखनेकी सूचना की है. वैसा एक नाम भी संक्षिप्त, थोड़े अक्षरवाला, बोलनेमें सरल, अद्भुत और गूढ़ अर्थ—सामर्थ्यवाला हो तो उसको श्रेष्ठ गिना है. इसके सिवा स्मरण करनेवाला कभी न भूले और उसकी लगन निरन्तर लगी रहनेके लिए, प्रभुके नामके साथमें 'मैं उस–अच्युतकी शरणमें हूँ' ऐसे अर्थवाला पद जोड़ दिया है। ऐसा नाम सबसे उत्कृष्ट माना जाता है. यह परम पावन करनेवाला मंत्र है. इसका स्मरण करनेसे पथिकके मनमें सदा ऐसी भावना रहती है कि "मैं प्रभु अच्युतकी शरणमें हूँ." इस प्रकार यह स्मरणशक्ति साधनेके लिये एक ही अर्थके अनेक प्रकारके साधन हैं. उनमेंसे अपनी अपनी रुचि, प्रीति और स्मरणशक्तिके प्रमाणसे पथिक ग्रहण करते हैं. इस स्मरणका हेतु ऐसा है कि, जैसे अविवेकी विषयोंसे कभी न हटनेवाली जो प्रीति है वैसी ही प्रीति तुममें रहे और तुम्हारा स्मरण—ध्यान मेरे हृदयमेंसे क्षणभर भी दूर न हो—सदा तुममें प्रीति रहे, अथवा पथिकके चित्तमें ऐसी दृढ़ निष्ठा बँधनी चाहिए कि 'मैं प्रभु अच्युतकी शरणमें हूँ, उनके विना सब झूठा है' इस लिए यह नामस्मरण सतत–अहर्निश–सदाकाल होते ही रहना चाहिए. इस विषयमें इस पथबोधिनीमें स्वतः प्रभु अच्युतकी ही पवित्र आज्ञा है कि; 'मुझमें मन बुद्धि अर्पित करनेसे तू निःसंदेह मुझको ही आमिलेगा,' इस लिए (मन बुद्धि मुझमें स्थिर करनेके लिए) नित्य मेरा स्मरण कर; क्योंकि जो अनन्यचित्तसे सदा सर्वदा मेरा स्मरण करता है, उस निरंतर समाधानवाले योगी अर्थात् पथिकको मेरी प्राप्ति होना बहुत सरल है.' इस लिए हे पथिको! यह अच्युत नामस्मरणरूप साधन, सब साधनोंसे श्रेष्ठ है और सब साधनोंसे सुलभ है, तो फिर उसको साधनेके लिए विलम्ब क्यों करना चाहिए? चलो, शीघ्रता करो, आगेके विश्राममें मैं तुम्हें अपने सद्गुरुपरंपरासे* प्राप्त हुए भगवान् अच्युतके समस्त पापोंका नाश करनेवाले परम व पावन नामोंका उपदेश करूँगा."

---

*सद्गुरुपरंपरासे अर्थात् अपने सद्गुरुसे जो विधिपूर्वक उपदेश मिला है और उन गुरुजीको उनके गुरुसे मिला है और उन गुरुजीको उनके गुरुसे मिला है, इस प्रकार उत्तरोत्तर सबके गुरु अच्युत परब्रह्मके मुख्य प्रत्यक्ष सेवकसे उत्पन्न हुआ नाममंत्र, अनुक्रमसे उतरता हुआ अपने गुरुको प्राप्त हुआ हो, उनके पाससे उनकी सेवा स्वागतद्वारा उन्हें प्रसन्न कर जो मंत्र प्राप्त किया जावे वह मंत्र सद्गुरु परंपरासे प्राप्त हुआ कहलाता है–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह सुन संघ उस महात्माके पीछे आनन्दित होकर चलने लगा. इस हर्ष और उमंगमें थोड़ी ही देरमें वे बहुत दूर निकल गये. थोड़ी देरमें मार्ग पर एक अत्यंत रमणीय स्थान आया. अनेक प्रकारके सुवृक्ष फल फूल आदि समृद्धिसे गर्विष्ठ हो, शान्त पवनकी लहरोंकी मानों उपेक्षा करते हुए मंद मंद हिल रहे थे. उनसे होकर आनेवाला वायु अनेक प्रकारकी सुगंधवाला होनेसे बहु सुखकर लगता था. तीसरा पहर (मध्याह्न) भी होने लगा. इससे ऐसी सुखमय भूमि देखकर, पथिकोंको बहुत आनंद हुआ. यह अमराई मार्गपर और उसके आसपास बड़े विस्तारमें थी. उसमें होकर कुछ देर तक चलते रहनेपर उनको एक आह्लादक पवित्र सरिताके दर्शन हुए। मार्गकी पश्चिम दिशाके दूरस्थ सुन्दर पर्वतसे उतरकर, पवित्र अच्युत मार्गको अपने पावन और मोती जैसे स्वच्छ जलसे विशेष पवित्र और सुशोभित करती हुई वह नदी सूर्यकी ओर प्रवाहित हो रहीथी। उसके उत्तर तटपर एक सुन्दर पथिकाश्रम बना था। नदीके दोनों तट उत्तमोत्तम वृक्षघटा (अमराई)से और अपने खिले हुए विचित्र कमलपुष्पोंसे आच्छादित थे।

तट पर आतेही आनंदप्राप्त सब पथिकोंको महात्मा सत्साधकने, उस पुण्यरूप जलमें स्नान करनेकी आज्ञा दी. स्नान कर शुद्ध होकर वे जलमें पूर्वाभिमुख (पूर्वकी ओर मुँह करके) कृतांजलिपूर्वक खड़े रहे, तब वह महात्मा तटपर उंचे स्थानमें उत्तराभिमुख खड़े होकर, उच्चस्वर किन्तु मिष्टवाणीसे, प्रभु अच्युतको प्रणाम कर बोला; "पथिको ! अ अक्षर नकार वाचक है, इस लिए अ अर्थात् नहीं, और च्युत अर्थात् पतन—विनाश—जिसका वह अच्युत अर्थात् जिसकी शरणमें जानेसे जानेवालोंका पतन–पीछे गिरना आवागमन (जन्म मरण) नहीं होता है वही अच्युत है ! जो सदा सर्वदा अविनाशी है, स्वतंत्र है और जिसके शरणागत—भक्तों—सेवकोंको—भी फिर इस दुःखरूप संसार अर्थात् कालके भक्ष्यरूप जगत्पुरमें कभी आना नहीं पड़ता, वही अपना प्रभु अच्युत नामसे जाना

–वही यथार्थ फल देनेवाला होता है. सद्गुरुपरंपरा विना चाहे जहाँसे—अधिकार विनाके मनुष्यसे यद्यपि वही मंत्र प्राप्त हुआ हो, तोभी वह वैसा फलदायी नहीं होता. इस लिए अधिकारी जीवको सद्गुरुकी शरण जाना आवश्यक है.

१ हाथ जोड़कर.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाता है। उसकी शक्ति अनंत है, वह अनंत गुणोंका सागर है, उसके अनंत रूप हैं और इसीसे उन उन रूपगुणोंके अनुसार उसके नाम भी अनंत हैं। जैसे एकही मनुष्य अनेक व्यवहारिक कार्योंमें योग देनेसे उन कार्योंके व्यवहारको देखकर उसके अनेक नाम रखता है, उसी प्रकार प्रभु अच्युतके नामोंके लिए समझना चाहिए. उसके अनंत रूप गुणोंपरसे समस्त वेद, उपनिषद्, शास्त्र और पुराणादिकोंने उसको अनंत नामोंसे गाया था. उन नामोंमेंसे उत्तमोत्तम गुणोंद्वारा ग्रथित (संयुक्त) बारंबार स्मरण करने योग्य नामोंका समूह उद्धृत[1] कर उसके अनेक स्तोत्र बनाये गये हैं. उनमेंसे एक छोटा स्तोत्र तुम्हारे नित्य स्मरण करनेके लिए मैं तुमको सुनाता हूँ, उसे तुम सब लोग सावधान होकर सुनोः—

अच्युत केशव माधव मोहन, ईश हरे।
श्री पुरुषोत्तम हरि जगदीश्वर, जप जिह्वे ॥ १ ॥
सर्वेश्वर नारायण वामन, ईश हरे।
भक्तसखा जनपाल सुरेश्वर, जप जिह्वे ॥ २ ॥
लीलाधर भूधर गिरिवरधर, ईश हरे।
श्रीगोपाल प्रणतपातकहर, जप जिह्वे ॥ ३ ॥
अवतारिन् आनंदरूप शिव, ईश हरे।
रामकृष्ण गोविन्द गदाधर, जप जिह्वे ॥ ४ ॥
कालान्तक शरणागतवत्सल, ईश हरे।
एक अखंड अनामय शंकर, जप जिह्वे ॥ ५ ॥
विश्वेश्वर विश्वपिता विश्वंभर, ईश हरे।
व्यापक विष्णु महायोगीश्वर, जप जिह्वे ॥ ६ ॥
देव दयानिधि दुःखदुरितहर, ईश हरे।
दीनबंधु दयानिधि दामोदर, जप जिह्वे ॥ ७ ॥
धर्मसहाय विधर्मविनाशक, ईश हरे।
ध्यानगम्य धरणीश धराधर, जप जिह्वे ॥ ८ ॥
नारसिंह नरकांतक नरवर, ईश हरे।
नटवर नाथ जगन्नाटकधर, जप जिह्वे ॥ ९ ॥
परब्रह्म परिपूर्ण परात्पर, ईश हरे।
पुण्यश्लोक प्रभु परमेश्वर, जप जिह्वे ॥ १० ॥

---

१ चुनकर.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राणनाथ पुंडरीकाक्ष जय, ईश हरे ।
पद्मनाभ पावन पीताम्बर, जप जिह्वे ॥ ११ ॥
फणिधरशायि फणधरमर्दन, ईश हरे ।
बलिमर्दन बलभद्र बलानुज, जप जिह्वे ॥ १२ ॥
भवनाशन भगवान् भक्तपति, ईश हरे ।
भावरूप भयहारक भूधर, जप जिह्वे ॥ १३ ॥
मायापति मधुसूदन मुकुंद, ईश हरे ।
मत्स्यादिक तनुधारि महीधर, जप जिह्वे ॥ १४ ॥
मुरलीधारि मुरारि मुक्तिपति, ईश हरे ।
यादवेन्द्र यशनिधि यज्ञेश्वर, जप जिह्वे ॥ १५ ॥
राघव रतिवरतात रमापति, ईश हरे ।
लोकनाथ लक्ष्मीवर विठ्ठल, जप जिह्वे ॥ १६ ॥
वासुदेव वैकुंठ वेदमय, ईश हरे ।
श्रीधर सागरशयन चक्रधर, जप जिह्वे ॥ १७ ॥
त्रिभुवनतात अनंत तिमिरहर, ईश हरे ।
स्वयंप्रकाश अनादि आदि विभु, जप जिह्वे ॥ १८ ॥
इति अच्युतपदपति नामस्तव शुभकारी ।
शुद्धभाव सह पठत निरंतर भवहारी ॥ १९ ॥
पाप समूल विनाशक शुद्धिप्रद चित्तम् ।
श्रीअच्युतपददर्शनदायक परमहितम् ॥ २० ॥*

महात्मा सत्साधक फिर बोला, "कोई जीव यह सब स्तोत्र याद न रख सके तो इससे भी बहुत छोटा अच्युत नामाष्टक है उसे सुनो. यह निरन्तर जिह्वाग्रमें रह सकता है.

" अच्युतः केशवो विष्णुर्हरिः सत्यं जनार्दनः ।
हंसो नारायणश्चैवमेतन्नामाष्टकं शुभम् ॥"

"इसमें मंगल (शुभ) रूप प्रभुके आठही नाम हैं—अच्युत, केशवा, विष्णु, हरि, सत्य, जनार्दन, हंस और नारायण. फिर इससे भी अत्यंत सुगम एकही नामका अभ्यास रखनेवालेके लिए नारायण, जनार्दन, अच्युत गोविन्द, केशव इत्यादिमेंसे चाहे जो एक और इससे भी संक्षिप्त और द्व्यक्षरवाले नाम, राम, कृष्ण, विष्णु, हरि, हर, शिव इत्यादिमेंसे चाहे जो एक द्व्यक्षरवाला संक्षिप्त नाम, चाहे जिस समय पथिक

* प्राचीन.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विना परिश्रम अचूकपनेसे निरंतर जप सकता है और अच्छी तरहसे उसका अभ्यास होनेसे, किसी समय एकान्तमें उस जपनेवालेका चित्त ऐसा ध्यानस्थ होजाता है कि जिससे उसको इस बातका भी स्मरण नहीं रहता कि "मैं स्वयं कौन हूँ और कहां हूं ?"—वह केवल अभेदताका अनुभव करता है और ऐसे अच्युतानंदका लाभ लेता है कि वाणी जिसका वर्णन नहीं कर सकती. इस प्रकार अपनापनकी अत्यंत विस्मृत होते ही एक नूतन वासना पैदा होती है—वह सर्वत्र ब्रह्मको ही देखता रहता है और उसके देखनेको ही मथन करता है. उसका लौकिक मन मृतप्राय होजाता है और दूसरा अलौकिक मन उत्पन्न होता है वह उन्मत्तकी तरह सर्वत्र विचरता करता है. नूतन वासनाके जन्मसे वह दिगंबर (नग्न), साम्बर (कपड़े सहित) या चिदम्बर (ज्ञानरूपी वस्त्र) रहता है. पर उसे जगतकी किसी भी प्रकारकी वासना नहीं रहती. तो भी उसमें एक नूतन वासना उत्पन्न होती है और उसीमें वह जीवन्मुक्तदशाका अनुभव करता है. यद्यपि जीवन्मुक्तोंकी जो ऐसी वासना है वह वासना नहीं, पर यह तो शुद्ध, सत्य नामकी सामान्य सत्ता है और उस स्थितिमें अद्वैत साक्षात्कारका अनुभव करता है—यही सर्वेश्वर अच्युत प्रभुका साक्षात्कार ! ऐसा होने पर फिर क्या रहता है ? सर्वोत्कृष्ट अलभ्य लाभ मिलनेमें क्या शेष रहता है ? जो अलभ्य लाभ प्राप्त होने पर, उससे बढ़कर दूसरा कुछ भी अधिक लाभ नहीं रहजाता वही विधिपूर्वक प्राप्त किया हुआ गुप्त मंत्र गुरुके बताये हुए विधानके साथ बड़े परिश्रमसे साधकर, बहुत समयतक सिद्ध किया हो, तो वह मंत्र अपना योग्य अवसर आतेही नियोजित करनेपर अत्यंत अद्भुत रीतिसे शीघ्र कार्य कर देता है और वासनायुक्त जीव मुक्त हो जाता है.

" प्रिय पथिको ! अपना मुख्य कर्तव्य क्या है ? भगवच्चरणमें लीन होना ही न ? पर यह कब होय जब अपना चित्त शुद्ध निर्मल होकर जगतकी सारी वासनाका क्षय करके, उसके चरणमें दृढ़तासे प्रीति करे. पर जगत्पुरमें अनेकवार जन्म लेकर जो असंख्य पाप किये हैं उनसे चित्त लिप्त होनेसे, महा मलिन है. उसकी वह दृढ मलिनता दूर करनेको प्रभु अच्युतका स्मरण ही अत्यंत चमत्कारपूर्ण औषध है. उस औषधको दया कर देनेवाला सद्गुरु ही कृपालु वैद्य है. अच्युत नामस्मरणरूप औषधमें पापरूप मलको जला देनेका जितना सामर्थ्य है उतना दूसरे किसी भी प्रयोग या साधनमें नहीं है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथाऽनलः ॥

अर्थः--जाने या विना जाने भी यदि उत्तमश्लोक भगवान् अच्युतका नामसंकीर्तन किया जाता है तो वह कीर्तन करनेवाले प्राणीके सारे पाप वैसे ही जला देता है जैसे इंधनके ढेरको अग्नि जला देती है. "

" इन उत्तमश्लोकके गुणोंका स्मरण करानेवाले नामोंका उच्चारण करनेसे, पापी मनुष्य जैसा शुद्ध—पवित्र हो जाता है वैसा, कर्ममार्गमें हम लोग जैसे देखते आये हैं वैसे तप, व्रत, यज्ञ, योगसाधनादि अनेक साधनरूप बहुतसा प्रायश्चित्त करनेसे भी शुद्ध नहीं होता है. वैसा प्रायश्चित्त अत्यंत शोधक अर्थात् पापमूलक अविद्याका समूल नाश कर अंतःकरणको अत्यंत स्वच्छ करनेवाले नहीं होते. एकवार प्रायश्चित्त करके अंतःकरणको धोया-जाय, पर कुछ समयके पीछे वह फिर उस *असन्मार्गमें जावे तो वह ज्योंका त्यों हो जाता है. पर अच्युतके गुणोंका † स्मारक नाम उन पापोंहीको धोता है सो नहीं; पर वहाँसे आरंभ कर अन्तःकरणको शीघ्र अच्छे मार्गमें फिराता है और जब तक पाप नहीं धुलता तबतक चित्त अच्छे मार्गकी ओर फिरता भी नहीं. परब्रह्मका यह पवित्र नाम जानबूझकर तो क्या, पर केवल किसी प्रकारके संकेतसे—अर्थात् यदि किसी मनुष्यका वैसा नाम हो तो उसको बुलानेके लिए उस नामको लेनेसे—परिहाससे—हास्यभावसे किसीकी चुगली करनेके लिए या ठट्ठासे भी यदि लिया जाय, तो वह अशेष पापोंको हरण करनेवाला है, ऐसा तत्त्वोंका रहस्य जाननेवालोंका विश्वास है.‡

" अविनाशी परमात्माका यह नाममात्र सब पापों ही को नाश करता है सो बात नहीं है, वह सारे ताप-दुःखोंका भी नाश करता है. इस नामके स्मरणमात्रसे जो पुण्य होता है, वह तीनों लोकोंमें दूसरे सब पुण्य कर्मोंसे बड़ा है. सार बात यह कि-भगवान् अच्युतके नामस्मरणका पुण्य गंगादि सब तीर्थोंद्वारा होनेवाले पुण्यसे भी बड़ा है, सारे वेदाध्ययनके पुण्यसे भी बड़ा है, अश्वमेधादि यज्ञोंके पुण्यसे भी बड़ा है, इस देहको त्याग कर परलोकमें गमन करते हुए प्राणात्माको, मोक्षधाम—अच्युतपुरके मार्गमें लेजानेवाले पथप्रदर्शकके समान है. इस संसाररूप महाव्याधिका औषधरूप

* असन्मार्गमें-बुरे रास्ते, उल्टे रास्ते, पापमार्गमें. † स्मरण करानेवाला. ‡ पंचदशी और श्रीमद् भागवतमें अजामिलका चरित्र देखो.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है और समस्त दुःख क्लेशोंका नाश करनेवाला है और कृपालुके अनंत नामोंमेंसे इस छोटे और हस्वाक्षरवाले—ह और रि हरि—इन दो अक्षरोंका ही नाम, जिह्वाने सतत लिया हो तो भी वह पर्याप्त है. जैसे अनिच्छासे भी स्पर्श करनेवालेको अग्नि अपने स्वभावसे ही जला देती है, वैसे 'हरि' उच्चारणका स्वभाव ही पापोंका हरण करनेवाला है. उसको चाहे जैसे दुष्टात्माने स्मरण किया हो वह उसके पापोंका हरण ही करता है. इस पवित्र पुरुषका नाम इतना पवित्र है और इतना सरल—सुभीतेवाला है, कि उसके भजनेवाले स्मरण करनेवालेको उसके भजनके स्थान, समय और स्थितिका कुछ भी नियम रखनेकी आवश्यकता नहीं है. ऐसा कुछ भी नियम नहीं है कि वह किसी विशेष स्थान, समय और स्थितिमें ही हो तभी उसका स्मरण किया जा सकता है. यज्ञकर्म करना हो तो उसमें समयका नियम अवश्य है; दानकर्म, स्थानकर्म और दूसरे उत्तम जपादिक सब कर्म करनेके लिए, समयादिका नियम है—वे कर्म तो शास्त्रमें उल्लिखित समयमें हो सकते हैं. पर भगवान् अच्युतके नामसंकीर्तनके लिए वैसा कोई नियम नहीं है, उसे तो चाहे तक और चाहे जैसी स्थितिमें भी भज सकते हैं. चलते हुए, खड़े रहना, लेटे हुए, खाते, पीते, उठते, बैठते भी यदि 'हरि हरि, अच्युत, प्रभु, कृष्ण' ऐसा नामोच्चार करे तो वह प्राणी, पापोंसे मुक्त होजाता है.

"इसका कारण यह है कि, पवित्र प्रभुका यह नाम स्वतः ही परम पावन और महापापीको भी पवित्र करनेवाला है. इस लिए चाहे अपवित्र हो, पवित्र हो, या चाहे जैसी अवस्थामें हो, पर जो मनुष्य इन वासुदेव अच्युतका स्मरण करता है, वह अपने शरीरके बाहरसे और भीतरसे अंतःकरणमेंसे-भी शुद्ध-पवित्र बनता है. हे प्रियरथिको! ऐसी सर्वोत्तम अच्युत शरणप्राप्तिका साधन, अच्युतनामस्मरण है; इस लिए तुम सब आलस्य त्यागकर, उस प्रभुमें प्रेमभावसे दृढ़तापूर्वक मनको लगाओ. निरन्तर उनका स्मरण करो. भली भाँति सावधान होकर दृढ़ निश्चयपूर्वक अपनी जिह्वेन्द्रियको उन्हींके स्मरण अभ्यासमें लगाओ, जिससे वह उनका स्मरण नित्यही किया करे. अभ्यास हो जानेसे चाहे जिस समय चाहे जैसी अवस्थामें भी वह उनका स्मरण करती ही रहेगी ऐसा करते करते, उसका संस्कार बिलकुल अन्तःकरणमें पहुँच जायगा, और अंतरमें उसकी लाभ-लगन लगेगी तथा अंतःकरण उसमें लय-लीन हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जायगा। ऐसा हुआ कि बस। फिर क्या चाहिए ? फिर तो प्रभु अच्युत पासमें ही हैं। वे तुरंत पार लगा देंगे। इस लम्बे मार्गमें चलनेका परिश्रम तक छुड़ाकर कदाचित् एकदम अपने पवित्रधाम-अच्युतपुरमें ले जायँगे। इस लिए प्रमाद और आलसको छोड़कर तैयार हो जाओ। तुम्हारा कल्याण हो, मंगलकर्ता प्रभु तुमपर प्रसन्न हों।"

इस तरहका अत्युत्तम उपदेश सुनकर, सब पथिक बड़ेही हर्षित हुए और स्तोत्रमेंसे अपनी अपनी रुचिके अनुसार हरएकने सतत स्मरण करनेके लिए प्रभुका एक एक नाम, उस महात्मासे, बार बार स्पष्ट रीतिसे, पृथक् पृथक् सुन लिया। सत्साधककी आज्ञासे प्रभु अच्युतकी जयगर्जना कर, उन कृपालुको प्रणाम कर सब पथिक जलसे बाहर निकले।

फिर उस महात्मा गुरुने सबको इस पवित्र सरिताके तटमेंसे, थोड़ी थोड़ी सुन्दर श्वेत मृत्तिका लेने, और उसको जलमें धोलकर, उसके द्वारा अपने अपने ललाट, कंठ,बाहु,हृदय इत्यादि स्थानोंपर,ऊर्ध्वपुंड्र-त्रिपुंड्र आदि, जिनकी जैसी इच्छा थी, वह करनेकी आज्ञा दी। फिर सत्साधक बोला; "अच्युतप्रभुके पवित्र मंत्रका उच्चारण करके सब लोग ऊर्ध्वपुंड्र करो। यह ऊर्ध्वपुंड्र उच्चस्थानके निवासीका बोध करता है, अर्थात् अपने प्रभु अच्युत, सबके ईश्वर होनेसे, वे सबसे उच्च स्थानमें विराजते हैं। उनसे ऊँचे कोई भी नहीं, वे ही सबके ऊपर हैं, ऐसा यह ऊर्ध्वपुंड्र सूचित करता है। फिर, ऊर्ध्वपुंड्र अपने उच्च मार्गका भी बोध करता है, कि अपना मार्ग सबसे ऊँचा है और उच्च स्थानको जाना है—वहांसे नीचे—जगत्पुरमें या नरकादि स्थानमें पतन नहीं होता. तीसरे, यह ऊर्ध्वपुंड्र हम लोगोंको तत्पर-जाग्रत सचेत रहनेकी सूचना देता है. बैठे या लेटे हुए अर्थात् आलसी, प्रमादी,असावधान और भक्तिश्रद्धा रहित पथिकसे इस मार्गमें नहीं चला जा सकता—असावधान पथिकको तो कालादिक शत्रु देखते देखते फँसादेते हैं. चौथे, ऊर्ध्वपुंड्र यह सूचित करता है कि अपना मार्ग सरल सीधा, और दोनों ओरसे मर्यादाबद्ध होकर सुरक्षित है और सरल स्वभावसे रह कर, पहले होजानेवाले महात्मा पथिकोंकी बाँधी हुई मर्यादाका उल्लंघन न कर, जो सीधे सादे चला जाता है, वह पथिक सुखसे अच्युतपुर पहुँच जाता है. पाँचवें ऊर्ध्वपुंड्र करते समय, अच्युतनामोच्चारण करना, यह सूचित करता है कि, यह अच्युत मार्ग सरल सावधानतापूर्वक विचरने योग्य और उच्च पदमें ले जानेवाला है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसमें विचार करनेवाले पथिकको सबसे अधिक सुरक्षित रखनेवाला, पुण्यश्लोक प्रभुका यह नामोच्चारकरूप महामंत्र है, इस लिए पथिकोंको सबसे अत्यावश्यक इस अद्वैत परब्रह्मके स्मरणके महामंत्रका सतत जाप करते रहना चाहिए. त्रिपुंड्र, परमात्माकी तीनों कालकी, तीनों कार्यकी परम अद्भुत शक्ति प्रदर्शित करता है. यह महामंत्र, जापककी कायाका कवच–बख्तर है, मनका मल धोनेवाला क्षार है, पापसमूहकी प्रलयाग्नि है, चित्तकी शुद्धिका सरल साधन है, मुक्तिमार्गका मूल है, अच्युतपथका सेतु है, सकल कल्याणका निधान है, सारे दोषोंका शोषण करनेवाला है, पवित्रसे भी पवित्र है, मंगलसे भी मंगल है, भवरोगका औषध है, जीवका जतन है, जीभका अमृत है, संसारसिन्धुकी तरणि–नाव है. इस मंत्रका जप करना, मनकी सबसे सुन्दर कृति है और अंतमें इससे निश्चयपूर्वक श्रीहरिचरणकी शरण प्राप्त होती है. इस लिये हे प्रिय पथिको! इस समयसे आरंभ कर अब तुम सब, अपने प्राप्त हुए अच्युतनामरूप महामंत्रका सदाकाल जप करना और जब जब हृदय शुद्ध हो तब तब अच्युत शरणागतके इस चिन्हको धारण करना. लो, अब चलो, समय हो गया है, इस लिए उस पार जाकर मुकाम करें." ऐसी आज्ञा होते ही, सब पथिक तैयार हो गये, और बारंबार आनन्दपूर्वक अच्युतेश्वरकी जय गर्जना सहित, इस पवित्र सरिताको पारकर दूसरे तट पर स्थित रम्य पथिकाश्रममें जाकर, मध्याह्न बितानेके लिए उतर पड़े.

अच्युतपुरद्वारका झांकी दर्शन—स्मरण समाधि.

अद्भुत विमानमें बैठे हुए पुण्यात्मा, नीचे अच्युत मार्गपर होनेवाली सब क्रिया इत्थंभूत (आदिसे अंत तक) देख रहे थे. इन्होंने भी पथिकाश्रम पर, अर्थात् जहांसे सारी क्रिया भलीभाँति दिख सके उस स्थानमें, अंतरिक्षमें विमानको खड़ा किया. ठीक मध्याह्न हुआ. पुण्यजन और पथिक अपने २ संध्योपासनादिक नित्य कर्ममें प्रवृत्त हो गये, संध्या होने लगी, तो भी पथिकाश्रममेंसे संघ नहीं निकला. इससे मालूम हुआ कि, वे आजकी रात भी इस पथिकाश्रममें ही बितायँगे. रात हुई, पुण्यजन नित्यकर्मसे अवकाश पाकर गुरु वामदेवजीके सहित, अपने अपने आसन पर बैठ गये और सब पुण्यात्मा पथिकाश्रमकी ओर एकाग्रतासे देखने लगे.

उनका आजका साज कुछ और ही प्रकारका था. पथिकाश्रममेंसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसा मधुर और एकसा अटूट शब्द सुनाई पड़ता था, मानों दूरसे भ्रमर गुञ्जा रहा है. 'यह किसका शब्द है' यह जाननेके लिए, विमानवासी बिलकुल शान्त होकर सुनने लगे, तब उन्हें स्पष्ट मालूम हुआ कि यह तो अच्युतनाममंत्रके स्मरणकी वह अद्वितीय ध्वनि है जिसको प्रत्येक पथिकने गुरुसे प्राप्त किया है. पहले अच्युतनामस्तोत्र गानरूपसे रातका कीर्तन किया. फिर सब पथिक अपने अपने आसनोंपर शान्त होकर बैठ गये और फिर एकाग्र चित्तसे अच्युतनाम मंत्रका स्मरण करने लगे, कोई किसी-की ओर या अन्यत्र कहीं भी इधर उधर देखते नहीं थे; किसीसे जरा भी बातें नहीं करते थे; सबकी दृष्टि अपनी २ नासिकाके अग्र भागपर स्थिर थी. हस्त पादादि अवयव समेटे हुए हैं, मुँहसे सरिताके सरल प्रवाहकी भाँति एक समान—अखंडरूपसे नामध्वनि हुआ करती है; विशेष कर सब छोटे और ह्रस्वाक्षरवाले 'हरि' इस सरल नामका जाप जपना आरंभ किया था. ज्यों ज्यों समय होता गया और रात व्यतीत हुई त्यों त्यों कई पथि-कोंको निद्रादेवीने वहांका वहां ही आ घेरा और धीरे धीरे बैठे बैठे ही उन्हें निद्रासमाधि लग गई. अनेक सचेत पथिक अपने मुखसे होनेवाले मंगल नामोच्चारणके साथ मग्न हो जानेसे स्थिर चित्त हो गये, अनेकोंको नाम-स्मरणसे ऐसी लय लग गई, कि उनका श्वासोच्छ्वास भी पैठना निकलना रूप लोम विलोम (उल्टी सुल्टी) गति त्यागकर, मात्र एक समान वहिः प्रवाह करने लगा. ऐसा करते करते कुछ देरमें कई एक जड़वत् स्तब्ध हो गये, कोई कोई तो उन्मत्तकी भाँति खड़े होने लगे, कई एकोंका शरीर कंपित होकर रोमांचित हो गया. अनेक जोरसे ध्वनि करने लगे, और कोई कोई तो 'अहो ! ब्रह्म !' 'अहो ! अच्युतप्रभु !' इत्यादिकी ऐसी ध्वनि करने लगे मानों आनंदके प्रवाहमें तैर रहे हों.

फिर इन सबकी अपेक्षा एक पथिककी स्थिति तो और भी विलक्षण देखनेमें आई. वह पहले तो एकाग्रतासे नामस्मरण करता था. उसमें मग्न होकर मानों अपने समीप किसी प्रियतम पदार्थको प्रत्यक्ष देखता हो, इस प्रकार आँखें खोलकर स्थिर दृष्टिसे देखने लगा; थोड़ी देरमें वह एकदम खड़े होकर; "वाह ! वाह ! धन्य ! धन्य ! अहोजन्म ! अहोभाग्य ! अहो-गुरु !" ऐसे शब्द बोलते हुए आसनपरसे एकदम बाहर, पथिकाश्रमके मैदानकी ओर दौडा. बाहर आते आते मानों उसे अकस्मात् ठेस लगी हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्रकार यह गिर पड़ा और "अहा ! हे नाथ ! हे स्वामिन् ! हे कृपालु ! हे सर्वेश्वर ! हे प्रभु अच्युत ! मैं दीन पापी सर्वथा आपकी शरणमें हूँ !" इतने शब्द बोलते हुए, भूमिपर गिरते ही वहां एक अद्भुत महा प्रकाश प्रकट हुआ, और उसीसे यह देखते देखते आवृत हो गया अर्थात् उस महा-प्रकाशके अपार तेजसे वे विमानवासी आदि सभी जन चकाचौंध होगये और फिर वहां क्या हुआ, यह कुछ भी नहीं देख सके.

कुछ देरमें वह प्रकाश अदृश्य हो गया. आश्चर्यचकित हुए सत्साधक आदि सब पथिक, यह क्या हुआ, इसके जाननेकी उत्कंठासे तुरंत बाहर चौकमें आये और देखते हैं तो वहां एक पथिक मानों दण्डवत् प्रणाम कर रहा हो, इस प्रकार लम्बा दो हाथ जोड़कर भूमिपर पेटके बल पड़ा हुआ था. उसको ऐसी दशामें अचेतसा पड़ा हुआ देखकर कई पथिक जोरसे चिल्ला कर बुलाने लगे और शरीरको छूकर पहिचानने लगे. महात्मा सत्साधकने उसे तुरंत पहिचान कर कहा, "अरे ! यह तो वह पवित्र प्रेमी पथिक है. इसे क्या तुमने अच्युत तीर्थमें अच्युत प्रतिमाका प्रेमावलोकन करते समय विस्मित हो जाते नहीं देखा था ? यह परम प्रेमी* है और ऐसा जान पड़ता है कि आज सबके प्रेम भक्तिपूर्वक अच्युतके स्मरणमें तल्लीन हो जानेसे, उस कृपालु प्रभुने, आज इसे कुछ चमत्कार बतलाकर भाग्यशाली किया है. यहां पर उस कराल कालपुरुषकी भीतिकी तो लेश भी संभावना नहीं है, पर मात्र प्रेमावेशमें ही यह इस प्रकार अचेत पड़ा हुआ मालूम होता है; इस लिए चलो, उधर हटो, हम इसे सचेत करें."

ऐसा कहकर वह महात्मा उसके पास जा बैठा और सिर तथा शरीर पर हाथ फेर कर, मृदुस्वरसे कहने लगा; " प्रिय पथिक ! अच्युतप्रिय ! † तू क्यों इस तरह पड़ा हुआ है ? सावधान हो, सचेत हो!" इस प्रकार दो तीन बार पुकारनेके साथही उसे अच्छी तरहसे पकड़कर इधर उधर हिलाया तो जैसे कोई सोनेसे जागकर उठ बैठे इस तरह घबराये हुएके समान चारों तरफ वह देखता हुआ उठकर बैठ गया और महात्मा सत्साध-कको अपने पास खड़े हुए देखते ही, "अहा ! धन्य गुरुवर्य ! बस ! आपने

* यहां प्रेमी अर्थात् निष्काम भक्तिमान् समझना चाहिए. † अच्युतप्रिय—अच्युत प्रभुको अत्यंत प्यारा पथिक ! क्योंकि ! ऐसा अच्युतपदप्रेमी पथिक अच्युतको सबसे अधिक प्रिय है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृतार्थ कर दिया!"ऐसा कहते हुए तुरंत उसके पैरोंपर पूर्ववत् गिर पड़ा. सत्साधकने उसका हाथ पकड़कर उठाकर प्रेमसे अपने हृदयमें लगा लिया और ऐसी घटना क्यों हुई यह बतलानेकेलिए उसको आदेश किया. उसने पुनर्प्रणाम करके, हाथ जोडकर कहा; "कृपालु गुरुदेव! अहा! जो बहुवार महात्मा पुरुषोंसे सुनता था कि सद्गुरुकी महिमा अपार है, उसका आज मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है. आप कृपालुके पारमार्थिक उपदेशको सुनकर, सब पथिकोंके साथ मैं भी कालभय जानकर जगत्पुरसे भागकर इस अभय पथमें आया. मेरा यह आना आज सफल हो गया. आज मैं यथार्थ ही निर्भय हो गया! अच्युततीर्थमें परब्रह्मका जो दिव्य रूप देखा था आज उसीको मैंने यहां प्रत्यक्ष देखा है! क्या देखा? नहीं, नहीं, बस इसी स्वरूपमें मैं लीन होऊंगा! अरे हो गया हूँ. पर यह वही है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता! दूसरा नहीं! अहा जबसे मैं अच्युत तीर्थमेंसे निकला था तभीसे यह दृश्य मेरी आँखोंके आगे झूल रहा था, पर जब आपने मुझको उस कृपालुके नाममंत्रका* उपदेश दिया, तबसे तो; जब जब मैं उस नाममंत्रका उच्चारण करता हूँ तब तब मेरे हृदयमें उस घनश्याम मूर्तिके खड़े होते ही मुझे रोमाञ्च हो आता है और प्रेमावेशसे ऐसा लगता है मानों मैं उसे लिपट जाऊँ. पर यह कैसे हो!! ऐसे ही आवेशमें आजमें सबके साथ नामध्वनि करते हुए बैठा था, इतनेमें हृदयमें दीखनेवाले स्वरूपानन्दमें बंद आँखें खुल गईं और स्वरूपानुसंधान हो गया. मेरे आगे भी यही अद्भुत मूर्ति प्रत्यक्ष रमण करती हुई मुझे दीख पडी. उसपर अपार तेज था. सूर्य, चंद्र, तारे, बिजली या अग्निके प्रकाशसे भी वह प्रकाश श्रेष्ठ था. उसके प्रकाशमें ही सब कुछ था. वह ऐसा प्रकाश था कि उसकी ओर देखा भी नहीं जा सकता था. तो भी प्रेमावेशमें मैं अकस्मात् उससे लिपटनेको दौड़ा. मैं तुरंत अद्भुत दिव्य मूर्तिके चरणारविंदमें सहज ही जा पड़ा. मेरे मनमें धारणा थी कि मेरे और सबके लिए एक निर्भयस्थान सिर्फ यही है, इस लिए मैं उन महामंगल मंजुल युगल † चरणारविन्दसे लिपट कर, उनके बीचमें सिर रख दिया, पर मेरे कुछ भी

---

* ऊपर जहाँ जहाँ 'नाममंत्र' शब्द उपयोगमें लिया गया है वहाँ वहाँ सगुणोपाधिक भक्तिपक्षमें ईश्वरका नामोच्चार और निर्गुण उपासनापक्षमें वासनाक्षय और परब्रह्मरूपमें लय होनेका साधन समझना चाहिए. † युगल--दो; उभय.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रार्थना करने और आँखें खोलकर उस महामंगल स्वरूपके अच्छी तरह अवलोकनको सामर्थ्यवान् होनेके लिए उस कृपालुसे कुछ भी भिक्षा माँगनेके पहिले ही मुझे अपनी अंक (गोद) खाली जान पड़ी और मेरे सम्मुखसे मंगल मंजुल चरणकमल न जाने कहाँ अदृश्य हो गये ! अहा कृपानाथ ! अब मुझ पापीको वे फिर कहाँ प्राप्त होंगे ! ! क्या मैं उस परम पूज्य कल्याणकारी स्वरूपके दर्शन करनेके लिए फिर कभी भाग्यशाली हो सकूँगा ?"

उसकी ऐसी बात सुन कर, सब पथिक विस्मित होगये. महात्मा सत्साधक बड़े हर्षसे उसको अपने हृदयसे लगाकर बोला; "अहो ! भगवत्प्रेमी ! तू सबसे बड़ा भाग्यशाली है; क्योंकि तुझे भगवत्स्वरूपका भास हुआ है. तेरे शुद्ध प्रेमके वश होकर कृपालु अच्युत प्रभु तुझको शीघ्रही अपने दर्शन देंगे. पुत्र तुझको धन्य है, तेरा कल्याण हो." फिर वह सब पथिकोंसे कहने लगा,"पथिको ! देखो, इसका नामही अच्युतस्मरण है ! इस प्रकारसे प्रभुकी दिव्य मूर्तिको प्रेमसे अंतःकरणमें देखते हुए मुँखसे स्मरण किया जाय तो यह नामस्मरण शीघ्र फलदायी है, और यह उपाय पथिकको सरलतासे साध्य होनेके लिए ही मार्गमें अच्युततीर्थका पवित्र दर्शन होता है. अच्युत तीर्थकी अच्युत प्रतिमा, प्रत्येक पथिकको अपने अन्तःकरणमें चित्रित कर लेनी चाहिए; और अंतर्चक्षुश्चद्वारा[1] दिनरात उसका अवलोकन–शोधन करते रहना चाहिए. अपने इस प्रेमी पथिकने इस अर्थको यथार्थ सिद्ध किया है इससे उसको जो फल प्राप्त होने लगा है उसे भी हम सब लोगोंने प्रत्यक्ष देखा है. अहा ! अंतर्यामी अच्युत प्रभु कैसे परम दयालु और प्रेमाधीन है कि अपना केवल नामस्मरण करनेवाले और स्वरूपका स्मरण–ध्यान करनेवालेसे आकर मिले विना नहीं रहते हैं. इस लिए हम सब लोग भीतर उनके स्वरूपको देखते हुए और मुखसे नामस्मरण करते चलें. प्राणिमात्रका निदान यही है कि उनको जो निरंतर भजता है–अनुभव करता है–वही इन ब्रह्ममें लीन होता है, निष्काम भक्तही इन अच्युत प्रभुमें स्थिर होता है. उन कृपाके सागरकी लहर हम लोगोंपर भी अवश्य ही आवेगी."

---

१ अंतर्चक्षु–अंतःकरणके चक्षु, अर्थात् मनोमय चक्षु.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतना कहकर वह महात्मा फिर बोला; "परन्तु प्रिय पथिको ! प्रभुके नामकी इतनी बड़ी महिमा मैंने तुमको सुनाई और हम सब लोगोंने प्रत्यक्ष भी देखा है तो भी कई मूर्ख लोग टेढ़े रास्तेमें दौड़ जाते हैं वैसा न होनेके लिए तुम सबको सचेत रहना चाहिए. अनेक दुष्ट और मिथ्याचारी लोग ऐसा विचार भर देते हैं कि, ' जब प्रभुका नाम मात्र सारे पापोंका नाश करनेवाला, सब मलिनता मिटानेवाला और पुण्यका भंडाररूप है, तो अब पापोंके लिए हमें क्या चिन्ता है और कौन कुकर्म हमे पीड़ित कर सकता है ? चाहे जितना पाप होगा, तो भी वह सिर्फ प्रभुका एकाध नाम उच्चारण करके दूर कर देंगे ! वाह ! यह तो बहुत अच्छा हुआ ! अब तो शास्त्रमर्यादा, परलोक अथवा नियंता आदि किसीका डर नहीं रहा ! ऐसा विचार कर स्वेच्छाचारी बनने लगते हैं और अंतमें अघओघमें डूब मरते हैं. परन्तु पुण्यवान् पथिको ! भगवानके नामका प्रभाव जानकर किसीको भी सदाचरण या सन्मार्गका त्याग नहीं करना चाहिए. जगतकी वासना क्षय हुए विना परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी. जिसकी वासनाका क्षय हुआ है, वही जीव शुद्ध आत्मा-परमात्माको पा सकता है, दूसरा नहीं. राजाके राज्यमें रहकर मुखसे उसका चाहे जितना यश गाता हो परन्तु उसको बुरा लगनेवाला कार्य-उसके स्थापित किये हुए सदाचारकी मर्यादाका उल्लंघन करता हो, तो वैसा मनुष्यको राजा कबतक क्षमा करेगा ? चाहे जैसा दयालु राजा हो उसको वैसे मिथ्याचारी मनुष्यको, राज्यकी रक्षाके लिए-धर्मकी रक्षाके लिए अवश्य बडा दण्ड देना पडेगा. उसी प्रकार हम, सर्व समर्थ परम दयालु प्रभु अच्युतको जरा भी बुरा लगनेवाला कार्यही करें और उसके नियमोंका भंग कर-या जगत् मिथ्या है और परमात्माही सत्य है ऐसा न जान, मोहमें रहें, तो फिर चाहे जितना उनका नामस्मरण* करें तो भी क्या फल होगा ? हम उनके किस प्रकार प्यारे

---

* टीका—भगवत्स्मरण अर्थात् परमात्माका विचार करना ऐसा अर्थ घटाना चाहिए. उपासनापक्षमें प्रभुका स्मरण. प्रभुस्मरण प्राणीको सब पापोंसे मुक्त करनेवाला और उक्त गुणोंसे युक्त है सही, पर उसको जपनेवालेको कई अपराधोंसे बचना चाहिए, इसके लिए शास्त्रकर्ता इस प्रकार कहते हैं:-सत् पुरुष, सज्जन वा सत्पदार्थ या सद्धर्म-सन्मार्ग, प्रभुनाम इत्यादिकी निन्दा, अनधिकारी, दुराचरी असत् व्यक्तिसे स्मरण माहात्म्य बतलाना; विष्णु, शिव इत्यादि कारणपरत्वे धारण किये हुए प्रभुके अनेक जुदे जुदे स्वरूपोंमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होसकते हैं ? और वे हमपर कैसे दया करें ?"इस प्रकार वार्तालाप करते वे सब पथिकाश्रममें आये और नामस्मरण करते हुए थोडी देरमें सो गये.

दूसरे दिन सूर्योदय पहले, नित्यनियमपूर्वक महात्मा सत्साधक, स्मरण करते हुए तुरंत साथरीमेंसे ऊठ बैठा. नामध्वनि सुनकर एक एक कर सब पथिक भी बैठकर प्रातःस्मरण करने लगे. फिर निर्मल नदीके तटपर स्नान संध्यादि नित्य कर्म करनेके लिए गये. वहाँसे बाहर ही बाहर सब संघ एकत्र हुआ और सर्वेश्वर प्रभु अच्युतकी जयध्वनि सहित तुरंतही रास्ता चलने लगा. कुछ दूर पहुँचकर महात्मा सत्साधक बोला, "प्रिय पथिको ! यद्यपि अपना मार्ग उत्तरोत्तर सरल आता जाता है सही, तो भी जैसे अपनेमेंसे अस्थिर मनवाले पथिकोंको कर्ममार्गमें अनेक भूलभुलैयाँ सहजमें भुला देनेके लिए मालूम होती थीं, वसीही इस मार्गमें भी आवेंगी इस लिए चाहे जैसा लालच हो उसको देखकर कोई भूलना नहीं. यह देखो, उस ओर अपने मार्गकी दाहिनी बाजूमें एक भूलभुलैया है, इस प्रस्थानमें भी अंत तक उस कामदेवकी ही सत्ता है और पथिको-लालची पथिकोंको इस शुभ श्रेयस्कर मार्गसे भ्रष्ट करनेमें यही मूल कारण हो जाती है. इस लिए पहले इस मार्गसे होकर जो महानुभाव पथिक गये हैं वे प्रत्येक पथिकको निष्काम होकर-आशा-तृष्णा कामना- चाहे वह सत् ही अथवा असत्से विमुख-निःस्पृह होनेकी विशेष आज्ञा दे गये हैं और उसका अनुसरण करना ही कल्याणकर है."

सगुणोपाधि मार्ग.

इस प्रकार बातचीत करते हुए वे कुछ देरमें एक विश्राम स्थानपर जा

-निन्दात्मक भेदबुद्धि; वेदशास्त्रपर अश्रद्धा; महात्मा-ईश्वरअंशी सत्पुरुषोंकी वाणीपर अश्रद्धा; नाममें अर्थवाद (जैसे कि रामका नाम लेकर प्राचीन कालमें नल नील वानरोंने पानीपर पत्थर तैराया था, पर आज कोई एक छोटासा कंकड भी क्यों नहीं तैरा सकता ? इत्यादि वितंडा करना) फिर नाम ऐसा सरल साधन है तो चाहे जैसा व्यवहार करें तो भी चिन्ता नहीं, ऐसा विचार कर निषिद्ध व्रत न करने योग्य कर्म-आचरण करना और ऐसा सोच कर जो विहित-अर्थात् अपने योग्य--आवश्यक कर्म हैं उन्हें न करना और दूसरे धर्मोंसे नामरूप साधनकी तुलना करना. इस प्रकारसे प्रभुका नामस्मरण करनेवाले अर्थात् दश अपराधोंसे बहुतही सचेत रहना चाहिए, नहीं तो नामस्मरणका यथार्थ फल नहीं होगा.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पहुँचे. दोपहर होनेको अभी कुछ देर थी, इस लिए मध्याह्न बितानेके लिए विश्रामस्थानपर न उतर कर संघ आगे बढ़ने लगा, इतनेमें एक तेजस्वी हृष्ट पुष्ट मनुष्य संघके पास आते हुए दिखाई दिया. वह शरीरसे सुन्दर होने पर भी बोलनेमें बड़ा चतुर था, वह लाल कपडे पहने था और मस्तक पर सेन्दुरका तिलक था. गलेमें लाल कनेरके फूलोंकी माला और हाथमें हाथीदाँतकी सुमरनी थी. अपने विचित्र वेशसे वह सारे संघका चित्त अपनी ओर खींचकर बोला:—

"पुण्यजनो ! अब तुम किसके लिए और कहाँ जानेके लिए शीघ्रता कर रहे हो ? प्राप्य–प्राप्त होने योग्य पदार्थकी प्राप्ति हो जानेपर क्या चिन्ता है ?

गणपति उपासना

मेरे कहनेका मर्म तुम नहीं समझ सके, इस लिए मैं कहता हूँ कि, जिस निर्भयस्थानकी ओर जानेके लिए तुम निकले हो, वहाँ जानेका सत्यमार्ग अब तुमको प्राप्त हो चुका है; इस लिए उसको लाँघकर आगे बढ़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है. जो मार्ग तुम्हारी दाहिनी बाजूसे प्रारंभ होता है, यही मार्ग तुम्हारे लिए आगे बढ़नेका है और यही मार्ग सत्य है तथा सबसे श्रेयस्कर, सरल और ऐसे सुखके स्थानमें पहुँचा देता है जहाँ दुःखका लेश भी नहीं है. इस सुखस्थानके स्वामी श्रीगणेश हैं जिनको सारा संसार आदिदेवके समान वंदन करता है और जो सब देवगण, मनुष्यगण, पितृगण तथा संक्षिप्तमें समग्र सृष्टिगणके स्वामी होनेसे, गणपति, गणाधिपति, गणनाथ, गणेश, इत्यादि अनेक नामोंसे जाने जाते हैं, उन समर्थ प्रभुके पास इस मार्गसे पहुँचना होता है. इनकी शरणमें जानेवाला मनुष्य सब ऋद्धि सिद्धिका भोक्ता होता है; क्योंकि वे सब ऋद्धि सिद्धिके भी स्वामी हैं. फिर ये सब विद्याके भी अधिपति हैं, सब मंगलके दाता और सारे विघ्नोंके विनाशक हैं. इस लिए सब विद्याओं, सब शास्त्रों और सारे शुभ कार्योंमें सबसे प्रथम उनका ही स्मरण–पूजन होता है. इस लिए निरंतर सुख भोगनेकी इच्छावाले तुम लोग, जो नाशवंत जगत्पुरके भयसे भाग आये हो, इस शुभ मार्गसे होकर परम स्थानकी ओर चले जाओ. कहो तो मैं भी अंत तक तुम्हारे साथ चालूँ, जिससे रास्तेमें तुमको किसी बातकी तकलीफ न हो."

यह सुनकर अनेक पथिकोंके मन लालचमें पड़े और कई एक खिसक कर पीछे रहनेके लिए झटपट बैठ भी गये, पर महात्मा सत्साधकने उस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गणेशभक्तको प्रणाम कर इतना ही कहा कि; " हम लोग बहुतही ऋद्धि सिद्धिका त्याग करके आये हैं, इसलिए हमको उसकी आशा नहीं है. विघ्न वहीं है जहाँ विघ्नका नाम नहीं है. जगतकी सारी विद्याओं-मेंसे अपरा विद्या श्रेष्ठ है. वह हमें प्राप्त है; जिस मार्गमें हम जाते हैं वह मार्ग मंगलमय ही है; शास्त्रकी बीचमें जो फँसता है वह निकल नहीं सकता. इस लिए हम तो इस सीधे सड़कसे अच्युतपुर जाना चाहते हैं. हम लोग श्रीगणेशजीको प्रेमपूर्वक प्रणाम कर आगे बढ़ते हैं जिससे हमारे इस अच्युतमार्गमें किसी प्रकारका विघ्न न आवे." इतना कहतेही वह पथिकों सहित आगे चलने लगा.

थोड़ी दूर जानेपर फिर सामने एक अत्यंत देदीप्यमान एक राजमार्ग आया. वहाँसे सूर्यके समान तेजस्वी एक पुरुष आकर, पथिकोंको अपने मार्गका सिद्धान्त समझाने लगा. उसने कहा; " भाग्यवान् पथिको !

सूर्य उपासना.

अपने प्रकाशसे निखिल जगतको जीवन देनेवाला और प्रकाशित करनेवाला हिरण्यरूपके समान सविता—सूर्य देवको छोड़कर दूसरे देवकी उपासना कौन करता है ? जिसकी उपासना करनेके लिए वेदत्रयी आवश्यक आदेश देते हैं और जिसका निरंतर गान करनेसे उसकी उपासनाके महामंत्रका पवित्र नाम ' गायत्री ' पड़ा है. इस " गायत्री " मंत्रमें सिर्फ इस जगत्प्रकाशक देवके सर्वोत्कृष्ट तेजका ध्यान करनेके विषयमें कहा गया है और पवित्र योगी मुनिजन, सब महात्मागण और सब संस्कारयुक्त द्विजगण, निरंतर इस सर्वोत्कृष्ट तेजका ही ध्यान करते हैं, उसीका स्तुतिपाठ पढ़ते हैं और सब प्रकारसे उसीकी उपासना करते हैं. इस प्रतापी देवके उपासक इस लोकमें परम सुखी रहते हैं. वे शरीरसे आरोग्य और दारिद्र्यसे मुक्त रहकर, अंतमें उसके दिव्य लोकको जाते हैं और वहाँ उसीके जैसे दिव्य शरीरवाले होकर अनंतकाल तक सुख भोगते हैं; इस लिए पथिको ! नारायणके दूसरे रूपके समान सूर्यनारायणके समीप जानेका मार्ग प्राप्त होने पर भी, उसको पारकर तुम लोग आगे जानेकी इच्छा क्यों कर रहे हो ? " इसके उत्तरमें सत्साधकने कहा; " देव आपका कथन सत्य है, पर हमें तो इस सीधे सड़कसे अच्युतपुरको जाना है, जहाँ सूर्य, चंद्र या अग्नि इत्यादि किसीके प्रकाशकी जरूरत नहीं है और जहाँ सारा लोक स्वयं ही प्रकाशित है, आनंदमय है और वहाँ जाकर फिर कभी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लौटना नहीं पड़ता है. यह सत्य है कि आपका मार्ग श्रेष्ठ है पर हमें तो देवयान मार्गमें जानेकी कामना है. यह अचिंत्यमार्ग परम श्रेष्ठ है, ऐसा हमारी पथबोधिनीमें बताया गया है और हम लोग उसीका अनुधावन करनेवाले हैं. इस सूर्यमंडलको पार कर जहाँ महात्मा शुक गये हैं उसी ओरको हमारा भी प्रयाण है." इतना कह कर वेदमें भी श्रेष्ठ कहे हुए इस राजमार्गका त्यागकर वह आगे बढ़ा.

विष्णु उपासना

कुछ दूर जानेपर एक सुन्दर तेजस्वी पुरुष आगे मिला. उसके गलेमें तुलसी-कमलकी मालाएँ, मस्तक पर ऊर्ध्वपुंड्र तिलक, शरीर पर निर्मल श्वेत वस्त्र था और वह हरि, गोविन्द, नारायण, आदि नामोंका उच्चारण करते हुए शान्तरूपसे उसी मार्गकी दाहिनी बाजूकी एक अतिरम्य पगडंडी देखकर सब पथिकोंसे कहने लगा; "पुण्यवान् पथिको ! सारी भक्ति मुक्तिके दाता, सब लोकोंके ईश्वर और लक्ष्मीके पति इस प्रकार वैकुंठवासी विष्णुभगवानका यह परम मार्ग मनुष्य देहमें जन्म लेकर, अवश्य प्राप्त करनेके योग्य है. सब इन्हींकी सत्तासे ही हैं, इनकी कृपाको प्राप्त करना ही मनुष्य मात्रका कर्तव्य है. इनकी शरणमें जानेवाला अर्थात् इनका बाना-शरण चिह्न धारण कर, इस मार्गसे जानेवाला जीव अंतमें इनके वैकुंठ लोक-विष्णुलोकमें जा पहुँचता है और वहाँ दिव्य चतुर्भुज रूप धारण कर, नित्य सुख भोगता है. भगवान् विष्णुकी शरणमें जानेसे जगत्पुरके सारे दुःखोंसे बिलकुल मुक्त हुआ पथिक, वैकुंठमें नित्य अधिकाधिक आनंद मानते हुए फिर किसी समय उन दुःखोंके प्राप्त होनेके भयसे बिलकुल मुक्त हो जाता है. इस प्रकारके इस वैष्णव मार्गको लाँघ कर आगे जानेमें न जाने तुम लोगोंने अधिक क्या प्राप्त करना विचार रक्खा है ? इससे तो यही मालूम होता है कि तुम लोग इस मार्गसे अनभिज्ञ हो. इस मार्गमें प्रवेश करते ही सुख और शान्तिका लाभ होता है और सारे दुःखोंके कारण नष्ट हो जाते हैं, इस लिए अंतमें इस मार्गमें कैसा सुख होगा इसके बतलानेकी जरूरत नहीं है. तुम सब ऊर्ध्वपुंड्र धारण किये हो और मुखसे हरिका नामोच्चारण करते हो, इससे स्वाभाविक वैष्णवही हो, तब फिर इस अति पवित्र विष्णुमार्गका अतिक्रमण क्यों करते हो ? यहाँसे आगे बढ़ाही नहीं जाता. इससे परे और कुछ भी नहीं है. क्षरसे परे जो अक्षर कहलाता है वह यही है. "

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिनको अच्छा लगा वे पथिक पीछे रह गये, पर सत्साधक उनकी इच्छा किये विना एकही रीतिसे चलता रहा, और साथके पथिकोंको सावधान करता रहा कि, यहाँ हमें खड़े होकर अभी बात भी नहीं करनी चाहिए; क्योंकि अधिकांश ये सारी भूलभुलैयाँ हैं और मैं आगे चलकर तुमको इन सबका सार कह सुनाऊँगा. अपने संघमेंसे जो जो पथिक पीछे रह गये हैं उनको ऐसा समझना चाहिए कि वे सत्य मार्गसे डिगनेवालोंमेंसे हैं."

आगे चलकर कुछ दूर पहुँचा तो, फिर भी एक मस्त मदोन्मत्त पुरुष उनको सामने मिला. वह मस्तकपर कुंकुम लगाये था और भौहोंके मध्यमें सेन्दुरकी और काली पीली आदि भाँति भाँतिकी बिन्दी किये था, हाथमें अनेक तावीज, डोरे, कड़े और ऐसेही दूसरे विचित्र आभूषण पहने हुए था. आँखें घिरी हुई, लाल और बातें विवेक शून्य थीं. वह आतेही मानों अपनेको सबसे ज्ञानी समझता हो इस प्रकार आडम्बरसे कहने लगा; " अरे मूढ़ो ! जो सत्य वस्तुसे बहिर्मुख रहनेवाला अज्ञानी है वही विना समझे भटका करता है ! जिस सत्तामें समग्र जगत् और ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि जगत्पति बँधे हुए हैं, वह महासत्ता–महाशक्ति, जगत्की जन्मदात्री होनेसे जगन्माता, जगदंबा, और जो सबको कारण किये हुए है ऐसी आद्यशक्ति, ईश्वरीको पहिचाने विना, जो कुछ है वह सब व्यर्थ दौड़ धूप है. जो आदि माया महाशक्ति जगदंबा, सब प्राणियों और पदार्थोंमें शक्ति–सत्तारूपसे निवास कर रही है और जो शक्ति नामसे ही जानी जाती है वह सबकी आधाररूपा और माता है. वह शरणमें आनेवालेका मातारूपसे लालन पालन करती है, उसीके घर–लोकमें जानेका यह सुखमय मार्ग है, उसको लाँघ कर तुम लोग कहाँ जाते हो ? पीछे फिरो, चलो तुमको मैं वहाँ ले जाऊँ. अरे ! साक्षात् विश्वमाताको त्यागकर दूसरेकी शरणमें कौन मूढ़ जायगा ? छोटा बच्चा भी अपनी माताको त्यागकर दूसरी स्त्रीका दूध नहीं पीता, तुम इसी परसे समझो और भूलोंमें न भटको. देखो, मार्गमें प्रवेश करते ही वह तुमसे कैसा प्यार करती ! अरे ! सब प्रकारके सुख और वैभव तो इस आदिमाताके घरहीमें हैं."

शक्तिउपासना

इसके कथनको कुछ भी मान न कर, सत्साधक संघ सहित आगे बढ़ा.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर अब समय हो जानेसे विश्राम किये विना नहीं चल सकता था. कुछ दूर आगे जाने पर एक पथिकाश्रम आया, उसीमें सब पथिकोंने मुकाम किया. पासका उपवन बहुत ही सुन्दर था और पथिकाश्रमके समीपसे होकर प्रवाहित होनेवाली छोटी नदीकी शोभासे और भी शोभायमान हो गया था. सत्साधक सहित बहुतसे पथिकोंने उसको देखा और समय हो जानेसे संध्यावंदनादि करनेके लिए पथिकाश्रमसे बाहर गये. वह सुयोग पाकर, एक विचित्र पुरुष, पथिकाश्रममें घुस गया ! और इस प्रकारसे उपदेश करने लगा कि जिसको सुनकर पथिकाश्रमके भीतर बैठे हुए पथिकोंका मन विह्वल हो जाय. पहले उसने सत्साधक आदि सब पथिकोंको निरा-मूर्ख ठहराया. फिर कहने लगा; " अरे मूर्खो ! क्या तुम साक्षात् जगदीश्वरी महामायाको नहीं जानते ? अरे इसके विना संसारमें है ही क्या ? जो इनकी शरणमें नहीं आया, उसने सारा संसार व्यर्थ खोया. इस लोक और परलोकके सुख तो इन्हींके हाथमें हैं. देखो ! आरंभमें ही कैसा प्रत्यक्ष चमत्कार है, कि मोक्षप्राप्तिके दूसरे सब मार्ग—अरे सब तुच्छ मार्ग, जिनमें अपार दुःख, कष्टरूप साधन, दुःखमें ढकेलनेवाले नियम सुखका त्याग, विराग, स्मरण, भजन और दूसरे अनेक झंझट हैं और वैसा होनेपर भी चूहा कि बस गया ! पर इस भगवती भवतारिणीके मार्गमें किसी करके वैसे कष्ट तो क्या बल्कि उल्टा परम सुख है. माता जैसे अपने प्रिय पुत्रका प्यार करती है और पुत्र जो जो इच्छाएँ करता है उन्हें वह माता पूर्ण करती है उसी प्रकार यह जगन्माता, अपने शरणागत बालकका प्यार करती है और सब इच्छाएँ पूर्ण करती है ! ऐसा सरल मार्ग छोड़कर भ्रममें पड़कर आगे जाना चाहते हो ? सोचो और शीघ्र चलो. मैं तुमको यह सुन्दर मार्ग दिखाऊँ. जगन्माताके लोकमें जानेका एक मार्ग जो तुम पार कर आये हो यह उससे भी बहुत सुखकर है. पर यह गुप्त मार्ग है. जो तुम जितना सुन्दर होता है वह उतनाही गुप्त और अलभ्य भी होता है. उसी प्रकार यह मार्ग अति सरल और सुखरूप होनेसे ही गुप्त है ! इस लिए चलो, मैं इस मार्गका प्रदर्शक हूँ, तुमको सही सलामत वहाँ ले जाऊँ. वहाँ पर तुम्हें मुँह माँगी सिद्धियाँ मिलेंगी ! और वहाँ परम प्रेम समागम होगा ! " इस प्रकार उसकी लुभानेवाली बातें सुनकर, जिनके पास अब भी कुछ संसारभारकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पोटलियाँ थीं, उनके मन दुष्ट भोगकी आशाओंकी उत्तेजनासे विचलित हो गया ! अनेक लोग उस भक्तके साथमें चले भी गये.

यह सब बनाव अंतरिक्षसे एकाग्रतापूर्वक देखनेवाले महाराजा वरेप्सु आदि विमानवासी, गुरु वामदेवजीसे नम्रतापूर्वक पूछने लगे कि " कृपालु ! महात्मा सत्साधकके संघमेंसे जो पथिक अच्युत मार्ग–सबके मध्यमें रहनेवाला शुद्ध शान्त निरुपद्रव मार्ग त्यागकर, टेढ़े मार्गोंपर चले गये हैं अंतमें उनकी कैसी गति होगी ? और उनमें भी वह मदमत्त पुरुष, देवीके अति गुप्त मार्गका नाम बतलाकर पोटलियोंके भारवाले पथिकोंको सत्साधकसे छिपाकर घसीट ले गया है, वहाँ उनको कहाँ ले जायगा ? " बटुक वामदेवने कहा; " राजा ! यह पवित्र अच्युत मार्ग तो बिलकुल सादा, मिथ्या लालचोंसे रिक्त और सत्त्वशील है; अंतमें यह सात्विक सुखकी प्राप्ति कराता है. दूसरे मार्ग तो कोई रजोगुणी, कोई रज–तम–सत्त्व इन तीनों गुणोंसे मिश्रित हैं. जो सुख आरंभमें विषके तुल्य लगता है—अर्थात् प्राप्त करनेमें अत्यंत कठिन होने और बुरी लालचोंसे शून्य होनेसे अप्रिय लगता है, पर अंतमें—अर्थात् उसमें यथार्थ प्रवेश होजाने पर अमृतके समान मधुर लगता है और किसी प्रकारके विषयोंसे नहीं परन्तु आत्मविचारमें—अच्युत प्रभुकी प्राप्ति होनेवाले विषयोंके विचारमें मग्न होनेवाली सुप्रसन्न बुद्धिसे प्राप्त होता है, वह सुख सात्विक कहलाता है. पर जो सुख विषयों और इन्द्रियोंके संयोगसे उत्पन्न होता है और आरंभमें अमृत जैसा मधुर लगता है तथा अंतमें नाशवान् होने और दुःखोंको पैदा करनेवाला होनेसे विषवत् कटु हो जाता है, वह राजस सुख है; तथा जो सुख आरंभमें व अंतमें भी चित्तको मोह उत्पन्न करानेवाला होकर निद्रा आलस्य और प्रमाद—भ्रमसे उत्पन्न होता है, वह तामस सुख है. इस भेदसे समझ लो कि वास्तवमें देखा जाय तो सात्विकके सिवा दूसरे सब सुख दुःखरूपही हैं."

" परमसात्त्विक अच्युत मार्गके अनुगामियोंको आरंभसे मार्गमें प्रत्यक्ष कोई लाभ या सुख नहीं दिखलाई देता, इससे उसके अंतिम गुणको न जाननेवाले बेचारे कामनावाले–जगतके सुखकी इच्छावाले–फलकी कामनावाले और जिनकी वासना प्रबल हैं, वे इस सादे, फीके और रुखे मार्गको दुःखरूप मानकर, देखनेमें सुन्दर, पर कीच कंटकसे परिपूर्ण टेढ़े मार्गोंपर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चले जाते हैं, वहाँ तो जो होता है वही मिलता है. वहाँ जानेवाला अनेक दुःखोंमें पड़ता है. हम लोगोंने जो जो टेढ़े मार्ग देखे, जिनमेंसे किसीको भी सराहे विना यह सत्साधक यहाँ तक चला आया और आगे भी इसी प्रकार चला जायगा, वे सब टेढ़े मार्ग अच्युतपुरको नहीं जाते, पर वे अंतमें फिर भी उस नाशवंत लोककी ओर मुड़ जाते हैं और उनके अनुगामी, वासनायुक्त होनेसे, कामना की वासनामें फँसकर, आगे जानेके लिए असमर्थ होकर, मार्गमें भटक मरते हैं, दुःखी होते और अंतमें उन्हें फिर जगत्पुरमें जाकर निवास करनेका समय आता है और वहाँ जाकर, कालके भक्ष होकर आवर्तन विवर्तन-जन्म मरणादीका भोग भोगते हैं. परमात्माविनाका मार्ग, भयप्रवृत्तिका ही मार्ग है. ऐसे मार्गमेंसे पीछे फिरने और बंधनाशक निवृत्तिमार्गमें जानेके लिए सत्साधकने बहुत उपदेश दिये हैं और उपदेश देनेपर भी जिसे किसी तरह भी अनुभव नहीं हुआ ऐसी नराकृतिको मिट्टीके बावाजी ही समझना चाहिए. उसको किस तरह उपदेश दिया जा सकता है ?-श्रेय एक है; प्रेय (प्रेम) एक है. जीवको ये दोनों भिन्न भिन्न कार्योंमें नूतनतासे दर्शन देकर बंधन पैदा करते हैं, पर इनमेंसे जो श्रेयका ग्रहण करता है, वह कल्याण-परम बंधनाशको प्राप्त करता है और जिसको प्रेमकी लगनी लगी है वह अर्थहीन होता है. राजन् ! जीवको श्रेयःप्राप्तिमें वासनात्याग ही श्रेष्ठ है. जीवको देहकी वासना त्यागकर, भोगकी भी वासना त्याग देनी चाहिए. फिर भाव अभाव दोनोंको त्याग देना चाहिए. इनका त्याग करनेसे ही निर्विकल्प सुखका भोक्ता हो सकता है. यह वासना क्या है ? पूर्वापार विचार किये विना दृढ़ भावनासे, पदार्थोंपर जो आसक्ति होती है वही वासना है ! गुरु उपदेश दे शास्त्र समझले, विचार करे, पर वासनासे मुक्त हुए विना मुक्तिही नहीं है. इस संघमें इस प्रकारसे मुक्त हुए बहुत कम हैं, इसीसे फिर चौरासीके चक्करमें फिरते हैं. उसमें भी अंतिम गुप्त टेढामार्ग, जो अच्युतमार्गकी बायीं बाजूपर है और जिसको पहले यहाँसे होकर जानेवाले महात्मा अच्युत पथिकोंने बारंबार त्यागते रहे हैं इस कारणसे उस मार्गके अनुगामियोंने उसको सिरेपर गुप्त कर डाला है; वहाँ जानेवालेको जगत्पुरमें तो क्या परन्तु सबसे नीचे नरकमें भी ले जाकर वह पटक देता है. इस लिए वह मदोन्मत्त पुरुष, जो मूर्ख पथिकोंको उल्टा समझाकर पथिकाश्रमसे चुप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चाप ले जानेका यत्न करता है, उन विचारोंकी जो दुर्दशा होगी, तदर्थ बड़ा खेद होता है !"

गुरु वामदेवजी फिर; बोले:–"परन्तु पुण्यात्माओ ! यह दीखनेवाला भ्रष्ट मार्ग, यद्यपि क्रियाओंसे भ्रष्ट सही है, परंतु पथिकोंको इस प्रकारसे भ्रष्टकर नाश करनेका उसका हेतु नहीं है. मालूम होता है कि सच्चे दृढ़ विरागी मनके पथिकोंकी परीक्षाके लिए ही उसकी रचना की गई है. जगत्पुरसे जिसकी अरुचि होजाती है वह मनुष्य अच्युतमार्गमें आरूढ़ होता है और उसमें भी जगत्पुरके वा टेढ़े मार्गोंके इंन्द्रियजन्य सारे सुखोंसे जिसको दृढ़ विराग हुआ हो वही पथिक, प्रयत्न करते हुए ठेठ अच्युतपुर पहुँचता है. उसका दृढ़ विराग कब समझमें आता है जब इस भ्रष्ट मार्ग पर हमको मालूम होनेवाली सब विषयपोषक सामग्री अनायास प्राप्त होने पर और उनसे गाढ़ा संसर्ग होनेपर भी उस महाभागका मन जराभी उसके उपभोग करनेकी ओर नहीं डिगता उसीको सच्चा वैराग्यवान् समझना चाहिए. दूसरेकी स्त्री माताके समान, परधन मिट्टी जैसा मानकर सब प्राणियोंपर जिसकी समदृष्टि है, वही सच्चा विरागी है ! यह विराग जगतका त्याग करनेसे ही होता है. यह जगत्का त्याग किस प्रकारसे हो ? स्त्री व धनका त्याग होते ही जगतका त्याग होता है और जगतका त्याग हुआ कि सारे मनोरथ पूर्ण होते हैं. जगतके दिखलाई देनेवाले ये सारे पदार्थ विषयपूर्ण हैं. ये विषय आज नहीं तो कल, वर्ष या पांच वर्ष पचीस वर्षमें नष्ट हो जानेवालेही हैं, तब जीवही उन्हें हर्षपूर्वक क्यों न त्याग दे ? जो जीव स्वेच्छासे विलासको तज देता है, वही अपार सुख भोगता है. पर इस विलाससुखका त्याग करना कठिन है. उसका त्यागी महात्मा, अपनी उस विरक्तिके फलरूपसे सुखमय अच्युतपदको प्राप्त कर सकता है और इस प्रकार सबसे विरक्तिप्राप्त चित्तसे ही अच्युत परब्रह्मकी अनन्य उपासना की जा सकती है. पर उस बातका सच्चा मर्म न जानकर, मूर्ख लोग इस विषयसागरमें पड़कर अपना विनाश करते हैं. इन पथिकोंको यदि भला बुरा जाननेकी शक्ति नही थी तो उनको अपने गुरुरूप सत्साधकके कथनपरही विश्वास रखकर रहना चाहिए था. अज्ञ मनुष्य भी सिर्फ शास्त्र अथवा गुरुके वचनोंपर दृढ़ विश्वास रखकर चलते हैं तो विना प्रयत्न सिर्फ श्रद्धा—अंधश्रद्धा–भक्तिसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही अपना कल्याण करते हैं. पर इन मूढ़ोंने तो महात्मा सत्साधककी पवित्र आज्ञाका भंग किया, उसीका यह फल—फिर जन्ममरणरूप कालका विलासभोग प्राप्त करेंगे. इस लिए पुण्यजनो ! प्रत्येक पथिक उपासक-साधकने, अपने उपदेश करनेवाले गुरुकी दृढ मनसे आज्ञा पालन करना चाहिए, यह उसका प्रधान धर्म और प्रथम कर्तव्य है. चलो, सब समय हो गया है. कीर्तनका आरंभ करें."

अब यहां क्या हुआ वह देखना चाहिए. स्नानसंध्यादिसे निवृत्त होकर पथिकसमूह सहित महात्मा सत्साधक अच्युत नामकी गर्जना करते हुए पथिकाश्रममें आया और सब लोग बैठ गये तब सारे संघको देखकर वह बोला; "अहो ! कैसा आश्चर्य है ! देखो, हम लोग जगत्पुरसे बाहर हुए थे तो हमारे साथ चलनेके लिए कितने बहुतसे मनुष्य निकलते थे. उस समय मनुष्योंके बाहुल्यके कारण संघको चलनेके लिए मार्गभी नहीं मिलता था. अब हम कितने लोग रह गये हैं ! मार्गमें बहु बार आनेवाले लोग और भूलभुलैयोंमें मुग्ध होकर फँसते फँसते अंतमें यहांतक हम सिर्फ थोड़ेही बच रहे हैं और अभी कौन जानता है कि ठेठ अच्युतपुर पहुँचने तक क्या होता है ! इसके लिए सर्वेश्वर प्रभु-अच्युतने स्वयंही श्रीमुखसे स्पष्ट कहा है कि:—हजारों मनुष्योंमेंसे कोई एक मनुष्यही मुझको प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करता है और वैसे हजारों यत्न करनेवालोंमेंसे मेरे मार्गमें लगे हुए—मेरा भजन करनेवालों—मेरे लिए सर्वस्व त्याग करने-वालोंमेंसे कोई एकाधही मुझे यथार्थसे भले जानता है," जानलेने पर भी प्राप्त करना तो दूरकी बात है. इस प्रकार पथिकोंको सच्चे कल्याण मार्गसे गिरानेका काम जहाँ देखो वहाँ वह दुष्ट कामदेवहीका है ! जबसे हम लोग इस उपासनासोपानमें आरूढ हुए हैं तबसे जितने मार्ग देखे, उनमेंसे प्रत्येक मार्गका उपदेश करनेवाला मनुष्य यद्यपि उस मार्गका अनुयायी जैसा दीखता था, पर यथार्थ देखनेपर गुप्त रूपसे वह इस कामदेवकाही अनुयायी था; क्योंकि उनमेंसे प्रत्येकके उपदेशमें यदि तुम समझसके हो तो गुप्तरूपसे अनेक कामनाएँ-वासनासेही हलचाल मचा रहा था. गणेशका उपासक उस मार्गमें आरूढ़ होनेवालेको गणेशकी कृपासे अनेक ऋद्धिसिद्धियोंकी प्राप्तिकी आशा बतलाता था; सौरमार्गी सूर्यलोकमें जाकर सूर्यके समान तेजस्वी शरीरसे अनंतकाल सुख और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस लोकमेंभी सुख भोगनेकी बात बतला रहा था; और उसी प्रकार विष्णुमार्गी तथा शक्तिमार्गीभी अनेक अनेक आशाओं और परस्परकी निन्दामें मस्त मालूम होता था. अब भी ऐसे कई मार्ग सत्य मार्गसे भुलानेवाले आयेंगे, जिनसे हमे भलीभाँति सावधान रहना चाहिए." इसके बाद नित्य नियमानुसार कीर्तन करके सो सब सो रहे।

दूसरे दिन सवेरे स्नानसंध्यादि करके अच्युतका स्मरण करते हुए संघ आगे बढा. कुछ दूर जानेपर फिर उनको एक बड़े राजमार्गमेंसे एक भव्य पुरुष आगे मिला. वह सारे शरीरमें भस्मका लेप किये था, सिरपर जटाजूट बाँधकर, गलेमें बड़े बड़े रुद्राक्षोंकी मालाएँ पहना था; एकहाथमें लोहेका बड़ा त्रिशूल और दूसरेमें डमरूनामका बाजा डिमाक् डिमाक्

शिवमार्ग

ध्वनिपूर्वक जोरसे बजाकर अपने आनेकी सूचना देता था, 'हर हर महादेव, जय पार्वतीपते, जय शंभो' इत्यादि शब्द बोलते हुए वह पथिकोंको सम्बोधन करके बोला; "अहो ! तुम्हारा धन्य भाग्य है कि जिससे तुम इस कल्याणमार्गरूप शिवमार्गतक कुशल पूर्वक आ पहुँचे हो ! पुण्यात्माओ ! आज तुम्हारा परिश्रम सफल हो गया; क्योंकि तुम जगदगुरु और सर्वेश्वरके समान शिवजीके लोक परम सुखरूप कैलास लोकमें आनेवाले मार्गके सिरपर आ पहुँचे हो. देवोंकेभी देव शंकरकी शरणमें आकर उनके मार्गका अनुसरण करनेवाला प्राणी, अवश्यमेव शिवलोकमें जाकर, परम सुख भोगता है. शिवलोक—कैलास, बिलकुल आनंद और सुखकाही घर है. शिव कल्याणवाचक और शंकर सुखकर्त्ता हैं—अर्थात् शरण आनेवालेको अवश्य परम सुखके दाता होनेसे ही उनका नाम शंकर है ! भगवान् शिवजीके शरणागतको परलोकमेंही सुख मिलता है सो बात नहीं है, इस लोकमेंभी वह परम सुखी होता है; क्यों कि जगत्में अपने भक्तको धन, धान्य और पुत्र पौत्रादिकका सुख देनेमेंभी ये शंकर भोलानाथही सबमें अग्रणी हैं. वे ऐसे कृपालु और प्रसन्न स्वभावके हैं कि थोड़ीसी सेवाके बदलेमें अपने भक्तको बड़ीसी समृद्धि दे देते हैं. फिर शंकर भगवान् सबके गुरुभी हैं ! उन्हीं शंकरकी शरणमे चलो !" सामने खड़े होकर इस प्रकार उपदेश देनेवाले शिवमार्गीको उत्तर दिये विना काम नहीं चल सकता था. इस लिए महात्मा सत्साधक बोला; "अहो ! भगवान् शंकर जो हमारे और सारे विश्वके श्रेष्ठ गुरु तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ईश्वर हैं और स्वयं सुखरूप हैं, दूसरोंको सुखके देनेवाले हैं, उनको हमारा अनेकवार प्रणाम है. हम लोग इनके मार्गका उल्लंघन नहीं करनेपर इनके बतलाये हुए मार्गका अनुधावन करते हैं. आपने जिन सुखोंका वर्णन किया वे तो आत्माके सुख नहीं हैं, इन्द्रियोंके सुख हैं. साक्षात् शंकरने भी कहा है कि, ' इन्द्रियाँ अपना अपना विषय तृप्त करें, तो इससे सुख नहीं होता, सिर्फ मनके औत्सुक्यकी क्षणभर शान्ति ही होती है. ' श्रीशंशर अनेकरूप धारी हैं. 'त्रयी' 'त्रिमूर्ति' और ॐकाररूप श्रीशंकर हैं. इनके धामका नाम कैलास है, पर महादेवका मुख्य धाम तो ' तुरीय ' है. हम वहीं जाना चाहते हैं, क्योंकि जिन देवने, सारे जगतको नाशके मुखमें फेकनेवाले कामको भस्म कर दिया है उन देवके मुख्य श्रेष्ठ धाममें निवास करना क्या अहोभाग्य नहीं है ? हरि और हर दोनोंको प्रणाम है ! जहाँ हरिहि प्रथम हैं, उस ओरको हमारा प्रयाण है; क्योंकि वहीं हर भी निवास करते हैं. आपके वर्णन किये गये सुख, सुख नहीं पर विषय हैं, इन विषयोंसे मनुष्यको सुख कैसे हो सकता है ? भ्राँतिवाले जीवही इस दुःखमें सुखकी कल्पना करते हैं. हम तो सत्–चित्–आनंदसे शंकरके भक्त हैं. आपको प्रणाम ! और शंकरको प्रणाम ! जय अच्युत ! " इतना कह प्रणाम कर संघ सहित वह अपने मार्गमें चलने लगा. उस समय, उस महात्माके कथनका यथार्थ रूपसे गर्भित अर्थ न समझ सकनेसे अनेक पथिक, शिवमार्गमें जानेके लोभसे पीछे रह गये.

अब जो मार्ग था वह सीधा था और उसमें किसी ओरसे भी शाखाएँ नहीं फूटीं थीं. वह दोनों ओर खड़े हुए सुन्दर घिरावदार वृक्षोंकी छायासे आच्छन्न था. स्वतः गिरकर पड़े हुए रंगबिरंगे फूलोंसे सुशोभित और अनेक प्रकारके पक्षियोंके सुललित शब्दोंसे कूजित उस मार्गसे होकर, महात्मा सत्साधक अपने संघ सहित चला जा रहा था. उस समय उसके मनमें विचार हुआ कि, ' बीचमें पड़े हुए अनेक मार्गोंका अतिक्रमण कर, उनके* अनुगामियोंके उन मार्गसंबंधी किये हुए उपदेशोंकी परवा न करता हुआ, और उनको उनके उपदेशोंका उत्तर भी न देता, मैं संघको इसी प्रकार अपने साथ घसीटते हुए तो आया हूँ, पर ऐसा होनेसे मार्गका रहस्य न समझनेवाले कवि अज्ञान पथिक पीछे रहते गये और साथमें आनेवाले भी

* उन मार्गोंका अनुसरण करनेवाले.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यद्यपि चले आये हैं सही, पर शंकाशील तो अवश्य ही होंगे; इस लिए अब उनका समाधान करना चाहिए.' ऐसा विचार कर वह अपनी गति मंद करके सब पथिकोंको सम्बोधन कर इस प्रकार बोलना आरंभ किया कि जिससे सब समानतासे सुन सकें.

वह बोला; "मेरे प्रिय पथिको! हमारे यहाँ तक आते अपने इस मार्गमें अनेक उपासनामार्ग मालूम हुए हैं. उन मार्गोंके अनुयायियोंने हमें अपनी २ साथ बनानेके लिए नाना प्रकारके उपदेश दिये, पर उनमेंसे एककी भी परवा न कर और उनको कुछ भी उत्तर दिये विना हम लोग सरलतासे चले ही आये हैं. पर इसके संबंधमें तुमको बहुत कुछ जानना है. इन टेढ़े मार्गोंमें योगमार्ग, गणेशमार्ग, सूर्यमार्ग, विष्णुमार्ग, देवीमार्ग और शिवमार्ग इत्यादि प्रधान मार्ग हैं! उन मार्गोंके अनुयायियोंने अपने अपने उपास्य देवोंको सर्वोत्कृष्ट मानकर ही ऐसा कहा है कि उनकी शरणमें जाना चाहिए. इसके विना यथार्थ उपासना नहीं हो सकती. पर पहले तो उपासनाही किसकी करनी चाहिए, इस विषयका बहुत विचार करना है. दृश्य और अदृश्य स्थावर और जंगम सारी सृष्टिका पिता—नियंता प्रभु तो सिर्फ एकही है. जगत्में कही भी दो प्रभु नहीं हैं. वे प्रभु-ब्रह्म निर्गुण, अचिन्त्य और गूढ़ होनेसे समझमें प्राप्त नहीं हो सकते. उनकी उपासना करते, अर्थात् उनकी शरणमें जाकर उनको प्राप्त कर-लेनेका मार्ग बहुत ही सूक्ष्म है. सब उपासकोंका आवश्यक धर्म भी इन अविनाशी परमेश्वरकी ही उपासना करता है; पर उन सर्वेश्वरकी उपासना तो, इस जगत्पुर और मार्गके इंद्रियजन्य नाशवंत सुखोंकी कामना न कर सिर्फ अविनाशी परम पद-सुखमय ब्रह्मपदकी प्राप्तिके लिए, अनन्य भावसे उन कृपालु प्रभुकी शरणमें जानेकी ही कामना करनी है. अपनी इस पथबोधिनीमें कहा है कि, उपासना कौन सत्य है कि जिससे ऐसा अनुभव न होता है कि, 'मैं सब प्राणियोंमें समानसे निवास करता हूँ, मुझको किसीसे द्वेष नहीं है, न मुझको कोई प्रिय है, पर भक्तिसे मुझको जो भजता है वह मुझमें और मैं उसमें हूँ,' ऐसा माननेवाला ही सच्चा उपासक है. ऐसी उपासनाका सच्चा अधिकारी, शुद्ध और दृढ़ मनके उपासक विना क्यों कर हो सकता है? अब जिनकी ऐहिक और मार्गके इंद्रियजन्य नाश होनेवाले सुखोंकी उपासना दूर नहीं हुई उनको अनेक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तरहके सुख प्राप्त करनेकी विविध रुचियाँ होती हैं और जहाँ अपनी रुचिके अनुसार सुख प्राप्त होनेकी आशा लगी रहती है वहीं अपना सर्वोत्कृष्ट उपास्य देव मानकर वे उसका अनुसरण करते हैं. हम लोग देखते आये हैं कि, योगादि समस्त मार्गोंके उपदेशक अपने मार्गमें अनेक प्रकारकी ऐहिक सुखसमृद्धि मिलानेका लालच पथिकोंको दिखलाते थे, जिसमें ललचाकर अपने संघके अनेक अस्थिर मनके यात्रीय मुमुक्षु लोग, जिनकी वासनाका क्षय नहीं हुआ, उन मार्गोंमें चले गये. पर वास्तवमें वे सत्य मार्गसे पतित ही हुए हैं. पतित इसलिए कि, प्रथम तो वे ऐहिक सुखकी लालसावाले थे. अनन्यभाव विना-भ्रष्टचित्तवाले होनेके कारण ही, उन मार्गोंके अधिकारी देव अर्थात् उन मार्गोंके अंतमें प्राप्त होनेवाले ये गणेशादि देव या उनके लोक गणेशलोक, सूर्यलोक इत्यादिमें पहुँच ही नहीं सकेंगे. कदाचित् कोई अनन्यभाववाला पथिक दृढ़चित्तसे मार्ग चल कर—उपासना करके उस उपास्य देवके लोकमें जा पहुँचे, तो भी वे देव और वे लोक, बहुत समयके बाद भी, अपने सर्व शक्तिमान् परमेश्वर अच्युत परब्रह्ममें, अंतमें लय हो जानेवाले हैं, इसलिए उन लोकोंमें जाकर भी अविनाशी सुखकी आशा तो व्यर्थ ही है,-अंतमें भी उसको अच्युतपुरमें आये विना दूसरी गति नहीं है. इसलिए स्वयं अच्युत प्रभुने ही अपने श्रीमुखसे इस विषयमें एक प्रियतम पथिकसे कहा है कि—

" कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यंतेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥

अर्थः—भिन्न भिन्न कामनाओंके द्वारा जिसका ज्ञान गुम हो गया है ऐसा मूढ़ पथिक मुझको छोड़कर दूसरे देवोंको भजता है. और अपनी प्रकृतिके अनुसार उन देवोंमें नानाप्रकारके नियमोंसे बँध जाता है.

"फिर परमात्माने कहा है कि-'जो मनुष्य, जिस देवमें भक्ति रखकर श्रद्धासे उसकी आराधना-उपासना करनेकी इच्छा करता है, उसकी श्रद्धा उस देवतामें मैं स्थिर करता हूँ; क्योंकि सब देवोंका देव और ईश्वर मैं ही हूँ;'फिर वह मनुष्य उस श्रद्धासे युक्त होकर उस देवकी उपासना करता है और मेरी ही निर्मित की हुई कामनाओंका फल उसको प्राप्त होता है; क्योंकि सबका नियंता मैं हूँ, सारी सत्ता मेरे हाथमें है.' पर इससे क्या लाभ? ऐसे अल्पबुद्धि मनुष्यको उसकी उपासनाका जो फल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिलता है, वह तो नाशवान ही होता है. इस प्रकार इच्छा—कामना या द्वेष-से जो सुख दुःख पैदा होते हैं—अर्थात् नानाप्रकारकी कामनाओंसे उपासना करनेपर जो सुखादि फल प्राप्त किये जाते हैं, उनके कारण फिर जगत्पुरमें जा पड़नेकी बला—जन्म मरणके रगडेमें वह जा पड़ता है. इस कामसे द्रव्य, पुत्र, कीर्ति इत्यादि भोगोंके भोगनेकी जो इच्छा होती है, वही वासना है. इस वासनासे भेदबुद्धि होती है और भेदबुद्धिसे अन्तःकरण इधर उधर खींचता है और इससे ब्रह्म लग्नसे दूर होता है. देवगुर्वादिमें एक प्रकारकी वासनायुक्त श्रद्धासे बँधता है, पर इस बँधनेवाले जगत्पुरमें फिर जानाही पड़ता है और 'इस प्रकार जगत्पुरसे लगाकर ठेठ ब्रह्मलोक पर्यन्त (जिसमें सब दिव्य स्वर्ग और अंतरिक्षके सारे लोक भी आ जाते हैं उसमें निवास करनेवाले सारे जीव) मनुष्य, देव, राक्षस इत्यादि सब, फिर जगत्पुरमें आ पड़ने अर्थात् जन्ममरणके भारी भयमें ही रहते हैं. सिर्फ मेरी शरणमें आनेवाला जीवही इस बड़े भयसे—जन्म-मरणके दुःखसे सदाके लिए मुक्त हो जाता है;' इस प्रकार श्री प्रभुकी स्वयं आज्ञा है. इस लिए ही इस दिव्य मार्गमें आरूढ़ होनेवाले प्राणियोंको दृढ़ भावसे केवल उन्हींका आश्रय लेना चाहिए और उन्हींके प्राप्त करनेकी उत्कंठा रखनी चाहिए कि जिनमें निवास कर लेने पर फिर जन्मही नहीं लेना पड़ता. मात्र प्रभुके भक्तही उनके निकट जा सकते हैं. पर इस मार्गमें आ जानेपर भी जो अन्य देवके उपासक हैं वे उसी देवसे जा मिलते हैं, ऐसा स्वयं प्रभुने ही कहा है. फिर, 'जो देवोंकी उपासना करते हैं, वे देवलोककी ओर जाते हैं, जो पितरोंकी भक्ति करते हैं, वे पितृलोकमें जाते हैं. भूत प्रेतादिककी भक्ति करनेवाले उनके लोककी ओर जा पहुँचते हैं; परन्तु प्रभु कहते हैं कि, 'जो मेरी भक्ति करते हैं, वे मुझसे आ मिलते हैं.' इस लिए दूसरे मार्गमें जानेपर फिर पुनरावर्तन—जन्म मरणका झगड़ा सिरपर आया हुआ ही समझो ! क्योंकि जो देवादि स्वयं ही पुनरावर्तनके भयमें हैं उनकी शरणमें जानेवाले जीव, उस भयसे कैसे मुक्त हो सकते हैं ? "

" इस लिए प्रिय पथिको ! मार्गमें आनेवाले ऐसे शाखामार्गों और भूलभुलैयोंमें न फँसकर, सिर्फ अपने प्रभु अच्युतकी प्राप्तिके लिए, हमें बीचके इस सीधे मार्गसे ही चले जाना है. ये परम पुरुष अच्युत, जिनमें सारे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राणियोंसे पूर्ण यह सृष्टि समाई हुई है और जिनकी शक्तिसे हिल और चल सकती है, तभी प्राप्त हो सकते हैं जब उनके चरणोंमें अनन्य भक्ति होती है, जिन्हें इन परम पुरुष अच्युतकी प्राप्ति होगई, वे सबसे भाग्यशाली हैं. वे सब साधन कर चुके. उनके संबंधमें प्रभु अच्युतने स्वयंही कहा है कि, 'जिन्हें मैं प्राप्त होगया, वे महात्मा हुए और उनको महासिद्धि प्राप्त होगई. तथा इससे उनके दुःखके स्थानरूप और अशाश्वत-नाशवान् जो जन्म है, वह फिर प्राप्त नहीं होता है; क्योंकि, मेरा परम धाम-श्रेष्ठ स्थान, जो अव्यक्त, अक्षर, ब्रह्म इत्यादि नामोंसे जाना जाता है, उसीको परम गति कहते हैं.' उस स्थानके प्राप्त हो जानेपर फिर वहाँसे मनुष्य नहीं लौटता."

इतना कह कर महात्मा सत्साधक फिर बोला, "पुण्यवान् पथिको! ऐसे अच्युत धामकी ओर जानेका यही पवित्र मार्ग है, इसीसे दूसरे किसी-भी मार्गको हमें गणनामें नहीं लेना चाहिये. इस पवित्र पंथकी एक और भी विशेषता है, उसको तुम देखो. चाहे जैसा दुराचारी मनुष्य हो वह भी यदि विशुद्ध अंतःकरणसे, अच्युत प्रभुकी शरणमें आकर, इस मार्गमें आरूढ़ होता है वह अंतमें अच्युतधाममें पहुँच जाता है, नाशको प्राप्त नहीं होता. इसके लिए प्रभुने स्वयंही कहा है कि, 'कदाचित् कोई बड़ा दुराचारी हो, तो भी अनन्य भावसे यदि वह मेरा भजन करता है तो उसको साधूही जानो. क्योंकि वह उत्तम मार्गमें आया है और इससे उसकी बुद्धि शीघ्रतासे धर्ममें लग जाती है तथा अंतमें उसे अविनाशी शान्ति-सुख प्राप्त होता है.' इस परसे हमें दृढ़तापूर्वक ध्यानमें रखना चाहिए कि, कालान्तरमें भी, विशुद्धि प्राप्त प्रभुका भक्त नाशको प्राप्त नहीं होता."

"फिर प्रिय पथिको! अपने इस अच्युतपथमें ऐसी भी कोई अडचन या प्रतिबंध नहीं है कि मनुष्य विशेषही इस मार्गमें आ सकता है. अच्युत प्रभुको तो हम सब एकसे ही हैं. इस लिए इस मार्गमें आनेके लिए उन कृपालुने सबको समान स्वतंत्रता दी है. उन्होंने स्वयं कहा है कि, "मेरा आश्रय करनेवाला चाहे स्त्रीहो, वैश्यहो, शूद्र हो या जो हो और चाहे जैसी पापरूप नीच योनिमें जन्म लिया हो, तथापि वह परम गतिको प्राप्त होता है और मेरे परमधामकी ओर जाता है, तब पुण्य पवित्र कुलमें जन्म लेनेवाले मनुष्य, पुण्यरूप कर्म करनेवाले ब्राह्मण और भक्तिमान् राजर्षि, मेरे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पदको प्राप्त करें, तो इसमें कहनाही क्या है ?" इस लिए यह देह जो सबको प्राप्त हुई है, अनित्य और असुख-दुःखरूप है, इससे उसमें लुब्ध न होकर, प्रभुको भजो, उनकी आज्ञाका अनुसरण करो, उनकी भक्ति करो, उनसे एकता करो और उन्हींमें लीन हो जाओ. प्रभु कहते हैं कि, "सब प्राणियोंमें मैं समान हूँ, अर्थात् मेरे लिए सभी समान हैं, कोई अप्रिय या प्रिय नहीं है;" परन्तु जो मुझको भक्तिपूर्वक भजता है, वह मुझमें है, और मैं उसमें हूँ. अर्थात् जो भक्त है-जिसकी विश्वकी सारी वासनाएँ दूर होगई है, उससे परब्रह्मका ऐक्य शीघ्र हो जाता है."

"अच्युतमार्गियो! प्रभु श्री अच्युत परब्रह्मके इन वचनोंसे हमें सहज ही मालूम होता है कि नाशवंत जगत्पुर और काल पुरुषके भयसे भाग कर अपनी शरणमें जानेवाले जीवोंपर उनकी कितनी बड़ी दया और प्रीति है! जो उन कृपालुकी शरणमें जानेके मार्गमें आते उनके आते ही प्रसन्न होकर उन्हें कई प्रकारसे सहायता करके वे उनको अपनी शरणमें खींच लेते हैं. इस विषयमें उन समर्थ प्रभुने स्वयं ही कहा है कि, 'मैं सारी सृष्टिका उत्पन्न करनेवाला हूँ और यह सारा विश्व मुझसे चलता है, ऐसा समझकर ज्ञानी जन प्रीतिपूर्वक मेरा भजन और नित्य मेरा कीर्तन करते हैं तथा बड़े प्रयत्नसे, दृढ नियमोंको धारण कर, भक्तिसे नम्र होकर, एकाग्र मनसे मेरी उपासना-सेवा करते हैं और मुझमें मन लगाकर, मुझमें निर्गुण भाव रखकर परस्पर मेरे विषयका उपदेश करते हैं, मेरे गुणोंका गान कर संतोष प्राप्त कर, अपना मनरंजन करते हैं, ऐसे विशुद्ध चित्तसे जो मुझको प्रीतिसे भजते हैं उनको मैं इस प्रकारका बुद्धिरूप साधन देता हूँ कि जिनके द्वारा वे मुझको प्राप्त कर लेते हैं, उनपर अनुग्रह करनेके लिए मैं उनके अंतःकरणमें निवास कर सुप्रकाशित ज्ञानदीपकद्वारा अज्ञानमूलक अंधकारका नाश करता हूँ. इतनाही नहीं पर इस प्रकार अनन्य भक्तिद्वारा जो मेरा ध्यान धारण कर मेरी उपासना करते हैं और ऐसी प्रीतिके बलसे जिनका चित्त मुझमें लग जाताहै उन्हें इस मृत्युरूप संसारसागरसे मैं तुरंतही अपने पास खींच लेता हूँ.' इस लिए, पथिको! सारी कामना त्याग कर, उस एककीही कामना करो, प्रकृतिका नाश करो, विकृतिको प्राप्त करो, वासनाको वासनामें लय करो, ब्रह्ममें ही मनको लगाओ और उसीमें बुद्धिको स्थापित करो, जिससे उसीमें यह मन—चित्त निरंतर निवासकर दूसरेकी ओर देखनेको समर्थ ही न हो सके."

"प्रिय पथिको! यह श्रेष्ठ मार्ग ऐसी महत्तावाला है. इस बातको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भली भाँति ध्यानमें रखकर, प्रयत्नपूर्वक चित्तको नियममें रख, श्रद्धासे मेरे साथ चले आओ. जिससे अंतमें सुखरूप अच्युतपुर पहुँच जाओ. हम लोग जगत्पुरसे अच्युतपुर जानेके लिए ही निकले थे, वहाँ जानेसेही काल पुरुषके महाभयसे मुक्त होंगे. जब कालपुरुषके मृत्युरूप कराल मुख-मेंसे मैं बाहर निकल पड़ा और क्षमायाचनापूर्वक मैंने उससे निर्भयस्थानको भाग जानेके लिए पूछा तब उस महात्मा कालपुरुषरूपी भगवानने भी मुझसे इसी मार्गमें भाग जानेकी सूचना दी. उस समय बतलाया था कि, 'मैं दीखने और न दीखनेवाली सारी सृष्टिका भक्षक होनेसे मृत्युरूप हूँ और जिसमेंसे मेरा यह कालरूप पैदा हुआ है और बहुतही समयके अंतमें जिसमें फिर मेरा लय हो जायगा, तथा सारी सृष्टिका लय कर डालनेवाले मेरे स्वरूपका भी लय हो जानेसे, अंतमें जो स्वतंत्र महापुरुष अकेलाही रह जायगा, उस परम पुरुषकी शरणमें जानेवाला प्राणी, मेरे भयसे बिलकुल मुक्त हो जाता है और उसकी शरणमें जानेका यह ब्रह्मै-क्यही मार्ग है.' यह तत्व न समझ अच्युतमार्गका त्याग कर, चंचल चित्त रखकर, जिस नित्यसिद्ध मार्गमें हम लोग चलते हैं, उसका त्याग करने और दूसरे मार्गमें चले जाने अथवा बीचमें ही प्रमादवश भटक मरनेसे बढ़कर दूसरी कौन मूर्खता है ? और फिर, अहा ! ऐसे समर्थ सर्वेश्वर अच्युत प्रभु कि जिनसे विशेष तो क्या, पर समान भी कोई नहीं है और सबके नाशरूप कालपुरुषको भी जिनकी शरणमें ही रहना पड़ता है, ऐसे प्रभुकी प्रभुताका वर्णन कौन कर सकता है ? ऐसे समर्थ प्रभुको छोड़कर, किसी दूसरे क्षुद्र देव—कामनावाले देवको जो प्रभुकरके माने उसकी मूर्खताका भी वर्णन कौन कर सकता है ? विषयोंका ध्यान करनेवालेको, पदार्थ अवि-द्यमान हो तो भी, स्वप्नमें भी अनर्थ पैदा करनेवाला पदार्थ मालूम होता है और जो नहीं है तथा जो नाशवान् है उसका भी स्मरण रहता है; इस लिए असन्मार्गमें लेजानेवाली वस्तुकी भक्ति और विरागद्वारा आसक्ति त्याग देनी चाहिए और जब ऐसा करोगे तभी परमधाममें जा सकोगे. तत्वज्ञान संपादन करने, मनोनाश और वासना क्षय करनेसेही वहाँ पहुँच सकते हैं. अब समय भी हो गया है और यह पथिकाश्रम आगया है इस लिए यह बात अब हम लोग एकान्तमें करेंगे." फिर अच्युत परब्र-ह्मकी जयध्वनिसहित वे लोग उस मार्गकी दाहिनी बाजूपर बने हुए, वृक्ष-समूहसे आच्छादित रमणीय पथिकाश्रममें जा उतरे.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सायंकालके स्नान संध्यादि नित्य कर्म और अच्युतकीर्तनसे निवृत्त होकर सब पथिक अपने गुरु सत्साधकको घेर कर बैठ गये. तब वह महात्मा बोला, "प्रिय साथियो! समस्त वेद, स्मृति, पुराण और संक्षिप्तमें ऐहिक पारलौकिक सब शास्त्र, यथार्थ रूप किंवा रूपान्तरसे प्रभु श्री अच्युतके ही गुणोंका वर्णन करते हैं. वे सब अंतमें एक मत होकर कहते हैं कि सर्वेश्वर तो प्रभु अच्युत ही है और प्रत्येक प्राणीको उनकी शरणमें जाना आवश्यक है;" क्योंकि उन प्रभुने संक्षेपमें अपनी अद्भुत सत्ताके संबंधमें कहा है कि, 'मुझसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है, डोरेके सहारे जैसे अनेक मणि गूँथे (पिरोये) जायँ तो वे स्वसत्ता-बलवान् मालूम होते हैं, पर सबका आधार तो डोराही है, उसी प्रकार यह सारा विश्व मुझमें पिरोया (गुँथा) हुआ है अथवा इस सबके जाननेकी अपेक्षा ध्यानमें सिर्फ इतना ही अच्छी तरह रक्खो कि इस सारे जगत्में मैं एकसमान व्याप्त हो रहा हूँ, सर्वत्र, मैं, मैं और मैं ही हूँ, मेरे सिवा कुछ भी नहीं है.'

"इस प्रकार सबसे श्रेष्ठ, सबसे अधिक, सबसे पर, सबका स्वामी, सबसे पवित्र, सबसे शुभ, सबसे समर्थ, सर्व शक्तिमान्, सबका कर्त्ता, सबका हर्त्ता, सबका पालक पोषक, सबका परमेश्वर, सबसे सुखमय, सबका देव, सबमें व्यापक और सबमें समान प्रभु अच्युतको भूल कर सुखकी आशासे जो मूढ़ यहाँ वहाँ भटकता है, उसकी मूर्खताका वर्णन कहाँ तक करें? जैसे प्यासा मनुष्य पुण्यतोया और सबके सुपासका मुक्त द्वाररूप श्रीमती भागीरथीके तट पर रहते हुए भी अपनी तृषाको दूर करनेके लिए कुआ खोदने लगे तो उसका ऐसा कृत्य जैसी मूर्खता मानी जायगी, वैसी ही वासुदेवके समान प्रभु अच्युतको छोड़कर दूसरी उपासना करनेवालेकी मूखता भी समझनी चाहिए. अन्य देवोंकी लघुता प्रदर्शित कर मैं उनकी कुछ निन्दा नहीं करता; पर यह वर्णन करता हूँ कि प्रभु अच्युत उन देवोंसे कितने बड़े (श्रेष्ठ) है. किसी भी देव या सृष्टिके किसी जीवकी निन्दा करना, प्रभु अच्युतका अपराधरूप है. क्योंकि उन कृपालुने स्वयं ही अपनी स्थितिको बतलाते हुए कहा है कि, 'सब देवोंका देव मैं हूँ, सबका आत्मा मैं हूँ और सबमें समानरूपसे व्याप्त हो रहा हूँ.' ऐसी बात है, इस लिए सब रूपोंमें अच्युत ही प्रभु है इस लिए जिस किसीकी निन्दा करोगे वह प्रभु अच्युतकी ही निन्दा मानी जायगी. इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बातपर तुममेंसे किसीको शंका हो कि अच्युत प्रभुकी सर्व व्यापकताके कारण जब कीसीकी भी निन्दा अच्युतनिन्दा ही मानी जायगी तो फिर किसीकी भी उपासना करें तो वह अच्युतोपासना क्यों न मानी जायगी ? बेशक, वह भी अच्युतकी उपासना मानी जायगी, पर इसमें कुछ भेद है. इसके लिए उन कृपालु प्रभुने ही स्वयं कहा है कि, 'जो श्रद्धासे अन्य देवोंका भजन करते हैं, वे यथार्थ देखते मेरा ही भजन करते हैं; परन्तु मेरी वह सेवा अविधिपूर्वक है, विधिवत् नहीं है. क्योंकि वे नहीं जानते हैं कि मैं ही सब यज्ञ और उपासनादि क्रियाओंका भोक्ता—अधिकारी—ग्रहण करनेवाला और प्रभु—नियंता, उन उपासनादिका फल देनेवाला हूँ. इससे च्युति-पतन-जन्ममरणको प्राप्त करते हैं.' जैसे कोई वृक्ष अपने मूल, धड़, डालियों, शाखाओं, पत्तों, फूल और फलादि अवयवोंके कारण चाहे जितना विस्तृत होने पर भी स्वयं एकही है. उसी प्रकार सारे विश्वरूपमें विस्तृत होने परभी, प्रभु अच्युत एकही है और जैसे शाखाएँ, पत्ते या फल, वृक्षके अंग होनेसे वृक्षही हैं-भिन्न नहीं हैं, वैसे विश्वके पदार्थ, प्राणी, देव इत्यादि अच्युतके अंग होनेसे अच्युत ही हैं. परन्तु देखना यह है कि, वृक्षको जलसिक्त करनेपर वह परम फल देता है, यदि जल सींचनेवाला उसके पत्तों, डालियों या फल फूल पर जल डाले तो उससे परम फल नहीं मिल सकता और इस लिए उसका जलसिंचन जितना अविध माना जायगा, उतनाही दूसरे देवोंकी उपासना करना भी यद्यपि अच्युतकी ही उपासना है, विधि-हीन उपासना मानी जायगी. क्योंकि डाली पत्तोंको सींचनेसे जैसे वृक्षका परम फल नहीं मिलता, पर मूलमें जल सींचनेसेही वृक्ष सर्वांगमें आनन्दानुभव करता है और फल देता है, तैसे अच्युतके अंग प्रत्यंगरूप अन्य देवोंकी उपासना करनेसे प्रभु अच्युत प्रसन्न नहीं होते, परंतु सकल विश्व-वृक्षके मूलरूप अच्युत परब्रह्मकी उपासनासेही, उनके सहित सारे विश्वके देव संतुष्ट होते हैं और परम फल—मुक्ति देते हैं. इस लिए सबको चाहिए कि उन सर्वेश्वरकी ही उपासना किया करें, चलो अब रात अधिक होगई है और दिनको चलनेके परिश्रमसे थके हुए पथिकोंको श्रमपरिहार करनेकी आवश्यकता है, इस लिए आराम करो." बाद बारंबार प्रभु अच्युतके पवित्र नामकी जयध्वनि करके सब अपने अपने आसन पर जाकर अच्युतका स्मरण करते हुए विश्राम करने लगे.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षष्ठ विन्दु–षष्ठ सोपान.

विज्ञान भक्तिमार्ग.

यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः ।
तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥
उद्ध्वस्तमसदाभासमुत्पन्ननगरोपमम् ।
वर्षप्रोन्मृष्टचित्राभं जगत्पश्यत्यवासनः ॥

अर्थ--इस जगतमें जो अत्यंत मूढ़ है और जो बुद्धिकी पराकाष्ठाको पहुँच चुका है, वह दोनोंही सुख भोगते हैं. मध्यमें रहनेवाले मनुष्यको क्लेशही होता है वासनाशून्य ज्ञानी इस जगतको उजड़ा हुआ, असत्, आभासरूप, गन्धर्व नगरके समान और वर्षासे विगड़े हुए चित्र जैसा देखता है.

सवेरा हुआ, प्रभु अच्युतका नाम स्मरण करते हुए पथिक उठ बैठे. फिर स्नान संध्यादिसे निवृत्त होकर चलनेकी तैयारी करने लगे. महात्मा सत्साधकने उन्हें अपने अपने मार्गकी सामग्री संभाल लेनेकी सूचना देकर चलनेकी आज्ञा दी. नियमानुसार महामंगल शकुन-रूप प्रभु अच्युतके नामकी भव्य गर्जनाएँ करके संघ चलने लगा. समय सवेरेका था. ऋतु वसंत थी. मार्गकी दोनों बाजुओंमें खड़े और वृक्षोंकी तरुण समृद्धिसे आच्छादित जलप्रवाहित छोटे बड़े पर्वत, वन और मार्गकी दोनों बाजूपर पड़े हुए नानाप्रकारके नवपल्लव तरुवर, उन परसे हटकर गिरते हुए विचित्र फूल, उनको गिराकर उनके उत्तम परिमल संयुक्त बहता हुआ मंद मंद पवन, उन वृक्षोंपर बैठे, उड़ते और नीचे फिरते हुए अनेक प्रकारके निर्दोष पक्षी, पक्षियोंका मधुर कलरव, चारों ओर आनंदसे ठहरते और दौड़ते हुए निरुपद्रव मृगादि वनपशु, वृक्षोंकी घड़ और घटाओंसे होकर आती हुई बाल रविकी कोमल किरणें और पवित्र प्रेमभक्ति सहित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्साही मनसे महात्मा सत्साधकके मुखसे मनोहर स्वरमें गाये जानेवाला प्रभु अच्युतके अवतारचरित्र–ये सब चाहे जैसे निरुत्साही पथिकके मनको भी, उत्साह और आनंदमें मग्न कर देते थे. ऐसे उत्साहमग्न पथिक ज्यों ज्यों आगे बढते गये, त्यों त्यों उनको मार्गके आसपास अनेक दिव्य वस्तुएँ दीखने लगीं. जगत्पुरमें रहकर उन्हें जो तारे और नक्षत्रगण सिर्फ चंद्रिकारूप और बहुत दूर दीखते थे, वे यहाँपर बिलकुल निकट और बड़े दिव्य मंडलके रूपमें दीखने लगे. इससे विस्मित होकर इसका मर्म जाननेके लिए उन्होंने महात्मा सत्साधकसे पूछा. सत्साधनके कहा, " प्रियजनो ! तुम लोग इतने हीसे जान सकते हो कि जब हम लोग जगत्पुरमें थे जो कितने निचाईमें थे और इस ऊँचे मार्गमें आकर कितनी ऊँचाईमें आ पहुँचे है ! आकाशमें चारों ओर चमकनेवाले तारे, तुम जगत्पुरमें रहकर देखा करते थे वैसी चंद्रिकाही नहीं पर प्रत्येक विविध भाँतिकी दिव्य सुख सामग्रीसे परिपूर्ण दिव्य भूमि है. जो वस्तु बहुत दूर होती है, वह यद्यपि बहुतही बड़ी होती है, तो भी बहुत छोटी मालूम होती है. वैसेही ये दिव्य मंडल जगत्पुरसे बहुत ऊँचे होनेके कारण और हम लोग जगत्पुरमें निवास करते थे इससे अपनी दृष्टि भी वहाँके झूठे व्यवहारोंसे बहुत छोटी होनेके कारण, हमें ये दिव्य स्थान बिलकुलही छोटे दिखलाई देते थे. इस परसे तुम्हें सहजही मालूम होगा कि, अपना मार्ग उत्तरोत्तर कितने ऊँचे जा रहा है ! और जगत्पुरसे हम लोग कितने ऊँचे पर आ गये हैं ! वास्तवमें हम लोग दिव्य लोकके बहुत समीप आ पहुँचे है. अब इन सारे दिव्य स्थानोंको भी अतिक्रमण करके हमें ऊँचे जाना है–वह स्थान अब दूर नहीं है, परन्तु वहाँ बड़े परिश्रमसे पहुँचना होगा. सबके महेश्वर प्रभु अच्युतका कभी नाश न होनेवाला लोक–अच्युतपुर तो इन सब दिव्य लोकोंके ऊपर है. सबसे परे है, उससे परे कुछ भी नहीं है. वहाँ न सूर्यका प्रकाश है, न चंद्रकी चंद्रिकाही और न तारोंकी जगमगाहट या बिजलीकी चमकही है. वहाँ तो दिव्य प्रकाशही प्रकाशित हो रहा है, जिसके प्रकाशित होनेसे सारा विश्व प्रकाशित होता है. फिर वहाँ जाकर लौटनाही नहीं पड़ता. ऐसे ऊँचेसे ऊँचे और श्रेष्ठ स्थानकी और जानेके लिए कितनी सावधानी और कितने बड़े प्रयत्नकी आवश्यकता है, वह तुम जानतेही हो. फिर मार्गकी अनेक भूल भुलैयाँ–प्राया, लालच–आशा और विडंबना–कामक्रोध, ऐसी हैं कि चाहे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसा सचेत पथिक भी लिबड़े विना नहीं रहता. तो भी अंधश्रद्धाके सहारे विचरण करनेवाले पथिकको अपने मार्गसे पतित न होने देनेके लिए, कृपालु प्रभु स्वयंही अनेक प्रकारसे सहायता करता है. मार्गकी भूल भूलैयाँ, लालच और विडंबनाएँ प्रभु अच्युतकी ऐसी दुस्तर माया है कि जो जानी नहीं जा सकती. ऐसी दुस्तर होनेपर भी यह माया, प्रभुके अधीन होनेसे प्रभुके शरणागत-उपासक भक्तको नहीं सताती. इसके लिए स्वयं समर्थकाही वचन है कि:--

"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंति ते ॥

अर्थ--"अति दिव्य और त्रिगुणात्मक मेरी माया -विलक्षण शक्ति बडी दुस्तर है; पर जो मुझको अनन्यभावसे भजता है, वह उस मायाको तर जाता है."

"इस लिए उस कृपालुकी शरणमें पड़े हुए हम लोगोंको उसके आश्रयके बलपर ही सब बातोंसे निडर होकर चले जाना है." इस प्रकार मार्ग संबंधी और प्रभुके सामर्थ्य संबंधी अनेक प्रकारकी बातचीत करते हुए वे बहुत ऊँचे स्थान तक चले गये. इस समय बहुत दिव्य भूमि उनको नीचे परमाणु जैसी मालूम होने लगी और उच्च स्थान समीप मालूम होने लगा. दोपहर हुई, आराम करनेकी आवश्यकता थी. दुपहर एक अत्यंत रमणीक और पुष्पित लताओंसे आच्छादित पथिकाश्रम भी दीखता था. कुछ देरमें वे वहाँ जा पहुँचे और आनंदसे प्रभुके नामका जयघोष किया. उसको सुनकर आश्रमसे एक स्त्री हर्षपूर्वक आकर दरवाजेके पास बैठ गई. वह अच्युत पथिकोंका बड़े प्रेमसे स्वागत करने लगी. उसके आदरसे संतुष्ट होकर वे भीतर जा बैठे और नित्यकर्मादिमें प्रवृत्त हो गये.

नित्यकर्मसे निवृत्त होकर कुछ देर तो आराम करके संघ फिर चलनेको तैयार हो गया. यह देखकर जो पथिकाश्रमके द्वारपर उनका स्वागत करनेको आई थी वह स्त्री, धीरे धीरे अच्युतका स्मरण कर, हाथ जोड़, संघके अग्रणी महात्मा सत्साधकसे कहने लगी,--"साधु ! उतावली क्यों करते हो, अच्युतमार्गके सब संघ इस मुकाममें सारे दिन निवास करते हैं, क्योंकि यहाँ किसी प्रकारका उपद्रव नहीं है, शान्ति है, निर्भयता है, इतना सब होते हुए भी तुम सिर्फ दोपहर बिताकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्यों चले ? आगे जाकर रातमें कहाँ रहोंगे[1] ?" यह सुनकर सत्साधक बोला; "साध्वी ! आप कौन हैं ? और इस वेशमें अकेली यहाँ कहाँसे आई ? फिर तुमको क्या मालूम कि अच्युतपदके सारे संघ रातको यहीं निवास करते हैं ?" वह बोली, "हे महापुरुष ! मैं भी तुम्हारे साथके इन पथिकोंकी तरह एक अच्युत पथिकही हूँ; परन्तु न करनेके योग्य एक अपराधके कारण मैं इस दशाको प्राप्त हो अपने संघसे विछुड़कर पीछे रहगई हूँ और उस दिनसे अब मैं निरंतर यहीं रहती हूँ. मैंने बहुकालसे अनेकवार देखा है कि यहाँ अच्युतपथगामी सतत रात्रि निवास करते हैं. अबसे संध्यातक ऐसा कोई पथिकाश्रम नहीं है[2] जहाँ तुम पहुँच सको. इस लिए चलनेवाले यह विचार कर कि यहाँसे चलकर रातको कहाँ रहेंगे, यहीं मुकाम करते हैं." यह सुनकर रात वहीं वितानेके लिए सत्साधककी आज्ञा सुनकर सब पथिक निश्चिन्त रूपसे उस महात्मा और उस साध्वीको घेर कर बैठ गये. उस बाई-स्त्रीका शरीर बहुत उज्वल और पवित्रताके कारण भव्य लगता था. यद्यपि उसकी अवस्था मध्यम थी, तो भी वह अच्युत प्रभुको प्रसन्न करनेके लिए जो नियमरूप व्रत धारण किया था उसके कारण और सतत सच्चरित्रता (एक पति–अच्युतका मनसा, वाचा और कर्मणासे ध्यान सेवन करने) के कारण उसका वय मालूम नहीं हो सकता था. ललाटपर सुन्दर कुंकुम चंद्र, सिर पर शिखामणि, कंठमें मंगल सूत्र और हाथोंमें कंकण, इन चिह्नोंसे वह सौभाग्यवती होने पर भी वह अपने पतिसे कैसे विछुड़ गई होगी, यह प्रश्न सबके मनमें उत्पन्न हुआ था. महात्मा सत्साधकने पूछा "साध्वी ! क्या अपने दोषकी कहानी सुनाओगी ?" पहले प्रभुका स्मरण कर, फिर वह साध्वी बोली[3] "अच्छा आनंदपूर्वक सुनिये. साधु-

१ टीका—यह पथिकाश्रम भक्तिधाम है. बाई-स्त्री भक्ति है. भक्तिको सफल करनेके लिए बहुत समय, बहुत श्रम और बडी पवित्रता चाहिए. इस लिए भक्तिधाममें बहुत समय तक रहनेकी सूचना की.

२ टीका—सज्ञान भक्ति दृढ़ हो जानेपर जिज्ञासुके लिए दूसरा कोई साधन शेष नहीं रहजाता—सज्ञान भक्तिही मोक्षका साक्षात् साधन है. सज्ञान भक्ति अर्थात् जानकर विचार कर, वासनाका लय करना और फिर ब्रह्ममें आत्माको मिला देना.

३ टीका—यह साध्वी स्त्री भक्ति और उसका पति ज्ञान है विना ज्ञानकी अर्थात् सारी वासना—कामनाके लय विना जो भक्ति है वह सगुणोपाधिक भक्ति है, और जो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्य, हम लोग भी आपकी ही भाँति जगत्पुरनिवासी थे. परन्तु अज्ञानताके कारण कालपुरुषके साधारण भक्ष्यके समान वहाँ पड़े हुए थे. किसी सद्गुरु जगद्धितेच्छु महात्माके प्रसादसे मेरे पतिको मालूम हुआ कि हम बड़े भयमें हैं, इस लिए इस भयंकर दुःखरूप स्थानसे भागकर किसी निर्भय स्थानकी ओर जाना चाहिए. ऐसा वृत्तान्त जानकर मेरा पति घरमें आया और अपने साथमें घरकी कोई भी वस्तु न लेकर मुझसे चलनेके लिए कहा. मैंने विस्मित होकर पूछा, 'कृपानाथ! अकस्मात् आप कहाँ पधारते हैं?' उन्होंने कहा, 'बातें करनेका समय नहीं है, संक्षेपमें कहता हूँ कि अपने सिर पर ऐसा भय है जिसको कोई नहीं जान सकता. वह भय न जाने किस समय आकर हमें अकड़ बैठे, यह नहीं कहा जा सकता. इस लिए हमें यहाँसे भाग जाना चाहिए. तू आना चाहती हो तो उठ मैं अधिक समय तक यहाँ नहीं रहूँगा.' मैं अपने स्वामीको बड़े पूज्य भावसे देखती थी, उनकी आज्ञा पालन करती थी, तो भी अपने स्त्री-स्वभावके कारण मैंने सोचा कि जो बारंबार स्त्रियों और पुत्रादिकको धिक्कारते हैं और घरको त्याग कर जहाँ तहाँ भटकते फिर कर, दूसरे पुरुषोंको भी अपने ही जैसा हो जानेका उपदेश दिया करते हैं, ऐसे साधुओंका संग करनेसे, मेरे स्वामीको भी कुछ ऐसा ही होना लगा होगा, चाहे जो हो, मुझको तो उनके साथ ही जाना चाहिए. जहाँ वे हैं वहीं मैं हूँ. स्त्रीसे स्वामी बिछुड़ कर कैसे रह सकता है? मैं साथमें रहूँगी कि तो मौका पानेपर समझा कर घरमें भी ले आऊँगी. फिर वे मुझको स्वयंही साथ चलनेकी आज्ञा देते हैं तो फिर और क्या चाहिए?"

"हम जगत्पुर छोड़कर जब सड़कपर आये, तो वहाँ हमारे समान अनेक लोग किसी और ही स्थानको जाते हुए मालूम हुए. हम उनके साथ हो गये और पुरद्वारको पार कर इस मार्गमें आये. मार्गमें थक जानेसे और

ज्ञानसहित भक्ति है वह निर्गुणोपाधिक भक्ति है. यह कथाप्रसंग समझनेके लिए जिज्ञासुको बतलानेकी जरूरत है कि, ज्ञानसहित सगुणोपाधिक भक्ति शोभा नहीं देती-इससे पतन होना संभव है. परब्रह्मप्राप्तिका विधान ज्ञान सहित निर्गुणोपाधिक भक्ति ही है.

१ टीका—सारे जगतका हित चाहनेवाला. यहाँ आत्मारूपसे रहनेवाला पर आत्मा.

२ टीका—घर सो परब्रह्मधाम. ज्ञान अकेला गोता खाता है परन्तु यदि भक्तिसहित ज्ञान हो तो वह जीव स्थिर शुद्धता प्राप्त कर अपने नित्यके अक्षरधाममें रहता है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनेक प्रकारके सुख-वासना-कामना मिलनेसे, अनेक मनुष्य तो जहाँ तहाँ अटक जाते थे, पर हम तो दृढ़ निश्चयसे अनेक टेढ़े मार्गोंको पार कर आगे बढ़ते गये. अपने अज्ञान[1] और स्त्रीस्वभावके कारण कामदेवके जालमें फँस जानेके लिए मुझे अनेक अवसर आये, परन्तु मैं अपने पतिव्रत अर्थात् अपने स्वामी (ज्ञान) से छूट नहीं सकी, इसीसे ही बार बार बच गई. पर अंतमें शक्तिमार्गके पाससे मेरा प्रारब्ध टेढ़ा हुआ. उस आदि शक्तिके अनेक उपासक, पथिको जैसे बनकर हमारे संघके साथ हो गई. उसने नाना प्रकारकी रुचिकर बातें करके मुझको अपने स्नेहमें फँसा लिया. उसने बातें करते हुए कहा; ' आद्यशक्ति सब कामनाएँ पूर्ण करती है, अपार सुख देती है; ' आदि कहकर बहुतसा लालच बतलाया. मैं पतिव्रता थी इससे उसके लालचमें मेरा मन इतनाही लुब्ध हुआ कि वह महादेवी अखंड सौभाग्यदायिनी है; अर्थात् इस लोकमें मैं अपने पतिके साथ अनंतकाल तक सुखभोग करूँगी और यद्यपि इस बातको मेरा स्वामी अभी नहीं मानेगा, पर मैं जब उस मार्गमें जाऊँगी तो उस महाशक्तिकी सत्तासे, वह स्वयं ही मेरे पास चला आयगा. ऐसी आशासे मेरा मन विह्वल हो उठा. उस दिन जिस पथिकाश्रममें हमने डेरा डाला था वहाँसे दूसरे दिन बड़े सवेरे अंधेरेमें ही संघ चलने लगा, अपनी सखीके साथ मैं भी उस समय छिपे हुए टेढ़े मार्गमें गई. हम सीधे मार्गमें ही पीछे फिर कर आद्यशक्तिमार्ग तक जाते तो कदाचित् मालूम पड़ जाता कि मुझको कोई पीछे फिराकर लिए जा रहा है, इस लिए टेढ़े मार्गसे होकर वह मुझे ले चली. वहाँ अंधेरा था. भूमि भी ऐसी थी कि कहीं पर बड़ा गहरा गढ़ा, तो कहींपर टेकरी, जगह जगह पर छोटे बड़े पत्थर और अनेक प्रकारकी ऐसी घनी झाड़ी थी कि उसमेंसे निकल जाना कठिन काम था. तो भी मैं शक्ति-मार्गमें जानेके उत्साहसे कुछ चली. इतनेमें उस जगमेंसे मैंने ऐसा

---

१ टीका--ज्ञानरहित- विना समझकी भक्ति ही अज्ञान है.

२ टीका-- आद्यशक्ति अर्थात् दृढ़वासनाके क्षयका बल देनेवाली शक्ति आद्य अर्थात् जबसे जीव संसारमें आया उसी क्षणसे वासनाक्षय, संसारमें सार नहीं है और सब अनित्य है, यह दृढ़तासे जान लेने पर होता है और वैसा जान लेनेपर परब्रह्मको जाननेवाली जो शक्ति-भक्ति है, वह अपने पति ज्ञानके साथ नित्य रह सकती है. यह अखंड अहिवातिन-सौभाग्यवती है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भयंकर शब्द सुना कि बड़े भय और आश्चर्यसे मैं चमक उठी और जब भयके मारे भागने लगी कि न जाने कि घरसे कौन आ जायगा तो सामनेके एक बहुत बड़े गढ़ेमें जिसमें बड़े बड़े नुकीले पत्थर थे खड़ीकी खड़ी गिर पड़ी ! हाय ! ऐ बहन ! मैं गिर गई ! गिरी ! इस प्रकार मैं बहुत कुछ चिल्लाई परन्तु किसकी बहन और किसका कोई ? हो गया. इस अंधकारमेंसे मेरा उद्धार करनेके बदले वह शक्ति भक्ति श्रद्धा अदृश्य हो गई. परन्तु अपना कर्म मैंने भोग किया. पथ्थरों पर गिरनेसे मैं अपंग हो गई.

" सूर्योदय होनेपर उस गढ़ेमें कुछ प्रकाश पड़ा तब मैंने ऊपरकी ओर देखा, मालूम हुआ कि मैं बड़े ही गहरे गढ़ेमें गिर गई हूँ और किसी प्रकारसे भी बाहर नहीं निकल सकती. सौभाग्यसे वह स्थान अच्युत मार्ग और पथिकाश्रमसे बहुत दूर नहीं था. मुझको इस आशासे धीरज हुआ कि मार्गमें आने जानेवालोंमेंसे कोई भी तो मेरी पुकार सुनेगा. परन्तु संघ तो चला, बस वहाँ कौन है ? मैंने कई दिनरात इस कारागार जैसे स्थानमें ही परम दुःख और आशाओंमें बिताया. इतनेमें तो मुझे अपने स्वामीके वियोग और उनको छल कर किये अपराधका दुःख असह्य हो उठा. हाय ! एक पतिव्रता जो अपने पतिकोही सर्वस्व मानती और उसीकी सेवामें अपना जीवन सफल समझती थी, ऐसे प्रपंचपूर्ण छल कपटसे होनेवाले वियोगके कारण कितने बड़े असह्य संकट सहती होगी इसका, आप सुज्ञ हैं इस लिए स्वयं विचार कर ले. "

वह फिर कहने लगी "सभ्य पुरुष ! नरकके इस दवडमें अंधग होजानेके कारण मुझको असह्य पीड़ा हुई. मैं डरी कि ऐसी पीड़ामें मेरे प्राण चले जायँगे ! इसमें भी मैंने अपने स्वामीसे जो कपट किया और अपने हाथसे उनका जो असह्य वियोग बटोर लिया इन सब कारणोंसे उनके मनमें कैसे तुच्छ विचारोंने घर कर लिया होगा इन सब बातोंका संकट मुझको अत्यंत असह्य होगया. इसके सिवा मैं जो पवित्र अच्युतमार्गसे भ्रष्ट होगई थी, इसका संकट तो मुझे भालेकी भाँति हृदयमें साल्ता था. ऐसे संकटमें जब दो तीन रातें बीत गई, तो मैं बिलकुल मृतप्राय होगई. मेरी आँखें,

१ टीका--यह गढ़ा उस कामना-वासनाका समझना चाहिए.

२ टीका--ज्ञानपूर्वक जान लेना कि वासनाही संकटरूप है, ऐसा विचार.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कान आदि इंद्रियों भी अब अशक्त हो गई. शरीर और इंद्रियां निर्बल हो गई, परन्तु आत्मबल धीरे धीरे बढ़ा. उसमें महाउग्रशोक—विरागने सहायता की. बहुत देरतक जोरसे रोते रोते गला बैठ गया, आँखोंमें जल भर गया, और सिर खाली होजानेसे शून्य होने लगा. तो भी हृदयका उफान तो बढ़ताही जाता था. बारंबार ऐसा लगता था कि हाय! हाय!! कोई भी दयालु मनुष्य-सद्गुरु मुझ गरीबकी पुकार सुने और मुझको यहांसे निकाल दे तो मैं चाहे जैसी दौड़ धूपका रातदिन एकसा चल कर अपने वियोगी स्वामीसे जा मिलूँ और अपने अपराधकी माफी माँगुँ. अपने स्वामीसे जा मिलनेकी तरंगमें मैं अपने देहका भान भूल जाती थी. सद्गुण दंपती (ज्ञान-भक्ति) का परस्परका प्रेमावेश कैसा अद्भुत होता है! वैसा प्रेम (विज्ञानभक्ति) यदि प्रभु अच्युतके चरणोंमें पैदा हो तो इसमें जरा भी संदेह नहीं है कि वह कृपालु प्रेमसागर इस प्रेमके अधीन होकर, क्षण भरमें दर्शन दे दे! ऐसे आवेश और ऐसी आशामें अपने निस्तेज हो जानेवाले नेत्रोंको कठिनाईसे बोल बोलकर ऊपरकी ओर देखती थी, पर उस खाईके सिरेपर खड़े हुए नाना प्रकारके वृक्षोंके सिवा मुझको कुछ भी नहीं दीखता था. मैं थककर निराश होगई, अंतमें हैरान होकर, ऐसा सोचने लगी कि ऐसे दुःखमें यहाँ पड़े रहनेकी अपेक्षा जैसे दुष्ट कामनाके कारण अच्युतमार्गसे भ्रष्ट हुए अनेक जीव कालपुरुषके पंजेमें पड़ जाते हैं, वैसे मुझको भी वह कालनर अपने लम्बे हाथसे झटक ले तो बहुत अच्छा हो. पर हाय! ऐसा होनेसे तो मेरा नाश होजायगा--अधोगति होजायगी और मेरे लिए मेरे स्वामीके मनमें नित्यका तुच्छभाव और मेरे मनमें अपने हाथसे बटोरा हुआ उनका सदाका वियोगदुःख जन्ममें सालताही रहेगा और मैं कहीं भी स्वस्थ न हो रहूँगी[1]. मुझको अपने अपराध-सकाम उपासनाका दण्ड अच्छी तरहसे मिला. सोचा कि, मैंने परब्रह्मकाही अपराध किया है. उनके विना दूसरा कौन दया दर्शायगा? अपने स्वामीसे नित्य सुना करती थी कि वह प्रभु परमदयालु हैं, क्षमाके भंडार हैं, करुणाके सागर हैं और शरणमें आनेवालेके रक्षक हैं. इस लिए इस परम घोर संकटमें मैं अपने अंतःकरणसे उनकी शरणमें जाऊँ.

---

१ टीका—विना ज्ञानकी भक्तिकी दशा वर्णन की है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यही प्रभु मुझको यहांसे उबारेंगे–ऐसा विश्वास होते ही मैंने उन कृपालुकी प्रार्थना आरंभकी:—

कीर्तन भक्ति

'हे दयासिन्धो ! हे सर्वेश्वर प्रभु अच्युत ! कभी तुम्हारा नाश–च्युत–पतन न होनेसे और तुह्मारी शरणमें आनेवालोंका भी तुह्मारे पाससे कभी पतन न होनेसे तुह्मारा अच्युत नाम पड़ा है. सारी सृष्टिके स्वामी, पोषक और पिता आपही हो और यह सारा जगत आपसे ही पैदा हुआ है, तथा अंतमें आपमें ही लय हो जायगा, आपकी ही संतान होनेसे आपको समानही प्रिय हैं, तो भी हममेंसे जो प्रीतिपूर्वक आपकी शरणमें जाते हैं और आपका स्मरण करते हैं, वे आपके अत्यंत प्यारे होजाते हैं तथा उनको आप मृत्युरूप जगत्पुरमेंसे उबार कर अपने पास खींच लेते हो. मैं दीन हीन अबला हूँ; मन, वचन और कायासे केवल आपही की शरणमें पड़ी हूँ ! मुझ अबलाको इस महत्संकटसे उद्धार करो. दीनबंधु ! आपका ऐसा व्रत है कि चाहे जैसा नीच हो, सारे पापोंसे पूर्ण हो, सारे संसारमें तिरस्कृत किया गया हो पर यदि एकबार भी सच्चे मनसे आपसे कहे कि, 'हे प्रभो ! मैं आपका हूँ' तो उसके अपराधोंको भूलजाकर उसको आप अपने लोकमें बुला लेते हो. मैं इस महत्संकटमें हूँ; माता, पिता, भ्राता, भगिनी, पुत्र, कुटुम्ब, मित्र, स्नेही या स्वामी इत्यादि सभीकी सहायतासे वंचित होकर पड़ी हूँ अब आपही मेरे ये सब सगा सहोदर हो, इस लिए अपनी शरणमें आई हुई मुझको उबारो. प्रभो ! आप सर्वत्र निवास करते हो, आपके पाणिपाद* सब जगह फैले हुए हैं, इस लिए अपने पुनीत हाथोंसे मुझको यहाँसे उठा लो. आपके नेत्र और मस्तक सर्वत्र व्याप्त हैं, उन पवित्र नेत्रोंद्वारा मेरी यह दुर्दशा देखो और अपने श्रीमुखसे मुझको अपनी कहकर पुकारो. सर्वत्र व्याप्त हुए अपने श्रोत्र––कानोंसे मेरी यह दीन प्रार्थना श्रवण करो. क्षमावंत ! मैंने अपने स्वामी (परन्तु यथार्थ देखते मेरे स्वामीके भी स्वामी जो आप हैं)के प्रति जो अपराध किये हैं उनसे मेरा हृदय बहुत काँपता है. इस अपराधद्वारा मैं महा पतित होगई हूँ, तो भी आपकी पतितपावनता–चाहे जैसे पतितको भी पवित्र कर देनेकी अद्भुत शक्ति जानकर ही मैं आपकी शरणमें

* पाणिपाद––हाथ पाँव. सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम् । सर्वतः श्रुतिमल्लोके -सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ यह गाथामें वर्णित अच्युतरूपका स्मरण है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आई हूँ; इस लिए मेरे अपराधोंको क्षमा कर आप मुझको अपनी शरणमें ले लो. प्रभो ! जगत्पुरमें प्राणियोंको जन्ममरणका जो नित्य दुःख उठाना पड़ता है और जन्म लेकर नाना प्रकारके रोग और आधिव्याधि उपाधिरूप दुःख पड़ता है तथा अनेक जन्मोंमें अनेक दुराचार होजानेसे उत्तरोत्तर, गधा, शूकर, कुत्ता, काग इत्यादि नीच योनिमें जन्म लेकर महादुःख उठाना पड़ता है, ऐसी अधमाधम स्थिति होनेपर भी अंतमें नरकमें पड़कर असह्य दुःख भोगना पड़ता है; यह सिर्फ आप परमानंदको भूलकर, अनित्य आनंदकी लालसाकाही फल है और इस प्रकार मैं भी आपको भूल जानेसे ही इस दशाको प्राप्त हुई हूँ. इस लिए यह अपराध क्षमा करो. जगदीश्वर ! आप जगतको दिखलाई नहीं देते और आपके निर्मित नियमोंके अनुसार जगत् सतत चला आता है, परन्तु उसमें यदि धर्मका उच्छेद होकर अधर्म बढ़ जाता है, दुर्जनोंका बल बढ़ने लगता है और साधुओंपर संकट आता है तो आपसे वह सहन न हो सकनेसे आप तत्काल विश्वमें प्रकट होकर उस बढ़े हुए अधर्म और दुष्टोंका नाश कर, धर्मकी स्थापना करते हो' इस प्रकार अनेकवार विभिन्नरूपोंसे प्रकट होकर आपने अनेक चरित्र किये हैं और अत्यंत प्रेमसे भजनेवाले भक्तोंको आपने अपने इस पवित्र मार्गका भी स्वयं ही उपदेश दिया है...सारे शास्त्रोंमें उल्लिखित आपके जिन पवित्र चरित्रोंको मैंने अपने स्वामीसे अनेकवार सुना है. मेरे स्वामीका उपदेश है कि इस प्रकार प्रेमपूर्वक आपके चरित्रोंका सुनना आपकी 'श्रवणभक्ति' कहलाती है सर्वेश्वर मुझपर कृपा करो ! पाहि ! पाहि ! "

इतना कहकर वह बाई सत्साधकसे फिर बोली; "महापुरुष ! इस प्रकारसे प्रभुकी गुण कीर्तनरूप प्रार्थना करते हुए मैं प्रेमावेशमें अच्युतप्रभुके इस प्रकार बुलाने और पुकारने लगी मानों वे सभी यही हों. मैंने कहा, 'अच्युत, अविनाशी, परात्पर, सर्वेश्वर, हर, वासुदेव, विश्वंभर, करुणासागर, दया करो; मुझे उबारो.' इस प्रकार उनका स्मरण करते हुए, अच्युततीर्थमें मैंने प्रभु अच्युतकी जिस अत्यद्भुत

स्मरण भक्ति

---

१. टीका--क्योंकि यहांतक-भजन, कीर्तनसेवा आदिसे वासनादिका क्षय नहीं होता. जीवको चित्तशुद्धिकी आवश्यकता है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सौम्य प्रतिमाका बड़े प्रेमसे अवलोकन किया था उसका स्मरण हो आया. वह मानों मुझको यहाँसे बाहर निकालनेके लिए मेरे समीप आकर खड़ी है, ऐसा विचार कर मैं उसके चरण पकड़ लेनेके लिए खड़ी हो गई ! इस प्रकार प्रेमावेश चित्तसे प्रभुके चरणोंका सेवन करना 'पादसेवन भक्ति' कहलाती है. पर ज्योंही मैं बलपर खड़ी हुई, त्योंही शरीरके प्रत्येक जोड़ (गाँठ) और रगोंमें ऐसा झटका लगा कि जिससे आँखोंमें अंधेरा छा गया और सिरमें चक्कर आतेहीमें फिर पछाड़ खाकर गिर पड़ी ! मैं एका-एक बेसुध–मूर्छित हो गई !"

इतनी बातें कहकर साध्वी कुछ देर तक चुप रहकर पथिकोंके संघमें चारों ओर देखने लगी. मूर्छित हो जानेके बाद फिर मेरा क्या हुआ, यह जाननेके लिए वह सब लोगोंको अधीर हुए देखा. वे सब उसके मुखकी ओर देख रहे थे कि देखें अब उसके मुखसे क्या शब्द निकलते हैं. ऐसा देखकर उसने उनको वह वृत्तान्त जाननेके अधिकारी समझकर कहने लगी; बिना जिज्ञासा अनधिकारी मनुष्यसे अच्युतवार्ता कहना एक अपराध है. अब जिनके चरणारविन्दमें अपूर्व प्रीति लगी हुई उन प्रभु–अच्युतका स्मरण करके वह बोली:–

वासनाबल

"अच्युत प्रिय ! महात्मन् ! अब जो बात मैं कहूँगी वह विशेष जाननेके योग्य है. उस गढ़ेमें मेरा शरीर मृतवत् हो गया और जीव डूब सही गया परन्तु मनकी वासना, जो इंद्रियोंके मूलतत्त्वों सहित सदा जीवके साथ रहकर उसको जन्म मरणके चक्करमें डाल कर अनेक दुःख सुख मिश्रित अवस्थाएँ भुगाती है, मरी या डूबी नहीं थी. ब्रह्मवाक्य है कि; 'मन मरे न माया मरे, मरमर गये शरीर, आशातृष्णा न मरे कह गये दास कबीर,' इसी प्रकार अभी मेरी आशा–तृष्णाका नाश–वासनाका नाश नहीं हुआ था. उसने तो उल्टा, और सब तत्वोंके शिथिल पड़ जाने और स्वयं अकेली रह जानेसे बड़ाही प्रबल रूप धारण किया था. इस वासनामें ऐसा उत्तम गुण है कि जिस पदार्थ पर इसको लगाओ उस पदार्थपर मनको बड़ी दृढ़तासे जमा देती हैं— उसकी योजना करनेवाला उसे अच्छे या बुरे चाहे जैसे मार्गमें नियुक्त कर दे, इसका उसे ज्ञान नहीं रहता–वह जैसे मार्गमें लगती है वैसीही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो जाती है. मुझको भी ऐसाही हुआ. अपने भारी संकटके समय अपनी मनोवासना मैंने प्रभु अच्युतके चरणोंमें नियुक्त की थी और उसी समय मेरी मूर्छित अवस्था हुई, तब उस मनोवासनाने वहीं प्रबलता पकड़ी. अपने इस पार्थिव-स्थूल शरीरका मुझको भानही नहीं रहा; क्योंकि वह स्वयं ही अपने बलसे एक नूतन देहरूप बन गया, और मेरा जीवात्मा तुरंत उसमें जा रहा."

"इस प्रकार मैं नूतन देहवाली हो गई, तो भी मुझे स्मरण नहीं रहा कि मेरा यह स्थूल देह मुझसे अलग पड़ा है; क्योंकि इस स्थूलमें रहकर भी 'मैं' पन रहता है-जो वास्तवमें तो वासनाहीका होता है. जैसे स्वप्नमें उड़नेवाले, दौड़नेवाले, दूर चले जानेवाले प्राणीका स्थूल देह बिस्तरेमें पड़ा रहनेपर भी वह अनेक, भिन्न भिन्न और दूरदरके स्थानोंमें जानेका अनुभव करता है, तो भी उसे इसका भान नहीं रहता कि स्वयं मैं उससे भिन्न हूँ या संयुक्त, वैसाही यह प्रसंग था. पर इस अवस्थामें-वासनादेहमें मैं बिलकुल आरोग्य, सशक्त और बिना किसी उपाधिकी थी, इस स्थूलका दुःखादि तो स्थूलके पासही रहा गया था."

"मेरी सत् वासना अब मार्गमें लग गई थी, वही कार्य मैंने तुरंत आरंभ कर दिया. उस परम दिव्य अच्युत तीर्थकी अच्युत मूर्ति, जो मुझको वासनारूपसे दिखलाई दी थी, कहीं चली नहीं गई थी. उसको देखकर मुझे प्रत्यक्ष अच्युतसे मिलानेके समान भावना हुई. इससे अत्यंत प्रेमभावसे आरंभमें मैंने उन कृपालुके चरण-स्पर्श करनेके लिए जो प्रयत्न किया था, तथा जिसके लिए मैं मूर्छित हो गई थी वह मैंने उस समय फिर सफल किया. प्रभुके त्रिलोकपावन चरणोंका स्पर्श करके मैं कृतार्थ हुई. प्रीतिका बंधाव ऐसाही होता है! अन्तर्यामीपनसे मेरे प्रेमको जानकर उन सर्वेश्वरने मुझे अपने चरणोंका पुनः स्पर्श कराया. अहो! हे साधुजन! धन्य धन्य वे पवित्र चरणारविन्द! अहो! क्या उन्होंकी मृदुता! कैसी कोमलता! मानों प्रफुल्लित कमलके उपरही मेरा हाथ न फिर गया हो! उन्होंका वर्ण (रंग) भी तलियोंके भागमें तो सचमुच खीले हुए नवीन कमलहीके समान गुलाबी! और उन्होंका आकार भी अरविन्दकासा. पादतलियें, वे मानों कमलका मध्यभाग, और सुंदर अंगुलियें, वे मानों कमलकी मृदु पांखडियें! उन (अंगुलियों)

पादसेवनभक्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के तलेमें जो अनेक प्रकारकी रेखाएं, उनमें भी मुख्य रेखा पद्म, अर्थात् कमलकी थीं. इन कारणोंसेही शास्त्रोंमें उन प्रभुचरणोंको चरणारविन्द, चरणकमल और पादाब्ज इत्यादि नाम दिये गये हैं.

उपरके भागमें देखूं तो वह घनश्यामवर्ण चरणोंकी अंगुलियोंके नखरत्न मानों अंधेरी रात्रिमें श्यामवर्ण आकाशमें तेजस्वी तारे चमकते हों वैसे दीखते थे. ऐसे मंगलमय चरणारविन्दोंको वारंवार सेवनस्पर्शन करनेसे जब मैं तृप्त नहीं हुई तब उन्होंके ऊपर मैंने अपना मस्तक धर दिया. अबतक मेरा प्रेम*बढताही जाता था, इस लिए इतना संतोष न होनेसे वे चरण मेरे मस्तकपर धारण करनेकी तथा अपने हृदयसे चांपनेकी मुझे प्रबल उत्कंठा, होगयी. उस प्रभुने वे दोनों मृदु चरणारविन्द मेरे मस्तक उपर धरे, और मैंने प्रेमसे उन्होंको अपने हृदयसे चांपा. त्रिलोकमंगल वे चरणारविन्द मुझे समग्र सुखके स्थान, और सकल साधुसंतोंका आश्रयरूप हुए. वे सकलश्री, समृद्धि, प्रताप और अद्भुत ऐश्वर्यके धामरूप थे. सर्व देवताओ, महर्षियो, और साधुजनो जिनका ध्यान करते हैं, एवं श्री शिव—ब्रह्मादिक सृष्टिके ईश्वर जिनका निरंतर वंदन, तथा सेवन करते हैं, ऐसे वे अच्युतचरणारविन्द, ध्यान करनेवालेके अन्तःकरणमेंके सर्व पाप—दुःख, वासना तथा अज्ञानका समूल नाश करदेते हैं !

चरण, यह समस्त शरीरमें नीचा अंग है; और उनसे ऊपरके उत्तरोत्तर चढते अंग विशेष उत्तम हैं. प्रभुकी मूर्त्तिके वे वे अंग कैसे सुखमय होंगे !? वह देखनेके लिये फिर मेरी वासना-उभर आई. †"

---

*टीका–यहां लौकिक प्रेम नहीं समझना, किन्तु परब्रह्म कौन ? और जीव कौन ? उन्होंका संबंध क्या ? यह जाननेरूप जो श्रम वही प्रेम. † टीका–जीवात्मा तथा परमात्माकी एकता संबंधमें इस भक्तिका प्रकार निरालाही है. परब्रह्मके शोधनमें प्रथम तत्त्वका विचार करना चरणभक्ति है; पंचभूतका विचार कीर्तनभक्ति है; पंचकोशका विचार स्मरणभक्ति है; पंचतत्त्व, पंचमहाभूत, पंचकोश इन सबसे मैं न्यारा हूँ, ऐसा जो दृढ़ निश्चय है वह अर्चनभक्ति है; मैं कौन हूँ, इस प्रकार महावाक्यसे विचार करना वंदनभक्ति है; आत्मा और परमात्मा एकही है, मैं दूसरा नहीं हूँ--अर्थात् आत्मा परमात्माकी एकताका विचार, दास्यभक्ति है; 'वह तू है' ऐसा निश्चय करना सख्यभक्ति है, यह सब ब्रह्म है, ईश्वररूपही है, ऐसा दृढ़ निश्चय होना आत्मनिवेदन है और परमात्मा तथा आत्मा एकही है, इस प्रकार परमात्मामें आत्माको लीन करना अनन्यभक्ति है. प्रभुके स्वरूपकी सेवाके संबंधमें ऐसा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"पहले मैं उनके चरणाविन्दसे मुकुटपर्यन्त सारा स्वरूप अचल दृष्टिसे देखने लगी; पर जब संतुष्ट नहीं हुई तो फिरसे मैंने उनका प्रत्येक अंग देखना प्रारंभ किया. सुन्दर भरी हुई पिंडलियाँ, केलेकी पींड जैसी जंघाएँ, अत्यंत गोल और पुष्ट नितंब जगतके उत्पत्ति स्थानरूप गुह्यांग, सिंहकी कमरके समान कटिभाग और उसपर बडी छटासे पहरा हुआ बिजलीके समान तेजस्वी पीताम्बर, गंभीर नाभि, अत्यंत मनोहर और उदार वक्षःस्थल–हृदय, अपनी अद्भुत आभा और शोभासे प्रदीप्त कौस्तुभ मणि, उनके अत्यंत विशाल और सिंहके समान स्कंध, दिव्य बाहु उनपर पहरे हुए रत्नजडित बाहुभूषण–बाजुबंद सुन्दर पहुँची, नूतन प्रस्फुटित कमलके समान अरुण और सुकोमल हस्तकमल, चंद्रसम प्रदीप्त नख, और उँगलियाँ, सुन्दर सुकोमल कंठप्रदेश, तेजस्वी हीरेसे प्रदीप्त चिबुक, बिम्बाफलसम अधरोष्ठ, मंद-मधुर मुस्कुराता हुआ मुखारविन्द, हँसते हुए कभी कभी दिख जानेवाली-मणियोंसे जडी

अर्चनभक्ति
ध्यानभक्ति

–समझना चाहिए कि—मैं कहाँसे आया, कैसे आया, कहाँ जाऊँगा, मेरा क्या होगा, ऐसा विचार होना चरणप्रक्षालन है; संसार असार है और मैं मृत्युवश मानवी हूँ, ऐसे विचारसे संसारसे अलग होजाना प्रभुकी स्नानादि क्रियाका भेद है; मैं जीव नहीं हूँ, पर और कुछ हूँ, ऐसा विचार होना वस्त्रपरिधान है; मैं पंचभूतसे न्यारा हूँ, पंचकोशसे न्यारा हूँ ऐसा विचार होना अलंकारपरिधानक्रिया हैं; जो वह है वही मैं हूँ ऐसा निश्चय पुष्पचंदनादि क्रिया है; मैं विश्वव्यापी हूँ, मेरा इस संसारसे कुछ संबंध नहीं है—मैं किसीका नहीं हूँ और मेरा कोई नहीं है ऐसा जो विचार है वह मंगल आरति है; मैं ही यह हूँ, ऐसा नखशिखपर्यन्त अखंड एकरस भाव प्रकट करना और परमात्माका अनुसंधान करना परम दर्शन है. प्रभुके चरण तत्त्वविचारका स्थान, घुटने पंचभूत विचारका स्थान, जानु पंचकोश विचारका स्थान, कटि द्वैत अद्वैतके भेद–विचारका स्थान, पेट परमात्मा और आत्माकी एकताके विचारका स्थान, हाथ 'वह तू है' इस निश्चयका स्थान, हृदय, 'मैं सर्वत्र हूँ, किसीसे जुदा नहीं हूँ' ऐसे निश्चयका स्थान, कपोल सब वासनाक्षयका स्थान, मस्तक विज्ञानब्रह्मको जाननेका स्थान और मृदु मैं ही परब्रह्म हूँ ऐसा जानकर परब्रह्ममें लीन–लय होनेका स्थान है–ऐसा वेदान्तपक्षमें परमात्माकी उपासनाका स्वरूप है.

१ जाननेवाला जानता और मानता है कि परमात्माके अंग, वस्त्रालंकार लौकिक अलंकारों जैसे नहीं हैं, पर वे सब दिव्य–कल्पनामें न आनेवाले-अनिर्वचनीय और अकथ हैं. परन्तु उनके समझाने या दिखलानेके लिए इह लोककी भाषामें शब्द न होनेसे उनके समझनेके लिए ही इस भाषाके व्यावहारिक शब्दोंका प्रयोग किया जाता है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुई जैसी दशनपंक्ति, सुन्दर सुकोमल लावण्यमयी नासिका, तुरंत प्रस्फुटित हुए लालकमलके समान सुन्दरतापूर्ण तेजकी खानके समान विशाल कोमल नेत्र, सुन्दर बांकदार भृकुटी, गोल सुकोमल गाल, बिजलीके समान शोभा देनेवाले कोमल कर्ण, उठे हुए कपोलपर झूलती हुई श्याम स्निग्ध (सचिक्कण) केशकी लटें, भ्रमध्यसे आरंभ होकर भव्य ललाटका कस्तूरी तिलक, मोतीकी माँग और मयूरपुच्छकी चंद्रिकाओंसे अलंकृत महाशोभायमान मुकुट जिसपर सुशोभित था वह सर्वोपरि कोमल केशावलियुक्त श्रीमस्तक, गलेमें पड़ी हुई कमलफूलोंकी लम्बी वनमाला, कंधोंमें पड़ा हुआ सुवर्णका पीत वर्णका उपरणा और क्रीड़ाके लिए हाथमें धरा हुआ लम्बी दाँडीवाला प्रफुल्लित कमलपुष्प—इस प्रकार अंग प्रत्यंग और वस्त्रालंकार पूर्ण प्रेमसे अवलोकन कर, मैं बारंबार उनकी परिक्रमा करने लगी और अबसे फिर उस दिव्य स्वरूपको कभी भूल न सकूं इस प्रकार बड़ी एकाग्रतासे अपने आत्ममंदिरमें उसकी दृढ़ स्थापना कर ली."

" अब मेरा प्रेम उत्तरोत्तर उस स्वरूपमें बढ़तेही गया. मुझे उसका अर्चन करनेकी इच्छा हुई. उन कृपालु प्रभुकी इच्छासे मेरी सारी मनोवृत्तियाँ—जो अंतःकरणमें नित्य अदृश्यरूपसे रहती हैं—उस समय अनेक प्रकारकी दिव्य पूजनकी सामग्रीरूप होने लगीं. उल्हासयुक्त मनसे मैं प्रभुकी मानसिक सेवा करने लगी. पुष्पांजलिद्वारा उनका स्वागत किया. मनोमय रीतिसे विधिपूर्वक यह सब अर्चनविधिकी, जो प्रत्येक जिज्ञासु जानता है, तू भी जानता है और यह संघ भी जानता है. तुम्हारे हृदयमें वह भराहुआ है; इस लिए इस आनंदका विशेष वर्णन नहीं करती."

इतना कहकर वह साध्वी कुछ देर चुप रह कर फिर बोली; " फिर यह बतलानेके लिए कि यह कृपालु प्रभु, मेरे सबसे श्रेष्ठ, पूज्य, मान्य और सेव्य हैं और मैं उनके अधीन हूँ, मैंने उनके चारों ओर अनेक वार प्रदक्षिणा करके, उनके चरणारविन्दमें साष्टाङ्ग प्रणाम करके वंदन किया. ' प्रभो ! आप सदा सर्वदा मेरे वंदनीय हो, मैं प्रेमसे आपके पदकमलको प्रणाम करती हूँ. आप सबके वंदनीय हो. सारा विश्व आपके आगे नतमस्तक है. आप दृश्यादृश्य समग्र सृष्टिके पदार्थों और प्राणियोंसे श्रेष्ठ हो. आपसे बढ़कर कोई अधिक नहीं है. इस लिए हे दीनबंधु ! आप मेरे, जो कि प्रारब्धयोगसे यहाँपर बिलकुल

वंदन भक्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनाथ हो गई हूँ, उद्धारक बंधु हुए हो, उसका पल्टा चुकाकर आपको प्रसन्न करनेके योग्य मेरे पास कुछ नहीं है; सबरूपसे केवल मैं आपको वंदन करती हूँ. कृपासिन्धु ! महात्मा लोग आपको केवल एकवार एकही प्रणामसे वंदन करनेका बड़ा फल बतला गये हैं. अश्वमेध जैसा बड़ा श्रौत यज्ञ दश वार करनेवालेको जो महापुण्य हो, उससे भी अधिक फलका भागी वह होता है जो तुमको विशुद्ध अन्तःकरणसे शरण होकर एकवार साष्टाङ्ग प्रणाम करता है. क्योंकि दश अश्वमेध करनेवाला उस पुण्यसे दिव्य लोकमें जाकर अपार सुख भोगता है सही, पर वह पुण्यभोग पूर्ण होतेही उसे फिर जगत्पुरमें—मृत्युलोकमें जन्म लेना पड़ता है और तुमको प्रणाम करनेवाला तो तुह्मारी शरणमें होजाता है, इसलिए उसे फिर जन्म लेना नहीं पड़ता है[1] सर्वेश्वर ! विश्वरूप ! आप मेरे आगे ऐसी मनोहर मूर्तिसे विराजमान होनेपर भी, अव्यक्तरूपसे सारे विश्वमें समानतासे निवास कर रहे हो. उस विश्वरूपसे आपही हो. उसे देखते तो सारा विश्वही मुझको वंदनीय है और मैं विश्वकी जड़चेतन सभी वस्तुके आगे नम्र हूँ और इस लिए, परमपुरुष ! परमेश्वर ! मैं आपको सहस्रवार प्रणाम करता हूँ. आपको वारंवार नमस्कार करता हूँ. आप सर्वत्र हो और सर्वरूप हो, इस लिए आपके आगे पीछे, आजू बाजू, ऊँचे नीचे और सर्वत्र मेरा आपको नमस्कार है.[2] परात्पर प्रभु ! आपको जो नहीं जानता वही जानता है, जो जानता है, वह नहीं जानता. आप चाहे जैसे हो पर मैं नहीं जानती. चंदनके भारको ढोनेवाला पशु भारको जानता है, पर चंदनको नहीं जानता, ऐसी मेरी दशा है !"

"मेरे मनमें अब प्रश्न होने लगा कि, इन सर्वेश्वरके आगे मैं किस अधिकारमें हूँ—अर्थात् कैसी भावनासे मुझको रहना चाहिए और कैसा संबंध जानना चाहिए ? मैं उनकी शरणमें हूँ और वे कृपालु मेरे शरण-

दास्य भक्ति

दाता हैं; वे परमेश्वर हैं और मैं तो उनकी अनंत सृष्टिका एक दीन हीन जीव हूँ, वे एक महातेजस्वी सूर्य हैं, और

---

१ एकोऽपि कृष्णस्य कृतप्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥

२ नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोपि नमोनमस्ते ।
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मैं तो अँधेरेकी एक क्षुद्र तलैया हूँ. वे समर्थ तो महासमुद्र हैं और मैं तो एक बूँद भी नहीं हूँ वे सबसे स्वतंत्र हैं और मैं तो उनके अधीन हूँ. वे विद्यासागर हैं और मैं तो अविद्यामें सनी हुई एक क्षुद्र जीव हूँ. वे मायाके पति हैं और मैं तो उनकी प्रबल मायाके वशमें हूँ. वे सर्वज्ञ हैं और मैं अल्पज्ञ हूँ, वे परमपावन—अधमोद्धारण हैं और मैं अधमाधम हूँ. वे महा मंगल हैं और मैं अमंगल हूँ. परन्तु वे यदि कृपा करके पवित्र करलें तो उनकी भक्त हो जाऊँ. यथार्थ देखनेमें तो वे मेरे और मैं उनका अंश हूँ. इस प्रकार वे सब तरहसे मुझसे श्रेष्ठ हैं, इस लिए वे सेवा किये जाने योग्य (सेव्य) और मैं उनकी सेविका हूँ. वे स्वामी और मैं उनकी दासी—टहलनी हूँ.' अब मैं सदा उन्हींकी परिचर्यामें रहूँगी ! ऐसी भावनासे मैं हाथ जोड़कर कोमल हृदयसे यह प्रतीक्षा करते हुई सामने खड़ी रही कि वे कृपालु मुझको क्या आज्ञा देते हैं."

अबतक अपनी मूर्छावस्थाका वर्णन कर सब श्रोताओंको अच्युत भक्तिमें तल्लीन कर, वह फिर बोली; "इस प्रकार बहुकालपर्यन्त सम्मुख रहकर एकाग्रता और दास्यभावसे प्रभुका स्वरूपानुसंधान करती हुई उनकी मुखमुद्रा मुझपर बहुत प्रसन्न देखनेमें आई. उस परसे मुझको ऐसा जान पड़ा मानों अपने स्वामीसे की हुई मेरी वंचना और अच्युतमार्ग त्यागकर जाने तथा बिना जाने किये गये मेरे पापोंको वे प्रियनाथ कृपा कर क्षमा कर रहे हैं: जैसे कोई सुहृसखा—मित्र अपने अत्यंत प्यारे सखासे या स्नेही स्नेहीसे प्रिय प्रियसे, माता संतानसे और पति अपनी पत्नीसे, परस्पर प्रीतिके बदले या प्रीतिके संबंधसे ऐक्य प्रदर्शित करता है उससे भी अधिक ऐक्य मुझे प्रभुके साथमें दिख पड़ा ! सखा अपने प्रिय सखाको प्रीतिके संबंधमें अपना गुप्तसे गुप्त और प्रियसे प्रिय जो कुछ भी हो दे देता है, उसी प्रकार इन कृपालुने अपने गुप्तसे गुप्त स्वरूपका अनुभव कराकर, मुझको कृतार्थ कर दिया. सर्वेश्वर प्रभुसे मेरी लगन लग गई ! वे मेरे अंग अंगमें व्याप्त हो गये. मेरे नेत्रोंमें जो अद्भुत दिव्य मूर्ति थी वह अदृश्य हो गई और नूतन मूर्ति

---

१ टीका—भक्ति नव प्रकारकी है. 'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥' दास्यभक्ति सातवाँ प्रकार है. गीतामें कहा है कि, सब धर्मोंका त्यागकर, मुझ एकको शरणमें आ, वही यहां वर्णन किया गया है. यह शरण मृदु है, परन्तु मोक्षको दाता है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हृदयमें खड़ी हो गई. तब मैंने जाना कि यह मूर्ति चली तो गई पर मेरे हृदयसे कहाँ जायगी ?' अब मुझको ऐसा अभयदान मिला हुआ जान पडा मानों किसीका भी भय मुझको नहीं है. इसके सिवा उनकी प्रसन्नतापूर्ण मुखकी तथा कृपाकटाक्षसे मुझको ऐसा मालूम हुआ कि उनके द्वारा मुझे कोई बड़ा गुप्त लाभ होनेवाला है. अहा! वे कृपालु प्रभु अपने शरणागतको कैसा और कितना चाहते हैं ! अहा ! कहाँ मैं और कहाँ वे ! तो भी मुझ जैसे एक क्षुद्र जीव पर उनका इतना बड़ा प्रेम कि जो मेरे हृदयसे जाताही नहीं है. ऐसा सख्यभाव देखकर मेरा सख्य-प्रेम असीम हो गया. मुझको उत्साह हुआ कि सख्यसंबंधमें उन कृपालुने जब मुझे अपने स्वरूपका अनुभव कराया है तो उसके बदलमें मैं उन्हें क्या देऊँ ?"

"इनको देने योग्य मेरे पास क्या था ? ऐसी कौनसी वस्तु है कि जिससे वे प्रसन्न हों ? फिर इस जगतमें जो कुछ है वह सब उन्हींका है और मेरे पासमें भी जो कुछ है, वह सब उन्हींका है; मेरा कुछ भी नहीं है, तो फिर इनको ऐसा क्या देऊँ कि जो मेरा हो ? दूसरा तो कुछ भी मेरा नहीं ह, यह देह भी मेरा नहीं है. मन भी मेरा नहीं है और अंतःकरणकी दृढ़ अहंकारग्रंथि, जिसको मैंपनका अभिमान है, उसपर इन कृपालु प्रभुका आभास पड़नेसे, 'जीव' संज्ञा होती है. वह भी मेरी नहीं है. अब क्या करूँ ? यह सब मेरा नहीं है तो भी उनकी वस्तुपर 'मेरी है' ऐसा जब दृढाभिमान हो रहा है तो उस मिथ्याभिमानको समूल त्यागकर दातव्यरूपसे वही वस्तु उनको अर्पण करनी चाहिए. काम्यकर्मके फलके त्यागको महात्माओंने त्याग कहा है. पुत्रैषणा (पुत्रकी इच्छा) त्यागना, वित्तैषणा त्यागना, स्वर्गादि लोकैषणा त्यागना, निर्विषय मन करना, चित्तनिग्रह करना, चित्ताभाव होना, ऐसी जो आत्मरति-आत्मतृप्ति है, वह आत्मामेंही संतुष्ट रहती है—उसको कुछ कर्तव्य नहीं है-इससे आत्माही अर्पण करना श्रेष्ठ है. ऐसा निश्चयकर

आत्मनिवेदन भक्ति

---

१ टीका —यह मध्यम शरण है. श्रीकृष्ण जब गोपियोंका हाथ झटककर भाग गये तो गोपियोंने कहा; "कृष्ण, हाथ झटककर, बलात्कारसे भाग कर चले गये इसमें क्या आश्चर्य है ! जब हमारे मानस मंदिरसे चले जाओ तभी तुम्हारा पराक्रम जानें. " यहाँ पर जिस प्रकारका वर्णन किया गया है वह ऐसा ही है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मैंने अपना तन मन—धनरूप सर्वस्व प्रभुको अर्पण कर देना ठीक समझा. तुरंत बड़े प्रेमावेशसे मैं उनके चरणारविन्दोंपर जा पडी और अहंकार-ग्रंथिमें पड़ा हुआ चिदाभासरूप जो मेरा जीवात्मा था उसे मैंने उनको अर्पण कर दिया. उनके स्वरूपमें मेरी एकाग्रता हो गई! * उनपर अनिवार्य प्रेम, और उनके आवेशसे इस प्रकारसे होनेवाला आत्मनिवेदन–आत्मर्पण––आत्मैक्य इस सबसे मैं तद्रूप हो गई. मुझे देह या जीवका कुछ भान नहीं रहा. इस समय मेरी विलक्षण स्थिति हो गई. पहले सांसारिक दशा देहको होती है; अर्थात् देहरूपसे ही प्राणी दिखलाई देता है; देहकी स्थिति इंद्रियों सहित मनसे प्रतिष्ठित है और इस मनको जो अत्यंत चपल और सब विकारों, व्यवहारोंमें कारणरूप होते हुए भी स्वतः जड और परप्रकाशित है, अपना प्रकाश देकर, चिदाभास–परमात्माका प्रतिबिम्ब अथवा अंशरूप जीव जाग्रत करता है. इस प्रकारसे जाग्रत हुआ मनही प्राणीको पुनः बंधनरूप होता है. परन्तु मनादि जड़का संग (आसक्ति) दूर होतेही जीवात्मा शुद्ध चिद्रूप—अर्थात् परमात्माका अंश होनेसे अंशीके साथ मिलकर एक हो जाता है. उसकी स्थिति फिर सबसे निरामय, सुखमय, चिन्मय और सन्मय सच्चिदानंदरूप है. मेरी स्थिति इन जडादिकोंका संग दूर होतेही ऐसी वासनारहित हो गई! मेरा कुछ नहीं है! उसी तरह मैं भी कुछ नहीं हूँ! वह भी कुछ नहीं है. सर्वथा केवल प्रभु अच्युत ही हैं. मुझको कुछ भी ज्ञान न रहा. इस प्रकार मेरी अचेतनता उत्तरोत्तर इतनी अधिक बढ़ गई कि मानों मेरी दैहिक स्थितिका भय हो गया हो और जिनको मैंने अपना सर्वस्वार्पण कर दिया था उस अच्युत-स्वरूपका सावयवी––निरावयवी––साकार निराकार मन भी शनैः शनैः लय होने लगा और कुछ देरमें वह अद्भुत स्वरूप समूल अदृश्य हो गया.

"पर मेरे हृदय––अंतरके गुह्यागारमें जहाँका कुछ भी कोई देख नहीं सकता, परन्तु जो स्वयं ही अपने द्वारा देखा जा सकता है, वहाँ एक नई मूर्ति––नया स्वरूप––दिव्य स्वरूप दिखलाई दिया. स्वयं एक ज्योतिर्मूर्ति

* यह अवधिशरण है. यह गोपियों और श्रीकृष्णके संबंधका तादृश्य स्वरूप है, भागवतमें वर्णन कीगई रासलीला, गोपीप्रेम, कृष्णको स्वात्मार्पण, आदि आध्यात्मिक विषयकी यह सब गूढता आत्मनिवेदन भक्तिका रहस्य समझनेसे बुद्धिमान् सहजही समझ जायगा.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकट होगई ! अहा ! गुहाग्रन्थि भिद जानेसे शोक दूर हो गया, वह पापको भी पार कर गई, वासना भी मर गई और विश्व लयको प्राप्त होते हुए मालूम हुआ. तथा भयको प्राप्त हो गया, इस स्वरूपके सहजानंदमें विहार करनेवालेकी गतिको कौन जान सकता है ? वह अत्यंत गूढ़ है—जो जानता है वही जानता है. पानीमें रहनेवाली मछलीकी गतिकी कल्पना की जा सकती है, आकाशमें उड़ते हुए पक्षीकी गति जानी जा सकती है, वायुकी गति मालूम की जा सकती है, परन्तु सहजानंद स्वरूपकी गति अकलित है. वह अत्यंत गूढ़ और अतिशय गुप्त है ! अहा ! उसको जो जानता है वही जानता है; परन्तु जाननेवाला बोल नहीं सकता. देखनेवाला दिखला नहीं सकता है. सुननेवाला सुना नहीं सकता अब मेरी जो स्थिति होगई उसका वर्णन मैं नहीं कर सकती, क्योंकि उसका वर्णन करनेके लिए मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं हैं, उसकी तुलना करनेके लिए इसका नाम अकथ—अनुपम स्थिति—यही ब्रह्मदशा है ! यही नेति नेति है ! !

इस प्रकार मुझको मूर्छामें महामूर्छा प्राप्त हुई ! ! अच्युतप्रिय महात्मा ! इसका वर्णन बहुत आनंदप्रद है. मुझ अधम, अज्ञात और बिना किसी साधनवालीको केवल अपनी शरणमें आई हुई देखकर, ऐसी सर्वोत्तम ब्राह्मी स्थितिका दर्शन देनेमें उन कृपालु प्रभुकी कितनी बड़ी कृपा है. इसी लिए महात्मा पुरुषोंने उन्हें 'कृपाके सागर' कहा है. ऐसी अपनी दशामें कितना समय बीता होता इस बातका मुझको स्मरण नहीं है.

"फिर मुझको एकाएक कुछ चेत हुआ. उस समय अपनी आँखोंके आगे मैंने अत्यंत आश्चर्य और आनंद पैदा करनेवाला निर्मल प्रकाश देखा. उस प्रकाशमेंसे ऐसे पुरुष निकल कर मेरे समीप आये मानो उस प्रकाशसे ही पैदा हुए हों. वे मुझको उस प्रकाशमें ले गये ! नजर फेककर देखा तो जहाँसे प्रकाश आ रहा था वहं मुझको ऐसा लगा मानों एक विचित्र वाहन (सवारी) हो. उसमें अनेक तेजस्वी लोग मुझको बैठे हुए दीख पड़े. यह सवारी शून्य (आकाश) में थी और उसको खींचनेके लिए पशु, पक्षी, मानवादि किसीकी सहायता नहीं थी. ऐसा देखकर अपने स्वामीसे मैंने पहलेही सुन रखा था वह बात मुझको याद हो आई कि यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाहन नभगामी विमान है.[1] मैं उसमें बैठाई गई और विमानके भीतर जो लोग बैठे हुए थे वे बड़े प्रेमसे मेरा सत्कार करने लगे. मानों वे मेरे अत्यंत निकटवर्ती प्रेमी कुटुम्बी हों. बाहरसे देखने पर यह विमान मुझे वायुसागरमें तैरती हुई एक छोटी नौका जैसा मालूम हुआ, पर भीतर जानेपर जो इसका बहुतही बड़ा विस्तार मालूम हुआ, उसकी शोभा और रचनाका भी कुछ पार न था. मेरा मन भीतरी रचना देखनेमें लीन हो गया था इतनेमें छोटे आकारके बाजों और अच्युतनामके मंगल शब्दोंकी ध्वनि हुई. विमान चला. विमान चलते समय मैं नीचेकी ओर चारोंतरफ देखती जाती थी. मैं बहुत स्वच्छ प्रकाशमें थी इससे नीचेकी भूमि और इतर पदार्थ मुझको बहुत धुँधले जान पड़े, मानों वे एक सामान्य अंधकारमें ही पड़े हों ! विमान नभ मार्गमें शीघ्रतासे बढ़ा पर वह किस ओरको जायगा और मुझको कहाँ ले जायगा, इसके लिए मुझे जरा भी शंका नहीं हुई. मैं तो केवल चारों ओर दीखती हुई भूमि और अंतरिक्षकी अद्भुत चमत्कृतियाँ देखनेमें ही निमग्न थी. अपने पास बैठे हुए पवित्र पुरुषोंसे वार्तालाप करनेका भी मुझे स्मरण नहीं रहा. कुछ आगे जाकर मैंने जमीनकी ओर देखा तो एक सादा और शुद्ध मार्ग, दोनों बाजूकी लताओंसे आवृत देखनेमें आया. वह उत्तर दिशाकी ओर जाता था और उत्तरोत्तर अत्यंत उच्च सूर्यमंडलको भेदकर जाता हुआ मालूम हुआ. उस पर अनेक मानव-समुदाय क्रमशः चले जाते थे. ऐसे अनेक जनसमाजको पीछे छोड़कर हमारा विमान आगे बढ़ा. उसे मानों भूतलके इस मार्गके सहारेही चलना है इस प्रकार उसने इसकी सीमा नहीं छोड़ी अतः उस मार्गकी स्थिति अवलोकन करनेका मुझे सहज ही सुयोग प्राप्त हो गया. जब मैं विचारपूर्वक देखने लगी तो उस पर जो जनसमाज चला जा रहा था उसके सब लोग ऐसे परिचित मालूम हुए मानों मेरे साथी हों. वे बार बार अच्युतनामकी जयध्वनि करते थे इससे मैं समझ गयी कि यह मार्ग (पगडंडी) वही परमपावन अच्युतमार्ग ही है और पथिकोंके ये छोटे बड़े टोले (संघ) उस कालपुरुषके भयसे भागे हुए जगत्पुरवासियोंके हैं.

---

१ लौकिकमें जाना माना हुआ विमान नहीं, पर स्वात्मस्वरूपसे, ज्ञानी जो अधर रहकर अवकाशमें उड़ता है, वह विमान.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक संघमें सबसे आगे चलनेवाले और साथी पथिकोंको मार्गका उपदेश देनेवाले एक पुरुषको मैंने भलीभाँति पहिंचाना. मेरी पूज्यस्वरूप और चिरकाल परिचयमें आई हुई इसकी पावन मूर्ति, प्रेमपूर्ण मुखाकृति और उससे झरनेवाले अमृतसमान मधुर तथा हितकर वचनोंने मेरे मनको उसकी ओर अकस्मात् खींच लिया. मुझको तुरंत स्मरण हुआ कि मैं उसकी अपराधिनी हूँ. इस समय भी वह भूमिपर सादे स्वभावसे* चला जा रहा है और मैं उससे ऊँचे अंतरिक्षमें दिव्य स्थानमें विचरण कर रही हूँ. यह भी बड़ा भारी अपराध है. हरे! हरे! पतिव्रताके संबंधमें यह कितना विपरीत और खेदप्रद है! हे अच्युतपथगामी महात्मा! तू समझ तो गया ही होगा कि, यह पुरुष कौन है? यह पुनीत पुरुष अच्युतपुर जानेके लिए घरसे निकला और मुझसे बिछुड़ा हुआ मेरा स्वामी है! हे सत्साधक! बड़े दुर्धर वियोगके अंतमें अपने स्वामीको देखकर मुझको अत्यंत आश्चर्य और आनन्द हुआ. पर साथ ही, मैंने जान बूझकर उन प्रति जो अपराध किया था तदर्थ मुझको उस समय बड़ी ग्लानि और विषाद भी हुआ. तथापि एक बातसे मुझे धैर्य था कि, उनका स्वभाव बड़ा शान्त, प्रेमी तथा क्षमाशील है, अतः मैं यदि उनके पैरों पर जा गिरूंगी तो वे मुझको देखते ही मेरे सारे अपराध भूल जायँगे और मेरा स्वीकार करेंगे. पथिकवर! प्रेमिणी और धर्मशीला स्त्री अपने पतिव्रत धर्मको और पुरुष अपने स्वामीपनके धर्मको यथार्थ जानते हों तो ऐसे दम्पतीका परस्पर प्रेम कैसा उत्कट होता है और यह बात आपसे कुछ छिपी नहीं है कि उस प्रेमके प्रबल प्रकाशमें दूसरी सारी वस्तुएँ कैसी निस्तेज हो जाती हैं. मैं उस प्रेमावेशमें निरी अंधप्राय बन गई† मैंने सोचा कि मैं कैसी दुष्ट! और पाषाणहृदया हूँ कि मुझ अपराधिनीको इतना भी स्मरण न हुआ कि यदि मैं उनसे विलग हो जाऊँगी तो फिर उनकी पवित्र सेवा कौन करेगा? स्वामीके सकल कार्योंमें अंतःकरणसे सहायक होनेवाली मैं जबसे विलग हुई हूँ तबसे उनके इस एकान्त मार्गमें कौन सहायता करता होगा? प्रतिदिन मार्ग चल कर मेरे श्रमित स्वामी जब विश्रमार्थ ठहरते होंगे तो

---

*टीका—क्योंकि भक्ति साथमें नहीं है. † टीका—यहाँ भक्ति और ज्ञानका समीपी संबंध बताया है. यद्यपि भक्ति श्रेष्ठ है, सर्वोपरि है, पर ज्ञानरहित वह शोभा नहीं देती.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनके लिए आसन कौन बिछा देता होगा ? वनफलादि भोज्य सामग्री कौन ला देता होगा ? उनके मुखसे झरनेवाला अच्युतकथामृत कौन पीता होगा ? ऐसी प्रेमयुत सेवासे प्रसन्न होकर उनके मुखसे निकलते हुए 'प्रिये तेरा कल्याण हो ! कल्याण हो.' ऐसा आशीर्वाद ग्रहण करनेको कौन भाग्यशाली होता होगा ? यह तो जो हुआ, सो हुआ. किन्तु अब अपने वियोगी स्वामीको प्रत्यक्ष देखती हुई भी मैं किस ओरको देख रही हूँ ? चलो, मैं उनसे जा मिलूँ ! ऐसे आवेगसे मैं तुरंत खड़ी होकर गिर पड़ने, दौडने या मेरे और उनके बीच कितनी दूरी है अथवा मेरी और उनकी स्थितिमें कितना बड़ा अंतर है आदि किसी भी बातका विचार न कर अकस्मात् नीचे जा पड़नेके लिए बड़े बलसे उछली; पर क्या कहूँ ? जैसे स्वप्नस्थ प्राणी भयसे मुक्त होनेके लिए बहुत प्रयत्न करे, पर असीम परिश्रम करनेपर भी मानों उसके पैर टूट गये हैं और वह भाग नहीं सकता तथा बहुत व्याकुल होनेपर अकस्मात् गिर पड़ता है और उसी समय उसकी आँखें खुल जाती हैं, आँखें खुलतेही सारा स्वप्न और वह भय न जाने कहाँ चले जाते हैं, वैसेही मेरी भी दशा हुई. विमानमें मुझे कोई रोकता नहीं था, पर बहुत बड़ा परिश्रम करनेपर भी मैं कूद नहीं सकी. अंतमें जानपर खेलकर मैं ज्योंही बड़े बलसे कूदने लगी त्योंही विमानने एकाएक झटका खाया और साथही बड़े वेगसे आकाशमें समा गया तथा मेरे आगेकी सारी रचना अदृश्य होगई" *

इस प्रकार अपना पूर्ववृत्त कहकर यह अबला संघमें चारों ओर देखने लगी. संघके सारे पथिक उसके मुखकी ओर ऐसी लालसासे कि न जाने उसके मुखसे अब कौनसा विचित्र वृत्तान्त निकलेगा. अचल दृष्टि

---

*टीका—जबतक जीवकी स्थिति, भूतके पृथक् भागका एकस्थ अनुभव नहीं करती तबतक वह ब्रह्मभावको पूर्णरूपसे प्राप्त नहीं करती. यह भाव प्राप्त करनेके लिए अनन्यताकी आवश्यकता है. यह विश्वब्रह्म है ऐसा भाव हुए विना, पूर्णब्रह्म प्राप्त नहीं होता. यहाँतक जीव कुछ अविद्याग्रस्त रहता है ! जबतक ज्ञानाभिमान नष्ट नहीं होता तबतक विशुद्ध ज्ञान नहीं होता. इस संगति (अविद्याग्रस्तता) का नाश होना चाहिए. अविद्याका कुछ नाश कथालापसे, कुछ शास्त्रविचारसे, पर पूर्ण नाश तो आत्मप्रत्ययसे ही होता है, जान लेने पर सबका त्याग करना चाहिए, ऐसा शंकरस्वामीका आदेश है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा बहु आतुरतासे देखने लगे. फिर वह सूर्यकी ओर देखकर बोली; "प्रिय पथिको ! स्वात्मकथाका यहीं अंत करती हूँ. सूर्यनारायण अस्ताचलके शिखरपर पहुँच गये हैं, वे हमें सूचित करते हैं कि, मुझको अपना अपार तेज प्रदान कर सारे ब्रह्माण्डको प्रकाशित करनेका आदेश देनेवाले सर्वेश्वर प्रभु अच्युत परब्रह्मकी संध्याकालीन उपासना करनेका समय हुआ है; इस लिए हम सब आलस्यको त्यागकर सायंसंध्यारूप अच्युतोपासनाके लिए तत्पर हों." यह सुनतेही प्रभुनामकी जयध्वनि कर सब पंथी खड़े होगये और पथिकाश्रमसे कुछ दूर बहनेवाली एक निर्मल नदीके तट पर संध्योपासना करनेको गये.

अंतरिक्षमें रहकर एकाग्रतासे यह वृत्तान्त सुननेवाले वरेप्सु आदि विमानवासी भी तुरंत नित्यकर्ममें प्रवृत्त हो गये.

संध्योपासनसे अवकाश पाकर सारे पंथी पथिकाश्रममें आये. फिर प्रेमपर्वक अच्युतकीर्तनका आरंभ हुआ. वह पूर्ण होतेही महात्मा सत्साधक फिर अपने संघसहित उस साध्वीको घेरकर बैठा, तब उसने प्रभुका स्मरण कर पुनः बोलना आरंभ किया.

"इसके बादका वृत्तान्त याद करतेही मेरा हृदय भर आता है और गला बैठ जाता है; क्योंकि अंजलिमें आया हुआ अमृत, अनन्यताके अभावसे मैं पी नहीं सकी. मेरा विमान बड़े वेगसे बहुत देरतक आकाशमें उड़ता रहा; उस समयके उसके अपार वेगके कारण मैं अपने आसपासका कुछ भी देख नहीं सकी, पर इतना तो जाना जा सकता था कि गगनस्थ उच्चातिउच्च अनेक दिव्य मंडलोंको भी पीछे छोड़ कर विमान धीरे धीरे ऊँचे ही चढ़ता जाता है. अंतमें वह किसी ऐसे गाढ़ आवरणमें जा पहुँचा जहाँ प्रकाशका नाम न था, पर वायु अपार था, इस तमाच्छन्न परदेको फाड कर दिव्य विमान आगे बढ़ा. इस अंधकारसे विमानस्थ जनोंको कुछ भी उद्वेग या व्यथा नहीं हुई; विमान स्वयम् परम प्रकाशित और उसका वाहक भी प्रकाशमयही था, तथा उसमें बैठनेवाले सब प्रकाशरूपही थे. आवरणरूप अंधकारका अंत आते ही उत्तरोत्तर कुछ नव्य दिव्य प्रकाश आने लगा. इससे हम सबके दिव्य नेत्रभी उसकी प्रभासे बंद हो जाने लगे. दर्शन होते ही ऐसा जान पड़ा मानों यह अकथ पुण्यप्रकाश हमें अपना वह अद्भुत तेज

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दान कर रहा है. जैसे किसी जलते हुए दीपकी शिखाको दूसरी तैलपूर्ण वर्तिका स्पर्श कराते ही उसमें भी उसीके समान नूतन दीपक प्रकट होता है वैसा मुझे मालूम हुआ; अर्थात् हम सब भी वैसे ही सुप्रकाशित हो गये और उस अनुपम प्रकाशमें हिलोरें लेने लगे. "

"अब मैं तुमसे एक और चमत्कारका वर्णन करती हूँ वह सुनो. वैसे चमत्कारके भोगनेका समय आनेपर और चित्तको विज्ञानसंगी रखनेसे तथा वासनाका लय करनेसे, तुम्हें भी उसका अनुभव होगा. जैसा मैंने देखा वैसे अनन्त सूर्योंकी एकत्र प्रभाके समान अद्भुत प्रकाश था, वह सिर्फ प्रकाश ही था, अथवा दूसरा कुछ था ? अतिशय प्रकाश तो अति उष्णता करता है. बहुत दूरसे हम पर पड़नेवाले एकही सूर्यके प्रकाशसे हमे कितनी बड़ी गर्मी लगती है ? तो अनंत सूर्योंके समान प्रकाश और उसकी गर्मी किसीसे सहन नहीं होती ! पर यह वैसा नहीं था. जैसा यह प्रकाश अनंत था वैसा उससे होनेवाली अपार उष्णताके बदले हमें अपार सुख होने लगा. यह सुख किस प्रकारका और कितना था, यह मैं नहीं कह सकती; क्योंकि जगत्पुरसे यहाँतक अनुभवमें आनेवाले उत्तमोत्तम सुखकी भी उसके साथ जरा समता नहीं दी जा सकती. इस अपार सुखकी प्राप्ति तो दूर रही, पर उसका आभास मात्र देखते ही, यहाँका सारा सुख निरा तुच्छ मालूम होता है. यह सुखमय पुण्य प्रकाश अपने सूर्यके प्रकाशकी भाँति अमुक स्थानसे आने और अमुक स्थानको जानेके जैसा नहीं था, यह तो जहाँका तहाँ सर्वत्र स्थायी–अढल–अचल और परिपूर्ण था. अतः मैं उसे किस नामसे तुम्हें परिचित कराऊँ, यह मैं नहीं जानती. सर्वत्र स्थायी और अचल तथा सर्वोत्तम होनेसे सत्–सत्यरूप था; प्रकाश होनेसे चित्–चैतन्य–ज्ञानरूप था; अपार सुखमय होनेसे आनंदरूप था. अतः ये तीनों नाम संयुक्त कर हम उसे (सत्–चित्–आनन्द) सच्चिदानन्द कहेंगे. ये सच्चिदानंद कितने विस्तारके थे, यह जाननेकी सबको स्वाभाविक इच्छा होगी; तदर्थ मुझे तो वहाँ ऐसा प्रत्यक्षानुभव हुआ है. "—

" जलपरिपूर्ण जैसे कोई अपार महासागर हो ऐसा वह था. पर नहीं; यह उपमा उसे निरी तुच्छ मानी जायगी; क्योंकि महासागर चाहे जैसा जितना गंभीर और विस्तृत हो, पर उसके आसपास पार–सीमा–किनारा है. यह प्रकाश तो निःसीम––अपार–अगाध है !! इसे क्या उपमा दीजाय ? शायद संकुचित होकर इतनी उपमा दी जा सकेगी कि, जलसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिपूर्ण महासागर जैसे अपरिमित है और उसम, उस जलसेही पैदा हुए और वृद्धिप्राप्त असंख्य मत्स्यादि प्राणी रहते हैं, विचरण करते हैं और उसीमें, लय भी हो जाते हैं उसी प्रकार इस अपार सच्चिदानन्दसागरमें एक छोटेसे छोटे मत्स्यकी भाँति यह सारा ब्रह्माण्ड और ऐसे दूसरे असंख्य ब्रह्माण्ड मुझे दिखायी दिये, जो इस सच्चिदानंदसागरमें ही जन्मते, विचरते और उसीमें लीन-समाप्त हो जाते हैं! इसपरसे तुम्हें ज्ञान हुआ होगा कि ये सच्चिदानंद कैसे अगाध, अपार, अपरिमित और अनुपम हैं! ये अज, अनिद्र, अस्वप्न, अनाम, अरूप, एक, चिन्मय और सर्वज्ञ हैं. उन्हें कार्य या कारण नहीं, सम नहीं, विषम नहीं, इनकी पराशक्ति विविध प्रकारकी है, उन्हें सूर्य चन्द्र प्रकाशित नहीं कर सकते, वायु उन्हें शोषण नहीं कर सकता, अग्निका वहाँ तापही कहाँसे हो? वहाँ जो जाता है वह फिर नहीं आता, उनके लाभसे और लाभ नहीं, उनके सुखसे दूसरा सुख नहीं. उनके ज्ञानसे अन्य ज्ञान नहीं, उनके दर्शनके बाद और दर्शन नहीं, उनको जान लेनेपर और कुछ जाननेको नहीं, उनको प्राप्त हो जानेपर मनसहित वाणी पीछे फिर आती है, वेही अनादिपरब्रह्म हैं. वे सत्य नहीं, वैसेभी असत्य नहीं, वे सर्वत्र हस्तपादवाले हैं, सर्वत्र चक्षु, मुख, मस्तक और श्रवणयुक्त हैं. इनके सिवा वहाँ और कुछ भी नहीं है! सर्वत्र यही परिपूर्ण हैं—और कुछ नहीं, अतः किसके सहारे (आधार) पर हम दिशाओंकी कल्पना करें? अथवा अमुक स्थानकी कल्पना करें? इसी तरह सूर्य चंद्रादिक कालमान बतलानेवाले भी वहाँ कोई नहीं हैं. वे सत्यरूप सनातन हैं--उनको आदि, मध्य, और अंत भी कैसे हो? इस परसे मुझको निश्चय हुआ कि, देश, काल और अवसानरहित सच्चिदानंदमय अच्युत परब्रह्मका ऐसा यह मूल स्वरूप है, ऐसा मेरे स्वामीनाथ ज्ञानमूर्ति मुझसे अनेकवार कहते थे, वह यही है! उस स्वरूपका अनुभव अर्थात् साक्षात्कार तो सबसे दुर्लभ है! उसे उस प्रभुकी पूर्ण कृपाका पात्र हुआ सर्वोत्कृष्ट भाग्यवान् प्राणी ही प्राप्त कर सकता है, ऐसा भी मेरे स्वामी ज्ञानमूर्ति मुझसे कहते थे; वह बात स्मरण हो आनेसे मुझे अपने परम भाग्यके लिए अपार हर्ष हुआ. मेरे स्वामी कहते थे कि, सच्चिदानंद अच्युत परमात्मा अखंड एकही हैं, अद्वैत हैं, अर्थात् प्रत्येक प्राणी परस्पर एक दूसरेसे भिन्न मानते हैं, वैसे न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होकर भी सब जीवरूपसे वे स्वयम्ही हैं. यह अनुभव भी मुझे वहीं प्रत्यक्ष हुआ. मैं तुरंत ही अपने विमानमें अपने साथियों, विमानवाहक, तथा अपनी ओर स्वयम् देखने लगी, तो सब एकरस सच्चिदानंदही मालूम हुए ! सबही तन्मय जान पड़े ! तद्रूप मालूम हुए ! अहा ! सर्वेश्वर अच्युत परब्रह्मकी गति कैसी विचित्र है ! इस प्रकार कई कारणोंसे मैंने सुनिश्चित-रूपसे जाना कि, यही अच्युत–यही परमात्मा–यही परब्रह्म–यही अद्वैत–यही पूर्ण–यही उन सर्वेश्वरका सच्चिदानन्दमय निराकार अव्यक्तरूप है ! ! तो फिर उनका साकार और व्यक्तिमान् स्वरूप कैसा होगा, ऐसी मुझे स्वाभाविक लहेर हुई; क्योंकि, मैंने अपने स्वामीद्वारा जाना था कि, एकही ब्रह्म दो प्रकारका है: निराकार और साकार, अव्यक्त और व्यक्त *"

"इतनेमें एक अद्भुत चमत्कृति मेरी आंखोंके आगे प्रादुर्भूत हुई ! पतले घीमें कुछ जमा हुआ घी पड़ा हो तो वह एक होने पर भी स्वरूपमें जैसे भिन्न नजर आता है, अथवा शुद्ध जलसे भरे हुए पात्रमें पडा हुआ बरफ-जमा हुआ पानीका टुकड़ा यद्यपि जलही है, तथापि भरे हुए जलसे बिलकुल जुदा और मनोहर श्वेत लगता है, वैसीही इस सच्चिदानन्दकी मुझे कोई अद्भुत आकृति दिखने लगी. अपार विस्तारवाला और अत्यंत दिव्य ऐसा सच्चि-दानंदमय एक भूमंडल तथा उसपर वैसाही सच्चिदानन्दमय सारा दिव्य लोक मेरी दृष्टि पड़ा. विचित्र दिव्य फल फूलोंसे परिपूर्ण वृक्ष वाटिकाके मध्यभागमें सुशोभित असंख्य मणिमय तेजस्वी दिव्य मंदिर, उनमें आनंद क्रीडा करते हुए दिव्य लोक तथा उनकी निरी निर्दोष, और दिव्य क्रीडा-सामग्री, वहाँ सर्वत्र विराजमान अपार सुखशान्ति, निर्दोष, अवर्ण्य अद्भुत प्रेम–ये सर्वत्र अनंताश्चर्यमय थे. इन सबके बीचमें एक अपार विस्तृत और शोभाका मूर्तिरूप दिव्य अखंड मणिमंदिर था. उसीमें उस समग्र सच्चि-दानन्दमय दिव्यलोककी सारी सत्ता विराजमान है, समग्र सच्चिदानंदरूप महाधनने इसीमें एकत्र होकर निवास किया है, समग्र जानने और प्राप्त करने योग्य शरण होने योग्य और सतत भजने योग्य पूर्ण सच्चिदानन्द तत्त्वका यही मूल धाम है; अजन्मा, अचिन्त्य, अतर्क्य, अकथ्य, अपार, स्वतंत्र, स्वयंप्रकाश ऐसे पूर्ण पुरुषोत्तमका मुख्य दरबार—सर्वोत्तम स्वधाम

* "द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्त्तं च"। ब्रह्मके दो स्वरूप हैं. एक साकार और दूसरा निराकार.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वही है ऐसा मुझको निश्चय हुआ. क्योंकि उस दिव्य महामंदिरमें अनंत सूर्यके समान सुप्रकाशित सुकोमल रत्नसिंहासनपर विराजमान एक महा अद्भुत, अति मनोहर, अतुल तेजोमय और लावण्यका भंडाररूप एक सुललित बालस्वरूप देखा. यह अतुल तेजस्वी होनेपर भी सुप्रकाशित नीलमणिके समान श्याम और नीलकमल जैसा सुकोमल था. सैंकड़ो सौन्दर्यवान् कामदेवोंसे भी कोटिगुण सुन्दर था. यह मनमोहन बालस्वरूप देखतेही मुझे अच्युततीर्थकी अच्युतमूर्त्ति, एवम् उस गढ़ेमें पड़ी हुई मूर्छितावस्थामें देखी हुई दिव्य भगवन्मूर्तिका स्मरण—दर्शन—हुआ. यह स्वरूप निःसंशय तेज था. पर उसमें मुझे इतना तो कहनाही पड़ेगा, कि, अच्युततीर्थके अद्भुत स्वरूपकी अपेक्षा गढ़ेमें दिखा हुआ स्वरूप अति दिव्य था; और उस स्वरूपसे भी इस सच्चिदानंद धाममें विराजमान स्वरूप सर्वोत्कृष्ट और अत्यंत दिव्य था. यहं मुख्य था, वे दो गौण थे. प्रथम प्रतिमारूप था, दूसरा ध्यानस्थ था. यह तीसरा स्वरूप शुद्ध साक्षात् ब्रह्मका था. इस प्रकार इस क्षरपुरुष—अर्थात् अच्युततीर्थकी नाशवंत जड़ प्रतिमा और अक्षर पुरुष—गढ़ेमें मूर्छितावस्थामें देखा हुआ अच्युतरूप इन दोनोंसे भी इस सच्चिदानंद धाममें प्रतिष्ठित पुरुष—बालस्वरूप पुरुष अनिर्वचनीय, अकथ्य और वाणीसे परे था, इस लिए इन्हें पुरुषोत्तम अथवा परब्रह्म नामसे हम जानेंगे. इस पवित्र पथबोधिनीमें भी श्रीअच्युत प्रभुने अपनेको पुरुषोत्तम नामसे जताया है. "*

"ऐसे सच्चिदानंद प्रभु अच्युतके प्रत्यक्ष दर्शन होते ही हम सब कृतार्थ हुए. इन सर्वेश्वर प्रभुकी सेवामें असंख्य दासदासियाँ, जो, इस बातकी मार्गप्रतीक्षा करते अनेक सेवासामग्री लेकर तत्पर खड़ी थीं, कि उन कृपालुकी अब क्या आज्ञा होगी; तथापि वे सब ही निरी सच्चिदानंदमय और उस प्रभु स्वरूपमय थीं. वहाँ जो कुछ था, सब बिलकुल सच्चिदानंदमयही था. अन्य जैसा कुछ भी नहीं था ! जहाँ अन्य जैसा हो वहाँ अन्य अन्यको देखे, अन्य अन्यसे बोले, अन्य अन्यसे सुने, अन्य अन्यको मनमें लावे, अन्य अन्यका स्पर्श करे, और अन्य अन्यको जाने; वहाँ जो द्रष्टा है वह

---

* यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥

क्षरसे मैं जुदा, और अक्षरसे उत्तम होनेसे शास्त्र और वेदमें पुरुषोत्तम कहाता हूँ.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्थिर जलकी भाँति एकाकार एक अद्वैत सच्चिदानंदमय है. यही ब्रह्मलोक, यही परम गति, यही परम सम्पत् और यही परमानंद! ऐसे इस सच्चिदानंद प्रभु अच्युतके निवासधामरूप सारे लोकको देखकर मुझको जो आनंद हुआ, उसका वर्णन कौन कर सकता है? मुझे संपूर्णतः निश्चय हुआ कि, यही अच्युत प्रभु, और यही अच्युतपुर–ब्रह्मलोक–अक्षरधाम है."

"हमारे विमानको आया हुआ देख अनेक अच्युतपुरनिवासी अच्युतसेवक, प्रभु अच्युतके साथ, अनेक मधुर बाजोंका घोष करते और जयध्वनि करते हमारे स्वागतार्थ आये. विमानस्थित प्रत्येक हरिजनको दिव्य पुष्पोंसे स्वागत कर बड़े आदरमान-सहित पुरकी ओर लेजाने लगे. सारा विमान खाली होगया. पर मुझको किसीने भी इस सच्चिदानंदमय भूमि पर नहीं उतारा. सबको अच्युतपुरमें प्रवेश करते देख मुझको धैर्य न रहनेसे जब मैं स्वयम् उतर जानेके लिए प्रयत्न करने लगी, तो स्वागतार्थ आये हुए अच्युतसेवकोंने मुझे मना कर दिया और कहा कि, 'अनन्य भक्तिसे रहित किसी भी प्राणीको अच्युतपुरमें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है. प्रथम अनन्य भक्तिद्वारा अपने स्वामीकी सेवा करनेसेही तू तेरे स्वामीको अपनी अनन्य भक्तिद्वारा जो अक्षर धाम हुआ है उस अक्षरधाममें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त कर सकी है. किन्तु पीछेसे अपने स्वामीकी सेवा भंग करनेके कारण तेरी अनन्यताका भंग हुआ है, और इसे अब तुझे इस पवित्रपुरमें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है. मात्र अनन्य भक्तिसे–प्रेमभावसे तूने जो अपने अच्युतप्रिय पवित्र स्वामीकी सेवा–इतनी अधूरी सेवा की उस अधूरी सेवाका भी कितना उत्तम फल है, यह प्रत्यक्ष जाननेके लिए ही तुझे इस अच्युतपुरके दर्शन कराये गये हैं. जा तुझे फिर तेरा पूर्वलोक प्राप्त होगा; वहाँ फिर जब अनन्य भक्तिका परिपाक होगा तबही तू यहाँ आनेको अधिकारिणी होगी.' *

"फिर अनेक अच्युतप्रिय पथिकोंका एक बड़ा संघ, अच्युतनामकी

---

* क्षर और अक्षर इन दोनोंसे जो उत्तम है वह पुरुषोत्तम. निर्वासनामय हो, मान मोह रहित बन, संगदोषको त्याग, सुखदुःखादिसे मुक्त हो, तीव्र वैराग्य और निष्काम भक्ति स्वीकार कर, जीवही शिव–जीव शिवका भेद नहीं है, ऐसी अद्वैत स्थिति जिसकी हो जाय, वही पुरुषोत्तम–परब्रह्मके धामका अधिकारी है. ऐसा तबही होता है, जब जीव निर्वासनामय–अनन्य भक्त बनता है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयध्वनि करते वहाँ आ पहुँचा. उनका आदर सत्कार करनेके लिए एक बृहत् समाज अच्युतपुरसे आया; और अति हर्षध्वनिसहित एक एक कर प्रत्येक पथिकका अच्युतपुरके मुक्त हरिजनोंने स्वागत किया. पुरमें प्रवेश करतेही सब अद्भुत दिव्य देहवान् हो, अच्युतरूपमें लीन हो, भाग्यकी भोगी हो जाते थे. वहाँसे पतन या परावर्तन (जन्म-मरण) पानेका उन्हें कुछ भय नहीं था. इस संघमें मैंने अपने स्वामीका दिव्य स्वरूप देखा. उन्होंने सबसे पीछे म्लानमुखसे अच्युतपुरमें प्रवेश किया और फिर सच्चिदानंद स्वरूपमें लीन होगये. * स्वामीके इस समयके वियोगसे मुझको जो महाविषाद उत्पन्न हुआ, उसका वर्णन मैं नहीं कर सकती. स्वामीने परमपद पाया और मैं रह गई; ऐसे अपरिहार्य वियोगावेशसे मैं एकाएक मूर्छित होगई. क्षणभरमें मेरी आँखोंके आगेका यह अद्भुत दृश्य बिलकुल लुप्त होगया. बाद मुझे कहाँ लेगये, अथवा मेरा क्या हुआ इत्यादि कुछ भी भान मुझे नहीं है. अहा ! अच्युत परब्रह्मकी कैसी अद्भुत—अगम्य लीला है ! कैसी विचित्र गति है ! साक्षात् स्वरूपदर्शन होनेपर भी पूर्णाधिकार विना पुरप्रवेशही नहीं ! अच्युत परब्रह्मका ऐसा स्वातंत्र्य होनेपर भी, उन्हें जाने विना हमारे वे शुष्क तत्त्वज्ञानी जो ब्रह्मकी बातें मात्र करना सीखकर, 'अहं ब्रह्मास्मि' ऐसा झट्से निश्चय कर बैठते हैं, कितने बड़े मूर्ख हैं ! ! वे पूर्ण पुरुषोत्तम परमात्मा, और हम सब उनकी अंशभूत आत्माएँ ! वे तो हमारे सेव्य स्वामी और हम सब उनके सेवक, उनके हृदयमें हम नहीं हैं, पर वे हमारे हृदयमें है. वे सर्वत्र हैं अभेदतासे सर्व व्यापक, चराचरमें वे ही, वे मुझमें और मैं उनमें—जहाँ दृष्टिपात करो वहाँ भी वेही, ऐसी दृढ़ भावना हमारे अंतःकरणमें स्थिर होकर, इनके जैसा दूसरा श्रेयस्कर है ही नहीं, यह समझना और सच्चिदानंदमें लीन होना, बहुत बड़ी और गूढ बात है !

" अस्तु. इसके पश्चात् मेरा क्या हुआ वह सुनो. मेरी मूर्छितावस्थामें

---

* ज्ञान और भक्तिवालेका प्रवेश परब्रह्मधाममें कैसे हो सके यह बताते हैं. केवल ज्ञान या भक्ति-सगुणभक्तिके लिए ब्रह्मप्राप्ति नहीं है, पर दूसरे भी स्थान हैं. ज्ञानीकी भक्ति और भक्तिमय ज्ञान विशुद्ध होता है. भक्ति, यदि ज्ञानरहित हो तो वह फल प्राप्त नहीं करा सकती. ज्ञानसहित जो भक्ति है वह विगुण निर्वासनामय है. ज्ञानको पीछेसे अच्युतधाममें प्रवेश होनेका कारण यही है, कि वह भक्तिरहित अकेला है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कितना समय बीता होगा, उसकी मुझको खबर नहीं. किसी समय एका-एक मुझको मानो ऐसा बड़ा झटका लगा, कि जिसके जोरसे जैसे मैं गढ़ेमें नींदसे जाग उठी थी, उसी प्रकार जाग उठी. मेरा हृदय श्वाससे भर गया और जोरसे धड़कने लगा. मेरी आँखें खुल गयीं और मैं देखने लगी तो, वृक्षघटासे आच्छादित और पाषाणादिसे परिपूर्ण उस गढ़ेसे कोई दो सज्जन पुरुष मुझे उठाकर बाहर निकालते मालूम हुए. उनके पकड़नेसे मेरे अंगोंमें पीडा हुई थी, और उसीसे मुझे झटका लगा था. मुझको व्यथित हुई देखकर उन्होंने फिर वहीं छोड़ दिया, तथा मधुर वाणीद्वारा मुझे धीरज और शान्ति देने लगे. उनकी पवित्र, शान्त और सुन्दर मूर्ति देखकर मैंने अच्युतस्मरणपूर्वक नमन कर पूछा कि, 'आप कौन हैं?' वे बोले, 'अच्युतसेवक. प्रभुकी आज्ञासे अच्युतमार्गपर विचरण कर मार्गसे भ्रष्ट हो तेरी नाईं व्यथित हुए पथिकोंको हम पुनः मार्गारूढ़ करते हैं. तेरे शरीरपरके अच्युत पथिकोंके जैसे सौम्य चिह्न देखकर हम तुझको इस खंदकसे बाहर निकालनेको आये हैं.' मैंने निःश्वास छोड़कर रोते हुए उनसे प्रार्थना की कि, 'इस दुष्टाको अब बाहर निकालनेसे कुछ लाभ नहीं है! अब यहींपर मरणशरण होने दो! मेरे अपराधका फल मुझे मिला है, और पुनः मिलने दो!' यह सुन उन्होंने मेरा आश्वासन कर, वैसा करनेका कारण पूछा; तब मैंने अपने स्वामीवियोगरूप सारा पूर्ववृत्तान्त कह सुनाया. उन्होंने कहा, "तू महाभाग्यवती है. तेरे जैसा अच्युतस्वरूपानुसंधान करनेवाला पथिक कुछ साधारण नहीं माना जाता. देवि! तेरे दर्शन होनेसे हम कृतार्थ हुए हैं. तू चिन्ता न कर. प्रभुकी इच्छाका अनुसरण करनाही अपना कर्तव्य है. अपना सच्चा अधिकार होनेपर, तुरंतही वह परम कृपालु प्रभु हमें अपने समीप खींच लेंगे. मार्गमें विचरण करनेपर जो अनुभव हुआ, वह कुछ सबके लिए सामान्य नहीं है; पर जिस मार्गसे होकर तेरे पुण्यात्मा पतिने परमपदको पाया, यही अच्युतका सच मार्ग पथिकोंके लिए साध्य है. प्रयत्न करते उसी मार्गसे होकर तू भी पार पा-जायगी." मैंने कहा, 'अब मार्गमें क्योंकर चला जायगा? मार्गमें चलनेके साधनरूप मेरे पैर तो आप देखते हो, बिलकुल टूट गये हैं.' तब उन्होंने कहा कि, "तूने जिस अद्भुत स्वरूपके दर्शन किये हैं, उस प्रभुका सेवन स्मरण तू यहीं रहकर करेगी, तो तेरा चित्त उसमें दृढ़तासे लग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जायगा. तेरी मार्ग चलनेकी चिन्ता दूर होजायगी और तेरा उद्धार भी होजायगा; क्योंकि इन कृपालुने स्वयमही उसके लिए अपने श्रीमुखसे कहा है कि:—

"मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

अर्थ—जो मुझमें चित्तको स्थिर कर नित्य मेरी उपासना करते हैं, उन्हें मृत्युरूप संसारसागरसे मैं उद्धार कर-उठा लेता हूँ. मुझमें चित्त लगानेवालोंको उद्धार करनेमें मैं विलंब नहीं करता."

"फिर मैंने पूछा, मेरा प्रत्यक्ष देखा स्वरूप यद्यपि मुझको अंतःकरणमें ज्यों का त्यों दिखाई देता है, अतः उसके दर्शन तो कर सकती हूँ, पर सेवन किस तरह करूँ ? प्रभुके प्रत्यक्ष हुए विना सेवा किस तरह होसके ?" उन्होंने कहा कि, 'अहा देवि ! तेरे अन्तःकरणमें स्वरूपानुसंधान होजानेसे तुझको तो सब बातें सुगम हैं. तेरे गुह्यागारमें-हृदयके गहनसे गहन भागमें-जो स्वरूप दिखाई देता है, उसके पूजनके लिए सब मानसिक-मनोमय सामग्रीसे तुझे उसका पूजन करना चाहिए. हे पतिव्रते ! तू हीनाधिकारिणी नहीं है, पूर्णाधिकारिणी है; और ब्रह्मस्वरूपानुसंधान होजानेसे तुझे अपना बनालेनेके लिए परमात्मा देर नहीं लगावेंगे. तेरा कल्याण हो !' ऐसा कह तुरंत उन्होंने मुझको बहुतही सावधानीसे बाहर निकाल, नदीमें स्नान कराया और इस रम्य पथिकाश्रममें जा रखा."

"मानसिक सेवाका प्रकार तो अच्युतकृपासे मेरे हृदयमें स्फुरित हुआही था; पर मनकी स्थिति-वृत्ति बहुत चपल होती है, इससे उसकी बहिर्वृत्ति स्थिर करनेके लिए सब कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंको भी अच्युतसेवामें लीन करनेके लिए उन अच्युतसेवकोंने, मेरे निकटसे जाते समय मुझको अच्युतसेवाका बाहरी साधनरूप एक लिंग-चिह्न अर्पण किया है, जो यह मेरे कंठका शृंगार है." *

"हे महात्मापंथीवर्य ! इस प्रकार इस परब्रह्मलिंगको नित्यप्रति हृदयप्रेमसे पूजकर मैं उनके सम्मुख कर जोड़कर मधुरालापसे उनके गुण गाती हूँ, और वारंवार अच्युत नामकी जयध्वनि कर उनको प्रणाम करती हूँ

* भक्तिपक्षमें यह चिह्न शालिग्राम है, ज्ञानपक्षमें परब्रह्मका प्रेमसे शोधन है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा प्रार्थना करती हूँ कि 'प्रभो ! पवित्र और आपके चरणकमलोंमें स्थिर चित्तवाले मेरे स्वामीको तो आपने कृपा करके शरणमें ले लिया है; किन्तु मैं, जो अपनेही अपराधसे* ऐसे महात्मा पतिकी महत्ताको न जान वियोगिनी हुई हूँ, आपके चरणारविन्दसे भी तिरस्कृत हुई हूँ, और अकेली निराधार हो गई हूँ, मेरे स्वामी तो सब तरहसे अब आपही हो. इस लिए हे नाथ ! अब इस असहाय अपराधिनी अबलापर कृपा करो! कृपा करो !' † हे पथिको ! मेरा हृदय प्रेमावेश और ब्रह्मस्वरूपके वियोगसे नित्य आकुल व्याकुल हो जाता है, घबरा जाता है, कंठ गद्गद होजाता है, शरीरसे पसीना छूटता है, नेत्र अश्रुसे भर जाते हैं, और मेरे सम्मुखके परब्रह्म लिंगके स्थानपर तेजोमय अच्युतरूप खड़ा होजाता है और उसमें मैं लीन हो जाती हूँ, इस आवेशमें मैं मूर्छितसी हो जाती हूँ, पागल हो दौड़ती हूँ, नाचती हूँ, हँसती हूँ, गिरती हूँ, रोती हूँ, और जब होशमें आती हूँ तो तेजोमय स्वरूप इस विश्वमें लीन हुआ देखती हूँ. इस तरह बहुत समयसे मैं अच्युत प्रभुका वियोग सहन करती हूँ. कभी कभी अपने प्रिय पतिसे विलग होजानेसे प्रेममयी पतिव्रताकी भाँति अपने स्वामी अच्युतको जोरसे और धीरेसे बुलाती हूँ; तो कभी कभी अपनी सर्वसमर्थ, कृपालु और संतानवत्सल मातासे अरण्यमें विलग हो जानेसे एक बालकुमारिकाकी भाँति जगत्पिता अच्युतको बुलाती हूँ और कभी कभी अपने प्रियपुत्रसे विलग होनेके कारण मुग्ध पिताकी भाँति प्रभुको प्रेमसे पुकारती हूँ तो कभी कभी अपने बहुकालीन बड़े परिश्रमसे कहीं संचित किए हुए प्यारेसे प्यारे महाधनको खोकर निर्धन होजानेवाले कृपण मनुष्यकी तरह प्रभुके लिए निःश्वासयुक्त रोदन करती हूँ; तो कभी कभी बहुत रोती हूँ, और कभी कभी तो उस कृपालुकी मुझ जैसी पामरपर होनेवाली अचल कृपा स्मरण हो आनेसे अपार आनंद पाती हूँ, और किसी किसी समय मेरे और मेरे समान दूसरे पामर पथिककी, जो सहज वासेनासे अच्युतमार्गको

---

* ज्ञानरहित ब्रह्मोपासना. सिर्फ परमात्माके दर्शन, स्मरण और सेवनसे मुक्ति नहीं है, पर जो ज्ञानपूर्वक सेवन-शोधन है उससे मुक्ति है. परमात्माका जो स्वरूपानुसंधान है वह परमात्माको मायिक नहीं, पर अमायिक स्वरूपसे देखनेसे होता है. यह शक्ति आत्मामेंही आत्माका लय होनेसे आती है.

†यहाँसे निर्गुण प्रेम-ब्रह्मज्ञान भक्तिका स्वरूप प्रदर्शित होता है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छोड़कर पतित होजाते हैं, स्थिति देख बड़ा खेद करती हूँ; और कभी कभी उनकी कमबुद्धिके लिए खिलखिलाकर हँस पड़ती हूँ. मैं आँखें रहते आँधी, कान रहते बहरी, जिह्वा रहते गूँगी, और मन रहते बेमन हूँ, तो मुझमें दृष्टि क्या, वाणी क्या और मनन कहाँ है? फिर ऐसी अवस्थामें कभी कभी आपके समान जो महात्मा पथिक, ऐसे पुण्यरूप साधक संघोंको लेकर यहाँ आते हैं, उनका प्रेमसे समागम करती हूँ, और उनके मुखसे समर्थ प्रभुके अनेक विचित्र पुण्यचरित्र* सुनकर भाग्यवती होती हूँ. पर निर्भाग्य इसी लिए हूँ कि, असमर्थ होनेसे ऐसे संतमहात्माओंकी पवित्र सेवा कुछ नहीं कर सकती.† सिर्फ दर्शन करकेही अपनेको कृतकार्य मानती हूँ."

इस प्रकार महापतिव्रताके मुखसे निर्झर होते हुए चरितामृतका प्रेमसे पान करते हुए सत्साधकादि सब पथिकोंसे जो एकाग्रतासे उसके मुखकी ओर देख रहे थे, बहुत निकट संबंध प्रदर्शित करती हुई वह बोली; "अहा! मेरे प्रिय बंधुओ! मेरे सुहृदो! अपने दयालु पिता अच्युतके समीप जानेके लिए जो यह पुनीत मार्ग है उसका सोपान यहीं समाप्त होता है. उसके साथ सारे मार्गका छठा, और जो तीन प्रस्थान कल्पित किये गये हैं, उनमेंका मध्यम अथवा दूसरा प्रस्थान भी यहीं-इस पथिकाश्रममेंही पूर्ण होता है. यहाँसे आगे अब तीसरा प्रस्थान आरंभ होगा, जिसमें सातवें अंतिम सोपानका समावेश होता है. यह तीसरा प्रस्थान बहुत कठिन है. इस मार्गसे जाते प्रत्येक संघ इस स्थानपर कई रातें आनंदमें व्यतीत करते हैं; बड़े प्रेमभावसे अच्युतसाधनका अनुष्ठान करते हैं, और उसमें अद्भुत चरित्रोंका मनन निदिध्यासन करते हैं. तुम्हारा और हमारा यह अंतिम समागम है; क्योंकि मैं अपंग अबला यहीं पड़ी रहूँगी, और तुम सब प्रभुके कृपापात्र होनेसे कल सवेरे उठकर पथारूढ होजावेंगे इस लिए चलो, सब मिलकर, मेरे संतोषार्थ एकवार फिर अच्युतकीर्तन करें." ऐसा कहकर उसने पथिकाश्रमसे ताल, मृदंग, वेणु आदि सुन्दर स्वरवाले बाजे, पथिकोंसे मँगाया और उत्कट प्रेमावेशसे अच्युतप्रार्थना आरंभ की.

---

* स्वरूपानुसंधानके प्रकार-ब्रह्मस्वरूपको जाननेकी विधियाँ.

† विज्ञान भक्ति कैसी है, वह अकेली-ज्ञानरहित भक्ति प्रदर्शित नहीं कर सकती. यहाँ भक्ति, पूर्ण ज्ञानमय है सही, पर अहंकारग्रन्थि छूटनेके लिए यह वचन है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मृदंग, ताल, वीणादि बाजोंके अत्यंत मधुर स्वर और उनके साथ अति प्रेमावेशसे महासती अच्युतव्रताके मधुर कंठद्वारा होनेवाले स्तोत्रपाठ तथा उस समयके उत्कृष्ट प्रेमानंदका वर्णन नहीं हो सकता. सत्साधकादि सारा संघ, अच्युतके प्रेमानंदसागरमें निमग्न होगया. महासती अच्युतव्रताको इस समय अपने शरीरका कुछ भान नहीं रहा; वह उस समय अपनी आँखोंसे मानों कुछ विचित्रता अवलोकन कर रही है और उन सबको दिखानेके लिए प्रयत्न कर रही है ऐसा मालूम होने लगा. कीर्तन करती वह बोल उठी; 'अब हूँ तव पदकमल मलिन्दे.' उसके साथही, वह अति गद्गद होगई! उसने ज्योंही सिर झुकाया, त्योंही वह ब्रह्ममय होगई.

क्षणभरमें उसके शरीरसे एक तेजोमयी दिव्य और सुन्दर आकृति निकली और अधर अंतरिक्षमें, मानों किसीका रास्ता देखती हो इस प्रकार खड़ी रही. कुछही देरमें, पथिक समूहमेंसे एक और ऐसा दिव्य स्वरूप प्रकट हुआ; और उसके पासही अंतरिक्षमें जा खड़ा हुआ. एकत्र होतेही दोनों स्वरूपोंने सत्साधकादि पथिक समूहको कर जोड़ प्रणाम कर, अच्युतनामकी जयध्वनिसहित सूचित किया कि, "प्रिय अच्युतप्रिय बंधुओ! भक्तोंके समागमसे हमारी सब अंतराय-वासना दूर हो जानेसे, और अभेदपनका अनुभव होनेसे हम अब अच्युतपुरको जाते हैं. देखो ऊँचे आकाशमें जो वह सुप्रकाशित विमान दिखाई दे रहा है उसमें चढ़ा कर हमें ले जानेके लिए प्रभु अच्युतके पार्षद आये हैं. अच्युतकृपासे शायद अच्युतपुरमें हम सब जनोंको आज मालूम होता हुआ भेद दूर होजायगा और हम सब अच्युतरूपमें लीन होजायँगे! अद्वैतरूपसे निवास करेंगे! जय ब्रह्मरंग!!"

ये अंतिम शब्द बोलनेके साथही वे दोनों महापुण्य पवित्रात्माएँ झपाटेसे ऊँचे जाकर विमानारूढ़ होगई. विमान आकाशमार्गमें चला गया! इस अद्भुत चमत्कारसे निरे स्तब्ध होजानेवाले सब पथिकोंको बड़ा आश्चर्य तो यह हुआ कि, जिसकी प्रेमदशाको सब बारंबार हँसते थे, उस प्रेमी पथिकके भाग्यका आज कुछ पार नहीं! उसीका स्वरूपानन्दसन्धान परम फलका दाता है! प्रेमही ब्रह्म है! प्रेमही विश्वका सत्त्व है! प्रेमही सबका कारण है! हरिप्रेम भक्तिरूपही है! प्रेमीमें वह निरंतर वास करता है. प्रेम कहो, ब्रह्म कहो, अद्वैत मानो, सब एकही है! ब्रह्म प्रेममय है! प्रेम ब्रह्ममय है! प्रेम अद्वैत है! अद्वैतही प्रेम है! और वही ब्रह्मस्वरूप है!!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महाबिन्दु—सप्तम सोपान.

कैवल्यपदप्राप्ति.

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥
यदानन्दलेशैः समानन्दि विश्वं यदाभाति सत्त्वे तदाभाति सर्वम् ।
यदालोचने हेयमन्यत्समस्तं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥

अर्थ—उसको सूर्य, चन्द्र या अग्नि प्रकाशित नहीं कर सकते, वहाँ जाकर आवर्तन (जन्म-मरण) नहीं होता, यही मेरा परम धाम है. जिसके आनंदलेशसे यह विश्व संपूर्ण आनंदमय है, जिसके सत्त्व भावमें सबका भास है, जिसके आलोचन [विचार] के बाद दूसरा समस्त होता है वही नित्य परब्रह्म मैं हूँ.

प्रभात निर्मल प्रभात ! इसे प्रभात कहो, रस कहो, आनंद कहो. सूर्यका प्रकाश न होता, तो फिर उसे प्रभात कैसे कहते ? चंद्रका प्रकाश न होता, तो रात्रि कहाँसे होती ? अंधकार न होता, तो प्रकाश कहाँसे आता ? वहाँ सब आनंदमय था, रसमय था, प्रेममय था, अद्भुत—विचित्र—वाणीसे परे था. वहाँ इस व्यावहारिक वाणीका प्रभात हुआ !

नित्यके आह्निकसे अवकाश पाकर पथिकसमूह आगे चला. मार्गमें जाते हुए महात्मा सत्साधकने कहा; "अहा ! अच्युतप्रभुकी लीला कैसी अद्भुत और अगम्य है ! अपने श्रीमुखसे कहे हुए वचनोंके यथार्थ दर्शन करानेके लिए जरा भी विलंब नहीं करते, वे दयाके भंडार हैं, क्षमाके सागर हैं और न्यायकी प्रत्यक्ष मूर्ति हैं. यह सब हमें महासती अच्युतव्रताके वृत्तान्तपरसे इत्थंभूत मालूम हुआ है ! यह सब प्रभुकी सगुण-सज्ञान—उपासनाका फल है; निर्गुण उपासना इतनी सरल या सुखरूप नहीं है—यद्यपि अंतमें वह भी अच्युतपदमेंही पहुँचानेवाली है; पर उसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपासकको बहुत कष्ट सहन करना पड़ता है. इसके लिए प्रभु श्रीअच्युतने स्वयंही अपने श्रीमुखसे कहा है कि, ' जो मुझमें—मेरे सगुण स्वरूपमें सर्वदा चित्त स्थिरकर परम श्रद्धायुक्त हो सती अच्युतव्रताकी तरह मुझे भजता है, वह अत्यंत श्रेष्ठ योगी है, ऐसा मैं मानता हूँ; और जो मेरे अविनाशी जैसे ब्रह्मस्वरूपकी, जो नहीं कहा जा सकता कि अमुक वस्तु है, पर जो अव्यक्त है, सर्वत्र पूर्णरूपसे व्याप्त है, पूर्ण है, पूर्णका भी पूर्ण है, पूर्णमेंसे पूर्ण लिया जाय तो भी पूर्णही रहता है, पूर्णमें पूर्ण मिले तो भी पूर्णही रहता है, अचिन्त्य है,कूटस्थ अर्थात् माया प्रपंचमें होते हुए भी स्थिर है, अचल है, और नित्य है, उपासना करता है, तथा समग्र इंद्रिय-समूहका संयम कर सर्वत्र समान बुद्धि रख, सब प्राणियोंके हितमें तत्पर रहता है, वह भी मुझको पाता है. पर इस तरह अव्यक्त ब्रह्मस्वरूप निर्गुणमें जिनका चित्त आसक्त हो गया है, उन्हें बड़े बड़े क्लेश होते हैं, वे पार पाते हैं सही, पर शरीरधारी प्राणीको अव्यक्त अर्थात् विदेहगतिका ज्ञान होना, बड़े कष्टका कार्य है.'

इस प्रकार बातचीत करते हुए वे चले जाते थे, इतनेमें मार्गकी बायीं बाजूसे एक रास्ता दिखा. वह बिलकुल निस्तेज और सूनसान दिखता था. उसकी दोनों ओर, वृक्षादिकी शोभा या छाया नहीं थी. वह रेतीला कंटकमार्ग बहुत दूरतक, जल, फल, फूल या पान इत्यादि किसी भी सुभीतेसे हीन दिखता था. इसको छोड़कर संग आगे चलने लगा, इतनेमें एक उदास और निस्तेज मनुष्य, उस मार्गसे आकर संघके आगे खड़ा हुआ. संघमेंसे किसीने भी उसको आदर नहीं दिया. तथापि वह बोल उठा; " अहा ! कैसा आश्चर्य है कि भोले भाविक लोग, भेड़िया धसान एकके पीछे एक विना सोचे समझे चले ही जाते हैं ! कोई समझावे तो समझते भी नहीं हैं, वे ऐसे अनेक संघ विना समझे बूझे अंधपरंपरासे इस मार्गसे होकर गये हैं, वे कहाँ समा गये हैं, वह मालूम भी नहीं होता है ! मैंने उन्हें बहुतेरा रोका, तथापि कोई सुमतिमान् विरलाही समझकर वहाँसे मुड़कर, इस परम शुद्ध निर्वाण मार्गमें आरूढ़ हुआ है ! अहा ! कैसा मनस्वी सिद्धान्त वे ग्रहण कर बैठे हैं कि, जिसका कुछ पाया (मूल) ही नहीं है. अच्युतपुर कैसा और बात कैसी ! अरे ओ मूढ़ो ! अनेक सुखोंको लातमार अतिशय कष्ट झेल तुम जहाँ जानेके लिए यहाँतक चले आये हो,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और जहाँ जाते हो, वहाँ कौनसी वस्तु प्राप्य है ? अहा ! मोक्ष कहाँ ? अहा ! ब्रह्म कहाँ ! वास्तवमें कहीं भी नहीं है. यह जगत् प्रवाहीं है, निरंतर चलाही आता है, चला जाता है, और उसमें प्रत्येक प्राणीको अपना कर्मफल अवश्य भोगना है. कर्म छूटे-मुक्त हुए बस समाप्ति ! ग्रंथि छूट जाती है, और अंतमें कुछ भी नहीं रहता. आत्माएँ नहीं और अनात्माएँ भी नहीं. निरा शून्यही ! अंतमें शून्यही ! दूसरा कुछ नहीं है. उसके अनेक रूप कल्पित कर उसकी प्राप्तिके लिए अनेक कष्टसाध्य उपाय करना, स्वप्नकी बात सत्य करनेके समान है. जानते नहीं कि, 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' अग्रे यह सद्रूप, एकही तथा अद्वितीय था अर्थात् शून्यही था, तब वहाँ और क्या हो ? कुछ भी नहीं ! शून्यही ! पर मूढ़को कौन समझावे ?"

इसी प्रकार 'अंतमें कहीं भी नहीं, कुछ भी नहीं, शून्य है, ऐसी अनेक बातें कहनेपर भी किसीने उनपर ध्यान नहीं दिया, न पीछे फिरकर उसकी ओर देखा; क्योंकि अच्युतव्रताके प्रत्यक्ष चरित्रसे और सब वासनाओंका लय होनेसे सबका मन बहुत जाग्रत् हो गया था; और महात्मा सत्साधकके चलन परही श्रद्धायुक्त था.' इस तरह कुछ समय चलने पर एक और मार्ग आया.

यह मार्ग भी अपने शुद्ध सनातन मध्यवर्ती अच्युतमार्गसेही फूटा था. वह उद्गमस्थान (मुख) पर तो बड़ा भव्य और शुद्ध सत्त्वरूप दिखाई देता था, पर आगे जाने पर प्रायः उस शून्य मार्गसेही मिलता था. छोड़कर इस संघको आगे जाते देख, उसके मुखपर स्थित सुन्दर मठसे परम हंस दीक्षाधारी महात्माके समान एक हृष्टपुष्ट मनुष्य निकल संघकी ओर आने लगा. उसके मस्तक, दाढ़ी और मूछके सारे बाल मुड़े हुए थे, कटिपर लज्जारक्षणार्थ एक कषायांवर लिपटा हुआ था, एक हाथमें जलका कमंडलु और दूसरेमें एक पुस्तक थी. दूसरे मनुष्य अपने मार्गमें मुड़ आवें और अपनेको ईश्वरतुल्य मान वे सब सेवा करें, ऐसी उसकी इच्छा मालूम होती थी. संघको देखकर वह आपही बोला, "भाइयो ! लोगोंकी भूल भरी समझके अनुसार क्या सब भी परब्रह्मकी शोध करने निकले हो ? अरे ! जो परब्रह्म है वह क्या कहीं दूर है या किसी गुप्त स्थानमें है ? नहीं रे नहीं, वैसा नहीं है. वह तो अपने शरीरमें ही है. अरे ! अधिक तो क्या ? पर तुम स्वयंही वह हो !

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुम सब अद्वैत देखो, बस वहीं ब्रह्म है ! ऐसा अभेद देखो, और स्वयम्ही तुम अपनी तई अपनेमेंही अपने ब्रह्मको देखलो. इसके लिए ऐसी किसी दौड़ादौड़ या किसी साधनका काम नहीं हैं. अहा ! यह सब परिश्रम किसके लिए ? किस लिए मुखसे निरंतर नामस्मरण कर जीभको दुःखित कर रहे हो और मानों तुम्हारे पीछे कोई आ रहा है, इस तरह भयातुरकी भाँति दौड़ रहे हो. यह कितना भारी अज्ञान है ? निश्शंक, तुम्हें किसी सच्चे सद्गुरुके दर्शन नहीं हुए. भोलो ! अरे भोलो ! अब हाय हाय त्यागकर, सद्गुरुकी शरण जाओ; वह तुम्हें तत्काल परब्रह्म दिखा देंगे और सारा परिश्रम दूर करेंगे. 'तत्त्वमसि' जो ब्रह्म है वह तू स्वयमूही है. 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ, इत्यादि वाक्योंका उपदेश मनमें पैठा कर, सारी खटपट मिटा दो. ऐसे सद्गुरुओंका समागम इस धुरंधर मार्गमें होगा, इस लिए आगे जानेका मिथ्या परिश्रम छोड़ दो, इस सुगम मार्गमें दान करना नहीं पड़ता, पुण्य करना नहीं पड़ता. तप करके शरीरको दुःख देने या उपवासादिसे क्षीण करनेकी आवश्यकता नहीं रहती, तीर्थोंमें भटकना नहीं, यज्ञ, याग या अध्ययन करना नहीं, बारंबार राम राम, कृष्ण कृष्ण और हरि हरि करके मुँह दुखानेका काम नहीं है. यहाँ तो यह समझनेकाही काम है, कि मैं स्वयम् ब्रह्म हूँ—बस तरे सागर ! उतरे पार ! यह सब गुरु एक क्षणभरमें समझा देते हैं. साधन–कर्म करनेसे तो उनके फल भोगने पड़ते हैं, और ब्रह्म जाना, बस गुरुके उपदेश मात्रसे ही पाप पुण्य सब जलकर क्षार हो जाते हैं, फिर क्या करना शेष रहा ? बस सदा सर्वदा आनंद आनंद, और आनंद ही ! ऐसा यह मोक्षके द्वार पर्यन्त ले जानेवाला मार्ग है, इस लिए भूलना नहीं, और न आगे दौड़ कर मरना."

इतना सब कहकर अपने सब सिद्धान्त वह गा रहा था, कि उसके उत्तरमें महात्मा सत्साधकने सिर्फ एकही वचन कहा;—"हे महात्मन् ! आपके निर्माण किये हुए वेदांतमार्गको और आप जैसे वेदान्तियोंको मैं प्रणाम करता हूँ." जो—

"कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः ।
तेप्यज्ञानतया नूनं पुनरायांति यांति च ॥

अर्थ–ब्रह्मकी बातें करनेमें कुशल होनेपर भी वैसी वृत्ति नहीं रख सकते,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और विरागहीन अर्थात् विषयी होते हैं. वे वैसी अज्ञानताके कारण आगे जा जा कर पीछे आते हैं अर्थात् जन्म लेते और मरते हैं.

और उनके दर्शन भी महद् अकल्याण करनेवाले हैं, इस लिए आप अपने स्थानको पधारें ! ! "

यह सारी लीला अपने वे विमानवासी इत्थंभूत (इस तरह) देख रहे थे. उनसे गुरु वामदेवजीने कहा, " पुण्यजनो ! संघके अग्रणी सत्साधकने इस हृष्ट पुष्ट वेदान्तीको जो प्रत्युत्तर दिया, वह कहाँ तक सत्य है, यह तुमने क्या जान लिया ? देखो, हम लोग अंतरिक्षमें हैं, इस लिए बहुत दूर तक देख सकते हैं. इन शुष्क वेदान्तियोंका मार्ग अंतमें किस ओरको मुड़ता है ? देखो, कुछ दूर तक तो वह सीधा दिखता है, पर अंतमें दक्षिण दिशाकी ओर मुड़ा है और फिर ठेठ नरक तक पहुँचा है. ऐसे मिथ्याचारी, भोले लोगोंको भुलाकर नरकमें ले जानेके लिए ही उत्पन्न होते हैं. वे लोगोंको ब्रह्मप्राप्तिके लिए जप, तप या यज्ञादि साधनकी, अथवा भजन, कीर्तन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, नीति कृतिकी, स्वच्छता, निर्वासनामय होने आदिकी कुछ आवश्यकता नहीं, ऐसा समझाते हैं, और लोगोंको भी जैसे बने खटपट कम हो ऐसा दिखाई देनेसे यह सिद्धान्त बहुत पसन्द है. जिससे दान, पुण्य, पूजन, अर्चन, तप, यज्ञ, क्रिया, कर्म, इत्यादि सब मार्ग त्यागकर तुरंत वे इन शुष्क वेदान्तियोंके मार्गमें आजाते हैं, और अंतमें मनोवृत्तियाँ मलिन–जड़–और विषयवासनाके वश हो जानेसे वे नरकमें जाते हैं ! ऐसे साधनसंपत्तिहीन मनुष्योंको अपना मार्ग दिखाने या अपने मार्गका वृत्तंतक सुनानेके लिए जब प्रभुने स्वयम् श्रीमुखसे बिलकुल मना किया है, तो फिर स्वतः प्रभु–परब्रह्मकी प्राप्तिका तो वहाँ नामही कहाँसे हो ?

" इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥

अर्थ—जिसने तपादिक साधन कर अपने चित्तको शुद्ध और स्वाधीन नहीं किया, मुझमें और मेरा मार्ग दिखानेवाले सद्गुरुमें भक्ति नहीं की, अथवा जो मेरी निन्दा करता है, उस मनुष्यको इस मेरे मार्गका वृत्त, अर्थात् मुझे प्राप्त कर लेनेके संबंधका ज्ञान कदापि देना नहीं चाहिए. "

" इस प्रकार प्रभु अच्युतने पहले कहा है. पर देखो, महात्मा सत्साधक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पथिकोंसे कुछ बातें करते जा रहा है. महात्माओंकी सामान्य बातचीतमें अथवा घरेलू व्यावहारिक–विनोदादि बातचीतमें भी अक्षर और शब्द, स्वभावतःही तत्त्वज्ञानसे पूर्ण होते हैं; क्योंकि इनकी सकल मनोवृत्तियाँ और वासनाएँ नितान्त अच्युतपरायण होती हैं. "

चलते चलते महात्मा सत्साधकके एक पथिकने हाथ जोड़कर पूँछा, " गुरुवर्य ! सती अच्युतव्रताकी प्रशंसा करते आपने बताया है कि, यह सब सज्ञान उपासनाका फल है. जब निर्गुण उपासना उतनी सरल नहीं है, तो वह कैसी है कहिए ! " इसके उत्तरमें सत्साधकने कहा; " प्रिय पथिक ! पहले तो निर्गुण अर्थात् अव्यक्त स्वरूपके उपासकको ऐसी भावना करनी चाहिए कि प्रभुका स्वरूप अव्यक्त अर्थात् सर्वत्र समान व्याप्त है, फिर ध्यान-हृदयमें उस बातकी दृढ़ता करनी चाहिए, पर वैसा अव्यक्त निराकार स्वरूप एकाएक किसतरह मालूम हो ? समग्र जगद्रूपसे उसे देखनेसेही मालूम होता है. पर ऐसे ध्यानसे चित्त व्यग्र रहता है, और अपने स्वरूपमें भलीभाँति पैठता नहीं है, इससे उसे जगतमें उस परमात्माकी जो मुख्य विभूतियाँ हैं, उनमें उसकी भावना करनी चाहिए. सूर्य, चंद्र, इन्द्र, देवों, वेदों, ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, अग्नि, वायु, पृथ्वी, आकाश, जल, पर्वतों, समुद्रों, मुनियों, संतों, विद्वानों, यज्ञों, पवित्र राजों, गायों, पवित्र वस्तु, सुन्दर वस्तु, सचेत वस्तु, पवित्र तीर्थ, नदी, दिव्य पदार्थों, सत्यवान् मनुष्यों, कवियों, सज्जनों, सच्छास्त्रों इत्यादिमें परब्रह्मका विशेषरूप अर्थात् विभूति देखनी चाहिए. इससे भी चित्त ऊब जाय तो इन सबमें श्रेष्ठ और मुख्य विभूति सूर्यबिम्ब है, उसमें भगवद्भावना करनी चाहिए और उसके तेजका नित्य ध्यान धरना चाहिए. पर भूलना न चाहिए कि यही परमात्मा है वह तो सिर्फ परमात्माकी एक विभूति है, और परमात्मस्वरूपका ध्यान या भावना धरनेके लिए सिर्फ साधन है. उसमें जो तेज है वह परमात्मा—अच्युतका है, और अच्युत तो इस सूर्यका भी सूर्य है, तेजका भी तेज है—ऐसा दृढ़तासे समझ रखना चाहिए. इस तेजोमय स्वरूपका दृढ़ ध्यान–अभ्यास करते करते साध्य हो जाता है और फिर सती अच्युतव्रताको मूर्छामें जिस तेजोमय स्वरूपको प्रथम दर्शन हुए थे, उसका लाभ होता है; और ऐसा होनेसे धीरे धीरे प्रभुके निर्गुण स्वरूपका ज्ञान स्वयमही होता है. इसका नाम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अव्यक्त उपासना. इस उपासनामें स्वात्मस्वरूपमें लय मुख्य मंत्र है. इस पवित्र मंत्रमें प्रभुके सर्वोत्तम तेजका ध्यान समाया है; जो ध्यानकर्त्ताकी बुद्धिको परब्रह्ममें लीन करती है. "

इतना कह सत्साधक फिर बोला; " प्रिय पथिको ! यह उपासना कठिन इस लिए है कि, प्रभुका निराकार–निर्गुण स्वरूप ध्यानमें लानेमें कसोटीमें चढ़ना पड़ता है. इसमें कष्ट भी परम है. प्रभु अच्युतका उपासक–भक्त कैसा हो तो प्रभुको प्रिय लगे, यह प्रभु अच्युतने श्रीमुखसे ही कहा है कि, 'जो किसीसे भी द्वेष नहीं करता, जो सब प्राणियोंका मित्र है, दयालु है, मैंपन और मेरापन जिसे नहीं, सुख दुःख दोनों जिसे समान हैं, जो क्षमाशील, सर्वदा संतुष्ट, स्थिर चित्त, मनोनिग्रही और दृढ़ निश्चयवाला है, तथा अपना मन और बुद्धि जिसने मुझे अर्पण कर दिया है, ऐसा मेरा भक्त मुझे प्रिय है. जिससे किसीको दुःख नहीं होता, एवं किसीसे वह दुःख नहीं पाता, हर्ष, इर्ष्या, भय, खेद इत्यादि सबसे जो मुक्त रहता है, वह भक्त मुझे प्रिय है. जो कुछ मिले उसमें संतोष मानता है, सदा पवित्रतासे रहता है, सारासारका पूर्ण विवेक समझता है, सारे संसारसे उदास–विरागी रहता है, किसीसे दुःख नहीं मानता, फलाशासे कोई काम नहीं करता, आनंदमें जो फूलता नहीं, दुःखसे जो त्रसित नहीं होता, किसीका शोक या कामनाकी इच्छा नहीं करता, शुभाशुभ दोनोंका जिसने त्यागन किया है, और मुझमें जो श्रद्धा रखता है, वह मुझे प्रिय है. फिर शत्रु–मित्र जिसे समान हैं, मानापमान एकसे हैं, शीतोष्ण और सुख दुःख भी जिसको बराबर हैं, सारी आसक्तिसे जो मुक्त है, निन्दास्तुति जिसे समान हैं, जो असत्य भाषण नहीं करता, प्रारब्धवशात् जो कुछ मिल जाय उसीमें संतुष्ट होकर, जो यह दुरभिमान–वासना–समत्व नहीं करता कि यह स्थान या घर मेरा है; जो स्थिर चित्तसे मेरी भक्ति करता है, वह मनुष्य मुझे प्रिय है. ' इस लिए हे प्रिय पथिको ! हम भी जब ऐसे ही होंगे तो प्रभु हमें अपनायेंगे. "

इस प्रकार बातें करते हुए पथिक बहुत समय तक चलतेही रहे. इस समय किसीके सिरपर, अथवा हाथोंमें या किसी और जगह पोटली मालूम नहीं होती थी, किन्तु सब रिक्तहस्त मालूम होते थे, उत्साहमग्न थे, आनन्दित थे, प्रेमपगे थे, अलौकिकताका अनुभव कर रहे थे, निर्भय थे, विशुद्ध थे,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोकप्रिय थे, विश्वव्यापी थे, सर्वत्र समदर्शी थे, और सर्वत्र अपने स्वरूपको देखते थे. चलते चलते एक सुन्दर पथिकाश्रम आया. वहाँ मुकाम किया. यद्यपि वे जरा भी श्रमित नहीं हुए थे, तथापि संध्या हो जानेसे अपने स्नान संध्यादिक नित्य कर्म कर नियमानुसार सब अच्युतकीर्तन करनेको तत्पर हुए. बहुत समय तक आनंदसे कीर्तन स्मरणादि* कर वे अपने गुरुरूप सत्साधकको प्रणाम कर लेट रहे. महात्मा सत्साधक प्रभुका स्मरण करता था, इतनेमें उसे जान पड़ा मानों कोई अपने पास आ रहा है. वह एक दिव्य और सुन्दर लावण्यमयी बाला थी. उसको देखतेही वह महात्मा उभय कर जोड़ खडा हो गया और प्रणाम करके कुछ पूछनाही चाहता था कि वह दिव्य बाला स्वयमही बोल उठी; "अच्युतप्रिय ! विदेहमुक्त ! तेरा कल्याण हो ! तेरे आज्ञानुसार अनुसरण करनेवाले तेरे साथियोंका भी मंगल हो. सर्वेश्वर प्रभु अच्युत ही हमारे सर्वस्व हैं, और हम सब उसकी शरणमें हैं, ऐसी सुदृढ़ भावनारूप उस प्रभुकी उपासना तुझे और तेरे साथियोंको परिपक्व हुई है; उसके फलस्वरूपसे मैं तेरे चित्तको प्रसन्न करने आयी हूँ. मैं प्रभु अच्युतकी आज्ञाकारिणी और प्यारी सखी हूँ. देवी चित्तशुद्धि मेरी माता है. हम दोनों साथही रहती हैं. जहाँ मैं रहती हूँ वहाँसे प्रभु अच्युत पलभर भी नहीं हटते. मेरा नाम देवी चित्तस्थिति है. मैं जिस पर प्रसन्न होती हूँ, उसके चित्तमें जाकर निवास करती हूँ और फिर प्रसन्नतापूर्वक उस चित्तको जरा भी चलायमान होने नहीं देती. क्योंकि मेरा तो सदा सर्वदा प्रभु अच्युतकाही समागम है, अतः इनसे किसी चीजको अधिक उत्तम मानूँ, या उसके लिए अन्यत्र ललक कर जाऊँ ? चेत्यांशसे विलग हो चित जब आत्मा परमात्मा—परब्रह्म–सच्चिदानंदमें प्रविलय पावे और अति विशुद्ध तथा परम पवित्र हो असत्वत् हो रहे और अभावकी अत्यंत भावनासे क्षीण हो जाय, तभी इस चित्तकी परम गति जाननी चाहिए. तेरी गति यही है. महात्मन् ! मैं तुझ पर अत्यंत प्रसन्न हूँ, इस लिए आजसे अब मैं तेरे ही हृदयमें निवास करूँगी. अच्युत प्रभुको मैं बहुत प्रिय हूँ, और मुझे प्रभु अच्युतके भक्त बहुत प्रिय हैं, क्योंकि

---

* यहाँ स्वरूपानुसंधान नामका कीर्तन समझना चाहिए और जो स्मरण है उसे सच्चिदानंद स्वरूपकी आसक्ति जानना चाहिए.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MHRD

वे सिवा अच्युतके और किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं रखते और सिवा अच्युतके उन्हें अन्य किसीकी कामना या आशा भी नहीं होती. "

उनकी ऐसी बातचीत सुनकर दूसरे अधिकारी पथिक भी झटपट जाग उठे, और देवी चित्तस्थितिको प्रणाम कर खड़े रहे तथा वह देवी उनपर भी कृपा करे ऐसी जिज्ञासापूर्वक अपने गुरु सत्साधककी ओर देखने लगे. उनके लिए सत्साधकके प्रार्थना करनेके पूर्वही, वह महादेवी स्वयम् ही प्रसन्नतापूर्वक उनसे बोली; "धर्मात्मा पथिको! अपने सद्गुरुकी सेवा कर उनकी आज्ञा मान कर तुमने जो अच्युतभावना दृढ़ की है, इसके लिए मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ; मैं निरंतर तुम्हारे चित्तमें निवास करूँगी. तुम्हारा कल्याण हो, बोलो प्रभु श्रीअच्युतकी सदा जय." यह अंतिम शब्द बोलतेही वह तेजका बिम्बरूप होकर सत्साधकादिमें प्रविष्ट हो गई.

आगे बढ़ते हुए महात्मा सत्साधकने कहा; "हृदयप्रिय बंधुओ!* अतिशय परिश्रमके पश्चात् अच्युतकृपासे हम यहाँ तक आ पहुँचे हैं, उन समर्थकी कृपासे सारे विघ्नोंमेंसे बचेंगे और पार भी पायेंगे. पर अब विकट घाटी आती है. यह आनेवाली घाटी सबसे कठिन है. 'अच्युत प्रभु ही मेरे सर्वस्व हैं, अन्य किसी बातकी आशा-वासना नहीं है,' ऐसा दृढ़तासे समझनेवाले बंधुको और अहंकारभावका नाशकर जिसकी बुद्धि सर्वत्र वासुदेवात्मक हुई है, उसको किसी भी अडचनके आनेकी संभावना नहीं है; पर कच्चे दिलके भाइयोंके लिए मुझे बड़ी चिन्ता है. इस लिए हमें तीव्र वैराग्य धारण करना चाहिए. कोई अपना नहीं है, वैसेही हम भी किसीके नहीं हैं; सारा जगत्, जन्म, मृत्यु, जरा, आधिव्याधि आदि दुःखरूप दोषोंसे परिपूर्ण होनेसे सारहीन है, बंधनरूप है, और कालके मुखमें है, ऐसा समझ किसी वस्तुपर प्रीति न कर, केवल प्रभुके चरणोंमें ही प्रीति जोड़कर चलनेवालेको तो सब कल्याणकारी है. इस लिए चलो, सचेत हो जाओ, और अच्युत प्रभुका स्मरण करो. जिससे वे कृपालु, हमें सब संकटसे पार उतार सायुज्य पदमें लीन करें!"

संघ चलने लगा. सब पथिक कुछ आगे बढ़े पर नित्यकी नाईं आज

* यह नया संबोधन है. अबतक सत्साधक साथ चलता था, इससे पथिक था-द्वैत मालूम होता था, अब वह और ये समान हुए हैं-एक हो गये हैं-अद्वितीय हुए हैं, इससे 'बंधु'का संबोधन किया है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुछ आनन्दमय नहीं लगता था. जैसे पथिक उदास मन दिखाई देते थे, वैसे उनका मार्ग भी उत्तरोत्तर वनशोभारहित आने लगा. ज्यों ज्यों वे आगे चले, त्यों त्यों वृक्ष, जलाशय, वनपशु इत्यादि सब सौन्दर्य पीछे ही छोड़ते गये. अब तो निरा उध्वस्त,–शून्य अरण्यही आने लगा. रास्ता चलते पथिकोंकी आहारके लिए फल और पीनेके लिए जलकी आशा तक भंग होने लगी. ऐसे निराशारण्यमें * चलते हुए उन्हें अपना मार्ग बहुत लंबा जान पड़ा. बहुतसे सहज अल्पज्ञानी तो थोड़ेमें ही थकने लगे. चलते चलते बहुत समय बीत गया, मध्याह्न हो गया, भानुतापसे सब अकुलाने लगे, अनेकोंको भूख लगी, अनेक प्यासे हुए और कई एक अश्रद्धालु हो गये. उन्हें सत्साधकने समझाया कि, " यह अंतिम घाटी उतरते ही हम लोग श्रीअच्युतपुरके द्वारके समीप जा पहुँचेंगे. " † तथापि जिनके पास किसी गुप्तरीतिसे वासनारूपी पोटली थी, वे थक जानेसे मृतकसे हो, थक थक कर बैठने लगे. ऐसा करते कुछ देरमें कुछ भीगीली और हरित तृणांकुरोंसे आच्छादित पृथ्वी आने लगी, तब फिर कुछ धीरज रख आगे बढ़े.

कुछ दूरसे उन्हें मार्गके मध्यमें एक बड़ा जलाशयसा दिखाई दिया ‡

---

* पूर्ण ज्ञान होनेके बाद ज्ञानीकी स्थितिका यह वर्णन है. यह जो निराशारण्य है वह जगतके सब पदार्थोंके प्रति विरागवृत्ति है. जगतपर विराग प्राप्त हो जानेपर, देहसे जो व्यवहार करता है, वह मात्र एक पुतलेकी तरह करता है. अरण्य यह ज्ञानी होनेके पीछेकी वैराग्यवाली स्थिति है. इसमें जो ताप है वह ब्रह्मप्राप्तिमें होनेवाला विलंब–अधैर्य है; जो क्षुधा है वह परम पदकी सत्वर प्राप्त होनेकी इच्छा है और जो अश्रद्धा है वह जगतके मिथ्यात्व संबंधी संशय है.

† सत्साधकने जो पिछली घाटी कही है, वह जीवको मरण समयकी घाटी है. जीवनभर आत्मतत्त्ववेत्ता रहनेपर भी—प्रभुभक्तिमें तत्पर रहनेपर भी-अंतकालमें वासनाका अंकुर अकस्मात् फूट निकलता है, जिससे फिर जन्म मरणके फेरेमें पड़ना पड़ता है; इससे यह समय सबसे अधिक सावधानी करनेका है. भरतादि इस घाटीमें फँस गये थे, इस लिए इस घाटीमें बहुत सावधान रहना चाहिए. अंतकालमें जैसी मति तैसी गति, ऐसा भी कहा है.

‡ ज्ञानीकी अंतकालीन स्थितिमें, अनेक ज्ञातियोंको सर्वोंके दर्शन होते हैं, उस मोहमें भी अनेक पथिक फँस कर पीछे गिरते हैं, इस लिए जीवको ठेठ तक स्वस्वरूपमें निमग्न रह, स्मरण रख, विश्वमें—चाहे वह यह लोक हो या दूसरा उच्च लोक-देवलोक–वैकुण्ठ–कैलास हो, वहाँ भी वासनासे अलिप्त रहना चाहिए.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MHDF

जलकी लालसासे अत्यंत आनन्दित होकर पथिक जब शीघ्रतासे वहाँ पहुँचे तो वह एक बड़े विस्तारवाली और पूर्वसे पश्चिमको बहनेवाली नदी थी. उसकी लम्बाईका तो पारही न था, पर चौड़ाई भी इतनी बड़ी थी कि, सम्मुखका किनारा दृष्टिमर्यादा तक दिखाई नहीं देता था. इस नदीमें जल गंभीर या जोरसे प्रवाहित होनेवाला नहीं था, पर उसके ऊपर रंगबिरंगे कमलपुष्प खिल रहे थे; एवम् जलमें होनेवाली अनेक सुन्दर लताएँ भीतर रही थीं. यह सब देख प्रसन्न हुए और जलमें जा पड़नेकी तैयारी किये हुए पथिकोंको किनारे परही रोंककर महात्मा सत्साधकने सचेत किया कि; "प्यारे भाइयो ! तुम सब निराशारण्यमें चलकर बहुत हैरान तथा श्रमित हो गये हो, यह मैं जानता हूँ, पर उससे अब कोई शीघ्रता करनेकी जरूरत नहीं है; क्योंकि यह महाविस्तृत सरिता पारकर हमें उस ओरही जाना शेष है. उस-ओर अत्यंत सुखपूर्ण मार्ग है. पर यह सरिता पार करना बहुत कठिन है.* ऐसा जान पड़ता है कि जगत्पुरसे यहाँ तक आये हुए पथिकोंके सत्त्वकी संपूर्णतः परीक्षा करनेके लिएही मानों यह सरिता मार्गमें निर्मित हुई है. क्योंकि इसमें जल ज्यादा गहरा न होनेसे नाव नहीं तिर सकती; एवम् अज्ञानियोंसे पैदल चलकर भीतर पैठा भी नहीं जा सकता, क्योंकि भीतर चिकना अपार कॉदव होनेके सिवा, मगरादि जलचर प्राणियोंका भी बहुत भय है. तुम सब प्यासे हुए हो सही, पर यह जल पीने योग्य नहीं है. इस लिए तटपरसेहि सावधानीपूर्वक चले आवो. यहाँ अधिक विलंब होना ठीक नहीं. मैं आगे जाता हूँ और तुम सब एक एककर इस तरह मेरे पीछे चले आओ कि जिससे गिरो नहीं† क्योंकि यह छोटा, जलपूर्ण मात्र एकही मार्ग उस ओर जानेके लिए है; उसपर होकर दो मनुष्य भी साथमें नहीं चल सकते, ऐसा संकीर्ण होनेसे मैं तुम्हें एक एक कर श्रेणीमें चलनेको कहता हूँ. फिर

---

* यह सरिता अंतकी वासना जानो. किसी भी पदार्थ पर दृढ़ भावना रखना ही वासना है. अंतकी वासना, मनमें ऐसी इच्छा होना कि, 'मैं ब्रह्मको पाऊँगा,' 'मैं ज्ञानी हूँ इसीसे इस अवस्थाको पाया हूँ' इत्यादि. इसमें 'मैं' वासनाका जबतक लय नहीं होता, तबतक यह चाहे जैसी उपासना और चाहे जैसे तत्त्वज्ञानका नाश करती है. यह अंतिम घाटी दुःसाध्य है. यह साध्य होनेसे मोक्ष होता है-परब्रह्म मंदिरमें प्रवेश हो सकता है.

† अर्थात् मैंपनका अभिमान त्याग ब्रह्ममय बनो.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह मार्ग निरंतर जलसे ढका* रहनेके कारण, दोनों ओर सेवार–मायासे परिपूर्ण रहता है, और इस लिए यदि चलनेवाला जरा भी प्रमादी या अचेत होकर इधर उधर देखता है, तो तुरंत उससे फिसलकर जलमें आ पड़ता है, और कुछ समय तक फिर मार्गपर नहीं आ सकता. इस लिए भलीभाँति सचेत होकर मेरे पीछे चले आओ." ऐसा कह वह जलस्थित मार्गपर जा खड़ा हुआ. उसके इतनी चेतावनी देनेपर भी, भूख, प्यास† और तापादि परिश्रमसे व्याकुल पथिक, जल पीनेके मिषसे नदीमें उतरने लगे. जो पथिक परम श्रद्धालु, और सद्गुरु महात्मा सत्साधकके प्रति पूर्ण भक्त थे वे तो उसके आज्ञानुसार उसीप्रकार श्रेणीबद्धसे हो मार्गपर जा खड़े हुए; पर जो श्रद्धालु होनेपर भी पूर्ण विरागी नहीं हुए थे, वे अपना ताप शान्त करने, क्षुधानिवृत्त्यर्थ और अपने हाथों अपना नाश करनेके लिए, जलमें गिरे ! सत्साधकने बहुतेरा रोका, जोरसे चिल्लाकर उन्हें भीतर न जाकर किनारेसेही निकलकर मार्गपर जानेको कहा, पर वे जलकी सुन्दरता देख ज्यों ज्यों भीतर पैठते गये त्यों त्यों कीचमें फँसते गये; और देखते देखते कोई कमर तक तो कोई छाती तक और कोई गले तक उसमें धँस गये; और ज्यों ज्यों निकलनेका प्रयत्न करते त्यों त्यों अधिक गहरे धँसते गये ! ऐसा देख महात्मा सत्साधकको धर्मसंकट आ पड़ा; क्योंकि यदि सम्मुख डूबे हुओं और धँसे हुओंको बाहर निकाले बिना आगे जाय तो उसपर निर्दयता और स्वार्थपरताका दोष लगे और उन्हें निकालने जावे तो स्वयमही उस गुप्त कर्दममें धँसकर उनकी तरह नाशको प्राप्त हो ! ! ऐसा होनेपर भी अतिशय दयाके आवेशसे वह महात्मा उन्हें फिर निकल जानेके लिए कहते कहते दयार्द्र हो गया और स्वयम् जलके गुप्त मार्गपर जहाँ खड़ा था, वहाँसे हाथ फैलाकर उन धँसे हुओंको खींच निकालनेका प्रयत्न करने लगा. जो उसके समीपमें थे, ‡

---

* जिसे गुह्यागार कहते हैं, उस गुप्त स्थानमें भी वासना रहती है.

† यहाँ क्षुधातृषा व्यावहारिक नहीं, पर दैवी समझना चाहिए. क्षुधा अर्थात् अधैर्य, तृषा अर्थात् कुछ है या नहीं ऐसा संशय; ताप अर्थात् वासना छूटते समयकी घबराहट.

‡ पूर्ण श्रद्धालु विरागवान्, ज्ञानसहित भक्तिवाले और वासनासे छूटनेके लिए उद्यम करनेवाले.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उन कुछ पथिकोंने उसका हाथ पकड़ लिया और बड़ी खींचातानी किये बाद बड़े प्रयाससे वे मार्गपर आये.* दूसरे अनेक, अधिक हलचल करनेसे उल्टा अधिकाधिक गहरे धँसने लगे. † अहा ! मनका स्वभाव कितना बड़ा उच्छृंखल है ! इतना रोकनेपर भी जिन्होंने नहीं माना, उनकी कैसी दुर्दशा हुई, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव करनेवाले कितने एक पथिक, जो सिर्फ जलहीकी ओर न देख, मार्गस्थ होनेके लिए तैयार खडे थे, बडे ही खिन्न हृदयसे सत्साधकसे आगे चलनेकी प्रार्थना करने लगे. पर वह महात्मा ठहर गया, और अधीर स्वभाववाले उन भाइओंसे कहने लगा "क्षणभर, ठहरो ! अच्युतनामका ध्यान करो, तुम्हारे अंगपर जो कुछ भार‡ हो उसे फेंक दो, तुम हल्के हो जाओगे तो मैं खींच लेऊँगा." तुरंत उन डूबनेवालोंने वैसाही किया और प्रभु अच्युतकी जयध्वनि करता हुआ वह संघ निर्विघ्नतासे चलने लगा; तथा फिर सब पथिक बडी सावधानीसे एकही लक्ष रख कर चलने लगे.

नदीका मार्ग बहुतही विलक्षण और भयपूर्ण था. वह जलसे भरा, सँकरा और दोनों बाजू सेवारयुक्त होनेसे उस परसे प्रतिक्षण और पद पद पर फिसल पड़ना संभव था. गिरा कि बस हुआ ! उस कुंडसे बाहर निकल सकना तो ईश्वराधीन हीं था ! वह ऐसी भयंकर नदी थी कि यदि चलनेवालेने इस वासनारूपी नदी अथवा उसके कमल पुष्पादि मनहर पदार्थों, या जलमें क्रीडा करनेवाले विचित्र सुवर्णमय रंगवाले मत्स्यादिकी ओर जरा भी नजर की कि अवश्य वह उसमें फिसल पडे, और उसके कर्दममें धँस जावे. इस लिए महात्मा सत्साधकने उन्हें चलते हुए वारंवार सावधान किया था कि, "इस मार्गपर चलनेवाले पथिकको, अपने मार्ग (ब्रह्ममार्ग) के सिवा दूसरे किसी स्थान पर नजर नहीं डालनी चाहिए. एकाग्र दृष्टिवाला पथिकही इस दुःखद प्रसंगके उस पार जा सकेगा !" यह बात ध्यानमें रख सब पथिक बहुत समय तक तो सचेत रहे, पर इनमेंसे न जाने कब कितने पथिक नदीमें गिरे और अदृश्य हो गये, यह मालूम

---

* स्वरूपानुसंधान तो कायम रहा, पर जो वासना थी, वह भोगकर एक जन्ममें छूटा.

† चारमेंसे एककी न्यूनतावाला कुछ काल जगतमें रहकर छूटा.

‡ वासनाके अंकुररूपी जो भार हैं वे.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं हुआ. पर जिन्हें आशा (वासना) नहीं थी, वे निराश (निर्वासनावाले) पथिक, महत् कष्टके बाद उस दुस्तर नदीके उस पार पहुँच गये; और उनके सम्मुख मणि माणिक्यसे जडित उज्ज्वल तट दिखाई देने लगा !

ब्रह्मतट-हजारोंमें कोई एकही अंतर्निष्ठ.

नदीका इस तरफका (जगतका) दक्षिण किनारा जितना भीषण और भयंकर था, उतना सामनेका किनारा सुरम्य और सुखरूप था. किनारे पहुँचने तक सत्साधकने अथवा किसी पथिकने पीछे फिर कर देखा नहीं था. सब अपनी अपनी तानमेंही थे. पर किनारे पहुँच अति दिव्य भूमिपर जब वे सब एकत्र हुए, तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ कि "अहो ! यह क्या?" सत्साधक बोला; "इतना बडा संघ कि जिसमें करोडों पथिक थे और जिनकी गणना नहीं हो सकती, उसमेंसे अहो ! एक-दो-तीन-चार-पाँच-बस ! सिर्फ इतनेही तरे ! हरे ! हरे ! आश्चर्य है ! जगन्नगरसे निकलते समय अपने संघमें पहले हजारों, लाखों और कोट्यवधि मनुष्य थे; पर उसमेंसे अबतक यह पिछली घाटी उतरनेपर ये पाँचही मैं अपने आगे खड़े देखता हूँ ! यह क्या आश्चर्यमें डालनेवाली बात नहीं है ? पर इसके लिए प्रभु अच्युतने स्वयमही श्रीमुखसे कह रखा है कि:—

"मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

अर्थ— सहस्रावधि मनुष्योंमेंसे कोई एक मनुष्य मेरी सिद्धि प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करता है; और वैसे हजारों प्रयत्न करनेवालोंमेंसे कोई एक दोही मुझे तत्त्वसे जानता है-प्राप्त कर लेता है. "

परमात्माकी यह वाणी सत्य है. ऐसा जो हुआ, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है. उसी तरह अच्युतमार्ग ऐसा सरल नहीं है कि जिस पर असावधान मनुष्य चल सके. जिसके हृदयमें ज्ञानभक्तिपूर्वक अच्युतकी प्यारी भक्तिका निवास है, जिसने सब त्याग दिया है-जो तत्त्वके तत्त्वको जानता है-वही पुण्यात्मा प्राणी प्रभु अच्युतकी पूर्ण कृपासे यहाँ तक निर्विघ्न आ सकता है. इस लिए बोलो श्री सर्वेश्वर सर्वसमर्थ प्रभु अच्युतकी जय जय जय ! !"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लय.

आज—अबतक उस जगत्पुरके पाँच पथिक, परमानंद भूमिपर पहुँच चुके हैं. अब सबको स्वाभाविकही आनंद हो रहा है. सबसे पिछला लय भी पीछे छोड़कर वे यहाँ आये हैं. यहाँ कालपुरुषका तो नाम भी नहीं, पर दूसरा कुछ भी भय उनको नहीं है. सर्वत्र विज्ञानानंद फैल रहा है. देखते हैं तो किसीके पास प्रेमानंद, किसीके पास कैवल्यानंद, किसीके पास सच्चिदानंद रम रहा है ! वहाँ अनेक अद्भुत चमत्कार मालूम होते हैं, अनेक दिव्य यान तथा दिव्य लोक उनके सम्मुखसे होकर जाते आते दिखाई देते हैं. अनेक दिव्य प्राणियोंका उन्हें समागम होता है. उनका भी शरीर दिव्यता प्राप्त करनेसे उनकी दृष्टि दिव्य होगई है. अच्युत प्रभु कैसे होंगे, अच्युत नगर कैसा अद्भुत होगा, वहाँ वसनेवाले अच्युत प्रियजन कैसे होंगे, उनका पारस्परिक ऐक्य कैसा, और प्रेम कैसा होगा, तथा वहाँ परमानंद प्रभु अच्युत सब पर कैसी कृपालुता और स्वात्मभावना दर्शाते होंगे, वह कुतूहल मिट गया है ! अब उस कृपालुसे कब जा मिलेंगे, ऐसी उत्कंठामें वे तल्लीन होकर आगे बढ़ते हैं.

इतनेमें अति विचित्र प्रकाश जो सती अच्युतव्रताने वर्णन किया था, समीप आया. वहाँ इन पथिकोंका अपना कारण–देहाभिमान गल गया और वे स्वयं प्रकाशरूप हो गये. उसीमें अच्युतपुरकी लीला देखने लगे. दूसरे सब दिव्य मंदिरोंमें सबसे श्रेष्ठ अच्युतके शिखरवाला दिव्य मणिमय प्रभु अच्युतका निज मंदिर, अच्युतके प्रेमी सेवकोंको अपने विचित्र तेज-द्वारा आदर देता था. अच्युतपुरके द्वारके समीप पहुँचतेही पहले तो अनेक दिव्य बाजों और दिव्य सामग्री सहित अच्युतसेवक उन्हें लेनेको आदरसे आगे आये; और बड़े सत्कारसे सत्साधकादि पथिकोंसे भेंट की. परस्पर महत्प्रेमके साथ जयध्वनि कर अच्युतसेवक उन्हें लेकर पीछे फिरे. सब पथिकोंने पुण्यरूप मंदिरके दिव्यासनपर विराजकर अच्युतमें ज्योंही अंतः-प्रवेश किया, कि तत्काल दिव्य होकर सब पथिक उस ब्रह्मस्वरूपमें लय हो पागये ! अहोभाग्य ! महाभाग्य !! धन्यभाग !!!

उपसंहार !

पुरप्रवेश और अच्युतमंदिरतकका सारा वृत्तान्त, वरेप्सुआदि विमान-वासी इतनाही अवलोकन कर सके, पर निजमंदिरके भीतरके महत्प्रका-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शमें उनकी गति नहीं चली. सत्साधकादि पथिकोंको प्रकाशमें प्रकाशरूप हुए देख, आगे वे कहाँ गये, यह उनको दिखाई नहीं दिया. महाराजा वरेण्सुने एकवार अनुभव किया था, वे भी इस समय सबके साथ विक्षिप्त चित्तसे आगेका दृश्य नहीं देख सके. उन्होंने सब महात्माजनोंके सहित, सद्गुरु देव ऋषिपुत्र वामदेवजीसे प्रार्थना की, तब वटुक वामदेवजीने कहा "पुण्यजनो ! अधिकार विना वस्तु कहाँसे प्राप्त हो ? सब वासनासे मुक्त और अभेद अनुभवी होनेसे-अच्युतपरायणांतःकरणवाला होनेसे उस पथिक-समाजने तो परमपदको पाया है ! जिसकी यह दशा, वही मुक्त दशा ! यही सायुज्यमुक्ति ! उनकी परम भक्ति, और अच्युतप्राप्त्यर्थ सहन किये हुए अपार परिश्रमसे-आत्मशोधनसे क्या तुम अनभिज्ञ हो ? अपनी निष्काम भक्तिके लिए तो वे धन्य धन्य हैं !" यह सुन सब पुण्यात्मा साथ बोले; "कृपानाथ ! उनका परिश्रम यथार्थ है ! हम लोग भी आपके कृपाप्रसादसे, अब अच्युतपदके सिवा दूसरी आशा या कामनावाले नहीं हैं. आपने जबसे अग्निस्नान कराया, तबसेही हम अच्युतपुरकी आशासे समस्त आशा-देहाभिमान-वासना-त्यागकर, देहप्राणादिकको भी तुच्छ समझ, जब आपके सम्मुख आये हैं, तो अब हमें दुराशा-कुवासना या सुवासना क्योंकर बाधा करेंगी ? आप तरणतारण हो, इस लिए तारो ! तारो ! पार उतारो ! आपही हमारी नौका हो, इस लिए हमें तारो !' ऐसा बोलते ही सब पुण्यात्मा जीव-जो सब साधनसंपन्न थे गुणातीत, समदर्शी, बंधनमुक्त होगये ! वे अशरीरी मालूम होने लगे, प्रियाप्रियका भाव भी दूर हो गया; अभिमानग्रंथि छूट गई; वे अकाम, निष्काम, आप्तकाम, आत्मकाम हो गये ! निस्संगी, निरर्गल (स्वतंत्र) हो गये और स्वस्वरूपके सहजानंदमें विचरण करने लगे.

ऐसी स्थिति पूर्ण होते ही विमानवासियोंमें अति कौतुक हुआ. सब विमानवासी अशरीरी अवस्थामें थे, और सब कारणसे रहित थे, इतनेमें ही विमान एकाएक लोप होगया, और सभी मानों नभमंडलमें तारागणोंकी भाँति अपनेको अधर देखने लगे. ज्ञानसे सब विभ्रांतके समान मालूम हुए. यहाँ सब भयहीन थे. परंतु विमानकी यह गति होते ही सबकी स्थिति भयरहित-वासनारहित हो गई. तत्काल सब एक स्वरूप मालूम होने लगे. न राजा वरेण्सु, न गुरु वामदेव और न पुण्यसमाज ! सर्वत्र वासुदेवमय ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मालूम हुआ ! सब अद्वैत स्वरूप हो जाते ही, दशों दिशाओंमें एक दिव्य प्रकाश व्याप रहा और उसमें वे कहाँ समा गये, यह मालूम नहीं हुआ !

कवियोंके दिव्य नेत्र होते हैं, ज्ञानियोंके भी दिव्य नेत्र होते हैं. उनकी गति सर्वत्र है. यद्यपि हम कवि नहीं, ज्ञानी नहीं, पर हमें कोई दिव्य नेत्रोंद्वारा दिखलाता है कि, जो पुण्यसमाज समागया, उनमेंसे प्रत्येकको दिव्य देहकी प्राप्ति हुई थी. उनमें देखा तो अगणित सुमधुर दिव्य बाजोंका शब्द करते अच्युतसेवक उनके आदरार्थ आगे आये हैं जो कभी नहीं देखे ऐसे विचित्र दिव्यदेहधारी प्रभु अच्युतके समानही दिखनेवाले पार्षदोंको देखकर सब पुण्यात्मा उत्कट प्रेमोत्साहसे जा मिले ! और उनके साथ एकताका अनुभव करने लगे ! * तत्काल यह समाज पुरप्रवेश कर परम रमणीय मूर्ति प्रभुके निजधामके पास गया और सर्वेश्वर, सर्वसमर्थ, सर्वकाम प्रभु अच्युतसे भेंट कर सदा सर्वदाके लिए कृतार्थ हुआ ! तदाकार ही बनगया ! कृपा, करुणा, सुख, सामर्थ्य और प्रेमादिके पूर्ण समुद्र प्रभु अच्युतने अपने प्रत्येक भक्तको अपार प्रेमसे निज हृदयके साथ लगा लिया; और अपने समान अभय कर अपने धाममें निवास कराया.

वहाँ सर्वत्र चिदानंदमय प्रकाश व्याप रहा है. सब एक स्वरूप अद्वितीय जान पडते हैं. वहाँ चंद्र नहीं, सूर्य नहीं, देव नहीं, दानव नहीं, मानव नहीं, वहाँ पिता नहीं, माता नहीं, स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, धन नहीं, वहाँ काम नहीं, क्रोध नहीं, भेद नहीं, वहाँ ब्राह्मण नहीं, चाण्डाल नहीं, पुण्य नहीं,

---

* प्रभुकी शरणमें होनेके तीन भेदः—मैं प्रभुका हूँ, प्रभु मेरे हैं, और हम दोनों एकही हैं, अर्थात् मैं वही हूँ । प्रथम शरण यद्यपि मृदु है, तो भी इसमें भेदबुद्धि रहती है, जो नहीं होनी चाहिए; तथापि यह शरण भी श्रेष्ठताको पहुँचाती है. इसमें जीवकी वृत्ति श्रेष्ठ है, और वह परमात्माको महद्भावसे देखता है. वह प्रार्थना करता है कि, "हे नाथ ! आपके बीच भेद है, तथापि मैं तुम्हाराही हूँ; तुम मेरे हो ऐसा नहीं. जैसे तरंग समुद्रका है, पर समुद्र कुछ तरंगका नहीं. " दूसरा भेद मध्यम है. गोपियोंने ऐसा माना कि, कृष्ण हमारे हैं, इससे वे कहती हैं कि, "हे कृष्ण ! हाथ खींच बलकर तुम जाते रहे, इसमें कुछ विचित्रता नहीं है. हमारे इस हृदयमेंसे जाओगे तब तुम्हारा पराक्रम है ! " तीसरी शरण श्रेष्ठ है. उसमें सब वासुदेवमय है, यही एक परम पुरुष ईश्वर है, ऐसा अनन्यहृदय हो जानेपर उसी स्वरूपमें विलास करना सर्वोत्तम है. यहाँ अवधि शरण है, तथापि दूसरी दो गौणका प्रथम संग रखा है. गीता १८ अध्यायके ६५-६६ श्लोकमें जो शरण दर्शायी है उसमें जो अवधिभेद है, वही यह है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देखनेवाला नहीं, देखने योग्य नहीं, वहाँ ह्रस्व नहीं, दीर्घ नहीं, श्वेत नहीं, रक्त नहीं, पीत नहीं, श्याम नहीं, किसी प्रकारका रंग नहीं; वहाँ द्रष्टाकी दृष्टिका विपरिलोप नहीं है–इस प्रकारकी अनंत अभिन्नता व्याप रही है! वहाँ सब अविनाशी हैं! अपनेसे अन्य कुछ भी नहीं कि अपनेसे अन्य कुछ भी देखें! एकही अद्वितीय–ब्रह्म—परमात्मा—प्रेम! वहाँ जो है वह कोई जानता नहीं है. वहाँ चक्षुकी गति नहीं, वाणीकी गति नहीं. वहाँ क्या है, मनकीभी गति नहीं. वह हम नहीं जानते; जानते भी हों तोभी उसे बतावें कैसे, यह भी नहीं जानते. जिसने जाना है, उसने जनाया नहीं—जो जानता है वही जानता है; फिर जिसने जान लिया है, वह कह नहीं सकता, और जो कह सकता है, उसने जाना नहीं है. जो जानता है, उससे वह दूसरा है, एवम् जो जानता नहीं, उससे वह अधिक है! पर जो जानता है वह तो जानता है. हम कहते हैं कि, यह वही है! यह वही है! और पुनः कहते हैं कि यह वह नहीं है! यह वह नहीं है! सर्वेश्वर! सर्वात्मा! भक्तवत्सल! प्रेममूर्ति! सच्चिदानन्द! जय! अद्वितीय–आत्मा—परमात्मा–ब्रह्म—परब्रह्म प्रेम! शान्ति! जय!

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः॥

अर्थ—श्रीकृष्ण जब अपने बड़े भाई बलदेवके साथ कंसके सम्मुख रंगभूमिपर गये, तब भिन्न भिन्न लोगोंने श्रीकृष्णको भिन्न भिन्न रूपमें देखा था. वीरोंने वज्र जैसा देखा था, सत्पुरुषोंने महात्मा जैसा देखा था, मथुराकी नारियोंने मूर्तिमान् कामदेवके रूपमें देखा था, गोपियोंने अपने संबंधीरूपमें देखा था, दुष्ट राजाओंने दण्ड देनेवालेके रूपमें देखा था, मातापिताने बालकरूपमें देखा था, भोजपति कंसने मृत्युरूपमें देखा था, मूर्खोंने शस्त्रसे घायल होनेके कारण वीभत्सरूपमें देखा था, योगियोंने परम तत्त्वरूपमें देखा था और यादवोंने परम इष्ट देवरूपमें देखा था.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE-IKS

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu